प्रकाशक :
श्री अशर्फीदेवी धर्मपत्नी ला० तनसुखराय जैन
तनसुखराय स्मृति ग्रन्थ समिति
२१, अन्सारी रोड, दरियागज, दिल्ली

●

मूल्य : १० रुपये

●

मुद्रक
इम्पीरियल बुक डिपो प्रेस
जामा मस्जिद.
दिल्ली

सुश्री अशर्फी देवी धर्मपत्नी ला० तनसुखराय जी

के लिए

जिन्होने अपने पति के लिए समाज और देश सेवा के कार्य में सहयोग ही नही दिया

बल्कि समय-समय पर उत्साह और प्रेरणा देकर

उन्हे प्रोत्साहन देती रही

जो

अति विनम्र, अतिथि सेवा परायण, धार्मिक और कर्तव्यशील

महिला रत्न हैं

स्त्री शिक्षा प्रचार और समाज सेवा के कार्य में

जो विशेष प्रयत्नशील रहती हैं

उन्ही के कर कमलो में यह स्मृति ग्रन्थ

सादर समर्पित है

जन्म
२१ नवम्बर, १८६६

स्वर्गवास
१८ जौलाई, १९५५

दो शब्द :

प्रसिद्ध देशभक्त कर्मवीर कुशल व्यवसायी समाजसेवी

ला० तनसुखराय जैन

स्मृति ग्रन्थ

देश और समाज सेवा का सुन्दर समन्वय

भारतभूमि रत्नगर्भा है। समय-समय पर कुछ ऐसी दिव्य विभूतियाँ जन्म लेती है जो अपने कार्य और प्रभाव से एक नया चमत्कार पैदा कर देती है। नवभारत के निर्माण मे लोकमान्य तिलक, विश्व कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर, विश्वबन्धु महात्मा गाधी, पजाबकेसरी ला० लाजपतराय और विश्व-शान्ति के अग्रदूत प० जवाहरलाल नेहरू जैसे अद्वितीय महान रत्न हुए जिन्होने लोक कल्याण की भावना से जन साधारण मे असाधारण क्रान्ति की भावना उत्पन्न की। अपनी प्रभावशाली वाणी और आश्चर्यजनक कार्यो से देशवासियो के हृदय मे ऐसी जागृति की ज्वाला जगाई कि उन असख्य युवको और वीराङ्गनाओ ने सहर्ष मातृभूमि के चरणो मे अपने को न्यौछावर कर दिया।

राष्ट्रीय आन्दोलन मे जैन समाज भी कभी पीछे नही रहा उसके शक्तिशाली युवको ने स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए एक-दूसरे से आगे बढकर अपना तन-मन-धन अर्पण करने मे अपना गौरव समझा।

परतन्त्रता रूपी अन्धकार को दूर करने और स्वतन्त्रता रूपी लाली भरे भास्कर का स्वागत करने के लिए तेजस्वी युवक आगे आए। उन्ही युवको मे देशभक्त कर्मवीर समाजसेवी ला० तनसुखरायजी थे, जो देश सेवा को अपने जीवन का लक्ष्य समझते थे। उन्होने भ० महावीर के मगलमय शासन को लोकव्यापी बनाने के लिए प्रयत्न किया। वे मानवता की सेवा के लिए सदैव लालायित रहते थे। जैन समाज एकता के सूत्र मे बंधकर अहिंसा धर्म का अधिक से अधिक प्रचार करता रहे। यह पुनीत भावना उनके हृदय मे सदैव बनी रहती थी। शाकाहार का प्रचार हो, पशुधन की रक्षा हो इस सम्बन्ध मे उन्होने बडा महत्वपूर्ण कार्य किया। देश समाज के प्रति की गई उनकी सेवाएँ स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य है। उनका जीवन युवको के लिए आदर्श है। आज जब भ्रष्टाचार और लोलुपता का बोलबाला दिखाई दे रहा है तब हम उनके जीवन को देखते है कि उन्होने पदो की कभी अभिलाषा नही की। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् राजनीति को छोडकर वे समाज-सेवा के क्षेत्र मे आए।

देश-सेवा

सन् १६१६ मे जबकि असहयोग आन्दोलन शुरू हुआ और हमारे देश मे आजादी की लहर दौडी तो उनसे न रहा गया। एकदम स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग करना शुरू कर दिया। पजाब-केसरी लाला लाजपतराय के साथ तिलक स्वराज्य फण्ड मे रुपया एकत्रित करने मे आपने बड़ा कार्य किया। आप पर लाला लाजपतरायजी का बड़ा प्रेम था। लोकनायक प० जवाहरलालजी नेहरू के साथ-साथ रोहतक, करनाल आदि जिलो मे दौरा किया। रोहतक मे जब माता कस्तूरबा गाँधी पधारी और चर्खा दङ्गल हुआ जिसमे २५० महिलाएँ सम्मिलित हुई तो आपने प्रत्येक महिला को ५) और चाँदी की तकली भेंट मे दी। असहयोग आन्दोलन मे ६ माह कारावास मे रहे। १६४२ मे दिल्ली प्रदेश कांग्रेस के अध्यक्ष रहे। हरिजनो के लिए उन्होने एक बोर्डिङ्ग हाउस की स्थापना कराई।

आप उन व्यक्तियो मे से थे जो अन्त तक अपने को छिपाए रखना चाहते थे। अथक उत्साह, स्फूर्ति, व्यवसाय-कुशलता, नम्रता, सच्चाई आदि लोकोत्तर गुणो की मूर्ति थे। आप देश और समाज के निर्भीक सिपाही थे। लक्ष्मी इन्शोरेन्श और तिलक बीमा कम्पनी भारत की प्रसिद्ध प्रगतिशील राष्ट्रीय कम्पनी रही है। यह कम्पनी उच्च आदर्श और लोकहित के सदेश को लेकर कार्यक्षेत्र मे उतरी उसका मूल उद्देश्य भारत की आर्थिक स्थिति को वैज्ञानिक ढग से उन्नत करना और भारत की बढती हुई बेकारी को दूर करना आपने अपने नेतृत्व मे उसका बडी सफलता के साथ सचालन किया।

समाज-सेवा

आपके जीवन पर आपकी धर्मपरायणा माताजी और उदार हृदय पिताजी का अद्भुत प्रभाव पडा। माताजी ने समाज-सेवा की ओर प्रेरित किया। इस युग के समन्तभद्र महान कर्मयोगी ब्र० सीतलप्रसादजी, और विद्यावारिधि बैरिस्टर चम्पतरायजी वीर प्रभु की पवित्र वाणी को देश विदेशो मे फैलाने मे सतत प्रयत्नशील रहते थे। उन्होने समाज मे नये युग का आह्वान किया, विरोध को चुनौती दी और सघर्ष से टक्कर ली। दोनो का हृदय जैन धर्म की श्रद्धा से ओत-प्रोत था। उनकी रुचि दीप-शिखा की तरह शान्त, स्निग्ध और स्थिर थी। परिषद की पतवार अपने समर्थ हाथो में लेकर उन्होंने कभी तूफान की पर्वाह की न प्रलय की। वह जैन धर्म के बडे मर्मज्ञ थे। दोनो के जीवन का अद्भुत प्रभाव उनके हृदय पर पड़ा। परिषद के प्रधान मन्त्री बनकर परिषद की सफलता को मुट्ठी मे लिए फिरते थे। उनके, कार्यो, त्याग और उदारता को देखकर सब लोग भूरि-भूरि प्रशसा किया करते थे। परिषद के लिए उन्होने अपना तन-मन-धन लगा दिया। भेलसा, खडवा, सतना, झासी आदि के अधिवेशन उनकी सफलता के सर्वोत्तम उदाहरण है। वीर सेवा सघ की स्थापना करके नवयुवको को सामाजिक कार्यो की ओर लगा दिया। वीर जयन्ती की छुट्टी के लिए उन्होने बडा प्रयत्न किया। उनकी भावना थी कि कोई सामाजिक उद्योग होना चाहिए। सेवा के कार्य मे वे सबसे आगे थे। वे कहा करते थे कि मै जैन समाज का सदस्य हूँ पर वैसे ही भारतीय

समाज का भी हूँ। इस उद्योग से कुछ ऐसा होना चाहिए जिससे सबका भला हो, इसी भावना मे उन्होंने अपने जीवन मे सेवा के अनेक कार्य किये जिनमे कतिपय का उल्लेख करना आवश्यक है :—

—महगांव काड में समस्त जैन समाज विक्षुब्ध हो उठा। ढाई माह तक आन्दोलन करने के पश्चात् ग्वालियर सरकार के कान खडे हो गए जिसमे जान-बूझकर जैन धर्म का अपमान किया गया था। यह जैन समाज की परीक्षा का समय था। अपने सहयोगी दाहिने हाथ युवक हृदय गोयलीय जी के साथ परिषद के नेतृत्व मे उस सफलता के साथ कार्य किया कि वह विष का घूंट अमृत बन गया। जैन समाज में क्षत्रिय तेज उमड उठा। सफलता का श्रेय उनके चरणो को चूम उठा। इस कार्य में लालाजी के अदभुत कार्यशक्ति का परिचय दिया।

—आबू के मन्दिरो पर सिरोही स्टेट द्वारा लगाया गया टैक्स, टैक्स नही है किन्तु कलङ्क है। यह टैक्स हमारी धार्मिक स्वाधीनता मे बाधक है तथा स्वाभिमान घातक है। आपके इस पुनीत सदेश से जनता में क्रांति मच गई और टैक्स हटाकर ही शान्ति ली। यह कलङ्क जब तक धुल नही गया तब तक चुप नही बैठे।

—भा० दि० जैन परिषद, भारत जैन महामण्डल, वैश्य कांफ्रेस, अग्रवाल सभा, भारत वेजिटेरियन सोसायटी के तो प्राण ही थे।

—दि० जैन पोलिटैक्निकल कालेज (दि० जैन कालेज) बडौत का शिलान्यास आपके ही कर-कमलो द्वारा हुआ।

—५००० भीलो को मासाहार का त्याग कराया।

—चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागर जी महाराज के वे बड़े भक्त थे। कई बार उनके दर्शनो के लिए पधारे।

—स्याद्वाद महाविद्यालय के भवन को गंगा के थपेडो से जब खतरा उत्पन्न हो गया और भैदनी घाट जर्जर होने लगा, भ० सुपार्श्व नाथ के विशाल मन्दिर के गिरने की आशका पैदा हो गई तो सरकार द्वारा उसके निर्माण की स्वीकारता प्रदान कराई। इस सम्बन्ध मे श्रद्धेय वर्णीजी ने उनके सम्बन्ध मे लिखा कि "इस युग मे आपने महान धर्म का उद्धार करके अपूर्व पुण्य लाभ किया। घाट के कार्य का श्रेय आपको ही है। आपने बडा भारी अद्वितीय दुर्धर कार्य किया। हमारा हृदय आपके इस धार्मिक कार्य की लगन के लिए आपका शुभाकाक्षी है।"

भारत जैसे धर्मपरायण अहिंसाप्रिय देश में जहा अधिक जनता शाकाहारी हो वहाँ मांसाहार का प्रचार बढे यह देख सेठ शान्तिकरण आसकरण और श्रीमती रुक्मिणी अरुण्डेल के नेतृत्व मे मिलावट विरोधी कार्फेंस और शाकाहारी कार्फ्रेंस की, जिसमे जनता को बताया, यहा के नर-नारी घी-दूध के सेवन से बलवान और बुद्धिमान होते थे। आज जो अनेक बीमारियाँ फैल रही है उसका कारण शुद्ध घी का अभाव है। इस सम्बन्ध में आपने बड़ा प्रयत्न किया।

लालाजी जैन समाज के उन कर्मठ अनुभवी और कर्तव्यपरायण कार्य-कर्ताओं में से थे जिन्हे सदैव देश और समाजसेवा का प्रकृतिदत्त व्यसन था जो कठिन से कठिन परिस्थिति में सदैव निर्भय और सफल रहते थे।

लालाजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। सभी विषयो मे उनकी अबाधगति थी। ऐसे कर्मयोगी सेवापरायण निस्वार्थ समाज-सेवक नर-रत्न का उनके जीवन मे ही यथोचित सत्कार होना चाहिए था। उनके कार्यो से युवको को भली प्रकार परिचित होना आवश्यक है ताकि निःस्वार्थ कार्यकर्ताओ की वृद्धि हो परन्तु ऐसा हुआ नही। समाज अपने कार्यकर्ताओ के प्रति उदासीन रहती है।

कुछ भाइयो की आन्तरिक अभिलाषा थी कि उनके सम्बन्ध मे एक उत्तम ग्रन्थ प्रकाशित हो। उनके विचारो का नवयुवक लाभ उठा सकें। उन्हें मार्गदर्शन मिल सके। इसी भावना से उनके मित्रो और घनिष्ठ सम्पर्क रखने वाले साथियो की प्रेरणा से एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है।

इससे लालाजी की देश और समाज के प्रति की गई सेवा से आप भली प्रकार परिचित होंगे।

ग्रथ को सर्वांग सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया गया है परन्तु सम्भव है आपकी रुचि अनुकूल न हो परन्तु फिर भी उनके कार्यो का सुन्दर दिग्दर्शन और धार्मिक लेखो से ग्रथ की शोभा बढ़ गई है। इस प्रकार के ग्रन्थ से आप भली प्रकार उनके कार्यो से परिचित हो सकेंगे। ग्रथ के कार्य को प्रारम्भ करने के लिए श्रीतनसुखराय जैन स्मृतिग्रंथ सयोजक समिति का निर्माण हुआ। जिसके अध्यक्ष स्वनाम धन्य दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जी है। साहू जी ने इस कार्य मे विशेष रुचि प्रकट की। क्योकि सुयोग्य कार्यकर्ता और समाज सेवकों का सम्मान करना अत्यन्त आवश्यक है। 'गुणिषु प्रमोद' की भावना का यही अभिप्राय है। गुणवान सेवाभावी पुरुषो को देखकर हृदय मे हर्ष का भाव होना प्रमोद भावना है।

यह कहते हुए अपार हर्ष होता है कि इस सम्बन्ध मे हिन्दी के उच्चकोटि के लेखक और प्रतिभा सम्पन्न विद्वानो मे एव समाज के गण्यमान नेताओ, कार्यकर्ताओ और प्रमुख पुरुषों कवियो तथा सुयोग्य सपादको ने अपनी श्रद्धाजलि, सस्मरण, कविताएँ भिजवाकर हमे अनुगृहीत किया है। हम उन लेखकों, कवियो और नेताओ के हार्दिक आभारी है जिन्होने हमारी प्रार्थना पर रचनाएँ भिजवा कर हमे अनुगृहीत किया है।

साथ ही ग्रथ की छपाई और इतने सुन्दर ढग से प्रकाशित करने का श्रेय श्री रामजस कालेज सोसाइटी के प्रेस व्यवस्थापक श्री सुरेन्द्र प्रकाश जी रस्तोगी विशेष धन्यवाद के योग्य है जिन्होंने बड़ी रुचि और उत्साह के साथ हमारे इस कार्य मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

एकबार हम उन सभी सम्पादको, लेखको और नेताओ को धन्यवाद देते है जिन्होने लालाजी के प्रति अपना स्वाभाविक प्रेम दर्शाकर हमे उनके सम्बन्ध मे अमूल्य विचार दिए हैं।

आशा है इस स्मृतिग्रथ से लालाजी की स्मृति हमारे हृदय मे सदैव बनी रहेगी और उनके किए गए कार्यों से हम थोड़े-बहुत उऋण भी हो जावेंगे।

हमें विश्वास है—

इस ग्रंथ से समाज के उदीयमान युवक उनके महत्वपूर्ण कार्यों से प्रेरणा लेकर देश और समाज की सेवा में अपने को सहर्ष अर्पण करने के लिए तत्पर रहेंगे। तो हमे अतीव प्रसन्नता होगी और हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

विनम्र

अक्षयकुमार जैन प्रधानमंत्री भा० दि० जैन परिषद अध्यक्ष अखिल भारतीय सम्पादक सम्मेलन मंत्री	सुमेरचन्द जैन शास्त्री साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ अध्यापक जैन म० क० हायर सैकेण्डरी स्कूल संयोजक

श्री तनसुखराय स्मृति ग्रंथ संयोजक समिति
२१ अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली.

अनुक्रम

श्रद्धांजलियां, सस्मरण, प्रथम अध्याय

कवितायें

विविध आन्दोलन, द्वितीय अध्याय

जैनधर्म के परमप्रभावक
महान् आचार्यरत्न १०८ श्री देशभूषणजी महाराज विद्यालंकार
दिल्ली में आपके चार चातुर्मास हो चुके है, जिनके कारण जैनधर्म की अपूर्व प्रभावना हुई है
और अनेक लोकोपकारी कार्य होरहे है।
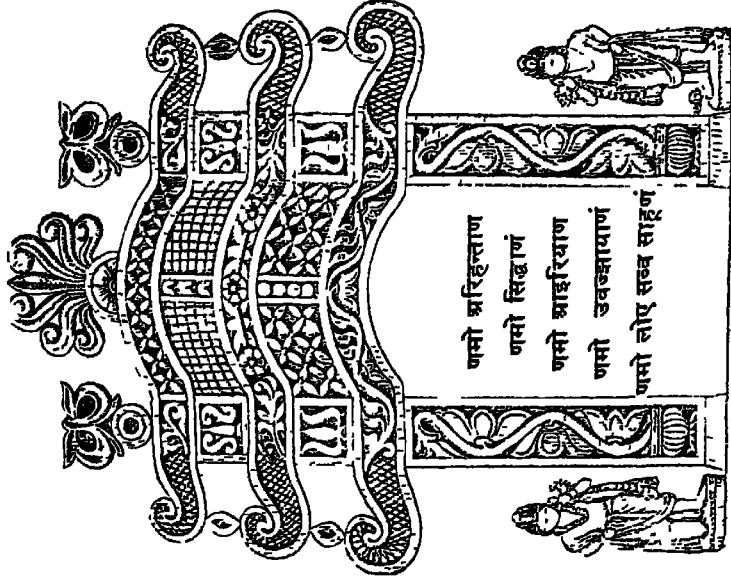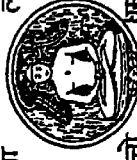
मथुरा सग्रहालय के सौजन्य से प्राप्त

ॐ

प्रसिद्ध देशभक्त कर्मवीर कुशल-व्यवसायी समाजसेवी

ला० तनसुखराय जैन

की

स्मृति में

★ श्री तनसुखराय स्मृति ग्रन्थ ★

याद तुम्हारी सेवाएँ आती हैं तनसुखराय

यो तो जग अनादि से, सुनता आया अगनित नाम।
जीवित वही बचा है, जिसके साथ जुड़ा है काम।
केवल सेवाएँ जीती हैं, मृत-मानव के बाद।
जिसने यह रहस्य पहिचाना, बची उसी की याद।
कठिन समस्याओ मे दीखे कभी न तुम निरुपाय।
याद तुम्हारी सेवाएं आती हैं तनसुखराय।

(२)

तन का सुख यदि प्रमुख रहा, तो मिला न मन का बोध।
मन का बोध मिला तो, पथ का लोप हुआ अवरोध।
त्याग तथा सेवाओं द्वारा, प्राणी बना महान्।
उपकारी का सारा जीवन, जीवन का वरदान।
इसी दिशा पर बढे सदा, तुम रह कर मंद कषाय।
याद तुम्हारी सेवाएं आती हैं तनसुखराय।

(३)

तुमने अपनी क्षमताओ को, अर्पित किया शरीर।
रहे सतत कर्त्तव्य परायण सेनानी प्रण-धीर।
बड़े सकटो में भी तुमको देखा नही अधीर।
तुम साहस, समाज सेवा की बने रहे प्राचीर।
कैसा भी हो किया न तुमने सहन कभी अन्याय।
याद तुम्हारी सेवाएँ आती हैं तनसुखराय।
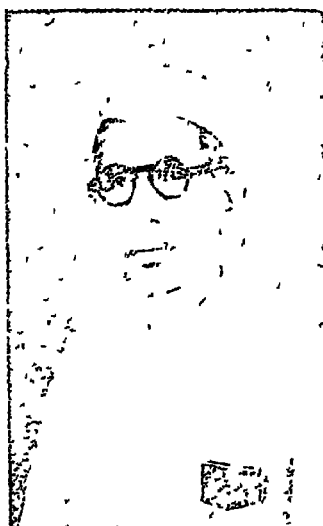
कविरत्न श्री कल्याणकुमार 'शशि'
रामपुर

(४)

वह सीमित जीवन है, जिसका विश्व न हो परिवार।
वह जीवन क्या! दिया न जिसने पथ को नया सुधार।
वह वचित जीवन है, जिसका ध्येय न पर उपकार।
वह जीवन क्या, बना न जो वह जन हित का आधार।
इसी दिशा मे किये शक्तिभर तुमने बड़े उपाय।
याद तुम्हारी सेवाएँ आती हैं तनसुखराय।

श्रावकशिरोमणी

दानवीर

साहू शान्तिप्रसाद जैन

के

उद्‌गार

भाई तनसुखरायजी एक बड़े ही उत्साही मित्र थे। समाज-सेवा और समाज-सुधार उनके जीवन के अग थे। समाज-क्रान्ति और समाज-उत्थान की बात वे सदा सोचते थे। जैन-सस्कृति और धर्म मे उनकी अटूट श्रद्धा थी। मेरा उनसे २५ वर्ष भाई का सम्बन्ध रहा है। वे अपने कष्ट के समय भी हमेशा प्रसन्न मुद्रा में रहते थे। उनके अभाव मे जैन समाज ने एक कर्मठ नेता खोया है और कई संस्थाओ ने तो अपना सहारा ही खो दिया है।

प्रेरणा के स्रोत

श्री मिश्रीलाल गंगवाल
योजना तथा विकासमन्त्री, मध्यप्रदेश

स्वर्गीय ला० तनसुखरायजी की जीवनी और उनके कार्यों को लेखनीवद्ध कर सकलन करने का विचार वास्तव मे एक सराहनीय और उपयोगी पहल है। स्व० लाला तनसुखरायजी का मेरे पर अगाध स्नेह और ममत्व था। वे न केवल जैन समाज के प्रेरणा के स्रोत रहे वरन् देश के कर्मठ समाजसेवको मे उनकी गिनती थी। उनके ऊपर हमे गर्व था। उनके द्वारा किए गए समाजोपयोगी कार्य सदैव उनकी पवित्र स्मृति को उज्ज्वल रखेगे। वे एक तपे हुए काग्रेस-जन भी थे। उनमे राष्ट्रीयता और देशप्रेम कूट-कूट कर भरा हुआ था। जिन्हें भी उनके सामीप्य मे रहने का अवसर मिला वह उनके गुणो और कार्यशैली से प्रभावित हुए बिना न रह सका। उनका सौम्य और सरल रहन-सहन सबके लिए प्रेरणादायी था। उनके विषय मे जितना भी लिखा-कहा जाय कम ही होगा। उनके निधन से समाज की महान क्षति हुई।

मैं आपके इस प्रयास की हृदय से सफलता की कामना करता हूँ। मेरी आपके इस शुभ प्रयत्न के साथ सपूर्ण सद्‌भावना और सहानुभूति है।

उनका नाम अमर रहेगा

श्री तख्तमल जैन
भूतपूर्व मुख्यमंत्री मध्यभारत

लाला तनसुखरायजी से मेरा एक सार्वजनिक कार्यकर्ता के नाते काफी सम्पर्क रहा है। विवादो मे अधिक न उलझ कर उन्होने समाज की काफी सेवा की है। समाज-सुधारको के इतिहास मे उनका नाम अमर रहेगा। जीवन पर्यन्त उन्होने अपने समाज के लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु हमेशा प्रयत्न किया है। ऐसे महान समाज-सेवक की स्मृति मे आप ग्रथ का सम्पादन कर रहे है, इसकी मुझे बडी खुशी है। मुझे आशा है कि उनके जीवन से नई पीढी लाभ उठाकर उनके पद-चिह्नो पर चलने का प्रयत्न करेगी।

विचारवान व्यक्तियों में अग्रगराय

सेठ अचलसिंहजी
सदस्य लोकसभा

मैं स्वर्गीय श्री तनसुखरायजी जैन को गत तीस वर्षो से जानता हूँ। आपके हृदय में समाज-सेवा के लिए बडी लगन व भावना थी। एक समय जब आप एक बीमा कम्पनी के संचालक थे या मुख्य कार्यकर्त्ता थे, उस समय आपने मुझे आगरे मे दर्शन दिये थे तब से उनके विचारो की मेरे ऊपर छाप पडी और उसके बाद समय-समय पर जैन-ससार की जागृति के सम्बन्ध मे विचारो से अवगत होता रहता था। अभी चन्द वर्ष पूर्व आपने भारत जैन-मडल के श्री चिरजीलालजी की प्रेरणा पर दिल्ली मे एक भारतीय जैन कान्फ्रेंस करने का कार्यक्रम बनाया। पर कुछ लोगो के मुखालफत के कारण उन्होने बन्द कर दिया। इसी प्रकार अ० भा० महावीर जयन्ती कमेटी को भी जैन कन्वेन्शन करने का विचार स्थगित करना पड़ा, कारण हमारे जैन-समाज मे कुछ व्यक्ति अपने पुराने विचारो से ओतप्रोत है, वे समयानुसार सुधारो से परे रहना चाहते थे।

स्वर्गीय श्री तनसुखरायजी की सेवाये समाज के लिए अकथनीय थी। वे बड़े विचारवान और समाज के लिए हमदर्द व्यक्तियो मे अग्रगण्य की पक्ति मे थे। उनकी समाज-सेवायें कभी भी नही भुलाई जा सकती है।

मै उनके प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

जन-कल्याण हितैषी

साहू श्री श्रेयांस प्रसादजी जैन
भूतपूर्व अध्यक्ष, भा० दि० जन परिषद् तथा अ० भा० व्यापार संघ, बम्बई

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप लोग लाला तनसुखरायजी जैन की स्मृति मे एक स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे है। समाज-सेवियो की सेवाओ के मूल्याकन के लिए ऐसे ग्रन्थ बहुत ही अच्छे माध्यम सिद्ध हुए हैं। 'श्री तनसुखराय जैन स्मृति ग्रन्थ समिति' के तत्वावधान में यह सकलन बहुत ही अच्छा आयोजन है।

लाला तनसुखरायजी की सामाजिक सेवाओ और जन-कल्याण-हित में किये गये प्रयत्नों को सम्मान देना एक बड़ा सामाजिक उत्तरदायित्व है, जिसके निर्वाह के लिए आप लोगो के साथ मेरा पूरा-पूरा सहयोग है।

इस सद्प्रयास मे मेरी शुभ कामनाएँ आप के साथ है। कृपया इस पवित्र कार्य में मेरी भी श्रद्धांजलि स्वीकार करें।

व्यापक कार्यदृष्टि और निर्मल भावना

श्री ब्रजलाल बियाणी
सदस्य विधान परिषद् महाराष्ट्र प्रदेश

श्रीयुत तनसुखरायजी जैन की स्मृति के साथ उनके अपने प्रति ममत्व का और उनकी क्रियाशीलता का मुझे स्मरण हो आता है। मेरा उनका अनेक वर्षों तक सम्बन्ध रहा। मैं, दिल्ली जब काऊंसिल आफ स्टेट के मेम्बर के नाते जाने लगा, तब से मेरा उनका परिचय हुआ और वह बढता ही गया। व्यक्तिगत और कौटुम्बिक तरीके से भी उनका सम्बन्ध आते गया। उनके कार्य की दृष्टि से उनकी व्यापक और सर्वग्राही शक्ति का मैं अवलोकन कर सका। वे जिस काम को करते थे, अत्यन्त लगन से करते थे और अपने अनेक कामो को करते हुए भी मैंने उनमे अहकार का अभाव पाया। बडी निर्मल भावना से वे अपने सब कामों को सपादित करते थे। उनके मित्रो का परिवार भी काफी बडा था। आर्थिक क्षेत्र मे पूर्णतया स्वावलम्बी होते हुए भी उनके जीवन मे सादगी थी और साथ ही जीवन व्यवस्था समयानुकूल भी थी।

श्रीयुत तनसुखरायजी जैन की स्मृति मे ग्रथ-निर्माण किया जा रहा है, यह जानकर मुझे अत्यत प्रसन्नता है। अच्छे स्थायी ग्रथ का निर्माण उनके प्रति कर्तव्यपालन होगा। इस ग्रथ के लिए मै अपनी इन पक्तियो के साथ श्रीयुत तनसुखरायजी जैन की स्मृति मे अपनी अजली प्रेषित करता हूँ।

OOOO

कर्मठ एवं लगनशील व्यक्ति

दानवीर सेठ गजराजजी गंगवाल
कलकत्ता

यह ज्ञात कर परम हर्ष हुआ कि श्री लाला तनसुखरायजी जैन के विषय में स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। श्री लालाजी जैन समाज के सुयोग्य, कर्मठ एव लगनशील व्यक्ति रहे हैं और मुझे उनके निकटतम सम्पर्क मे रहने का सुअवसर प्राप्त रहा है। आशा है यह स्मृति ग्रथ समाज के नवयुवको को समाज एवं धर्म सेवा के लिए स्फूर्ति एव प्रेरणाप्रद होगा। आपका यह प्रयास सर्वथा प्रशंसनीय है।

× × × ×

दिलेर और अदम्य साहसी

श्री लालचन्द जैन एडवोकेट, रोहतक
भूतपूर्व अध्यक्ष भा० दि० जैन परिषद्

स्वर्गीय तनसुखरायजी एक साहसी और धैर्यवान व्यक्ति थे। पहले-पहल मुझे उनके साहस का परिचय असहयोग आन्दोलन के समय हुआ, जब वे गिरफ्तार किए जाकर अदालत मे लाये गये, और उनके रिश्तेदार इस सबध मे मुझे अदालत में ले गये।

उनके भाई गनपतरायजी का झुकाव तो जैन-समाज की कुरीतियाँ दूर करने के लिये बहुत था और उनसे काफी बातचीत होती थी। तनसुखराय जी पहले-पहल हमारे रोहतक के साथियो के साथ परिषद् अधिवेशन सहारनपुर मे गये और परिषद् के कार्य से बहुत प्रभावित हुए।

यह उनकी ही हिम्मत थी कि दिल्ली मे परिषद् का अधिवेशन हुआ, तब उनका जोश, उत्साह, लगन और उनके काम करने की शक्ति पूरी तरह रोशनी मे आई।

उसी समय महगाँव काड का आदोलन हुआ, तब तनसुखरायजी ने बहुत सहनशीलता और दिलेरी से काम लिया। इस मौके पर भी उनका साहस मैंने एक बार फिर देखा जब कि मैं और वे ग्वालियर गये और रियासत के उच्चतम अधिकारी से मिले, जिनके गुस्से का पार न पाया यहाँ तक कि उन्होने गिरफ्तार करने की धमकी भी दी।

परिषद के सतना अधिवेशन मे उन्होने जिस हार्दिक लगन से काम किया और उसके बाद एक साल तक जिस तरह उन्होने मुझे सहयोग दिया और मेरी इच्छानुसार परिषद दिवस मनाकर दस हजार से अधिक मेम्बर बनाये, वीर सेवा सघ जगह-जगह स्थापित किये, और मेरे साथ घूमकर मेरे लिए जो जो प्रबध उन्होने किये, और जो जो सहूलियते मुझे दी इन सब का मेरे लिये भूलना कठिन है। मैं उनका अति आभारी हूँ।

श्री वीर प्रभु से प्रार्थना है कि उनकी असीम कृपा से स्वर्गीय आत्मा को सुगति, शांति, सुख और आनद प्राप्त हो।

वात्सल्य की मूर्ति

सर्वश्री विदुषी बहिन लेखवती जैन
डिप्टी चेयरमैन पजाब विधानसभा, चण्डीगढ़

विदुषी बहिन लेखवतीजी जैन आजकल पजाब विधानसभा की उपाध्यक्ष है। देश और समाज सेवा के भाव उनमें कूट कूट कर भरे हुए हैं। वात्सल्य का नैसर्गिक माधुर्य, प्रबन्ध कुशलता और नारी जाति मे जागृति का भाव पैदा करना इन कार्यो मे उनकी स्वाभाविक रुचि है। जैन परिषद् की एक कुशल कार्यकर्तृ होने के कारण उन्होने समाज की उत्तम सेवा की है। आबू टैक्स विरोधी आन्दोलन मे लालाजी के साथ रहकर जो प्रशसनीय नेतृत्व दिखाया समाज उसे सदैव गौरव के साथ याद रखेगी। देश और समाज को आपसे भविष्य मे बडी आशायें है।

आँखो में आँसू एव हाथ में लेखनी लेकर स्वर्गीय भाई तनसुखराय की स्मृति मे प्रकाशित होने वाले, तनसुखराय जैन स्मृति-ग्रन्थ मे कुछ लिखने का प्रयास कर रही हूँ। (भाई तनसुखराय समाज-सेवा तथा देश-सेवा के लिए जब निकलते, उनके साथ जीवन की एक लहर-सी दौड पड़ती थी। उनके सभा सोसाइटियो मे पहुँचते ही जनता मे जागृति की लहर दौड़ पडती थी।) लेखनी किंकर्तव्य विमूढ बनी हुई सी सोच रही है कि उनके जीवन की कौन-कौन सी सेवाओ का वर्णन करू। भाई तनसुखरायजी ने अपने जीवन-काल मे देशसेवा के साथ साथ जो समाज-सेवायें की उसको वैश्य जाति, जैन-समाज तथा देश की जनता भुला नही सकती है। कुशल व्यवसायी होने पर भी आपने उद्योग को प्राथमिकता न देकर सामाजिकता को प्रथम स्थान प्रदान किया। इनके जीवन का यह सर्वश्रेष्ठ त्याग था।

उनके सामाजिक कार्यों में आपके साथ रहने का मुझे भी अवसर मिला। जैन समाज, अग्रवाल एवं वैश्य समाज के लिए अनेक कार्य किये। इन सभी कार्यो मे से यदि मैं अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद की सफलता, उसके कार्य, सफल अधिवेशन, जैन जाति मे जागृति उत्पन्न करने वाले आन्दोलनो आदि के विषय मे ही कुछ लिखूँ या उनकी याद करूँ, वही मेरे लिए पर्याप्त होगा। सतना, खण्डवा, झाँसी और दिल्ली के सम्मेलन मेरी आँखो के सामने हुए।

जिनमे भाई तनसुखरायजी ने दिगम्बर जैन परिषद् के महा-मन्त्री होने के नाते जो कार्य किये, इन अधिवेशनो को जो सफलता प्राप्त हुई उसकी धूम को मैं ही क्या समस्त भारत के जैन-समाज सदैव स्मरण करेगे। दिगम्बर जैन परिषद् के जीवनदाता आप ही हैं। आपने अपने महामन्त्रित्व काल मे परिषद् के लिए जो कार्य किये वैसा आपसे पूर्व न किसी ने किया था न आपके पश्चात् ही अभी तक कोई कर सका और न भविष्य मे होने की सभावना है।

आपके निधन से हमारी ये सस्थायें शिथिल हो गई हैं। विशेषकर दिगम्बर जैन परिषद् जिसके कि आप आत्मा थे। वह तो आपको खोकर निर्जीव-सी प्रतीत होती है। आप जिस भी आन्दोलन अथवा कार्य को अपने पर लेते थे उसको सफल बनाकर ही शान्त होते थे। आपकी प्रत्येक सेवा मे सजीवता तथा साहस विद्यमान रहता था जिसको आप मनसा, वाचा कर्मणा तथा तन, मन एव धन से सम्पन्न करते थे। आज जैन-समाज के कर्णधार साथी दिली एव साहसी कर्मवीर के अभाव से अति व्यथित हो दिल कचोट कर रह जाते हैं। जबकि वर्तमान नवयुवक नवीन भावो के सचारक, कर्तव्य-परायणता का पाठ पढाने वाले अदम्य उद्योगी मित्र के अभाव का अनुभव कर रहे है। कहाँ तक कहे वे बच्चे जो अभी आपका नाम ही सुन सके थे वे भी यह कह रहे है कि हममे जान पैदा करने वाला, समय मे समाज की सेवा करने मे साहस प्रदान करने वाला एक महान समाजसेवी हमको छोड कर चला गया। समाजसेवा का पाठ हम उनसे प्रत्यक्ष रूप मे पढने का सौभाग्य प्राप्त न कर सके।

भाई तनसुखरायजी के विषय मे मैं कुछ भी लिखूँ वह मुझे बहुत थोडा ही प्रतीत होता है। मैं उनकी समाज एव देशसेवाओ से ही प्रेरणा नही प्राप्त करती रही हू बल्कि मुझे उनसे भाई का प्यार भी मिला। अपने मन के इन उद्गारो के बीच उनके उद्धृत कई वाक्य स्मरण आ रहे हैं। उनके लिखने के लोभ का सम्वरण मैं नही कर सक रही हू।

एक बार भाई तनसुखराय आबू के मन्दिरो पर सिरोही स्टेट्न द्वारा लगाये गये करो के विरुद्ध आन्दोलन के फलस्वरूप आबू पहुँचे। मार्ग मे सदस्यों की देखरेख मे व्यस्त रहे। घर पहुँच कर भी उन्हे अपने आराम की चिता उतनी न रही जितनी कि मेरी। उस समय उनके कहे गये वे शब्द मुझे सदैव स्मरण रहेंगे जो कि उन्होने अपनी पत्नी से कहे थे, 'देखना बहन जी को कष्ट न होने पाये।' इतना कहने से भी उन्हे सन्तोष न हुआ और स्वय उठ कर मेरे खाने-पीने की व्यवस्था करने मे व्यस्त हो गये।

देवगढ मे हुए सम्मेलन में दिगम्बर जैन परिषद् के अधिवेशन के समय जब आपको पुन. महामन्त्री चुना गया उसी समय मच से यह ध्वनि समस्त वातावरण मे गूज गई, "इस सस्था मे पुन· जान आ गई, मानो एक अस्वस्थ को किसी बडे डाक्टर के हाथो में सौंप दिया गया है।" यह डाक्टर भाई तनसुखराय और अस्वस्थ व्यक्ति दिगम्बर जैन सस्था जिसका कि आपने जीर्णोद्धार ही नही किया बल्कि उसमे एक नवीन आत्मा डाल दी। आपकी सफलता का एक मात्र कारण आपका उत्साह तथा लगन थी।

रक्षाबन्धन के दिन की बात है, मै आपके पास गई थी मुझे अपने कर्तव्य का ध्यान भी न था। वे अचानक मुझे स्मरण दिलाते हुए बोल पड़े, "बहन, मेरे हाथ मे राखी बाँधो।" इतना कहना था कि जेब मे एक नोट बाहर निकल आया। मेरे ना करने पर लाड में न जाने क्या बोलते चले गये। मेरे स्वीकार करने पर ही शान्त हुए। यह था उनका मेरे प्रति अगाध प्रेम।

एक दिन की बात है मैं आपके निवास-स्थान पर गई। आपकी सुपुत्री जिसका नाम स्वदेश है एक नया कोट पहने मेरे पास आ गई। मैं उधर देखने लगी। मेरा उधर देखना था कि वे बोल उठे—"कैसा है स्वदेश का कोट ? अच्छा सिला है न। तुम्हे भी ऐसा ही कोट सिलवा कर दूँगा।"

भाई तनसुखराय अनेक प्रकार से मेरे प्रेरक तथा सहयोगी थे। उनके सहयोग और उनकी सहायता की भावना से लोग मुझ से ईर्ष्या करते थे। सन् १६३३ ई० के चुनाव का क्या कहना ? मेरे प्रतियोगी देशबन्धुजी थे। उस समय अज्ञात रूप से आप मेरा प्रचार करते रहे। इश्तिहारो की बोरियाँ की बोरियाँ आपके आदमी रातो-रात बाँट जाते। इतना ही नही भाई मानसिह उनका यह सन्देश भी लाये, "भाई तनसुखराय जी ने कहा "कि बहन किसी प्रकार की चिन्ता न करें। चुनाव मे हर प्रकार की सुविधा प्रदान करेगे।"

यह तो रही पिछले चुनाव की बात। इस अन्तिम एम० एल० सी० के चुनाव में भी अस्वस्थता की स्थिति मे स्वय अपने साथियो के साथ मेरे चुनाव-क्षेत्र मे गये। मेरे साथी जो मेरे साथ ही निर्वाचित हुए उन्होने आपके सहयोग को देखकर कह दिया, "बहन जी आपके लिए तो नई-नई गाड़ियाँ, नई-नई कारे आ रही है। इतना ही नही, जैनियो के बड़े-बड़े नेता पधार रहे है। आपको चुनाव की क्या चिन्ता ? गाड़ियाँ लाने वाले जैनियो के नेता और कोई नही बल्कि भाई तनसुखराय ही थे। उनके ये कार्य मुझे उस समय कुरेदेगे जब मै पुनः निर्वाचन क्षेत्र मे प्रस्तुत होऊँगी। किन्तु उस समय भी भाई तनसुखराय की आत्मा हमारी अप्रत्यक्षरूप से सहायता करेगी। ऐसे महान् व्यक्ति चले जाते है किन्तु छोड़ जाते है अपनी एक अमिट छाप।

× × × ×

नई-नई सूझ के धनी

श्री लक्ष्मीनारायण अग्रवाल
मंत्री वैश्य कोऑपरेटिव बैंक, दिल्ली

आप जैन समाज के एक ऐसे कर्णधार थे जो वैश्य जाति की उन्नति के लिए सतत प्रयत्नशील रहते थे। वैश्य युवकों मे व्यापार की ओर विशेष रुचि पैदा हो इसलिए आप सतत जागरूक रहते थे। बैंक के पुराने सदस्य थे। वैश्य कोआपरेटिव कर्माशियल बैंक लि० की कार्यकारिणी के सदस्य थे। मैं आपके प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

प्रगतिशील समाज सुधारक

माननीय श्री जगजीवनराम जी
भूतपूर्व रेलवे मन्त्री, भारत सरकार

स्वर्गीय श्री तनसुखराय से मेरा परिचय १९४१ मे हुआ था। मेरठ मे अखिल भारतीय दलित-वर्ग सम्मेलन से होते हुए मैं दिल्ली आया। सम्मेलन से लौटते हुए दूर-दूर के कुछ प्रतिनिधि भी मेरे साथ थे। दिल्ली में उनके आवास, भोजन का प्रबन्ध करना था। एक मित्र के द्वारा तनसुखराय से परिचय हुआ। तनसुखराय ने काफी दिलचस्पी से सभी व्यक्तियो के लिए उचित प्रबन्ध करा दिया। इसका मेरे ऊपर गहरा असर पडा। तब से हम एक-दूसरे के नजदीक आते गए। मैने पाया कि तनसुखराय जी एक निखरे हुए देशभक्त, समाजसेवी और परदु ख-कातर पुरुष थे। राष्ट्र और समाज के लिए सदा सोचा करते थे और कुछ न कुछ रचनात्मक काम भी किया करते थे। वे एक प्रगतिशील समाज-सुधारक थे। जैन-समाज के लिए उनकी सेवाएँ नगण्य नही रही। सगठन को बढाया और समाज को प्रगतिशील बनाने मे यत्नशील रहे।

अतिम दिनो मे उनका स्वास्थ्य गिर गया था और आर्थिक कठिनाई मे भी रहते थे। फिर भी समाज-सेवा के कार्य से विमुख नही हुए। समाज के उपेक्षित और पीडित समुदाय के लिए उनके दिल मे इतना अगाध प्रेम था कि स्वय कष्ट मे रहते हुए भी वे इनके लिए क्रियात्मक रूप से सहानुभूति दिखाने मे कभी नही हिचकते थे। हम उनकी स्मृति को अक्षुण्ण रखें। उनके जीवन से समाज को प्रेरणा मिले तो यह उनके लक्ष्य के प्रति अच्छी स्मृति होगी।

कर्मठ कार्यकर्ता और निर्भीक नेता

प्रसिद्ध साहित्यसेवी श्री महेन्द्रजी
संचालक साहित्यरत्न भडार, आगरा

आप महानुभावो ने श्री तनसुखराय जैन की स्मृति मे एक स्मृति-ग्रथ प्रकाशित करने का निश्चय किया है—यह जान कर हर्ष हुआ। लालाजी ने धर्म और समाज की बड़ी सेवा की थी। उनका लगभग सारा जीवन समाज की सेवा मे व्यतीत हुआ। उन जैसे कर्मठ कार्यकर्ता और निर्भीक नेता थोड़े ही होते है। समाज मे उनके द्वारा ऐसे अनेक कार्य सफलता पूर्वक सम्पन्न हुए है कि उनकी याद सदा बनी रहेगी। उनके यशस्वी जीवन की चिर स्मृति और उनकी आत्मा की शान्ति के लिए मै जिनेन्द्र भगवान से प्रार्थना करता हूँ।

सेवामूर्ति ला० तनसुखरायजी

श्री रिषभदास राँका
अध्यक्ष भारत जैन महामण्डल, बम्बई

ससार मे जो आता है वह तो जाने के लिए ही आता है। लेकिन उनका जाना सफल है जो जाकर भी लोगो के हृदय मे स्थान पाते है।

लाला तनसुखरायजी उन लोगो मे से एक थे जिन्होने अपने शील स्वभाव और सेवा के द्वारा समाज और राष्ट्र मे ऐसा स्थान पाया था जो अविस्मरणीय रहेगा।

उनकी सौम्य मुद्रा और विनम्रता इतनी आकर्षक थी कि उनके सम्पर्क मे आने वाला उन्हे भुलाने की कोशिश भी करे फिर भी उन्हे भुला नही पाता।

सेवा चाहे परिवार की हो या समाज की, राष्ट्र की हो या मानव की, जो काम करने जैसा दिखाई पडा उसमे वे नम्रतापूर्वक लग जाते थे। न रात देखी न दिन, न सुविधा देखी न असुविधा, बस सेवा-कार्य मे लीन हो जाते थे।

लाला तनसुखरायजी का दृष्टिकोण व्यापक और उदार था। उन्होने समाज की सेवा की लेकिन दृष्टिकोण सदा राष्ट्रीय ही रहा। उनकी सामाजिक सेवाएँ राष्ट्रीयता की पोषक ही रही और दिगम्बर सम्प्रदाय मे जन्म लेकर भी वे सम्पूर्ण जैन-समाज को नजर के सामने रखकर काम करते रहे।

सन् १९५० की बात है उन्होने मुझे दिल्ली भारत जैन महामण्डल के कार्य के लिए बुलाया। उनकी यह इच्छा थी कि भारत जैन महामण्डल का सगठन दिल्ली, पजाब और उत्तर प्रदेश मे हो। मै उनके घर पर ठहरा था, तब उनके स्नेह व आत्मीयता से पूर्ण आतिथ्य का सौभाग्य भी मिला। हमारा यह स्नेह बढता ही गया। फिर तो मिलने-जुलने और साथ काम करने के कई प्रसग आए जिसमे उनकी समाज के प्रति निष्ठा के दर्शन हुए।

लालाजी चाहते थे कि सम्पूर्ण जैन-समाज एकत्र आवे और अपनी शक्ति, समाज व राष्ट्र व मानवता की भलाई के लिए लगावे। इसी दृष्टि कोण से उन्होने भारत जैन महामण्डल के तत्वावधान मे जैन समाज के सभी सम्प्रदायो के प्रमुख कार्यकर्ताओ का कन्वेन्शन बुलाने का प्रयास किया था। लेकिन स्वास्थ्य एव अन्य कारणो से उनकी इच्छा पूर्ण नही हो पाई पर इस कार्य के लिए उन्होने अथक प्रयास किए थे।

यो लालाजी का जीवन सादगीमय होने पर भी वे आगत-स्वागत मे बडे ही उदार थे। सेवा-कार्यों के लिए भी उन्होने कभी मितव्ययता नही की बल्कि कई बार सामर्थ्य से अधिक ही

खर्च किया। सेवा-लगन उनमे बचपन से ही थी और विविध सेवा-कार्यो मे वे सदा सहयोग देते रहे।

जब राष्ट्रीय आन्दोलन ने देश के नौजवानो मे देशभक्ति की भावना पैदा की तो लालाजी भी उससे अछूते नही रहे और सरकारी नौकरी त्याग कर राष्ट्रीय आन्दोलन में योग देने लगे। एक बार तो जेल यात्रा भी कर आए। राजनैतिक कार्य मे उन्होने लाला लाजपतराय के साथ कार्य किया और वे उनके प्रेरणा-स्रोत रहे तो सामाजिक कार्यो में ब्र० शीतलप्रसादजी ने बैरिस्टर चम्पतरायजी से प्रेरणा पाई थी। दिगम्बर जैन परिषद के लिए उन्होने अत्यन्त परिश्रम किया था और समाज के नौजवानो के वे प्रेरणा-केंद्र थे।

यद्यपि उनका कार्य रचनात्मक ही अधिक था लेकिन वे जैन-समाज पर होने वाले किसी भी प्रकार के अन्याय को बर्दाश्त नही कर पाते थे और उनके जीवन मे कई ऐसे प्रसग आए जब उन्हे सघर्ष भी करना पड़ा और महगाँव काण्ड तथा आबू मदिर पर सिरोही राज्य की ओर से लिए जाने वाले टैक्स के खिलाफ आन्दोलन कर सफलता पाई।

समाज, राष्ट्र और मानव तक ही उनकी सेवा का क्षेत्र नियमित हो सो बात नही। उनके हृदय मे प्राणीमात्र के प्रति करुणा भाव था और उन्होने शाकाहार के प्रसार मे भी बड़ा महत्वपूर्ण योगदान दिया।

ऐसे सामाजिक, राष्ट्रीय व मानवताप्रेमी लालाजी के प्रति मेरी ही नही जैन-समाज के अनेको बन्धुओ के हृदय मे बड़ा आदर का स्थान था। उनकी सेवाएँ समाज के इतिहास मे अविस्मरणीय रहेगी। और मुझ जैसे मित्र उनकी सौम्य और विनम्रता की मूर्ति को कदापि नही भुला सकते। लालाजी गए अब उनके मित्रो और चाहनेवालो का यही कर्त्तव्य शेष रह जाता है कि उनके कामो को कर उस कमी की पूर्ति करे जो लालाजी के चले जाने से समाज मे हुई है। मुझे आशा है कि गुणपूजक जैन-समाज अवश्य उनके गुणो का और कामो का स्मरण कर उनका अनुगमन करेगा।

जब कि सेवा का क्षेत्र अधिक व्यापक बना है तब लालाजी जैसे सेवा-मूर्ति का स्मरण सबको सेवा की प्रेरणा देने वाला होगा।

अपने नाम को अक्षरशः चरितार्थ किया

श्री देशराज चौधरी
उपाध्यक्ष, देहली कार्पोरेशन, देहली

मूक समाज-सेवक—

स्व० लाला तनसुखरायजी

जब भी कभी मुझे दरियागज के निर्माण करने वाले सहयोगियो की याद आती है तो स्वर्गीय श्री लाला तनसुखरायजी सरल प्रकृति, खादी की वेशभूषा, मधुर वाणी वाली सौजन्य की मूर्ति तत्काल आखो के सामने आ जाती है। लालाजी दिल्ली नगर के प्रतिष्ठित नागरिको मे अपने प्रकार का अपना ही स्थान रखते थे।

सन् १६४२ मे विश्ववन्द्य पूज्य बापूजी के 'भारत छोडो' के उद्घोष पर देशभक्तो ने जान-माल की बाजी लगाकर जो कार्य किए वे अभूतपूर्व थे। उन्हे दबाने के लिए विदेशी सरकार ने जो दमन की नीति अपनाई, उससे जो विषम परिस्थिति पैदा हुई उसका सामना करने के लिए दिल्ली मे बनाई गई रिलीफ सोसायटी के निर्माण करने मे मुझे बहुत बडा योग श्री लालाजी का मिला था जिससे राजनैतिक बन्दियो पर चलाए अभियोगो और उनके पीडित परिवारो को जो सहायता इस सोसायटी के द्वारा की गई उससे देशभक्तो को उत्साह मिला और बल मिला।

इसी प्रकार से बहुत से रचनात्मक कार्यो मे लालाजी आगे बढकर सहयोग देते थे। प्रभु ने उन्हे पुष्कल धन भी दिया था और साथ ही विनम्र स्वभाव भी, जो कि ससार मे बहुत कम व्यक्तियो को मिल पाता है। सचमुच वह सक्रिय निष्ठावान् गाँधीवादी मनोवृत्ति के महान् व्यक्ति थे।

किसी भी दु खी को देखकर वह उसके दु ख दूर करने मे देर नही लगाते थे। जीवन के अन्तिम वर्षो मे रुग्ण होते हुए भी वह रचनात्मक कार्यो को सफल बनाने मे पूर्ण मनोयोग से कार्य करते रहे।

जहाँ उन्हे दिल्ली तथा विशेषकर दरियागज की जनता तथा रचनात्मक कार्य करने वाली सामाजिक सस्थाए सदा याद करती रहेगी वहाँ ऐसे अनेक व्यक्ति जिनकी वह समय-समय पर सहायता करते थे, उन्हे याद रखेंगे।

बहुत अच्छा हो यदि हम सामाजिक कार्यकर्ता उनके शुभ गुणो को अपने जीवनो में धारण करके उनकी याद मनाए और उनके परिवार वाले उनकी उन परम्पराओ में रचनात्मक, शारीरिक, आत्मिक, सामाजिक मनोयोग देकर उनके अनुव्रत रहने का सत् प्रयत्न करते रहे।

उन्होने सदैव अपने नाम को अक्षरश' चरितार्थ किया। उन्होने समाज को अपने तन से सुख दिया और सदैव नेक राय दी। उनके निधन से समाज को जो क्षति हुई है वह पूरी नही हो सकती।

महापुरुषों के जीवन का व्यक्ति के चरित्र पर अद्भुत प्रभाव पड़ता है

जीवन को उन्नत बनाने लिए उत्तम शिक्षा की तो आवश्यकता है ही, चरित्रवान् लोकसेवी उदार नर-रत्नो के सम्पर्क मे रहना भी आवश्यक है। राष्ट्रपिता गाधीजी के जीवन पर तीन व्यक्तियो की अनुपम छाप है जो उन्होंने अपने लेखो में स्वीकार की है। श्रीमद् राजचद भाई, मनीषी टालस्टाय और प्रसिद्ध विचारक रस्किन जिनका प्रभाव गाँधी जी के जीवन पर पड़ा। जिसने उन्हे भौतिक ऐश्वर्य के शिखर पर चढने की अपेक्षा लोकसेवी के कण्टकाकीर्ण मार्ग की ओर प्रेरित किया जिससे अहिंसा और सत्य का पथ विस्तृत हुआ। और स्वतत्रता सेवी अमृत का प्रादुर्भाव हुआ। इसी प्रकार जननायक लोकप्रिय महान् नेता प० जवाहरलालजी नेहरू के जीवन पर भी तीन व्यक्तियो की छाप पडी विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की सौन्दर्यानुभूति और काव्य-हृदय, अपने पिता प० मोतीलालजी नेहरू की शालीनता और उदारता और बापू का सेवामयी मार्ग भारतीय जनता को उन्नत बनाने की तीव्रतम महत्वाकाक्षी भावना गाधीजी के चरणो मे बैठ कर ही सीखी। राष्ट्रपिता गाधीजी से देशभक्ति की भावना उदित हुई।

हमारे चरित्र नायक लालाजी के जीवन पर भी कतिपय महान व्यक्तियो की अनुपम छाप है। पजाबकेसरी ला० लाजपतरायजी से निर्भीकता और कर्तव्य-परायणता। विश्व के लोकप्रिय नेता प० जवाहरलालजी नेहरू से लोकसेवा और शुभ्र धवलमय खद्दर के वस्त्रो को धारण करना। इन दोनो नररत्नो के चरित्र से न मालूम देश के कितने युवक देश-सेवा के मार्ग में अग्रसर हुए। लालाजी को भी देश-सेवा का व्यसन दोनो महान पुरुषों के निर्मल चरित्र से ही प्राप्त हुआ।

समाज-सेवा की प्रेरणा त्यागमूर्ति ब्र० सीतलप्रसादजी से और जैनधर्म प्रचार की धुन स्वनामधन्य विद्यावारिधी बैरिस्टर चम्पतरायजी से सीखी।

इनकी माता और वर्णीजी का प्रभाव भी आपके जीवन पर अद्भुत पडा जिसके फलस्वरूप लालाजी देश और समाज-सेवा के लिए प्रेरित हुए।

चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज, आबू के योगी शान्तिविजयजी और आर्यसमाजी विद्वान सत्यदेवजी का प्रभाव भी आपके जीवन पर हुआ। फलस्वरूप लोकसेवी बन गए और सदैव भावना रखने लगे।

न त्व कामये राज्य न स्वर्ग नापवर्ग वा,
कामये दु.ख तप्ताना, प्राणिनामार्त नभवे।

मैं किन-किन का कृतज्ञ हूँ

अपनी कलम से

'जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी'

सर्वप्रथम मैं अपनी जननी माता भगवती देवी (जो कि सुप्रसिद्ध रईस ला० मुरलीधरजी सोनीपत निवासी की इकलौती बेटी थी) उनका आभारी हूँ। वैसे तो मेरी माताजी ने और पुत्र व पुत्रियो को जन्म दिया परन्तु उनको मेरे लिए तो गर्भ-काल मे ही बहुत मोह था जहाँ और पुत्र-पुत्रियो ने उनके नौ मास गर्भ मे रहने के बाद जन्म लिया वहा मैंने अपनी माता के गर्भ मे १२ मास रहने के बाद जन्म लिया। बाल्यकाल मे धार्मिक शिक्षा इनके द्वारा ही मिली और जो भी धार्मिक वृत्ति थोडी बहुत मुझ में है यह सब उन्ही की कृपा का फल है। अभी मैं १५ साल का ही था कि पूज्य पिताजी का साया सर से उठ गया। माताजी को सब भार सम्भालना पड़ा। उन्होंने नम्रता, अतिथि-सत्कार, कृतज्ञता तथा देश व समाज के लिए सेवा-भाव का सबक पढाया जिसके कारण मैं समाज व देश की कुछ सेवा कर पाया हूँ और गौरव के साथ कहने का साहस रखता हूँ कि यदि मेरे पास धन नही है तो भी बहुत से धनियो से मैं बड़ा धनी हूं क्योंकि जीवन मे धनियो की मुझ पर बहुत कृपा रही है और है जिसके कारण मैं बड़ी से बडी आपत्ति मे से निकलकर अटल खडा रहा हूँ और इज्जत-आबरू व विचारो मे कोई फर्क नही आने दिया। मेरी माताजी का देहान्त ७३ वर्ष की आयु मे हुआ और मरते समय मुझे जो वह आशीर्वाद दे गई है उससे मुझे अपने ऊपर पूरा भरोसा है कि जब तक मै जीवित रहूँगा मेरी इज्जत व आबरू बनी रहेगी और बडी से बड़ी कठिनाइयो को हँसता हुआ झेल जाऊगा। मेरा अपनी स्वर्गीय माताजी के चरणो मे सादर प्रणाम।

अभिवादन शीलस्य, नित्य वृद्धोपसेविन
चत्वारि तस्य वर्धन्ते, आयुर्विद्यायशो बलम्।

जो सदैव अपने माता-पिता, गुरुजनो और वृद्धजनो की सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल की वृद्धि होती है।

मेरे पिताजी व्यापारी थे और सारी उम्र उन्होने बजाजे और सर्राफे का धन्धा किया। वह हमेशा कहा करते थे कि बेटा छाबड़ी बेच कर खाना ठीक है, नौकरी ठीक नही। वह १८८२-८३ के मैट्रिक पास थे। उन दिनो का मैट्रिक आज के ग्रेजुएट्स से बेदरजा बेहतर था।

उनको पढाने का बडा शौक था। मुलतान छावनी में अपना सर्राफे का काम करते हुए भी दो-तीन अग्रेज आफिसरो को उर्दू-हिन्दी पढाया करते थे। मुझे भी वह दुकान पर बैठा लिया करते और पढाई भी करते। मैने कोई सार्टीफिकेट तो प्राप्त नही किया, उर्दू, अग्रेजी, हिन्दी का जो ज्ञान है वह सब पूज्य पिताजी के द्वारा मिला। सन् १९१८ मे जब कि मैंने गवर्नमेंट की सर्विस के लिए प्रार्थनापत्र दिया तो वहाँ मेरा इम्तिहान लिया गया। सब उम्मीदवारो मे मै सर्वप्रथम रहा और मुझे नौकरी मिल गई। क्योकि पिताजी का देहान्त सन् १५ मे हो चुका था और हम बच्चे थे पिताजी के धन्धे को नही सम्भाल सके और लाचार हो नौकरी की तरफ जाना पडा। पिताजी पढाई के साथ अपने अनुभव और ससार मे दूसरो को कैसे अपना बनाया जाता है, बताते रहते थे। मेरे पिताजी एक बहुत ही धार्मिक विचार के महानुभाव थे और बचपन से ही उन्होने मेरी रुचि भी उधर ही कराई। दुःख है कि पूज्य पिताजी ४५ साल की आयु मे ही स्वर्गवास कर गए और मैं उनकी कुछ भी सेवा न कर पाया। अब भी उनके आशीर्वाद का फल है कि जो मैं इतना सुखी हूँ। उनके चरणो मे भी मेरा सादर प्रणाम।

आते ही उपकार याद हे माता तेरा,
हो जाता मन मुग्ध, भक्तिभावो का प्रेरा।

मुझे अपनी माताजी के गर्भ मे १२ मास हो गए थे इसलिए सब चिंतित थे कि क्या बात है। जन्म-दिन से पहली रात महात्मा साधु और मुनियो ने माताजी को स्वप्न मे दर्शन दिए और कहा कि कल तुम्हारे प्रतापशाली पुत्र पैदा होगा, और हमारा आशीर्वाद है कि वह सदा सुखी रहेगा। और उसपर धनियो और मुनियो की विशेष कृपा रहेगी। जन्म-काल से अब तक त्यागी महात्मा और मुनियो की कृपा मुझ पर बनी रही। अभी ७, ८ साल का ही था जबकि मुलतान छावनी मे पूज्य ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का आगमन हुआ और जब तक वह वहा ठहरे तब तक मै उनकी सेवा मे रहा और आशीर्वाद प्राप्त किया। इसके बाद जो भी मुनिगण आते ऐसे उनकी सेवा का सौभाग्य प्राप्त होता रहा। सन् १९१४ मे पिताजी ने भटिंडा रियासत पटियाला मे अपना व्यापार शुरू किया। वहा दिगम्बर जैन मदिर नही है। स्थानक मे जो भी साधु-महात्मा आते थे उनके पास घटा डेढ घटा व्यतीत करता था और उनसे ज्ञान प्राप्त करता था। १९१६, १७ मे सनातनधर्म के प्रकाड विद्वान स्वामी राम भटिंडा पधारे। उनके पास भी मेरा आना-जाना शुरू हुआ, वे मेरे सेवा-भाव से प्रसन्न हुए और बहुत प्यार करने लगे। जब तक वह भटिंडा मे रहे उनकी कृपा मुझ पर बनी रही। इसके कुछ दिन बाद ही स्वामी सतदेवजी भटिंडा पधारे। वे आर्यसमाजी उग्र विचार के ऊचे विद्वान थे। उनके आदेशो से नवयुवको के हृदय मे स्फूर्ति आती थी। उन्होने विदेशो मे यात्रा की थी। मुझे उनके सत्सग से अच्छे विचार मिले। सन् २२ से ३३ तक विशेष-कर राजनैतिक क्षेत्र मे जीवन बीता। इस बीच मे महात्मा और त्यागियो का सत्सग तो कम हुआ परन्तु देश के बडे से बडे राजनैतिक नेताओ से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। सन् ३४ से धार्मिक व सामाजिक क्षेत्र मे भी रुचि हुई। सन् ३४ से ३८ तक अखिल भा० दि० जैन परिषद् समाज के सुधारक दल मे बहुत जोरो से कार्य किया। इसी बीच मे जैसे समाज के प्राय:कर बहुत से विद्वानो, त्यागियो, धनियो और कार्यकर्त्ताओ के सम्पर्क मे आया। सन् ३८ मे अग्रसेन जयन्ती के शुरुआत करने मे भी मेरा ही प्रयास था और बाद मे अग्रवाल महासभा के प्रधान मत्री और

प्रधान रहने के कारण भारतवर्ष के बहुत से ख्याति-प्राप्त अग्रवाल भाइयो से परिचय बढ़ा। सन् ३८ मे मारवाडी सम्मेलन का अधिवेशन दिल्ली मे हुआ जिसके अध्यक्ष राजा सेठ रामदेवजी पोद्दार थे। मैने भी उसमे कुछ भाग लिया और उसकी कार्यकारणी समिति के सदस्यो को अपने घर बुलाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उसमे कलकत्ता, बम्बई, कानपुर आदि के सभी मारवाडी उद्योगपति उपस्थित थे। उनसे परिचय बढा। सन् ४० मे दूध-घी-मक्खन मिलावट निषेध कान्फ्रेंस दिल्ली में की, उसके अध्यक्ष (१) बम्बई के प्रसिद्ध उद्योगपति सर सेठ शान्तिदास आसकरणजी थे। मेरी इन वृत्तियो से बहुत प्रसन्न हुए और जब तक वह जीवित रहे उनकी विशेष कृपा मुझ पर बनी रही। बम्बई मे उनके पास ही ठहरा करता था। (२) सर सेठ शान्तिदास आसकरण बम्बई वालो के सम्पर्क में बहुत रहा था। उनसे मालूम हुआ कि आबू पहाड पर योगीराज शान्तिविजयजी महाराज रहते है, उनके दर्शनो से मनुष्य को बडी शान्ति प्राप्त होती है। मैं योगी-राज महाराज के दर्शनो के लिए ३-४ बार आबू गया और आबू मदिर के टैक्स के आन्दोलन के लिए भी उन्ही का सकेत था। आन्दोलन को जोरो से चलाने और सफल बनाने के कारण वह मुझ पर बहुत प्रसन्न हुए और आखीर तक शुभ कामनाए भेजते रहे। (३) सन् ४१ से ४३ तक राजनैतिक क्षेत्र मे कार्य किया। सन् ४६ मे दसवा मानव-धर्म सम्मेलन का अधिवेशन दिल्ली मे किया जिसकी अध्यक्षा श्रीमती रुक्मणीदेवी अरुणेल थी उनके साथ रहकर कुछ समय कार्य किया जिससे वह बहुत प्रभावित हुई। सन् ४७ मे भारत स्वतत्र होने के बाद भारतवर्ष का विधान बना जिसमे कि मनुष्य मात्र को मदिरो मे जाने का समान अधिकार था। हरिजनो को मदिरो में प्रवेश करने का आन्दोलन जोरो पर चला। मैने भी हरिजनो को जैन मदिरो मे प्रवेश करने के लिए अपने भाइयो से अपील की परन्तु रूढिवादी भाइयो ने इसका विरोध किया। उन्ही दिनो मुनि महाराज आचार्य नेमिसागरजी सन् ४६ मे दिल्ली पधारे। मुनि महाराज ने मुझे बुलाया। एकान्त मे उनसे २ घन्टे तक हरिजन मदिर प्रवेश पर वार्तालाप हुआ। वह मेरी बातो से प्रभावित हुए। उन्होने कहा कि तुम ठीक कहते हो। ये ही सारी बातें परम पूज्य आचार्य शान्तिसागर महाराज को बताने की है। उन्होने तुरत एक चिट्ठी परम पूज्य शान्तिसागर महाराज के नाम लिखवाई और मुझे शान्तिसागर महाराज के पास जाने का आदेश हुआ। उन दिनो मुनि महाराज शान्तिसागरजी नासिक के पास मे विराजमान थे। मैं वहा पहुँचा। पूज्य नेमिसागरजी वहाँ थे। वह मुझ को आचार्य शान्तिसागर महाराज के पास ले गए। उनसे भेंट हुई, उन्होने बहुत आश्चर्य से कहा कि मैं तो समझता था कि आप लोग परिषद वाले धर्म की जड़ो में कुलाहडा चला रहे है परन्तु आपके विचार तो बहुत सुन्दर विचार है। मै वहा एक-दो रोज के लिए गया था परन्तु उन्होने मुझे एक सप्ताह तक नही आने दिया। यह उनकी विशेष कृपा थी। जब दिल्ली आया पूज्य नेमिसागर जी महाराज को वहा के सब हाल सुनाए। बहुत प्रसन्न हुए और कहा तुम भी आहार लगाया करो। मेरा सौभाग्य है कि चार बार मुनि नेमिसागर महाराज का आहार मेरे गरीबखाने पर हुआ और अतिम समय तक नमिसागर महाराज की कृपादृष्टि मुझ पर रही।
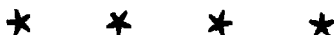
प्रसिद्ध देशभक्त, कर्मवीर समाजसेवी

श्रीमान् ला० तनसुखरायजी का जीवन चरित्र

श्री सुमेरचन्द जैन, शास्त्री
साहित्यरत्न, न्यायतीर्थ

कर्मवीर ला० तनसुखरायजी

किसी कवि ने कितनी सुन्दर उक्ति कही है कि हे माता ! तू ऐसा पुत्र उत्पन्न कर जो भक्त हो, दाता हो या शूरवीर हो। नही तो क्यो अपनी शक्ति व्यर्थ मे नष्ट करती है। नि सदेह ससार मे उन्ही पुरुषो का नाम अक्षय बना रहता है जो अपने कार्य और प्रभाव से मानव जाति का हित सचय करते है। देश, धर्म और समाज की सेवा मे अपने जीवन को लगाते है।

लालाजी के मन मे भावना थी :—

न तन सेवा न मन सेवा, न जीवन और धन सेवा,
मुझे है इष्ट जन सेवा, सदा सच्ची भुवन सेवा ॥

ला० तनसुखरायजी ऐसे ही सत्पुरुष थे। लंबा कद, छरहरा बदन, चाल-ढाल में फुर्ती, हिन्दुस्तानी ढग की छोटी मूँछें, दूर तक देखनेवाली आँखे और मुस्कराहट से हर समय भरा हुआ चेहरा, दिल्ली जैसे विशाल नगर मे इस हुलिए से आप कही भी लाला तनसुखराय जैन को पहचान सकते थे और बिना किसी हिचकिचाहट से मिल सकते थे।

एक कुशल वैज्ञानिक व्यापारी, एक प्रभावशाली पुरुष, एक उत्साही कार्यकर्ता लाला तनसुखराय जैन यह सब कुछ है। पर उनके यह सब परिचय अधूरे हैं। वे असल मे एक निःस्वार्थी मित्र हैं। उन्हे प्रकृतिदत्त नई-नई सूझो से भरा दिमाग और प्रभावशाली व्यक्तित्व दिया है। पर इससे भी बढकर हमदर्दी और मुहब्बत से भरा दिल उनके पास है। वे जानते और समझते हैं कि नदी का पानी हमेशा एक ही रफ्तार से नही बहता। जीवन मे उतार-चढाव

आते रहते है। इसलिए न चढाव मे फूलकर अन्धा होने की जरूरत है और न उतार मे घबराकर मैदान छोड़ने की।

उतार के भँवर मे आने पर उन्होने अपने मित्रो की ही नही, साथियो की ही नही अनजाने लोगो तक की समय-समय पर स्वयं कष्ट झेलकर भी सहायता की है। और यही कारण है कि वे अपने विस्तृत सर्किल मे एक भरोसे, विश्वास और सहारे की पतवार बनकर अटल और निश्चल खड़े रहे।

आज उनके चारो ओर पुण्य कर्म के उदय से सफलता खेल रही है। यह सब उनकी कुशाग्रबुद्धि और परम पुरुषार्थ का चमत्कार है। और चमत्कार की एक बहुत ही मर्मस्पर्शी कहानी है। इस दु खभरी दुनिया मे जब उन्होने आँखे खोली तो उनके चारो ओर सुख ही सुख था। धनी माँ-बाप की गोद मे वे जनमे, खेले और पले-पुसे, बढे। और पढ-लिखकर गवर्नमेंट सर्विस मे चले गए।

परिवार परिचय–

सन् १८४० ई० के लगभग जीद राज्यान्तर्गत होट ग्राम मे एक समृद्धशाली जैन-परिवार निवास करता था। उसी परिवार के एक दूरदर्शी एव उच्च इच्छाओ से ओत प्रोत नवयुवक ने अपनी महत्वाकाक्षाओ को पूरा करने के उद्देश्य से रोहतक मे आकर अपना कारोबार आरम किया। इन्ही के वश मे श्रीयुत ला० जज्जूमलजी का जन्म हुआ। महत्वाकाक्षा और धार्मिक वृत्ति इस परिवार का पैतृक गुण रहा है। अत श्रीयुत लाला जज्जूमलजी के सुयोग्य पुत्र ला० गणेशीलालजी ने रोहतक मे अपनी महत्वाकाक्षाओं को विशेष रूप से अवरुद्ध होते देखा तो वे रोहतक से मुलतान चले गये और वहाँ अपने पैतृक व्यवसाय, लेन-देन और सर्राफे का काम आरम्भ किया। आपने अपने अध्यवसाय और व्यापार-कुशलता से इतना धन सग्रह किया कि मुलतान में बहुत बडी सम्पत्ति खरीद कर वहाँ के उच्चकोटि के समृद्धशालियो में आपकी गणना होने लगी। परन्तु समय की गति और लक्ष्मी के चचल स्वभाव के कारण मिल्स के कार्य मे आकस्मिक असह्य हानि होने के कारण अपनी सम्पूर्ण सचित सम्पत्ति खो बैठे। परन्तु सौभाग्य से चार पुत्र-रत्न प्राप्त हो चुके थे जिनमें होनहार पुत्र ला० जौहरीमलजी दूरदर्शी और व्यापारकुशल व्यक्ति थे जिनका व्यापारिक सम्बन्ध अन्तर्राष्ट्रीय था। आप अपने बच्चो को व्यापारकुशल बनाने का भरसक यत्न करते थे। जहाँ बच्चो की शिक्षा की ओर विशेष ध्यान दिया वहाँ व्यापार की ओर बचपन से ही उनका रुझान पैदा करने के लिए उन्हे व्यापार की ओर आकर्षित करते रहते थे।

ला० जौहरीमलजी को पाँच पुत्र-रत्न प्राप्त हुए जिनके नाम क्रमशः सर्वश्री ला० नानकचदजी, ला० गणपतरायजी, ला० तनसुखरायजी हमारे (चरित्रनायक), स्व० दौलतरामजी तथा राजारामजी है। अपने व्यापारिक कार्यो मे आकस्मिक हानि के कारण श्री जौहरीमलजी ने सन् १९१३ ई० मे मुलतान छोड़ दिया और भटिण्डा आकर बस गये।

ला० जौहरीमलजी ने भटिंडा मे जनरल मर्चेण्ट और ठेकेदारी का कार्य आरम्भ किया हुआ था। ला० जौहरीमलजी का केवल पैतालीस वर्ष की आयु मे आकस्मिक बीमारी से स्वर्गवास हो गया। पिता की मृत्यु के पश्चात् ला० गणपतरायजी ने अपने पिता के कार्य-भार को सम्भाल लिया। परन्तु आकस्मिक व्यापार उलट-फेर के कारण सन् १९२३ ई० मे वे भटिंडा से पुन अपनी मातृभूमि रोहतक मे लौट आए।

बाल्यकाल–

प्रत्येक मनुष्य का बाल्यकाल उसके भावी जीवन का दर्पण है। यदि मनुष्य के स्वभाव और चरित्र का अध्ययन करना हो तो उसके बचपन के कार्यों के निरीक्षण से भलीभाँति पता लग जाता है। जब हम इस तुला पर अपने चरित्रनायक का बाल्यकाल परखते है तो पता चलता है कि बचपन से ही उनमे विलक्षण सूझ थी।

लाला तनसुखराय जैन का जन्म पजाब प्रात के रोहतक नगर मे स्व० श्रीमान् लाला जौहरीमलजी जैन की धर्मपरायणा पत्नी श्री भगवतीदेवी की कोख से सन् १८९९ ई० मे हुआ

था यह महान आश्चर्य की बात है कि आप अपनी माता की कोख मे बारह महीने रहकर इस धराधाम मे अवतीर्ण हुए। आपके जन्मदिन की पिछली रात को इनकी माताजी को स्वप्न में एक नग्न दिगम्बर मुनिराज के दर्शन हुए; जिन्होने कहा था कि प्रातःकाल तुम्हारे उदर से एक पुण्यात्मा, प्रतिभा-सम्पन्न, प्रतापी पुत्र जन्म लेगा जो अपनी प्रखर बुद्धि से ससार मे कई लोकोपकारी कार्य करके अपने कुल का नाम रोशन करेगा और सदा उसकी कीर्ति बढेगी। लाला तनसुखराय ने भटिंडा में रहकर हिन्दी, अग्रेजी और उर्दू की शिक्षा पाई।

बाल्यकाल से ही उनको वस्तुओ की सजावट तथा व्यवस्था का अधिक शौक रहा है तथा अवसर के अनुसार उनकी अनुपम सूझ उनकी उन्नति का रहस्य है जिसका दिग्दर्शन हमे उनके बाल्यकाल के कार्यों से मिलता है। इस सम्बन्ध में बचपन की एक घटना अत्यत आकर्षक है।

'होनहार विरवान के होत चीकने पात'

बालक तनसुखराय जब छोटे ही थे तो उन्होने मेले के दिनो मे कुछ लोगो को छोटी-छोटी चीजो की दुकानें लगाकर बिक्री करते देखते ही उनके मन मे भी इसी प्रकार का कार्य करके लाभ उठाने की सूझी। मित्रमडली को साथ लेकर मेले मे बच्चो के खिलौने की दूकान लगा ली और उसमें कई रुपये पैदा किये। इस घटना का पता घर वालो को उस समय लगा जब कि आमदनी के रुपये उन्होने घर जाकर दिये। इसी प्रकार की सामयिक सूझ और सगठन के बहुत से कार्यो का परिचय उनके बाल्यकाल के छोटे-छोटे-कार्यो मे लगता है।

कार्यक्षेत्र में प्रवेश—

बालक तनसुखराय अपने पाँचो भाइयो मे अधिक व्यवहारकुशल और होनहार थे। इसलिए माता-पिता की दृष्टि इन पर विशेष रूप से रहती थी। पिताजी की हार्दिक इच्छा थी कि उन्हे उच्चकोटि की शिक्षा दी जावे। परन्तु १६१६ ई० मे पिता की आकस्मिक मृत्यु के कारण इन्हे अपनी पढाई समाप्त करनी पडी। और अन्य भाइयो के साथ १८ वर्ष की आयु मे ही इन्हे अन्य भाइयो के साथ घर का कार्य-भार सम्भालना पडा। सन् १६१८ ई० मे आपने N. W. R रेलवे के D T. S के कार्यालय मे लेखक (Clerk) का कार्य आरभ कर दिया जो सन् १६२१ ई० तक सुचारु रूप से चलता रहा।

कार्यालय के उच्च पदाधिकारी आपकी कार्यशैली, व्यवहारकुशलता, कर्तव्य-परायणता, अनुशासनप्रियता, सत्यनिष्ठा और विनम्र स्वभाव के कारण इनसे बहुत प्रसन्न थे।

परन्तु यह सब कुछ होते हुए इन्हे कुछ ही समय में यह भलीभाँति विदित होगया था, कि उनकी योग्यता के सदुपयोग के कारण यह क्षेत्र पर्याप्त एव समुचित नही है। अतएव समुचित अवसर की प्रतीक्षा करने लगे।

राजनैतिक जीवन मे प्रवेश—

१६१६ मे जब असहयोग आन्दोलन प्रारभ हुआ, और सारे देश मे आजादी की लहर दौड़ी तो इनसे भी न रहा गया। और एकदम विदेशी वस्त्रो की होली जलाकर स्वदेशी वस्तुओ का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया। हालाकि उन दिनो आप गवर्नमेट की मुलाजमत मे एक अच्छे पद पर नियुक्त थे। परतु केवल स्वदेशी वस्तुओ के प्रचार से ही इनकी तपिश नही बुझी। आपने सरकारी नौकरी से भी स्तीफा देने का निश्चय किया और खामोशी के साथ राजनैतिक क्षेत्र मे कार्य करने लगे।

सन् १६२१ मे भिवानी मे पोलिटिकल कान्फ्रेस हुई। उसमे ला० तनसुखरायजी भी सम्मिलित हुए। इस कान्फ्रेंस का आपके मन पर बडा प्रभाव पड़ा। आपने राजनैतिक जीवन मे कार्य करने का निश्चय कर लिया।

देश के नेताओ की अपील पर आप सत्याग्रह आन्दोलन मे कूद पड़। परन्तु कुछ ही समय मे महात्मा गाधीजी की आज्ञा से जब यह आन्दोलन स्थगित कर दिया गया तो इन्हें भी पुन. व्यापारिक कार्यक्षेत्र मे लौटने का विचार करना पड़ा।

सन् १६२१ और २२ के दिन भारत के राष्ट्रीय उत्थान मे चढ़ाव के दिन थे। स्वाभिमानी नवयुवको मे उत्साह की हिलोरे उठ रही थी। भारत के नवयुवको के कान और आँखें भारत माता की आर्तभरी पुकार सुनकर बेचैन थे। राष्ट्र की महान आत्मा ने फतवा दिया था कि सरकारी नौकरियाँ भारत की गुलामी को लोहे से भी ज्यादा सख्त बनाती है। अत. प्रत्येक भारतवासी को उन्हें त्याग देना चाहिए।

इसी तेजाब मे डूबी हुई बात को सुनकर भारत के स्वाभिमानी व्यक्ति तक भी सह गए। फिर कमजोरो की क्या गिनती थी ? पर भाई तनसुखरायजी में एक जीती-जागती आत्मा मौजूद थी। आपने बगाल के राष्ट्रीय जीवन के प्राण श्री सुभाषचद्र बोस की तरह सोचा, दिमाग मे अक्ल है। शरीर मे जीवन मौजूद है। फिर कमाकर खाना क्योकर मुश्किल होगा ? फिर पेट भरने के लिए यह दासता क्यो ? तनसुखराय खाली जेब और भरे दिमाग उस वैभवपूर्ण सफलता और वातावरण से निकल कर जीवन के मैदान मे कूद पड़े।

सन् १६२१ से १६२७ तक काग्रेस और खासतौर से स्वदेशी का प्रचार करते रहे और अपने सैकड़ो मित्रो से स्वदेशी के प्रयोग करने का वचन लिया।

गवर्नमेट सर्विस से स्तीफा देने के बाद आपके सामने आजीविका के प्रश्न ने कठोर और विषम प्रहार करना शुरू किए, पर आप इन्च मात्र भी नही घबराए और पर्वत के समान अटल

ग्रौर निश्चित खडे रहे। उनका विश्वास था कि अचलता ग्रौर दृढता के सम्मुख धन ग्रौर मान स्वय ही ग्राकर अपना शीश झुकायेगे। इसी विचार को सामने रखते हुए ग्रौर स्वतत्रा के रग मे होने के कारण १० रु० मात्र की नौकरी करने मे भी सकोच नही किया। नौकरी करते समय आप यह नही सोचते थे कि मैं १० रु० की नौकरी कर रहा हूँ। वल्कि सोचते कि मेरा कर्तव्य क्या है। इसी कारण इन्होने नही, नही, इनके कार्य ने मिल-मालिक पर एक ग्रधिकार-सा कर लिया। वह इन्हें ग्रपने भाई की ही तरह समझने लगा। कुछ दिनो के बाद मिल-मालिक का एक दोस्त उनसे मिलने के लिए ग्राया। ग्रौर एक विश्वसनीय तथा ईमानदार ग्रादमी की ग्रावश्यकता की इच्छा प्रकट की। फिर क्या था, वडी दृढता वाले विचार सत्यता मे परिणत होना प्रारभ हो गए। ग्रौर मिल-मालिक के सकेत पर वह मित्र लाला तनसुखराय जैन को ८० रु० महीने के वेतन पर अपने साथ ले गया।

वहा पर अचानक बीमार हो जाने के कारण ही आपको वापिस ग्राना पडा। अच्छा होने पर भी ग्रापकी स्वतत्र प्रवृत्ति न बदल सकी ग्रौर आपने स्वतत्रतापूर्ण ध्यान रखते हुए कमीशन का कार्य ग्रारभ कर दिया जिससे आपको लगभग १०० रु० महीने की आमदनी होने लगी। इन सब वातो से लोगो को आपकी दृढता, ग्रचलता ग्रौर स्वतत्रता पर विशेष आकर्षण हो गया।

लालाजी का रुझान नौकरी की ग्रोर न था। उनकी योग्यता का सदुपयोग व्यापारिक लाइन मे ही हो सकता है। परन्तु व्यापार के लिए व्यापारिक अनुभव अर्थशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करना ग्रावश्यक समझकर आपने कई व्यापारिक कम्पनियो मे रहकर कन्वेसर, एकाउन्टेंट, सेक्रेटरी ग्रौर मैनेजर ग्रादि भिन्न-भिन्न पदो पर रहकर व्यापारिक क्षेत्रों का गहन अध्ययन किया ग्रौर ग्रनुभव प्राप्त किया। यह ग्रध्ययन कार्य सन् १९२४ ई० तक चलता रहा। लालाजी की प्रभावशाली मूर्ति प्रत्येक व्यापारी के लिए ग्राकर्षक थी ग्रौर प्रत्येक उनके ईश्वर-दत्त प्रभावशाली व्यक्तित्व से लाभ उठाना चाहता था। इस प्रकार के व्यक्तियों का सबसे अधिक सदुपयोग करने वाले बीमा व्यवसायी ही होते हैं। इस बात को प्रत्येक भलीभाँति जानता है। ग्रौर लालाजी के साथ कई बार ऐसा हुग्रा भी। अपनी-अपनी बीमा कम्पनियो का ग्राकर्षण दिखाकर इन्हे कई कम्पनियो ने ग्रपनी ग्रोर खीचना चाहा। परन्तु बीमा व्यवसाय भी लालाजी को रुचिकर प्रतीत नही होता था ग्रत बहुत समय तक इन ग्रवसरो को टालते रहे।

परन्तु १९२४ ई० मे लालाजी के ज्येष्ठ वहनोई श्रीयुत ला० महेन्द्रसैनजी जैन ने जो उस समय भारत बीमा कम्पनी दिल्ली ब्राच के मैनेजर थे, इन्हें वलपूर्वक इस कार्य की ग्रोर आकर्षित किया। ग्राप भी उनका ग्राग्रह नही टाल सके, ग्रौर ग्रनिच्छा होते हुए कार्य प्रारभ किया। प्रारभ मे श्रीयुत ला० महेन्द्रसैनजी ने ग्रापको वहुत प्रोत्साहन दिया ग्रौर कुछ ही समय मे इन्हें कई हजार का कार्य मिल गया। धीरे-धीरे झिझक दूर होने लगी ग्रौर ग्रापका उत्साह बढ़ने लगा। पुण्योदय से थोड़े ही समय मे ग्रापके कार्य की धूम मच गई। ग्रौर प्रत्येक कम्पनी इन्हे ग्रपनाने के लिए उत्सुक रहने लगी। सम्पूर्ण जिला रोहतक, हिसार तथा जीद स्टेट की

श्री मानकचंदजी (ज्येष्ठभ्राता)

श्री गनपतरायजी

चारो भ्राता

श्री दौलतराम जी

श्री राजाराम जी

बहिन लक्ष्मी देवी

श्री विद्यादेवी जैन
(लालाजी की बड़ी पुत्री)

लालाजी, छोटी पुत्री और अपनी धर्मपत्नी के साथ

एजेन्सी आपको मिल गई। अपनी कार्यकुशलता और परिश्रम के बल पर आपने कम्पनी को इतना कार्य दिया कि शीघ्र ही आप एक एजेण्ट से डिस्ट्रिक्ट आर्गेनाइजर बन गये।

आपके मन मे विश्वास पैदा हो गया था कि बीमा एक ऐसा कार्य है जहाँ स्वतन्त्र रहता हुआ आदमी राष्ट्र की गुरुतर सेवा कर सकता है। और यदि परिश्रम से इस क्षेत्र मे कदम बढाया तो लक्ष्मी पैर पूजती है। लाला तनसुखराय जैन के पौरुष और प्रतिभा से बीमे का व्यापार इसलिए चमक उठा चूंकि इनके सादा रहन-सहन एव छलछिद्र रहित जीवन की गहरी छाप दूसरो पर पडी।

शुरू से ही इनकी प्रवृत्ति दूसरो से भिन्न रही है जब कि दूसरे बीमा एजेण्ट पान सिगरेट और चाय के व्यसन को अपने व्यापार की सफलता की कुजी मानते हैं। तब उसके विपरीत तनसुखरायजी का यह विचार रहा है कि पान, सिगरेट, चाय जैसी नशीली चीजो के बजाय त्यागमय जीवन का असर दूसरो पर अधिक पड़ता है। इसलिए आप पान, सिगरेट, चाय आदि से दूर रहे। फलस्वरूप आप के पद की दिनोदिन उन्नति होती रही।

लक्ष्मी बीमा कम्पनी में प्रवेश—

उन्ही दिनो देश के कर्णधार प० मोतीलालजी नेहरू और पजाबकेसरी ला० लाजपतरायजी ने के० सन्तानम् के सहयोग से राष्ट्रीय कार्यकर्ताओ की बेरोजगारी के प्रश्न को हल करने के लिए लक्ष्मी इश्योरेन्स कम्पनी को जन्म दिया।

आग वस्त्रो की कितनी ही तहो मे भी छिप नही सकती। लक्ष्मी इन्श्योरेन्स के कार्य-कर्ताओ की दृष्टि भी एक कोने मे बैठे हुए लाला तनसुखरायजी पर पड़ी।

राष्ट्र-सेवा की भावना से आकृष्ट होकर आप भारत बीमा कम्पनी को छोडकर लक्ष्मी बीमा कम्पनी मे चले गये। आपकी पूर्ण सफलता का अनुमान इसीसे लगाया जा सकता है कि एव वर्ष के अन्दर ही लक्ष्मी को देहली जैसी बड़ी ब्राच पास होते हुए भी आपके लिए रोहतक मे अलग ब्राच खोलनी पडी।

दो वर्ष कार्य करने के बाद ही रोहतक ब्राच का कार्य इतना सतोषजनक हुआ कि आपको देहली ब्राच का सेक्रेटरी बनाकर भेज दिया। लेकिन वाह रे तनसुखराय तीन वर्ष के अल्प काल मे ही देहली ब्राच ने इतना कार्य किया जितना एक छोटी-मोटी कम्पनी करती है। और उसका औसत चौगुने बिजनेस का हो गया। तनसुखराय का नाम बीमे के व्यापार में सूर्य की तरह चमक उठा। और लक्ष्मी का नाम तनसुखराय के नाम के साथ नत्थी होगया।

बीमे के काम के साथ राष्ट्र का काम न किया हो, यह बात नही है। आपने अपने बीमे व्यवसाय को चालू रखते हुए सन् १९२९ मे जिला रोहतक मे जबकि प्रान्तीय मजदूर-किसान कान्फ्रेंस हुई उस समय आप उसकी स्वागतकारिणी के जनरल सेक्रेटरी बनाये गये। जिस पद

को आपने बहुत ही खूबी के साथ निभाया। कौन जानता था कि एक खामोश काम करने वाला आदमी देश का इतना उपयोगी सिपाही होगा। कांग्रेस के कार्यकर्ताओ ने इनकी शक्ति को जाना, समझा और इसलिए प्रत्येक मीटिंग, जलूस और प्रत्येक मौके पर इनका पूरा उपयोग उठाने लगे।

लाहौर मे आल इडिया कांग्रेस का इजलास था। आपको वहा के लिए डेलीगेट चुना गया। यह अधिवेशन नवयुवक हृदय-सम्राट प० जवाहरलालजी नेहरू के सभापतित्व मे हुआ जिसमे जिला रोहतक से ला० तनसुखराय प्रतिनिधि होकर गये। सन् १६२६ मे आपने रोहतक मे सूबा किसान कान्फ्रेंस करने का विचार किया और इसके सम्वन्ध के लिए शीघ्र ही एक स्वागत-कारिणी समिति का निर्माण किया जिसके आप जनरल सेक्रेटरी थे। सन् १६२६ मे यह कान्फ्रेंस देश के प्रसिद्ध नेता श्री अर्जुनलालजी सेठी के सभापतित्व में अपूर्व सफलता के साथ सपन्न हुई। इस कान्फ्रेंस के फलस्वरूप इस क्षेत्र मे बहुत ही जागृति हुई।

रोहतक जिले के कार्यकर्ताओ की मीटिंग हुई कि जिले मे कैसे काम किया जाय। आपने कहा कि मैं तो एक खामोश सिपाही की तरह काम कर सकता हू, जो भी जिम्मेदारी मुझे देना चाहे दे सकते है। इस पर इनको आन्दोलन मे ठहरने का प्रवन्ध, भोजन, वालन्टियरो के जुलूस व वालन्टियरो का तैयार करना, मीटिंग और जुलूसो का प्रवन्ध करने की जिम्मेवारी दी गयी।

आन्दोलन जोरो के साथ आरम्भ हुआ। रोहतक जिले मे गिरफ्तारिया होना शुरू हुई। रोहतक जिले मे मुख्य-मुख्य कार्यकर्ता गिरफ्तार होने लगे। सैकडो वालन्टियर्स गिरफ्तार हुए। गवर्नमेंट ने कांग्रेस के कार्यकर्ताओ को गिरफ्तार करने मे पूरी शक्ति लगाई। परन्तु कांग्रेस का काम जारी रहा, जरा शिथिलता नही आई। प्रत्येक पदाधिकारी असमजस मे था कि कांग्रेस की मशीनरी किस तरह घूम रही है। अगुआ सब गिरफ्तार कर लिए। अत मे सूझी कि इस काम की बागडोर जिनके हाथ मे है उन्हे कैसे गिरफ्तार किया जाए। गिरफ्तारी के लिए कोई कानून लागू नही हो सकता था। तो भी दफा १०८ मे गिरफ्तार कर लिए गए।

यह दफा आमतौर पर भाषण देने वालो पर लगा करती है। लाला तनसुखराय जैसे खामोश कार्यकर्ताओ पर नही। उस आन्दोलन मे प्लेटफार्म पर एक शब्द भी न बोलने की शपथ ली हुई थी। खैर, ऐसे समय पूछता कौन है ? इधर इनको भी कुछ जेल का डर नही था। नौ महीने जेल काटकर मार्च सन् १६३१ मे घर वापिस लौटे। जेल से आते ही आपसे चुप बैठते न रहा गया।

हरिजन आश्रम की स्थापना—

भारत मे सबसे पहले अपने नगर मे हरिजन उद्धार का बीणा उठाया। आपने अपने ही विश्वास पर हरिजन विद्यार्थी आश्रम की रोहतक मे स्थापना की। आश्रम का सारा खर्च आप अपनी तरफ से ही करते थे। आपके दिन-रात परिश्रम से अल्पकाल मे आश्रम ने अच्छी

उन्नति की और पजाब प्रांत मे वह एक आदर्श सस्था मानी जाने लगी। इस सस्था द्वारा हरिजनो और उनके वे बच्चे जिनको सरकार ने कभी भी शिक्षित बनाने की चिन्ता नही की, उस सस्था द्वारा शिक्षा लेकर अपना अहोभाग्य समझते थे। आपके इस परमार्थ एवं लोकोपकारी कार्य से दूसरो पर अच्छा असर पड़ा। पजाब प्रांत के लोगो ने इस कार्य की अति सराहना की और तभी से हरिजनोद्धार का कार्य भारत मे प्रचलित हुआ।

निःस्वार्थ भाव से आश्रम की सेवा करते हुए उन दिनो कई ऐसे देशहित के कार्य किये जिससे आप जनता के श्रद्धा पात्र बन गये। यही वजह हुई कि सन् १९३२ मे आपको पजाब प्रान्तीय काग्रस कमेटी का मेम्बर चुना गया था। रोहतक में इतना कार्य करने के पश्चात् आप देहली लक्ष्मी के ब्राच आफिस मे आये।

रोहतक बाढ़ में हरिजनों की सेवा—

सन् १९३३ रोहतक मे एक भयकर बाढ़ आगई। उच्च जातियो के सहायतार्थ पर्याप्त धन-धान्य एकत्र करके सहायता-कार्य जनता की ओर से चल रहा था। परन्तु हरिजनो को जो वास्तव में सहायता के अधिकारी थे, पर्याप्त सहायता न पहुच रही थी। अत: आपने हरिजन रिलीफ फड की स्थापना करके लगभग १५,००० रु० की एक अच्छी राशि से हरिजनो को समुचित सहायता दी।

स्थान परिवर्तन—

बीमा व्यवसाय मे आप लक्ष्मी बीमा कम्पनी के अधिकारियो के ऊपर अपनी योग्यता की छाप डाल चुके थे। कम्पनी ने आपकी योग्यता से और भी लाभ उठाने के लिए सन् १९३३ ई मे आपको रोहतक से देहली ब्राच का सेक्रेटरी बनाकर भेजा। सन् १९३४ ई मे भारत के हृदय-सम्राट प० जवाहरलाल नेहरू ने रोहतक मे दौरा प्रारम्भ किया। इस इलाके के दौरे मे लाला तनसुखरायजी उनके साथ दौरे पर रहे और इस दौरे मे देश-कार्य के लिए उन्हें बड़ा उत्साह प्राप्त हुआ।

सन् १९३६ में वे दिन राष्ट्रीय भारत अपने जीवन मे एक नया अध्याय आरम्भ करना था। उसने निश्चय किया कि ब्रिटिश सरकार को अपने बनाये हुए जाल में फास ले। साथ ही जो सन् १९३५ का विधान राष्ट्र के लिए चैलेज था उस चैलेंज को स्वीकार करके उसके देने वालो को बता दें कि आज राष्ट्र जाग चुका है और वह भी समझता है कि उसके दिन राष्ट्र के सेवको के लिए मजबूत हाथो मे सुरक्षित है, न कि पूजीपति चापलूसो के। इसके लिए सारे भारतवर्ष मे उन योग्य व्यक्तियो की तलाश आरम्भ हुई, जिन्होने अपने इलाके मे जनता-जनार्दन की निःस्वार्थ सेवा की है, उनके लिए कुछ त्याग किया है। रोहतक जिले के इलाके से जो इस समय तक लाला तनसुखरायजी सार्वजनिक कार्यक्षेत्र से लक्ष्मी मैनेजिंग डायरेक्टर सा. के दोस्त उम्मीद करते थे कि लक्ष्मी के डायरेक्टर्स आफ बोर्ड ने अपनी मीटिंग में

एक प्रस्ताव पास किया कि लक्ष्मी के कोई भी वैतनिक कार्यकर्ता इस चुनाव मे भाग न लें। वास्तव मे इस चुनाव मे लालाजी का स्वय खड़े होने का कोई इरादा न था। परन्तु उनको लक्ष्मी के सचालकमडल का यह प्रस्ताव नागरिक अधिकारो मे हस्तक्षेप मालूम हुआ। इसलिए लालाजी की जागृत आत्मा इस अनाचार एव अत्याचार को बरदाश्त नही कर सकी और वह स्वत्वाधिकार के लिए विद्रोह कर बैठी।

उधर जैन समाज का नवयुवक वर्ग आपसे यह माग कर रहा था कि अब जैन समाज का धनिक वर्ग समाज की बेकारी से हमेशा से उदासीन है तो आप कोई कार्य खडा कीजिए। बस लालाजी ने एक मिनट की देर किए विना एक बहादुर समाजसेवक की तरह एक हजार रुपये महीने के लगभग की आय की लात मार कर एक वार फिर सफलता के वातावरण से बाहर आकर खडे हो गए। स्तीफा देने के लक्ष्मी की ओर से लालाजी को वापिस बुलाने के बहुतेरे प्रलोभन मिले और बहुतेरे दबाव भी पडे। परन्तु आप अपने निश्चय से इचमात्र भी नही डिगे। आपके मित्र पहले से ही इसके लिए तैयार थे। फौरन ही तिलक बीमा कम्पनी की नीव डाल दी गई।

लक्ष्मी बीमा कम्पनी से त्यागपत्र–

सन् १९३६ मे काग्रेस ने असेम्बली के निर्वाचनो मे भाग लेने का निश्चय किया। पजाब प्रोविन्शियल काग्रेस कमेटी ने श्रीयुत लालाजी को पजाब असेम्बली के लिए एक क्षेत्र से खड़ा करना चाहती थी। परन्तु लक्ष्मी इन्श्योरेंस कम्पनी के कार्यकर्ताओ ने प्रतिबन्ध लगाकर रोकना चाहा। यद्यपि लालाजी ने असेम्बली के चुनाव मे खडे होने का निश्चय किया था और वे इसके लिए तैयार भी न थे तथापि लालाजी जैसे निर्भीक, देशप्रेमी और स्वाभिमानी व्यक्ति के लिये इस प्रकार का प्रतिबन्ध अपमानजनक और उनकी भावनाओ को ठेस पहुचाने वाला था, अत उन्होने जिन परिस्थितियो मे अपना त्यागपत्र दिया वे निम्नलिखित त्यागपत्र की प्रतिलिपि से प्रगट होती है :—

१० अक्तूबर, १९३६

मैनेजिग एजेण्ट्स,
लक्ष्मी इश्योरेंस कम्पनी लिमिटेड,
लाहौर।

मैं आपकी सेवा मे निम्नाकित कुछ पक्तिया इगित करना चाहता हू कि किस प्रकार लक्ष्मी इन्श्योरेंस कम्पनी, जिसकी स्थापना ला० लाजपतराय और प० मोतीलाल नेहरू जैसे देश-भक्तो द्वारा हुई है वह उस बात की न केवल अवहेलना ही कर रही है किन्तु जान-बूझकर उसके ध्येय को पीछे पटक रही है। और इस प्रकार इसके कार्यकर्ताओ के उत्साह को क्षीण किया है जिन्होने इसमे इसी आशा से प्रवेश किया था कि इसके सस्थापको की सदिच्छाओ की पूर्ति सदैव ही इसके प्रबन्धको का लक्ष्य रहेगी और जिससे कि वे अपनी मातृभूमि के प्रति अपनी सद्भावनाओ के बाह्य प्रदर्शन का अवसर पाते रहेगे।

असहयोग आन्दोलन के समय सरकारी नौकरी से त्यागपत्र देने का और व्यापारिक संस्था (भारत इन्श्योरेंस क०) मे प्रविष्ट होने का मुख्य उद्देश्य यही था कि मुझे अपने आगामी जीवन मे स्वतत्रतापूर्वक काग्रेस के साथ देशसेवा के कार्य को पूर्णरूपेण क्रियात्मक रूप देने के लिए पर्याप्त क्षेत्र और स्वतत्रता मिलेगी। इससे भी अधिक वह विचार जिसने मुझे और भी लक्ष्मी बीमा कम्पनी की ओर आकर्षित किया वह यह था कि यह कम्पनी काग्रेस के गणमान्य नेता ला० लाजपतरायजी तथा प० मोतीलाल नेहरू द्वारा सस्थापित हुई थी जिसका सुचारू प्रबन्ध पं० के० सन्तानम के हाथ मे है जिन्होने कि असहयोग आन्दोलन के समय अमूल्य सेवाए और त्याग अर्पित किया था अवश्य ही अपने कार्यकर्ताओ को वह स्वतत्रता प्रदान करेगी कि वह काग्रेस के साथ मिलकर कार्य कर सकेगी। साथ ही हर प्रकार से उन्हे सहायता देगी। भारत कम्पनी को छोड़कर अपनी कम्पनी मे आने मे मुझे अत्यधिक हानि हुई थी किन्तु अब मैं अनुभव कर रहा हू कि मैने अपनी भावनाओ के प्रति न्याय नही किया क्योकि अब मै स्पष्ट देख रहा हू कि लक्ष्मी कम्पनी अब वह नही रही है जो कि कुछ समय पूर्व थी और जो लक्ष्य इसके सहायको ने उद्घोषित किया था। कम्पनी के प्रबन्धको का यह निश्चय कम्पनी की इच्छा प्रगट करता है और इसके ऊपर यह प्रतिबन्ध कि वे सामाजिक और देश की राष्ट्र-निर्माण व्यवस्था मे भाग न ले सकेंगे मुझे इससे भाष होता है कि अब वह समय दूर नही है जबकि जो प्रतिबन्ध गवर्नमेंट ने अपने कार्यकर्ताओ पर लगाये है यह कम्पनी भी उनसे पीछे न रहेगी।

आपके बोर्ड का यह निर्णय सीधा उस चेतावनी का द्योतक है कि मेरी राष्ट्रीय भावनाओ की अभिव्यक्ति के लिए यहा पर कोई स्थान नही और इस प्रकार आपकी कम्पनी में मेरे आने का ध्येय अस्त-व्यस्त हो जाता है, अत मुझे खेद है कि मैं आपके इस निर्णय से सहमत नही हू। और न मैं इस प्रतिबन्ध से अपने आपको भविष्य के लिए बाधित करता हू। मैं, इसीलिए अपना त्याग-पत्र दे रहा हू। इसे मेरा एक माह का नोटिस समझा जाएगा। मुझे आशा है कि मैंने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है और मेरा त्याग-पत्र तुरन्त स्वीकार किया जाए।

उत्तर की प्रतीक्षा मे।

भवदीय,

तनसुखराय जैन

सन् १९३९ ई० के अक्तूबर मास मे लक्ष्मी बीमा कम्पनी से त्याग-पत्र देने के उपरान्त ला० तनसुखरायजी ने तिलक बीमा कम्पनी की स्थापना की और उसके मैनेजिंग डायरेक्टर नियुक्त हुए। सन् १९४२ ई० तक तिलक बीमा कम्पनी को छोडने से पूर्व ही उन्नति पथ पर अग्रसर कर दिया और यह भारतवर्ष की उच्चकोटि की कम्पनी बन गई।

तिलक बीमा कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर रहते हुए भी लालाजी ने कम्पनी की उन्नति के लिये अपने व्यक्तिगत स्वार्थो को एक ओर रखकर इसकी उन्नति के लिए अपने पास से हजारो रुपये लगाकर कम्पनी के धन की रक्षा की थी। यदि लालाजी कुछ समय और भी इस कम्पनी की सेवा कर सकते तो तिलक बीमा कम्पनी के लिये सौभाग्य की बात होती परन्तु

सन् १९३९ ई० मे एक नया बीमा कानून बना जिसके अनुसार एक व्यक्ति तीन साल तक ही किसी बीमा कम्पनी का मैनेजिंग डायरेक्टर रह सकता था। लालाजी की यह अवधि सन् १९४२ ई० में समाप्त होती थी। अत आपने लक्ष्मी बीमा कम्पनी से त्याग-पत्र दे दिया।

तिलक बीमा कम्पनी की स्थापना—

जिन लोगो का तिलक से सम्बन्ध रहा है और वैसे भी सारा समाज जानता है कि तिलक ने क्या-क्या किया। जहाँ दसो और बीसो वर्षों की खडी हुई कम्पनियो के नाम तक लोग नही जानते, वहाँ दो वर्ष मे ही तिलक का नाम बच्चे-बच्चे की जबान पर हो गया था।

नये बीमा कानून की चोट मे जहाँ नई कम्पनियो का अस्तित्व खतरे मे पड गया था और बहुतेरी कम्पनियाँ किश्त न देने की दशा में सरकार द्वारा बन्द कर दी गई थी। तिलक ने समय से पहले ही अपनी जमानत की रकम पूरी कर दी थी।

आज भी जब विकट परिस्थितियो मे सभी बैंकिंग सस्थाओ पर सकट के बादल मँडरा रहे है और अधिकाश सस्थाएँ बद हो गई है तिलक सीना निकाल अडिग खडी हुई है। इस सब का श्रेय केवल इसी एक महान व्यक्ति लाला तनसुखराय जैन को है। तात्पर्य यह है कि सफलता लाला तनसुखराय जैन के पीछे-पीछे दौडती है, और व्यापारी जगत् मे यह निश्चित समझा जाता कि ला० तनसुखराय के साथ सफलता की गारटी रही।

आम तौर पर यह देखा गया है कि जो व्यक्ति व्यापार में सफलता प्राप्त करता है वह सार्वजनिक क्षेत्र से दूर रहता है। लाला तनसुखराय जैन इसके अपवाद रहे है। आप न केवल काग्रेस के प्रसिद्ध कार्यकर्ता ही रहे बल्कि सामाजिक क्षेत्र मे भी नाम बहुत ऊँचा पाया। जैन समाज मे तो लाला तनसुखराय जैसे कार्यकर्ता उँगलियो पर गिनने लायक हैं।

धार्मिक क्षेत्र में प्रवेश—

सन् १९३५ ई० में देश मे शान्ति स्थापित हुई। काग्रेस का कार्यक्रम सरकार के साथ सहयोग रूप मे चल पडा, अत. इस ओर से श्री लालाजी का कार्यभार हलका हो गया था। श्रीयुत लालाजी की माताजी की यह हार्दिक इच्छा थी कि आपको धार्मिक क्षेत्र मे प्रविष्ट किया जाए परन्तु जो देश के आन्दोलन की ओर आकर्पित हो चुका हो उसके लिए जातियाँ, धर्म के बधन तुच्छ दीख पडते है। फिर भी धार्मिक वृत्ति श्री लालाजी की पैतृक सम्पत्ति रही है। इस ओर भी आपकी अभिरुचि शीघ्र ही जागृत हो उठी। सन् १९३५ ई० में आप पूज्य माताजी के आग्रह पर आप हस्तनागपुर के उत्सव पर गये। धार्मिक क्षेत्र की ओर आपका यह प्रथम रुझान था। अपनी सूझ से आपने हस्तनागपुर मे ६०, ७० व्यक्तियो के ठहरने योग्य कैम्प बनाया और उसका प्रबन्ध बडी कुशलता के साथ किया। इस अवसर पर अखिल भारतीय जैन परिषद् की कार्यकारिणी की बैठक हस्तनागपुर में रखी गई थी। सौभाग्य से परिषद की मीटिंग

का स्थान भी आपके पडाल मे ही रखा गया। इससे आपको बडी प्रसन्नता हुई। आपने परिषद् की मीटिंग के लिए हर प्रकार का समुचित प्रबन्ध कर दिया।

परिषद मे अनेको आवश्यक विषयो पर विचार होने के साथ ही आगामी अधिवेशन के स्थान का भी प्रश्न उपस्थित हुआ। कोई किसी स्थान का निर्णय होने मे नही आ रहा था। उस समय ला० तनसुखरायजी ने विचार प्रगट किया कि यदि परिषद् का अधिवेशन दिल्ली मे हो तो ठीक है। उस समय जैन समाज में परिषद् की ओर से कुछ भ्रम फैला हुआ था। कुछ लोगो ने इस प्रस्ताव का विरोध भी किया परन्तु परिषद की कार्यकारिणी ने लाला तनसुखरायजी से आग्रह किया कि वे दिल्ली जाकर परिस्थिति का अध्ययन करके पुन इस विषय मे लिखे। श्रीयुत लालाजी के चित्त पर हस्तनागपुर उत्सव का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा था और अनेको जाति-बन्धुओ के घनिष्ठ सम्पर्क मे आने के कारण उनकी समाज-सेवा की सुपुप्त भावना एक दम जाग उठी, और इसी भावना से आपने परिषद को दिल्ली के लिए निमन्त्रण भी दे दिया। कुछ साथियो ने इस कार्य को बहुत कठिन बताया परन्तु आपने हस्तनागपुर से लौटते ही लोगो से मिलना-जुलना आरम्भ कर दिया और अपना विचार लोगो को बताया। फिर लाल मन्दिर मे एक मीटिंग बुलाई गई। प्रथम तो उपस्थिति ही बहुत कम थी। फिर बिना किसी निश्चय के ही यह अपूर्ण मीटिंग भी समाप्त हो गई। इससे आपको हार्दिक दु ख हुआ। अगले दिन आपने अपने मकान पर ही कुछ मित्रो की एक बैठक बुलाई और उसमे जिला परिषद की स्थापना करके अखिल भारतीय जैन परिषद का आगामी अधिवेशन दिल्ली रखने का निमत्रण दे दिया। एक मित्र ने आर्थिक कठिनाई का जिक्र किया तो इन्होने तत्काल अपनी स्वीकृति प्रदान की और कहा इस सम्बन्धी आने वाली कठिनाइयो का मै स्वय सामना कर लूँगा। आप सब परिषद के कार्य को बढाइये। यह बात सुनकर सर्वसम्मति से आप जैन परिषद के मन्त्री चुने गये।

महगाँव काड का सफल सचालन अ० भा० जैन परिषद् के दिल्ली अधिवेशन को समाप्त हुए पूरा १ मास भी न बीता था कि जैन समाज में महगाँव काड का प्रबल आन्दोलन छिड़ गया। यहाँ कुछ अत्याचारियो ने मन्दिर की मूर्तियो को चुरा लिया और मन्दिर को अपवित्र कर दिया। इससे श्रीयुत लालाजी के हृदय को बड़ी ठेस पहुँची। आपने आठ दिन मे ही इस आन्दोलन को अखिल भारतीय रूप दे दिया तथा १९ जनवरी, सन् १९३६ को सम्पूर्ण भारत मे महगाँव काण्ड दिवस मनाने की अपनी कार्यदक्षता और प्रबन्ध से इस दिवस को इतनी सफलता से मनाया गया कि लगभग सम्पूर्ण भारत मे हडताल मनाई गई तथा सभाएँ हुई। इस दिवस की सफलता का यह प्रत्यक्ष प्रमाण है कि एक दिन मे ग्वालियर राज्य के पॉलिटिकल विभाग मे हजारो तार पहुँचे थे तथा अनेको स्वीकृत प्रस्ताव-पत्रो का ढेर लग गया था। यह दिवस दिल्ली मे तो इतनी सफलता के साथ मनाया गया कि जैन-इतिहास मे इसका एक विशेष स्थान रहेगा और यह इस कारण और भी कि पहली बार ही दिगम्बरी, श्वेताम्बरी, स्थानकवासी आदि सब प्रकार के जैनियो ने एक मच से सम्मिलित होकर इस दिवस को मनाया।

आपको इस काण्ड की जाँच के लिए कई बार ग्वालियर राज्य जाना पडा और राज्याधिकारियो से मिल कर अपना दृष्टिकोण रखकर न्याय की प्रार्थना की। यह आन्दोलन

आपके परिश्रम और कार्यकुशलता के कारण इतना वृहत् रूप धारण कर गया था। इस बार तो आपकी गिरफ्तारी का भय हो चला था परन्तु आपने राज्य को चेतावनी दे दी थी कि यदि उन्हें राज्य से न्याय न मिला तो सत्याग्रह किया जाएगा। इसके लिए पूरी तैयारी आरम्भ कर दी गई थी। इस मामले को अन्त मे राज्याधिकारियों ने अदालत मे दे दिया जहाँ पूरी शक्ति से आप इसे डेढ वर्ष तक लड़ते रहे और जैन समाज के मस्तक को ऊँचा किया।

समाज संगठन का व्रत

१९ जनवरी सन् १९३६ ई० के महगाँव काण्ड दिवस ने आपकी समाज-सगठन की भावना को और भी जागृत कर दिया और तन-मन-धन से समाज-सेवा में जुट गये। महगाँव काण्ड के कारण समय का अभाव होते हुए भी आपने जैन परिषद का सारा विधान नए रूप से बनाया और परिषद का कायाकल्प हो गया।

सन् १९३७ मे परिषद का सालाना अधिवेशन आपके परिश्रम से ही इतना सफल हुआ कि इसमे जैन समाज के १० हजार व्यक्तियो के अतिरिक्त महाराजा रीवा और कोठी नरेश भी पधारे थे। इस अवसर पर समाज की कुरीतियो को जड से उखाड़ फेंकने का प्रस्ताव पास हुआ। हजारो व्यक्तियो ने मरण-भोजन जैसी हानिकारक घृणित कुप्रथा को नष्ट करने, ३ मास में परिषद के १०००० सदस्य बनाने की प्रतिज्ञा की। समाज के सैकड़ों नवयुवकों ने भिन्न-भिन्न भागों मे परिषद की शाखाएँ खोलने का व्रत लिया। श्रीयुत लालाजी मई-जून की भयकर गर्मी मे, यू० पी०, सी० पी०, आदि प्रान्तो के दौरे पर निकल पड़े और समाज मे एक नवचेतना पैदा कर दी। आपके कार्य से अ० भा० जैन परिषद के महामत्री देशभक्त त्यागमूर्ति श्री रतनलालजी एम० एल० ए० इतने प्रभावित हुए कि अ० भा० जैन परिषद का सम्पूर्ण कार्य उन्होंने आपके ऊपर ही छोड दिया और अन्त मे बहुत समय तक अ० भा० जैन परिषद का कार्यालय आपके पास ही रहा।

जैन रथ-यात्रा पर पाबन्दी

सन् १९४० ई० में जब कि आप अखिल भारतीय जैन परिषद के मत्री थे, दिल्ली के अधिकारियो ने जैन रथ-यात्रा के जुलूस पर पाबन्दी लगा दी थी। उस समय आपने पचासों जैन और जैनेत्तर अन्य सभाएँ सरकार के इस अनुचित कार्य के विरोध मे सगठित कराकर तथा समय-समय पर वक्तव्यो द्वारा अपने समाज का रोष प्रकट करके सरकार को यह बतला दिया कि दिल्ली का जैन समाज की ओर आपका ध्यान आकर्षित किया। आपने सबको इस बात का आश्वासन दिया कि यदि आवश्यकता हुई तो वे सब व्यय अपने ऊपर लेने को तैयार हैं। परिषद का निमत्रण देने के बाद वे सब कार्य छोडकर परिषद के कार्य पर जुट गये और एक सप्ताह में परिषद के सैकड़ो सदस्य बनाये। आपकी इस सफलता को देखकर बहुत से सज्जन चकित रह गये और वे आप ही आप परिषद मे सम्मिलित होने लगे। अखिल भारतीय जैन परिषद दिल्ली अधिवेशन के लिए स्वागतकारिणी के मन्त्री निर्वाचित हुए और आपके कठिन परिश्रम, अपूर्व

साहस तथा उत्साह से अ० भा० जैन परिषद का दिल्ली अधिवेशन इतना सफल हुआ और अपूर्व समारोह के साथ समाप्त हुआ कि यह अ० भा० जैन परिषद के इतिहास मे अमर रहेगा। इस अवसर पर आप पावन्दी के साथ जलूस निकालने को तैयार नही थे अन्त मे स्थानीय अधिकारियो को झुकना पडा और दिल्ली मे जलयात्रा का शानदार जुलूस निकला। शायद भारतवर्ष में यह पहला जुलूस था जिसमे श्वेताम्बरी और दिगम्बरी आदि सभी सम्मिलित होकर जुलूस मे निकले और यह सब आपके प्रयत्नो का ही फल था।

रथयात्रा पर लगाई गई पावन्दी को सफलतापूर्वक हटवाने के बाद जो निम्नांकित वक्तव्य लालाजी की ओर से प्रकाशित हुआ उससे इनकी निर्भीकता का भलीभांति ज्ञान होता है —

"विविध जातियो मे फूट डालकर अपना काम बनाने की जिस नीति से सरकार हमेशा काम लेती रही है, वही नीति स्थानीय सरकार ने जैनियो के जुलूसो पर पावन्दी लगाकर हिन्दुओ में प्रयोग करनी चाही थी अर्थात् यदि जैनी पावन्दियो सहित अपने जुलूस निकाल लेते तो हिन्दुओ के जुलूसो पर भी उसी प्रकार पाबन्दी लगाई जा सकती थी और सरकार का उद्देश्य भी यही था। सरकार का इरादा यह था कि पहले एक छोटे समाज पर पावन्दी लगाकर देख लिया जाय कि हिन्दू लोग उसे कैसा महसूस करते है। जैन समाज अपनी परीक्षा मे सफल रहा है, क्योकि उन्होने पावन्दियो के साथ जुलूस निकालने मे समस्त हिन्दू जाति का अपमान समझा और इसलिए विरोध प्रदर्शनार्थ अपने आठो मेलो को बन्द कर दिया और न कोई जुलूस ही निकाला। उसी का फल आज हम देख रहे है कि रामलीला के लाइसेन्स बिना किसी पावन्दी के मिलेंगे। रामलीला के जुलूसो मे कोई पावन्दी न लगाकर सरकार ने बहुत बुद्धिमत्ता प्रकट की है और सरकार को चाहिए कि वह जैनियो के मामले मे अपनी गलती स्वीकार करे और उसके दिलो को जो दुःख पहुँचा है उसे शान्त करे।

अन्त मे जैन समाज की ओर से सब सज्जनो और व्यक्तियो को जिन्होने कि इस मामले मे सहयोग दिया तथा इस अन्याय के प्रति सहानुभूति प्रकट की है, धन्यवाद देता हूँ।"

श्री अग्रसेन जयन्ती का वृहत् आयोजन

दिल्ली मे पिछले कई वर्षो से अग्रसेन जयन्ती मनाई जाती रही थी। परन्तु बहुत समय तक अग्रवाल भाई दिल्ली के भिन्न-भिन्न मुहल्लो मे ही जयन्ती मना रहे थे। लाला तनसुखरायजी जैन ने जो कि इस समय तिलक बीमा कम्पनी के मैनेजिंग डायरेक्टर थे, ला० लक्ष्मीनारायणजी अग्रवाल व बालकृष्णजी एम० ए० की प्रेरणा से इस बात का बीडा उठाया कि दिल्ली के समस्त वैश्य भाई संगठित रूप मे एक ही स्थान पर जयन्ती मनाये।

इससे पूर्व दिल्ली के वैश्य भाई जयन्ती के अवसर पर जुलूस निकालने से हिचकिचाते थे। परन्तु आपने साहस और आत्मविश्वास से काम लेकर जुलूस का आयोजन किया जिसके

फलस्वरूप ऐसा जुलूम निकाला जो दिल्ली के वैश्य जाति के इतिहास मे एक अद्वितीय प्रकरण रहेगा।

खट्टा अत्याचार विरोध प्रयत्न—

सन् ३७ मे खट्टे में जब कि वहाँ के जैन भाइयो पर अजैनो ने हर तरह के अत्याचार करना प्रारम्भ किये और जैन मन्दिर न बनाने दिया तब आपने वहाँ पहुँच कर उन आपत्तिग्रसित जैन बन्धुओ को अपने गले लगाकर उनके अधिकारो की रक्षा के निमित्त अपनी जान पर खेल गये। लाला तनसुखरायजी जैन के अथक श्रम का यह फल है कि आज भी खट्टे के जैन भाई और उनके धर्माधिकार सुरक्षित है।

सिकन्दराबाद अत्याचार विरोध प्रयत्न :

सन् ३८ मे सिकन्दराबाद यू० पी० मे जब कि वहाँ के जैन जुलूसो पर किसी जैनेतर ने जूता फेंक कर जैनियो को महाअपमानित किया था और वहाँ अनैक्यता बढ गई थी और बडे भारी झगडे होने की उम्मीद थी तब ऐन मौके पर अपने कई साथियो को लेकर ला० तनसुखराय जी जैन वहाँ पहुँचे और जैन रथ चलवाया तथा मुजरिमो को कडी सजा दिलवाकर सरकार का पीछा छोडा।

मित्रमडल जुलूस का प्रारभ :

जैन मित्रमडल धर्मपुरा दिल्ली लगभग २३ वर्षो से वीर जयन्ती का उत्सव मनाया करता था, पर सन् ३६ मे आपके सद्प्रयत्न से आम शहर मे जुलूस निकालने की योजना बनी और उसी वर्ष से वह कार्यरूप मे परिणत भी कर दी गई। प्रथम वर्ष मे ही जुलूस को इतनी अधिक सफलता मिली कि अजैनो पर उसका काफी असर हुआ और जैनेतर जनता ने वीर जयन्ती महोत्सव मे शामिल होकर इस बात का सबूत पेश किया कि हम लोग भगवान महावीर स्वामी के अहिंसात्मक सिद्धान्तो को लोकोपकारी समझते है। जुलूस की योजना आज तक चली आरही है और प्रतिवर्ष उसमे दूज के चन्द्रमा की तरह तरक्की होती ही रहती है। हजारो जैनेतर भाई अब वीर जयन्ती के जुलूस के साथ रहते है तथा सभामडप मे भी हजारो की तादाद मे जनता उपस्थित होती है।

मनोरजन हिसा का विरोध :

नई दिल्ली के असेम्बली हाल पर प्रतिवर्ष की गई निश्चित तारीख को यहाँ के सरकारी अफसर कबूतरो को अपनी गोली का निशाना बनाकर अनेक तरह की रगरलियाँ मनाते और उन तडफते कबूतरो से खिलवाड़ किया करते थे। सन् ३६ मे उस निर्दय पूर्णहिसा को रोकने के लिए दिल्ली मे आपने जोरदार आन्दोलन चलाकर प्रति वर्ष होने वाली हजारो निरपराध कबूतरो की हिसा को रुकवाया।

भीलो में सुधार

इसी सन् में नीमखेडा स्टेट मे एक भीलो के बच्चो को सुशिक्षित बनाने का ध्येय सामने रखकर आपने वहा एक आश्रम की नीव डाली और उस समय १० हजार भीलो ने आपके उपदेश से आजन्म मास खाने का त्याग किया। उस आश्रम की नीव डालते समय आपने एक अच्छी रकम दान मे दी।

सम्मिलित जलूस

सन् ४० मे दिल्ली मे भादवें के महीने मे जब कि जैन रथोत्सव सरेआम निकलता है उस पर मस्जिद के आगे बाजे न बजाने की रोक सरकार ने लगा दी तब आपने अथक परिश्रम द्वारा उस पाबन्दी को हटवाया और तब से इस प्रकार की पाबन्दी फिर सरकार को कभी भी लगाने की हिम्मत न हुई। आपके सद्प्रयत्न से पाबन्दी तो हट गई पर उस समय आपने एक कार्य और भी बडे मार्के का किया और वह यह है कि पहले कभी दिगम्बर तथा श्वेताम्बर भाई आपस मे धार्मिक मामलो मे इकट्ठे नही होते थे, आपने दो बिछड़े हुए भाइयों के मिलाने का और उन्हें एक साथ धार्मिक कार्य करने का प्रयत्न किया और वे उसमे पूर्ण सफल भी हुए।

सन् ४२ मे जब कि विश्वयुद्ध की ज्वालाएँ भारत के सिंह द्वार को छूकर लोगो में भय उत्पन्न करने लगी और राजपूताने के मारवाड़ी भाई कलकत्ता, मद्रास आदि व्यापारिक केन्द्रो को छोडकर अपनी जन्म-भूमि की ओर भागने लगे तब आपने दिल्ली जकशन पर उन मुसीबतजदा मुसाफिरो की हर तरह की सुविधा के लिए रेलवे के आफिसरो से मिल कर और लिखा-पढी करके उनका स्थायी प्रबन्ध करवाया।

दिल्ली की सुप्रसिद्ध साहित्यिक सस्था जैन मित्रमडल धर्मपुरा के आप कई वर्ष तक सफल महामत्री रह चुके है। इसके अलावा आप दिल्ली की बहुत सी सामाजिक सस्थाओ के सभापति, मत्री, सस्थापक और सरक्षक है। दि० जैन समाज का एक मात्र साहित्यिक पत्र 'अनेकान्त' जो कि अर्थाभाव से सिर्फ एक वर्ष चलकर बन्द हो गया था और जिसके पुन. प्रकाशन की आवश्यकता को समाज के विद्वान जोरो से महसूस कर रहे थे। आपके ही हर तरह के त्याग से उसका पुन प्रकाशन आरभ हुआ जो आज तक हो रहा है और उससे अच्छी साहित्यिक सेवा हो रही है। जैन समाज का कार्य करते हुए भी आपने राष्ट्र को भुला नही दिया है अपितु आज भी नई दिल्ली काग्रेस कमेटी के आप प्रधान है। तात्पर्य यह है कि लाला तनसुखरायजी जैन स्वय एक महान् सस्था है और उनके मजबूत हाथो मे जैन समाज के हित सुरिक्षत है।

दिगम्बर श्वेताम्बर तथा स्थानकवासियो को एक प्लेटफार्म पर लाने की स्कीम आपके दिमाग मे बहुत दिनो ने चक्कर काट रही थी कि अचानक आपको आबू माऊट जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ और वहा पर आबू पर्वत पर बने अपने पूर्वजो के करोडो की लागत के जैन तथा हिन्दू मन्दिरो की कलाकृति को देखने तथा अपने आराध्य देव के दर्शनार्थ आने वाले यात्रियो पर

सिरोही स्टेट द्वारा लगाए गए अति भयानक धर्मघातक कलकी टैक्स को देख कर आपकी आत्मा छटपटा उठी और वहा से आते ही आपने आवू टैक्स के लगने से होने वाले जातीय अपमान का बदला लेने की गरज से हिन्दू तथा जैन समाज को साथ लेकर सिरोही राज्य से भिडने को प्रस्तुत हुए।

जैसी कि लालाजी को हर एक आन्दोलनो मे उन्हें पूरी-पूरी कामयावी हासिल होती रही है। इस आन्दोलन मे भी सफलता का सेहरा आपके उन्नत मस्तक को सुशोभित करेगा। यदि इस आवू आन्दोलन से जैसा कि लालाजी का ख्याल है, समस्त जैन 'टुकडे मिल कर एक हो जाय तो फिर स्वतत्र भारत मे जैनो को अपमानित करने का हौसला किसी भी कौम को न हो सकेगा।'

जन समाज के इस चमकते सितारे पर जैन समाज जितना भी अभिमान करे, थोडा होगा। उन्होने समाज का कार्य सेवा-भाव से करने मे कभी मुह नही मोडा।

आवू मंदिर आन्दोलन

अप्रैल सन् १६४१ ई० की वात है जव कि ला० तनसुखरायजी गुरुदेव श्री विजयशान्ति जी महाराज के दर्शनार्थ आवू गये। गुरुदेव के दर्शन करने के पश्चात् वे विमलशाह तथा वस्तुपाल तेजपाल द्वारा निर्म्मिणित देववाडा के सुप्रसिद्ध जैन मन्दिरो के दर्शनार्थ भी गए। लालाजी के आश्चर्य का ठिकाना न था जव कि अन्य यात्रियो के साथ उन्हें भी सिरोही स्टेट द्वारा लगाए गए टैक्स का शिकार होना पडा परन्तु जैसे ही वे दिल्ली आए इस टैक्स के विरोध मे उन्होने समाचार-पत्र मे अपने विचार प्रगट किए। लालाजी के इन विचारो से सहमत व्यक्तियो की सख्या वढने लगी और छ महीने तक मित्रो से इसी विपय मे पत्र-व्यवहार होता रहा। नवम्वर, १६४१ ई० में सम्पादक श्री चिमनसिंहजी लोढा का व्यावर से एक पत्र मिला जिसमे सम्पूर्ण परिस्थिति पर विचार करने के लिए कार्यकर्ता सम्मेलन वुलाने का परामर्श दिया गया था। अन्त मे अखिल भारतीय आवू मन्दिर टैक्स विरोधी कार्फ्रेंस कर व्यावर मे करने का निश्चय किया। और लाला तनसुखरायजी को उसका अध्यक्ष चुना गया। लालाजी के सभापतित्व मे यह कान्फ्रेंस वहुत सफल हुई। इस आन्दोलन की आवश्यकता इस कान्फ्रेंस के अवसर पर देश के कोने-कोने से प्राप्त कुछ सदेश-पत्रो से भली-भाति विदित है। इन समितियो से यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि लालाजी ने कितने गम्भीर विपय को अपने हाथ मे लिया था।

आवू मन्दिर आन्दोलन सन् १६४३ ई० तक वहुत उग्र रूप मे चलता रहा। कई वार डेपुटेशन सिरोही राज्य के अधिकारियो से मिला और समाचारपत्रो मे वहुत समय तक यह चर्चा का विषय वना रहा, परन्तु देशव्यापी अगस्त-आन्दोलन के कारण देश की परिस्थिति एकदम विगड गई और आवू मन्दिर आन्दोलन के प्रधानमन्त्री चिमनसिंहजी लोढा राज्यवन्दी वनाए गए अत यह आन्दोलन देश की विकट परिस्थितियो के कारण इस आशा से कि ज्योही देश का वातावरण सुधरेगा पुनः आरम्भ कर दिया जाएगा।

इस सम्बन्ध मे देश के विभिन्न भागो से राष्ट्रीय और सामाजिक नेताओ और कार्यकर्ताओ के जो उत्साहवर्धक पत्र आए जिनमे इस कार्य की मुक्तकठ से प्रशंसा की थी और सभी प्रकार सहयोग देने का वचन दिया था उनमे से कतिपय इस प्रकार है .—

श्री एस. सत्यमूर्ति त्यागराज, मद्रास

मुझे यह जानकर हर्ष हुआ कि समस्त जैनो की कान्फ्रेंस व्यावर मे होने जा रही है। मैं आपकी प्रधानता मे कान्फ्रेन्स की हर प्रकार से सफलता की कामना करता हूँ।

श्री ब्रजलालजी वियाणी, सदस्य कौसिल आफ स्टेट, अकोला (वरार)-

मैंने आबू के जैन मदिरो के सम्बन्ध मे सामग्री पढी। इस वारे मे मैं आपकी कौनसी सेवा कर सकता हूँ लिखिये। मेरे योग्य जो कार्य होगा, आज्ञानुसार उसे पालन करने का प्रयत्न करूँगा।

श्री सेठ गोविंददास, एम. एल ए सेन्ट्रल जबलपुर—

आबू के जैन मदिरो के टैक्स का हाल मुझे भलीभाँति मालूम है और मेरा स्पष्ट मत है कि यह यात्रियो पर निरर्थक भार है। इस दिशा मे आपका प्रयत्न सफल हो, यही मेरी हार्दिक कामना है।

श्री श्रीप्रकाशजी, एम. एल. ए, वनारस—

मुझे आबू के मदिरो के दर्शनार्थियो की कठिनाइयो का हाल जानकर हार्दिक खेद हुआ। मैं आशा करता हूँ कि इस दशा मे आपका प्रयत्न उच्च अधिकारियों पर वांछनीय प्रभाव डालेगा। इस दशा मे मै आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ ?

श्री के. एम मुशी यू० पू० मिनिस्टर, वम्वई सरकार—

आबू के दर्शनार्थियो के टेक्सो को दूर कराने की दशा में मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूँ, लिखिये।

श्री डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी, गृहमन्त्री वगाल सरकार—

मेरी उन सभी आदोलनो के साथ गहरी सहानुभूति है जो निरकुशता के विरोध मे किये जाते है और विशेष रूप से धार्मिक विधियो की स्वतन्त्रता की दिशा मे किये गये आंदोलनो का मै पूर्ण समर्थक हू। मुझे विश्वास है कि आपकी प्रधानता मे कान्फ्रेस को सफलता मिलेगी।

श्रीमान् सेठ जुगलकिशोरजी विड़ला का हिन्दू धर्म सेवा संघ द्वारा प्राप्त सदेश—

सेठजी के विचारानुकूल इस आदोलन की ओर हिन्दू महासभा तथा उपयुक्त हिन्दू सस्थाओ को इस ओर आंदोलन करने के लिए सघ द्वारा लिखा जा रहा है, सघ आपकी कान्फ्रेन्स की पूर्ण सफलता चाहता है। हिन्दू भावना की सुरक्षा और उसके विरुद्ध विवेकहीन कार्यो का विरोध करना वास्तव मे उचित और न्यायपूर्ण है। सघ आपके इस आंदोलन मे औचित्य अनुभव करता है।

कुँवर चाँदकरणजी शारदा अजमेर–

वास्तव मे आबू स्थित मदिरो पर सिरोही स्टेट ने जो टैक्स लगाया है वह हमारी धार्मिक स्वाधीनता मे कलक रूप है और इसके विरोध मे जितना आदोलन किया जाय थोडा है। इस आदोलन में आप कोरे प्रस्तावो से सफलीभूत नही होगे, वल्कि आपको सत्याग्रह की पल्टन तैयार करनी होगी तब कही इन निरकुश राजाओ के होश ठिकाने आवेंगे। समस्त हिन्दू जनता आपके साथ इस आदोलन मे सहानुभूति प्रगट करेगी ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। मैं आपके शुभ प्रयत्न की हृदय से सफलता चाहता हूँ।

रायबहादुर मेहरचद जी खन्ना, पेशावर–

आपकी कान्फ्रेन्स की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

श्री कन्हैयालालजी वैद्य, मत्री मध्यभारत देशी राज्य लोकपरिषद्, वम्बई–

यह दुःख की वात है कि सिरोही राज्य हिन्दू राज्य होते हुए, वहाँ पर हिन्दू धर्म की चौकीदारी का टैक्स वसूल होता है। हमारे ये राजे-महाराजे केवल धन खीचना जानते है, नीति और अनीति की उन्हें चिन्ता नही है। सिरोही राज्य की टैक्स लेने की नीति लूट की नीति ही कही जाएगी क्योकि वह इस टैक्स को मदिरो के लिए खर्च न करते हुए अपने स्वच्छद शासन मे खर्च लेता है। ऐसी लूट का जितना भी विरोध किया जाय थोडा है। सिरोही के निरकुश शासन में प्रजा भी दुःखी हो रही है। आप क्रियात्मक सत्याग्रह की योजना कीजिये। राजस्थान और अग्रेजी भारत से आपको सहयोग मिलेगा।

श्री हीरालालजी शास्त्री, जयपुर राज्य प्रजामडल–

अगर कोई राज सस्था किन्ही लोगो से कर वसूल करती है तो उसे उस आमदनी को उन लोगो की राय से उन्ही लोगो के हितार्थ खर्च करना चाहिए। चाहे जिस वहाने से कर लगा देना और उसे मनमाने तरीके से खर्च करना अन्याय है जिसका सम्वन्धित जनता को अवश्य विरोध करना चाहिए। मैं आशा करता हूँ कि आप लोग न्याय की दृष्टि से एक मामले को हाथ मे ले रहे है तो उस पर पूरे आग्रह के साथ अडे रहेगे और उसे अपने अनुकूल तय करवाकर छोडेंगे।

श्री गोकलभाई भट्ट सिरोही राज्य प्रजामडल–

मै मानता हूँ कि आबू मदिर प्रवेश टैक्स कतई हटना चाहिए ताकि यात्रियो को ईश्वर दर्शन के लिए कोई टिकट न लेना पडे। प्रगतिशील जमाने में यह टैक्स कलक है। आपकी कान्फ्रेन्स के साथ हमारी पूरी हमदर्दी है। कान्फ्रेन्स अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यावहारिक व असरकारक योजना वनायेगी ऐसी आशा है। कान्फ्रेन्स को ला० तनसुखरायजी का नेतृत्व मिलने से कार्य सुचारु रूप से चलेगा ऐसी आशा है।

श्रीमान् सेठ पद्मपतजी सिंहानिया–

वस्तुत यह वात बडी अधार्मिक है कि भगवान के दर्शन की कोई फीस ली जावे, चाहे वह किसी भी रूप में हो। सिरोही मे तो इस प्रथा का और भी उग्र रूप प्रतीत होता है। चोर-

डाकुओ से रक्षा करना राज्यधर्म है, प्रजा धर्म नही। इसके अलावा चढाने वाली वस्तुओ पर भी टैक्स लगाना धर्म को व्यवसाय बना देना है, मेरी सहानुभूति आपके साथ है।

श्री नवलकिशोर भरतिया, कानपुर–

मैं सम्मेलन की सफलता हृदय से चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि इस सम्मेलन मे कुछ ऐसे महत्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत होगे जिनसे भविष्य मे दर्शनार्थियो की असुविधायें दूर हो सकें। ईश्वर आपको तथा आपके सहयोगियो को पूर्ण सफलता दे। इस कार्य मे हमारी आपके साथ पूर्ण सहानुभूति है।

श्री जार्ज अरुण्डेल अ दायर मद्रास–

आबू के मदिरो पर टैक्सो की समस्या वास्तव मे जैन समाज के सामने गम्भीर प्रश्न होना चाहिए। मै आशा करता हूँ कि मदिर दर्शन की धार्मिक स्वतत्रता की प्राप्ति के लिए वे कोई प्रयत्न बाकी न रखेगे। मै आपके सम्मेलन की पूर्ण सफलता चाहता हूँ और आशा करता हूँ कि आप इस अन्याय को दूर करने मे उचित प्रभाव डाल सकेंगे।

रायसाहिब खुशीराम छारिया, रोहतक–

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप एक ऐसे कार्य के लिए आगे बढ रहे है जिसका सम्बन्ध प्रत्येक नागरिक और उसके मौलिक अधिकारो के साथ है, मदिर मे पूजा, अर्चा पर सरकारी टैक्स लगाना एक ऐसा कार्य है जिसका किसी भी न्याय से समर्थन नही हो सकता। मैं इस पुण्य कार्य मे आपकी और आपके सहयोगियो की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

मुनि श्री वल्लभसूरजी महाराज, गुजराँनवाला–

मै और पजाब का श्रीसघ इस पवित्र कार्य मे आपकी सफलता चाहते है।

आनरेबिल सर शान्तिदास आसकरन एम. एस. जे पी बम्बई–

मै इस पवित्र आन्दोलन के प्रति अपना सहयोग तथा पूर्ण सहानुभूति प्रगट करता हूँ। मेरा विश्वास है कि सम्मेलन का सगठित आन्दोलन सिरोही राज्य के अधिकारियो की आँखें खोल देगा, तथा उनको इस बात पर बाध्य करेगा कि वे शीघ्र ही इन कठिनाइयो तथा शिकायतो को दूर करने के लिए उचित उपाय ढूँढें।

सर श्री मानिकलाल नानावतीजी बम्बई–

मैं कान्फ्रेस की सफलता चाहता हूँ।

दानवीर साहू शान्तिप्रसादजी, डालमियानगर–

दिलवाडा आबू मन्दिर के विषय मे आपका कार्य वास्तव मे सराहनीय है और इसमे मेरा आपसे पूर्ण सहयोग है, मै व्यावर के सम्मेलन की पूर्ण सफलता चाहता हूँ। इस विषय मे आप मेरे सहयोग पर विश्वास कर सकते है।

रायबहादुर राज्यभूपण दानवीर सेठ हीरालालजी, इन्दौर—

मुझे कान्फ्रेन्स के कार्य मे पूर्णरूप से सहानुभूति है और इस कान्फ्रेन्स की अधिक से अधिक सफलता चाहता हूँ, आजकल सगठन की आवश्यकता है और व्यावर कान्फ्रेन्स पर तीनो सम्प्रदायो के सगठन का एक अपूर्व अवसर है जिसमे चूकना नही चाहिए।

श्री एन के शाह बी. ई. न्यायतीर्थ बम्बई—

आबू के विश्वविख्यात मन्दिर जैनियो की निजी सम्पत्ति हैं, उनके दर्शन की स्वतन्त्रता मे ये कर बाधक है उनका विरोध होना ही चाहिए। हमे चाहिए कि मन्दिरो के दर्शन के लिए जाएँ लेकिन कर न दे। सरकार अत्याचार करे तो अहिसक नीति से उसका प्रतिकार करे, ऐसी हममे शक्ति प्राप्त हो। आपके प्रयत्नो की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

सेठ गजराजजी, कलकत्ता—

सम्मेलन की शानदार सफलता चाहते हैं।

मिस एलिजाबेथ फ्रेजर, कराची—

मैं एक यूरोपियन जैन के नाते इन टैक्सो का सख्त विरोध करती हूँ। मैं पूछना चाहती हूँ कि जब क्रिश्चियन और यूरोपियन को दर्शन पर कोई टैक्स नही है तब जैनो को अपने देश मे अपने ही मदिरो के नि शुल्क दर्शन की क्यो आज्ञा नही है। ब्रिटिश नीति के अनुसार देव-दर्शन पर कोई कर नही लिया जाना चाहिए।

राज्यभूषण राजरत्न दानवीर सर सेठ हुकुमचन्दजी, इन्दौर—

इस पत्र द्वारा हम अपना लिखित विरोध भेजते है कि सिरोही राज्य की ओर से आबू पर्वत पर स्थित सुप्रसिद्ध जैन मन्दिरो पर जो टैक्स लगाया है वह साधारण धार्मिक स्वतन्त्रता मे बाधक है और एक कलक है इसका हटवाने का प्रबन्ध करना चाहिए।

सेठ राजमल लखीचन्द, जामनेर—

मेरी हार्दिक इच्छा है कि कान्फ्रेन्स के प्रयत्न सफल हो।

श्री पी सी मोघा, जम्मू-काश्मीर—

कान्फ्रेन्स के उद्देश्यो के सम्बन्ध मे मेरी हार्दिक सहानुभूति है, मुझे आशा है कि आपके नेतृत्व मे कान्फ्रेन्स जैन समाज के उत्थान और सगठन के लिए वास्तविक योजना बना सकेगी, साथ ही साथ देलवाडा मदिरो के दर्शनार्थियो पर से कर हटवाने मे सफल प्रयत्न होगी।

सेठ गुलाबचन्द सौंगिया बैकर, इन्दौर—

मैं समझता हूँ कि कान्फ्रेन्स ने महत्वपूर्ण समस्या के योग्य महत्वपूर्ण व्यक्ति को नेतृत्व के लिए चुना है, मुझे आशा है कि आप स्वय को इस दशा मे अवश्य ही सफल और विश्वसनीय सिद्ध करेगे। मेरी शुभ कामनाएँ आपके साथ है।

श्री विजयेन्द्र सूरी ग्वालियर—

देव—दर्शनो पर यह टैक्स अनुचित है साथ ही साथ हिन्दुओं और जैनो के लिए अन्यायपूर्ण। मैं आशा करता हूँ कि महाराजा सिरोही बुद्धिमत्तापूर्वक औचित्य की दृष्टि से अपने राजकोष की आय को इस धार्मिक टैक्स से न भरेंगे। मैं कान्फ्रेन्स की हार्दिक सफलता चाहता हूँ और जहाँ जाऊँगा उसके लिए संगठन और समर्थन करूँगा।

श्री मुनीवल्लभ विजयजी महाराज वरकाना तीर्थ—

ब्यावर में होने वाली आबू मंदिर टैक्स विरोधी कान्फ्रेन्स का मैं हृदय से समर्थन करता हूँ और उसकी हार्दिक सफलता चाहता हूँ। वास्तव मे यह टैक्स जैन समाज के लिए कलंक रूप है और इसके मिटाने का पूर्ण प्रयत्न आवश्यक है। इस सम्बन्ध मे मैं अपनी सेवाएँ देने को तैयार हूँ।

श्री विजयसिंह नाहर, कलकत्ता

कान्फ्रेन्स द्वारा टैक्सो के विरोध मे जबरदस्त निश्चय की आशा करता हूँ, शुभ कामनाओ के साथ।

श्री सुगनचन्दजी लुणावत, धामनगाँव, वरार—

आपके सभापतित्व मे कान्फ्रेन्स सफल होकर अपने उद्देश्य को प्राप्त करेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। कान्फ्रेन्स की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

प्रो० हीरालाल जैन अमरावती, मध्यप्रान्त—

आबू मन्दिर टैक्स के विरोध मे मैं पूर्णरूप से आपके साथ हूँ और इन अनुचित टैक्सो को जैन दर्शनार्थियो पर से हटाने के लिए हर प्रकार के उचित प्रयत्नो से काम लिया जाना चाहिए।

डाक्टर बूलचद जैन, पी एच डी. वनारस हिंदू यूनिवर्सिटी—

जिस उद्देश्य से आपने कान्फ्रेन्स का आयोजन किया है, उस प्रश्न का उठाया जाना अत्यन्त आवश्यक है। सिरोही द्वारा दर्शनार्थियो पर लगाये जाने वाले टैक्स अन्यायपूर्ण भार ही नही वरन् आपत्तिजनक है।

वीरपुत्र आनन्द सागरजी महाराज, किशनगढ राजपूताना—

आबू मंदिर टैक्स विरोधी कान्फ्रेन्स का हम स्वागत करते है। एक दीर्घ द्रष्टा की तरह विवेकपूर्ण कान्फ्रेन्स कदम भरेगी, ऐसा विश्वास है। हस्तगत कार्य सफल हो, यह हमारा शुभाशीर्वाद है।

सेठ रुघनाथमलजी वैंकर, हैदरावाद—

कान्फ्रेन्स की सफलता चाहता हूँ। सिरोही राज्य द्वारा लगाया गया कर अपमानपूर्ण है। अपने मौलिक अधिकार के लिए जैनो को विरोध करना चाहिए।

सेठ इन्दरमलजी हैदराबाद—

कान्फ्रेन्स की हार्दिक सफलता चाहते है।

श्री मोतीलालजी सिकन्दराबाद—

सिरोही राज्य द्वारा लगाये गये टैक्स अन्यायपूर्ण है। जैनियो को भरसक विरोध करना चाहिए, सफलता की कामनाओ के साथ।

श्रीमान् राजा दीनदयाल सिकन्दराबाद—

दिलवाडा के मन्दिरो के टैक्सो का जोरदार विरोध कीजिये। सभापति के समर्थ नेतृत्व मे हर प्रकार की सफलता की आशा करता हूँ।

सेठ परमानन्द के. कापडिया, बम्बई—

इस अवसर पर जैनो के सगठन को अमूल्य आवश्यकता है। मैं आपके कान्फ्रेन्स के प्रयत्नो की सफलता के लिए प्रार्थी हूँ।

सेठ गुलाबचन्दजी टोग्या, आनरेरी मजिस्ट्रेट, मथुरा—

कान्फ्रेन्स द्वारा आपने जो प्रश्न उठाया है वह अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक ऐसे समय मे जब कि भारत सरकार की यह स्पष्ट घोषणा है कि प्रत्येक भारतीय अपने अपने धर्मानुसार कार्य कर सकता है और उन्हे अपने तीर्थस्थान पर जाने का पूर्ण अधिकार है। ऐसी अवस्था मे भी सिरोही राज्य १६वी शताब्दी के स्वप्न देखता हुआ उन स्थानो पर जैन यात्रियो से टैक्स वसूल करता है, जो जैनियो के ही बनाये हुए है और जैनियो की ही सम्पत्ति है। ऐसे सार्वजनिक और दर्शनीय स्थानो पर किसी सरकार द्वारा टैक्स जारी करना तब उचित समझा जाता है जब कि वह टैक्स उन स्थानो की उन्नति एव प्रबन्धार्थ लगाया गया हो। केवल सार्वजनिक हितो मे खर्च किया जाता हो। किन्तु हम देखते है कि सिरोही सरकार यह कार्य केवल अपना कोष भरने के लिए कर रही है। सिरोही सरकार का कर्तव्य है कि इस टैक्स से यात्रियो को सर्वथा मुक्त कर दे।

हीराचन्दजी मन्त्री महावीर, परिषद, किशनगढ़—

महावीर जैन परिषद की ओर से हम आबू के टैक्सो के प्रयत्न के लिए कान्फ्रेन्स के सयोजक और सभापति लाला तनसुखरायजी को बधाई भेजते है। हम हर दशा मे सपरिषद् कान्फ्रेन्स के निर्णयो के साथ है।

ला० फतेहचदजी सेठी और हेमचदजी, अजमेर—

कान्फ्रेस की सफलता के लिए हार्दिक कामना करते है।

श्री सत्यभक्त पडित दरबारीलालजी वर्धा० सी० पी०—

मैं कान्फ्रेंस की सफलता चाहता हूँ। इस प्रकार का अन्यायपूर्ण टैक्स देशी राज्यो की नीति का कलक है। ईस्ट इडियन कम्पनी की लुटेरी नीति के इतिहास मे भी ऐसा कलक नही

दिखता। ये देशी राजा होते हुए भी पूरी लूट मचाते है। किसी धर्मस्थान के ठेकेदार बनकर कंजूस से कंजूस पडो को भी मात कर रहे हैं। उनकी यह नीति भ्रष्टता और क्षत्रियत्व के विरुद्ध होने से वर्णभ्रष्टता अत्यन्त निन्दनीय है। इन्हें अपना कहते हुए शर्म मालूम होती है। आप इसके लिए पूरी कोशिश करें।

सेठ पोषराजजी, सिकन्द्राबाद—

कान्फ्रेंस की हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ।

श्री बहादुरसिंहजी सिंघी, कलकत्ता—

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि ब्यावर मे जैनो की कान्फ्रेंस सिरोही राज्य द्वारा देलवारा के जैन मन्दिरो पर लगाए गए टैक्सो को हटवाने के लिए प्रयत्न करने जा रही है। यह और भी प्रसन्नता का विषय है कि आप उस कान्फ्रेंस का सभापतित्व करने जा रहे है। मैं कान्फ्रेंस की हार्दिक सफलता चाहता हूँ। इस सम्बन्ध मे पोलिटिकल एजेन्ट पर प्रभाव डाला जाय और उन्हें इन टैक्सो के औचित्य के सम्बन्ध मे विश्वस्त कराया जाय तो मेरी राय में समस्या आसानी से सुलझ सकती है। मैं आशा करता हूँ कि इस अवसर पर समस्त जैन समाज सगठित होकर सयुक्त रूप से मोर्चा बनाएगा।

श्री एस० आर० ढड्ढा सेक्रेटरी चैम्बर आफ कामर्स कलकत्ता—

आपने आबू के मदिर के टैक्सों को उचित ढग से उठाया है।

ला० अमोलकचदजी जैन, खडवा सी० पी०—

सिरोही राज्य के अन्याय के विरुद्ध आपका आन्दोलन स्तुत्य व सराहनीय है। इस आन्दोलन को जोरदार बनाने की जो भी योजना भेजें उसे मैं सक्रिय रूप देने को तैयार हूँ।

सेठ सुखदेव तुलाराम लाडनू—

कान्फ्रेंस के साथ हमारी पूर्ण सहानुभूति है।

श्री एम० वी० महाजन एडवोकेट जनरल सेक्रेटरी, आल इंडिया जैन एसोसिएशन अकोला—

मैं जैन समाज को धन्यवाद देना चाहूंगा कि उसने आबू के मंदिरों के टैक्सों के आन्दोलन के लिए आप जैसा नेता प्राप्त किया। लेकिन मैं आशा करता हूँ कि जब यह मामला एक बार उठाया गया है तो उसे बीच ही मे न छोड़ा जाएगा क्योकि इससे अपने उद्देश्य की सफलता मे धक्का ही नही लगता, वरन् मेरी दृष्टि से जैन समाज की इस देश में जो भी थोड़ी बहुत प्रतिष्ठा है वह भी खतरे मे पड़ सकती है। आशा है आप इस दिशा में गम्भीर और प्रभावशाली कदम उठाएँगे।

श्री अमरचन्द कोचर म्यु० मेम्बर फलौदी—

कान्फ्रेंस की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

श्री जगन्नाथजी, नाहरपट्टी पजाब---

कान्फ्रेस की सफलता चाहता हूँ। आपके निर्णय के अनुसार हर प्रकार की सेवाओ के लिए प्रस्तुत हूँ।

श्री कपूरचदजी पाटनी, जयपुर--

आशा करता हूँ आपके नेतृत्व में कान्फ्रेंस निश्चित प्रोग्राम बनाकर अपने उद्देश्य को प्राप्त करने मे सफल होगी।

श्री उग्रसेनजी, एम० ए० एल-एल० बी०, मथुरा-

आधुनिक युग मे जब एकता का राग अलापा जा रहा है हम एक वीर प्रभु के अनुयाई होते हुए एकता के सूत्र मे क्यो न बँधे। ऐसी कान्फ्रेस ही एकता का एक मात्र साधन और उपाय है। अनावश्यक भेदभाव को मिटाएँ। भगवान वीर आपको अपने कार्य के लिए बल प्रदान करें।

श्री नन्दलालजी, बीना सिघई-

सिरोही राज्य द्वारा लगाए गए आबू मन्दिरो के टैक्सो के सम्बन्ध मे उचित उपाय बतलाकर हमे आदेश दीजिए। हमारा सहयोग आपके हाथ मे है।

श्री भगवानदासजी सर्राफ, ललितपुर-

यह कार्य अति सराहनीय है, आप अनुचित टैक्स हटवाने का पूर्ण प्रयत्न अवश्य ही कीजिए और मेरे योग्य सेवा कार्य भेजे।

श्री रामचन्द्रजी खिन्दका, जयपुर सिटी-

मेरी आपकी कान्फ्रेंस के साथ पूर्ण सहानुभूति है। और मैं इसकी हृदय से सफलता चाहता हूँ।

श्री प० खुशालदासजी, बम्बई-

कान्फ्रेंस का उद्देश्य न केवल प्रशसनीय है वरन् सहयोग्य भी है। टैक्स का विरोध प्रत्येक जैन को करना चाहिए। आपके प्रयत्नो की मैं हर तरह से सफलता चाहता हूँ।

श्री वृजभूषणजी वकील, मथुरा-

मेरी हार्दिक इच्छा है कि जैन समाज मात्र मिलकर आगे ऐसे ही धर्मवर्धक कार्यकर्ता रहे। मैं अपनी सेवाएँ आपको भेट करता हूँ।

श्री रोशनलालजी जैन, मत्री जैनमण्डल, मथुरा-

सिरोही राज्य की ओर से जैन मन्दिरो के दर्शनार्थियो पर जो टैक्स लगा हुआ है वह यात्रियो पर निरर्थक प्रहार है। यह हम सब के लिए खेद का विषय है। इस टैक्स के विरोध के लिए सम्मेलन की जो आयोजना की जा सकती है वह अत्यन्त शुभ है। आप अपने उद्देश्यो को प्राप्त करने मे सफल हो, यही हमारी हार्दिक शुभकामना है।

श्री अक्षयकुमार जैन, बी० ए०—

मेरी शुभ कामना कान्फ्रेंस के साथ है। इस समय कान्फ्रेंस को दिखला देना चाहिए कि जैन समाज जीवित है और हमे हर प्रकार के सकटो से मुकाबिले के लिए तैयार रहना चाहिए। आर्य सत्याग्रह का उदाहरण हमारे सामने है जब कि निजाम बहादुर को झुकना पड़ा था। इस दिशा मे हमे पहले अधिकारियो से मिलकर मामला तय करना चाहिए और अगर इससे उद्देश्य सिद्धि न हो तो हमे सबसे सुगम कदम उठाना चाहिए।

सेठ सागरमल जैन, कलकत्ता—

कान्फ्रेंस के उद्देश्यो की सिद्धि के लिए हर प्रकार की सेवा करने को तैयार हूँ।

मुनि श्री ज्ञानसुन्दरजी महाराज—

आबू मन्दिरो के टैक्स के विरोध मे आपका प्रयास स्तुत्य है और मैं हृदय से सफलता चाहता हूँ। इतना ध्यान अवश्य रखिए कि जैन समाज में आरम्भ में 'सूरा' वाली कहावत अक्सर चरितार्थ होती देखी गई है। पहले तो हम लोग बहुत जोश दिखाते है, पर बाद मे पानी के बुदबुदे की तरह बैठ जाते हैं। पर मुझे आशा है कि आप लोग इस नियम के अपवाद है और आपके प्रयत्न से यह कार्य सफल होगा।

श्री खेमचन्दजी सिंघी, भू० पू० रेवेन्यू कमिश्नर, सिरोही—

मैं आशा करता हूँ कि इस मामले को कान्फ्रेंस द्वारा उचित ढंग से सफल बनाया जाएगा। इस समय अत्यन्त आवश्यकता है कि जैनो और हिन्दुओ पर समान रूप से प्रभाव डालने वाला यह अनुचित कर समाप्त होना चाहिए। इस कान्फ्रेंस द्वारा किए जाने वाला निश्चय सभापति द्वारा महाराजा साहिब सिरोही के पास भेजा जाना चाहिए। और इस सम्बन्ध में प्रतिष्ठित जैनो और हिन्दुओ का प्रतिनिधिमण्डल महाराजा साहिब से मिले। आपकी हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ।

श्री गुलाबचंदजी ढड्ढा

आपकी कान्फ्रेंस की हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ।

श्री गुलाबचदजी जैन, दिल्ली—

सुप्रसिद्ध आबू के जैन मन्दिरो पर लगे हुए अनुचित करो को हटाने के आपके पुनीत प्रयत्न की हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ। और आशा करता हूँ कि इस उद्देश्य को सफल बनाने के लिए समस्त भारतवर्ष के जैन सगठित होकर मोर्चा लेंगे।

सेठ मोहनलाल हेमचदजी, बम्बई—

मुझे आपके प्रयत्नो के साथ पूरी सहानुभूति है। सिरोही दरबार के साथ प्रयत्न कीजिए कि वह दर्शनार्थियो की असुविधा और कठिनाइयो को बढाने वाले इस कर को हटा लें।

श्री फकीरचंद जैन, सिरोही—

सिरोही राज्य ने आबू देलवाड़ा के मन्दिरो के प्रति जो नीति अख्तियार की है वह

भारत के जैन जाति पर कलक है और जैन जाति के प्रति अपमानजनक है। आप इसके लिए उचित मार्ग ढूढे और इसे सदा के लिए नेस्तनाबूद कराने मे सहयोग दे। कान्फ्रेंस जो भी नीति ग्रहण करेगी उसमे मेरी सहमति है।

बाबूमल जी शाहजी, सिरोही–

मैं आशा करता हूँ कि उचित अधिकारी आपकी बातो को मान देकर प्रतिबन्ध हटाने मे अपनी उदारता दिखलाएँगे। मै सम्मेलन की पूर्ण सफलता चाहता हूँ।

श्री बाबूमलजी कालन्द्री—

आबू जैसे प्रख्यात मन्दिरो के लिए सिरोही सरकार ने यह कलकी टैक्स लगाया है। यह बडे शर्म की बात है। मैं आशा करता हूँ कि कान्फ्रेस इस टैक्स को हटाने के लिए भरसक प्रयत्न करेगी। और कान्फ्रेस की सफलता चाहता हूँ।

श्री चुन्नीलाल जे० शाह, बरलुट सिरोही स्टेट–

आबू मन्दिर के टैक्सो को हटवाने के लिए अगरचे कान्फ्रेंस की राय में सत्याग्रह करना अनिवार्य समझा जाए तो सत्याग्रहियो की नामावली मे सर्वप्रथम मेरा नाम दर्ज कर अनुग्रहीत कीजिएगा। कान्फ्रेस की हरएक कार्यवाही मे मेरा हार्दिक सहयोग है।

श्री ताराचंदजी दोसी, सिरोही–

सिरोही राज्य द्वारा आबू मन्दिरो के दर्शनार्थियो से जो मुण्डका कर लिया जाता है वह अत्यन्त निन्दनीय है। और जिन मन्दिरो पर इनके सस्थापको ने करोडो रुपये लगाए है और अखण्ड निधि छोड गए है उसको पूर्णतया न सम्हाल कर टैक्स लगा देना अपमानजनक बात है। उसी को हटाने के लिए आपने जो कदम कान्फ्रेंस के द्वारा बढाया है वह अत्यन्त सराहनीय है। ससार के मुख से एक ही स्वर निकला है कि धार्मिक स्वतन्त्रता पर ऐसे कर कलक है।

श्री बिशनचदजी जैन, मत्री जैन मित्रमण्डल, दिल्ली–

इस कार्य को सफल बनाने के लिए तन मन और धन से कोशिश करनी चाहिए।

श्री देवराजजी सिंगवी, सोजत सिटी–

मै स्वय इस समस्या पर सोचता रहा हूँ। अब आपकी कान्फ्रेस इस दशा मे प्रयत्न करने जा रही है। यह जानकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई, मैं आपकी हर प्रकार से सेवा करने के लिए तैयार हूँ।

श्री निवास जैन सघ नीबाज, मारवाड–

सघ आबू के जैन मन्दिरो पर सिरोही राज्य द्वारा लगाए गए करो को अनुचित समझता है और प्रार्थना करता है कि सिरोही राज्य इन टैक्सो को जल्दी हटा कर यह कलक दूर करे। कान्फ्रेंस के साथ सघ का पूर्ण सहयोग है।

श्री कस्तूरचन्दजी जैन, अकोला--

आबू के मन्दिरो का टैक्स बिलकुल बन्द होना चाहिए। इसका पूरा आन्दोलन आप करेंगे। अगर इस दशा मे सत्याग्रह हो तो मेरा नाम सबसे पहले लिखिए।

श्री प्रतापमलजी सेठिया, मदसौर--

आपकी कान्फ्रेंस की सफलता चाहता हूँ।

श्री धनराजजी तातेड़, सिरोही--

आबू के मन्दिरो के ऊपर टैक्स धर्म के ऊपर अत्याचार के समान है और यह खासतौर से हिन्दुस्तानी के लिए है। ऐसे टैक्स के विरोध में बडा भारी आन्दोलन चलाना हम जैनो का ही सिर्फ धर्म नही बल्कि हर एक हिन्दुस्तानी का फर्ज है। उम्मेद है कि कान्फ्रेंस आन्दोलन के मङ्गल मुहूर्त के समान होगी।

श्री कुन्दनलालजी जैन, भरतपुर--

कान्फ्रेंस की सफलता के लिए कामना करता हूँ और कान्फ्रेंस द्वारा बतलाई गई किसी भी प्रकार की सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ।

श्री पण्डित शोभाचन्द्रजी भारिल्ल--

दुःख है कि मै कान्फ्रेंस के समय वहा उपस्थित नही रह सकूगा। कान्फ्रेंस के प्रति मेरी हार्दिक सहानुभूति है। इस कार्य को ऐसे लोगो ने उठाया है कि जिसकी सफलता मे कोई सन्देह नही किया जा सकता। जैन समाज का प्रथम धर्म है कि वे इस कलक को हटाने मे अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा दे।

श्री चन्दनमलजी, कोचर आष्टा--

मुझे दुःख है कि मै कान्फ्रेंस मे सम्मलित नही हो सकूगा। सिरोही स्टेट द्वारा लगाए गए कलकित टैक्स को हटाने-सम्बन्धी हर आन्दोलन में समाज आपका पूरा साथ दे, यही प्रार्थना है।

आबू टैक्सविरोधी आन्दोलन चलता रहा। फिर १६४२ मे राष्ट्रीय आन्दोलन के कारण बन्द करना पडा। देश के स्वतत्र होने पर महारानी सिरोही ने जनता की आवाज पर ध्यान दिया और इस कलक को सदा के लिए धो डाला। उन्होने घोषणा की और सदा के लिए इसे हटा दिया। इसका विस्तृत विवरण अगले पृष्ठों मे विस्तार से दिया है।

लालाजी अस्वस्थ होने पर भी सामाजिक कार्यों मे रुचि रखते रहे और शक्ति-अनुसार सामाजिक और राष्ट्रीय कार्यो मे अग्रसर होते रहे।

शाकाहारी आन्दोलन और अध्यात्म समाज की स्थापना उसी समय उन्होंने की जिसका विवरण अगले पृष्ठो पर दिया है।

सन् ५२-५३ मे यू० पी० में जोर की बाढ आई। बनारस के स्याद्वाद महाविद्यालय, जोकि पूज्य वर्णी गणेशप्रसादजी की देन है, बाढ से उसकी बिल्डिंग खतरे मे आ गई। ला० राजकृष्णजी जैन ने बताया कि ये कार्य आपके मित्र कु वरसैन के हाथ में है। लालाजी कु वरसैनजी से मिले। उन्होने पूरी सहायता करने का विश्वास दिलाया और उन्होने एक तिथि दी कि हम लोग उस दिन बनारस पहुँचे वह भी वही होगे। पूज्य वर्णीजी को जब यह मालूम हुआ कि तनसुखराय स्याद्वाद विद्यालय के लिए इतना प्रयत्न कर रहे है तो वह बहुत प्रसन्न हुए और आशीर्वाद के पत्र भेजे। श्री कु वरसैनजी को पूज्य वर्णीजी के दर्शनो के लिए ले गये। श्री कु वरसैनजी ने पूज्य वर्णीजी को आहार भी दिया। पूज्य वर्णीजी बहुत प्रसन्न हुए। श्री कु वरसैनजी के द्वारा स्याद्वाद महाविद्यालय के बिल्डिंग बचाने में बहुत मदद मिली। वर्णीजी की वैसे तो कृपा हर एक प्राणीमात्र पर है परन्तु लालाजी पर इतने प्रसन्न हुए कि समय-समय पर आशीर्वाद और धर्म पर आरूढ रहने के पत्र आते रहते हैं। उनकी बड़ी दया-दृष्टि रही।

तत्पश्चात् लालाजी अस्वस्थ हो गये और बीमार रहने लगे। परन्तु अपनी बीमारी की अवस्था मे भी सामाजिक जागृति उत्पन्न करने के लिए वे लेख लिखते रहते। अत समय तक उन्होने अनेक लेख लिखे।

अत मे ता० १४ जुलाई १९६२ को धर्मध्यानपूर्वक ६९ वर्ष की आयु मे आपका स्वर्गवास हो गया। आपके अभाव से जैन जाति का एक ज्योतिर्मय प्रकाशस्तम्भ अस्त हो गया। उनके सम्बन्ध मे जब ग्रथ निकालने का विचार हुआ तब सभी तरफ से सहयोग का वचन मिला और ग्रथ तैयार हो सका। आप देखेंगे उनका कार्य-क्षेत्र कितना व्यापक था। यदि उनके इस ग्रथ से नई पीढी मे उत्साह का सचार हुआ तो हम अपना परिश्रम सफल समझेंगे।

अनमोल रत्न

श्री प्रकाशचन्द टोंग्या

एम ए, बी. कॉम, एल-एल. बी., इन्दौर

स्व० लाला तनसुखराय जैन के निधन से समाज ने अनमोल समाज रत्न खो दिया। मैं उनका नाम कई वर्षो से सुनता रहता था। वे लगनशील कार्यकर्ता थे।

मुझे याद आता है कि अ० भा० दि० जैन परिषद् के प्रचार हेतु एक डेप्यूटेशन लेकर वे इन्दौर आए थे। उस समय उनके दर्शनो का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था। श्री अ० दि० जैन मिशन के कार्यो मे उन्हे रुचि रहती थी—उसके प्रचार एव प्रसार से वे प्रसन्न थे।

आप उनकी स्मृति मे स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित करने जा रहे है—यह स्मृति ग्रन्थ कार्यकर्ताओ के लिए प्रकाशस्तम्भ का कार्य करेगा। मै इस स्मृति-ग्रन्थ के प्रकाशन की सफलता की कामना के साथ साथ उन्हे अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

लालाजी की छोटी पुत्री स्वदेश कुमारी अपने पति के साथ
श्री अरिदमन कुमार जी
इंजीनियर लघु सिंचाई योजना उत्तर प्रदेश

ऊपर— सिद्धचक्र के पाठ के अवसर पर, परिवार सहित

नीचे— लालाजी अपनी धर्मपत्नी के साथ

धर्मपत्नी की दृष्टि में

श्रीमती अशर्फी देवी, धर्मपत्नी
कर्मवीर ला० तनसुखरायजी जैन

[कुछ मनुष्यो के स्वभाव मे इस प्रकार की आदत होती है कि जिन लोगो के साथ उन्हे रहना पडता है उनके प्रति दृढता और कर्कशता का व्यवहार करते है और दूसरो के साथ दिखाने के लिए दयालुता का, इस तरह व्यक्ति की पूर्ण जाँच नही हो पाती। परन्तु जो व्यक्ति घर और बाहर एकसा सद्-व्यवहार दिखाते हैं, दूसरो के साथ-साथ, निज परिवार वालो के प्रति भी करुणा और वात्सल्य का स्रोत बहाते है वे प्रशसनीय है। प्रायः देखा जाता है कि कुछ व्यक्तियो के साथ सीमित समय अच्छी तरह व्यतीत हो जाता है परन्तु अधिक समय रहने से कटुता बढ़ जाती है। लेकिन श्रेष्ठ नर-रत्न वे है जिनके साथ अधिक से अधिक समय रहने पर भी स्नेह की चतुर्गुणी वृद्धि होती है। उनकी आत्मीयता के कारण वात्सल्य और सौहार्द परस्पर बढता ही जाता है। लालाजी ऐसे ही सहृदय और दयालु नररत्न थे। उनके प्रति उनकी श्रीमतीजी ने श्रद्धाजलि अर्पित की है वह इस बात का प्रतीक है कि उनका गृहस्थ जीवन कितना सुखी और आनन्दमय था। उनके हृदय मे दया और परोपकार की नदी बहती थी।]

पूजनीय प्राणनाथ!

आपके चरणो मे श्रद्धाजलि अर्पित करती हूँ। आपकी परम पवित्र महान् आत्मा को उत्तम गति प्राप्त हो ऐसी श्री जिनेन्द्र भगवान् से मेरी विनम्र प्रार्थना है।

उन महान् सज्जन पुरुष की पर-उपकारी भावना का कुछ थोडा सा वर्णन करती हूँ। यू तो उनका जीवन पर-उपकार मे बीता कहा तक गिनती गिनाऊ। लेकिन कुछ मोटी-मोटी घटनाएँ उनके जीवन मे घटी है वे बूढे, बच्चे और स्त्री इन तीनो की रक्षा करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। जो भी सहायता बनती, करते रहते। कभी शब्दो के द्वारा प्रकट नही करते थे। जब बच्चे पढ़-लिखकर अपने काम मे लग जाते तब बच्चे आकर आभार मानते तो खुश होते और कहते—भगवान् सबकी रक्षा करते है। मैं कौन करने वाला।

एक बार की बात है। एक लडका आया। उसकी बहिन की शादी थी। उसे रुपयो की आवश्यकता पडी। उसे उन्होने तत्काल रुपये दे दिये लेकिन वापिस लेने का भाव नहीं था। लेने वाला भी स्वाभिमानी था। जब उसके पास रुपये देने को हो गये तो एक चिट्ठी के साथ ४०० रु० लिफाफे मे बन्द करके घर पर दे गया और कह गया कि ये चिट्ठी लालाजी को ही देना। आकर जब उन्होने खोली तो रुपये देखे तो खुश होकर बोले किसी का काम नहीं अटकता मैने तो मना किया था कि बेटा तुम देने की कोशिश मत करना।

एक बार किसी काम के वास्ते रुपयो की जरूरत पडी। ५००० रु० मगवाया। किसी अपने भाई ने आकर अपनी मजबूरी बतलाई कि ५०० रु० चाहिए। अपने मन मे क्या सोचते है

है ५००० रु० पूरा नही होगा इसका तो भला करो तत्काल ५०० रु० दे दिये। उनके मन में हर समय यही विचार रहता था कि अपने देश की, धर्म की, जाति की सच्चे चरित्र की और सद्भावना की वृद्धि हो।

किसी समय पर कोई आपत्ति आती फिर तो अपनी जान पर खेलना अपना कर्त्तव्य समझते थे। तन, मन, धन से कुछ उठाकर नही रखते थे। अपनी ताकत से बाहर कोशिश करते थे। किसी ने कहा मेरे घर मे आग लग गई। आपने अपने पहनने के कपडे और घर का जो सामान चाहिए था सब उठाकर दे दिया। छात्रवृत्ति छोटी जाति वालो को दिया करते थे और कहा करते थे कि इनका उठाना परम धर्म है। उठे को क्या उठाना गिरे को उठाना ही मनुष्य जन्म की सफलता है।

दरिद्रान भर कौन्तेय। मा पृच्छेश्वरे धन,
व्याधितस्यौषध पथ्य नीरुजस्य किमौषधै।

हे कौन्तेय (युधिष्ठिर) दरिद्रो की सेवा कर, धनियो की सेवा करने से कुछ लाभ नही, रोगियो को औषधि की आवश्यकता है। निरोगी पुरुष को औषधि देने से कोई लाभ नही।

इस बात का मेरे हृदय पर अद्भुत प्रभाव पडा। ऐसे परोपकारी पुरुष को बार-बार प्रणाम हो।

पारिवारिक परिचय

मेरे दो पुत्रिया हुई। बडी पुत्री विद्यावती श्री लालचदजी को करनाल व्याही गई, जो आजकल रक्षा मत्रालय मे कार्य करते है। दूसरी छोटी पुत्री स्वदेशरानी श्री अरिदमनकुमारजी को व्याही गई जो एक्जीक्यूटिव इजीनियर हैं। इस प्रकार दोनो ही कन्यायें सुखी है।

अन्तिम समय

लडकियो के लिए बाप के बाद बाद क्या बाकी रह गया ? पीहर मे कभी जरा-सी तबियत खराब होती तो लडकी तिलमिला उठती थी। मगर उस वक्त तक सेवा मे लगी रही हाय तक नही की। हम सब तो वही थे। लेकिन वह प्रभावशाली आत्मा बदल चुकी थी। जब कभी तबियत घबरा जाती तो उनके छोटे भाई की पत्नी जिसके पति को मरे ३० साल हो गए उसको अपनी लडकियो के बराबर रखा। कभी किसी तरह कष्ट नही होने दिया। उनका भाव यह रहता था इसे मेरे मरने के बाद भी किसी प्रकार का दु:ख न हो। बेचारी परदा करती थी फिर भी पास बुलवाकर बिठला लेते। कहते यह मेरी तीसरी बेटी है। क्योकि उसके कोई नही था। न पीहर मे कोई था। बेचारी कहने लगी मैने पति का दु ख आज जाना। सो उस समय तो ऐसे निर्मोही हो गए कि उसके लिए भी कुछ नही कहा।

लालाजी के सबसे छोटे भाई को गुजरे १७ साल होगए। उन्होने अपने पीछे तीन लडकिया व एक लडका जो ढाई साल का था, छोडा। लडकिया बडी थी। उनकी शादी का भार इनके ही ऊपर था। उसको भी किसी प्रकार का कष्ट नही होने दिया। लडकियो की अच्छे घर

शादी की वे सब सुखी है। सब आराम मे है। मुझे तो वेफिक्र कर गए। मेरी भगवान से हाथ जोड़ कर प्रार्थना है कि उनकी महान आत्मा को शान्ति दे।

समाधिमरण पूर्वक स्वर्गवास–

अन्तिम समय के ७ बजे थे। धर्म पढना शुरू किया। जब तक प्राण निकले पढते ही रहे। औरो से कहते तुम भी पढो। ध्यान लगाए बैठे रहे। जब तीन बजे तो और भी सचेत होकर आसन लगाकर सामने महावीर स्वामी का फोटो था। उसपर दृष्टि लगा ली। पद्मासन लगाकर बैठ गए। जल्दी जल्दी णमोकार मत्र पढने लगे जैसे समय कम हो जाय पूरा करना हो। प्राणान्त के समय हिचकी आना, कठ मे कफ बोलना, आखो मे आसू आना, किसी से मोह, किसी से कहना-सुनना, आदि उस समय की क्रियाएँ कुछ भी नही हुई। आत्मा के ध्यान मे मग्न। चेहरे पर अपूर्व तेज झलक रहा था। ऐसी उत्तम दशा उन्ही पुरुषो की होती है जिनका जीवन दूसरो के लिए होता है। यह उनके पुण्य का उदय कहिए या शुभ भावना का फल कहिए। स्त्री के लिए पति का अन्त समय देखकर कितनी भी धीरज वाली स्त्री हो, घबरा उठती है। लेकिन उनकी पुण्य प्रकृति इतनी प्रबल थी कि मैं किसी को हाय तक नही करने दूं। रोने का समय बहुत है। ध्यान न डिग जाय इसलिए किसी को चूं तक नही करने दी।

अपना अन्तिम समय धर्मध्यान और सल्लेखनापूर्वक व्यतीत किया।
आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने कहा है कि—

> अन्त. क्रियाधिकरण, तप फलं सकलदर्शिन. स्तुवते,
> तस्माद्यावद्विभव, समाधिमरणे प्रयतितव्यम्।

सर्वज्ञदेव सन्यास धारण करने को तप का फल कहते है। इसलिए जब तक शरीररूपी ऐश्वर्य हो तब तक यथाशक्ति समाधिमरण मे प्रकृष्ट यत्न करना चाहिए।

उनके जीवन को धन्य है जो उन्होने समाधिपूर्वक स्वर्ग को प्राप्त किया है। मैं श्री जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करती हूँ कि उनकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हो।

× × × ×

सुलभ मार्गी

श्रीमती सुशीलादेवी
धर्मपत्नी रायबहादुर बा० सुलतानसिंहजी जैन
कश्मीरी गेट, दिल्ली

लाला तनसुखरायजी जैन समाज के एक ऐसे समाज-सेवक हुए जिनमे लोकसेवा की भावना कूट-कूटकर भरी हुई थी। देशप्रेम से उनका हृदय लबालब भरा था। राष्ट्रीय और धार्मिक कार्यो मे सदैव तत्पर रहते थे। जैन धर्म की सेवा के लिए वे ऐसा कार्यक्रम बनाना चाहते थे जिससे धर्म का मार्ग सबके लिये सुलभ हो जाए। उन्होने समाज की बडी सेवा की।

× × × ×

उत्साही और सच्ची लगन के व्यक्ति

श्री लालचंदजी सेठी
मालिक विनोद मिल्स, उज्जैन

श्री तनसुखराय स्मृति-ग्रथ के सम्बन्ध मे पत्र आपका मिला। यह जानकर बडी प्रसन्नता हुई कि आप समाज-सेवी लाला तनसुखराय जैन की स्मृति मे, एक स्मृति-ग्रथ प्रकाशित कर रहे है और इस कार्य मे आप सक्रिय भाग ले रहे हैं। वास्तव मे लाला तनसुखरायजी एक बडे ही उत्साही और सच्ची लगन के व्यक्ति थे। मेरा उनसे अच्छा परिचय रहा है।

मै कोई खास सम्बन्धित विषय लेकर तो कुछ लिख नही सकता, किन्तु मेरा जो व्यक्तिगत सम्बन्ध उनसे रहा है उस सम्बन्ध मे अवश्य ही कुछ लिखकर भेज सकता हू।

माननीय सेठीजी जैन समाज के समाज-सुधारक, गणमान्य नेता थे। खेद है कि उनका स्वर्गवास हो गया। उन्होने अस्वस्थ अवस्था मे ही लालाजी के सम्बन्ध मे चार पक्तिया लिखकर भिजवा दी। हम आशा लगाये थे क्योकि उन्होने लिखा था तबियत ठीक होते ही लिखकर आपके पास भिजवा दूगा। परन्तु खेद है ऐसे नेता का असमय मे ही वियोग हो गया। हम जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करते है कि स्वर्गीय महान् आत्मा को शाति प्राप्त हो और कुटुम्बियो को इस सकट के समय मे धैर्य धारण करने की शक्ति प्राप्त हो।

एक मास से मेरा स्वास्थ्य अच्छा न होने से मै डाक्टरो के मशवरे के अनुसार विश्राम ले रहा हूँ, सो तबियत ठीक होते ही लिखकर आपके पास भिजवा दूँगा।

मैं आपके इस कार्य मे पूर्ण सफलता चाहता हू।

दीपक के समान प्रकाशमय

श्री महावीर प्रसाद, एडवोकेट
हिसार

भाई साहब कुटुम्ब और समाज के प्रति कितना काम करते थे। कितने उनके सरल परिणाम थे। समाज-उद्धार की उनकी बडी लगन एक दीपक के समान थी। उनका मन सदा सेवा के लिए तडपता रहता था। कभी देश-सेवा तो कभी समाज-सेवा। सच पूछो तो उनका जीवन सेवा के लिए निर्माण किया गया था। वे हमारे परिवार मे एक प्रकाशमान ज्योति थे।

वे धन्य हैं

श्री जियालाल जैन
प्रेसीडेन्ट दि० जैन कालिज सोसायटी, बड़ौत (मेरठ)

यही जीने का मकसद था, यही थी आरज़ू उनकी।
कि गर निकले तो, मुल्को-कौम की खिदमत में दम निकले ।।

उपरोक्त शब्द अक्षरशः ला० तनसुखराय जैन के सम्बन्ध मे घटित होते है। उन्होंने अपने जीवन को मुल्क और कौम की खिदमत मे लगाया। लालाजी ने रोहतक से पजाब प्रात की काग्रेस पार्टी मे बड़ा पार्ट अदा किया। वे निडर, निर्भीक बनकर मैदान में आये। राष्ट्र की स्वतन्त्रता की खातिर वे कारावास भी जाने से न घबराये। जनता ने उन्हे पूर्ण सम्मान की दृष्टि से देखा। राष्ट्रीय-काग्रेस मे वे ऊचे से ऊचे पदो पर आसीन हुए। देश की आजादी के साथ-साथ लालाजी ने जैन समाज की महान् सेवा की है। धर्म के प्रचार-प्रसार मे उन्होने जी-जान की बाजी लगायी। वे दि० जैन परिषद् के प्रधान तथा प्रधान-मत्री पद पर उम्र भर सुशोभित रहे। वे दि० जैन परिषद् के महारथी थे, जिसके द्वारा उन्होने बडे-बडे सम्मेलन बुलाए। इन सम्मेलनो से समाज मे नवीन जागृति का अनूठा स्रोत उद्भूत हुआ। समयानुकूल नवीन तथा आवश्यक परिवर्तनो की ओर उनका ध्यान सतत् रहा। उन्होने हस्तनागपुरजी आदि तीर्थस्थानो पर विशाल जैन-सम्मेलन बुलाये, जिनमे अनेक सामयिक एव परम उपयोगी प्रस्ताव समाज के सामने आये, जिनमे से विशेपकर—१ स्त्री-पूजा-प्रक्षाल, २ मरण-भोज कुप्रथा का निपेध, ३. दस्सा पूजाधिकार, मे बढार-बन्दी, ५. दहेज-दिखावा बन्द। उन्होने मीणा-जाति को भी जैन-धर्म मे दीक्षित कर लेने का प्रस्ताव समाज के सामने रखा था। दिगम्बर, श्वेताम्बर तथा स्थानकवासी साम्प्रदायिकता को भी वे जैन समाज तथा जैन-धर्म के विकास मे हानिकर समझते रहे। इन तीनो सम्प्रदायो के एकीकरण का प्रस्ताव भी उनका उपयोगी प्रस्ताव था। उन्होने महगाँव-काण्ड तथा आबू-मदिर काण्ड को एक सेनानी की भाँति डटकर लडा। उसमे वे विजयी हुए। निस्सन्देह इससे समाज की प्रतिष्ठा मे महानता आई। उन्होने दि० जैन इण्टर कालेज, बड़ौत की आधार-शिला का शिलान्यास किया। बहुत सारे छात्र प्रति वर्ष इस सस्था से प्रशिक्षण प्राप्त करते है। ऐसी उपयोगी सस्थाओ की समाज तथा देश को महान् आवश्यकता है। मुझे याद है कि लालाजी ने जब भी हमे आवश्यकता पडी तभी हमारे कालिज की सहायता की। इस अवसर पर मै उनकी सुयोग्य सह-धर्मिणी श्रीमती अशर्फीदेवीजी की उदारता की भी प्रशसा करूंगा। उन्होंने अपने को अपने दिवगत पति के प्रति परम श्रद्धान्वित होने का एक प्रमाण सिद्ध कर दिया है। जहाँ लालाजी ने अपने कर-कमलो से बड़ौत जैन इन्टर कालेज की आधारशिला की स्थापना की थी—ठीक, उसी के सामने बगल मे इन्होंने भी लालाजी के नाम को सदैव-सदैव अमर रखने के लिए एक विशाल कमरे का निर्माण कॉलिज मे करा दिया है। इसलिये.—"हम तो उन्हे मानें कि भर दे सागरे हर खासो आम" वाली किवदन्ती इन लोगो पर घटित होती है। इन्होने जीवन का लक्ष्य मात्र सेवा-भाव बनाकर रखा है। वास्तव मे ऐसे लोगो का जीवन-काल भावी पीढ़ियो के लिए मार्ग-दर्शक बनकर रहता है। वे धन्य है। भगवान् महावीर स्वामी से प्रार्थना करता हू कि लालाजी की आत्मा को शान्ति तथा उन्हे सद्गति प्रदान करें।

सहनशीलता और दूरदर्शिता के आदर्श

श्री उग्रसेन जैन, एम ए., एल-एल बी.
रेलवे रोड, रोहतक

आपका पत्र मिला, समाचार जाना, आभारी हू। मैं अस्वस्थ रहता हू, आंख की विनाई काम नही करती, अत मैंने सब सस्थाओ से प्राय सम्बन्ध विच्छेद कर लिया है।

भाई तनसुखरायजी के सम्बन्ध मे क्या लिखा जाए वे एक उत्साही, साहसी और कर्मठ कार्यकर्ता थे। परिषद् की उन्नति के लिए उनमे बडी लगन थी, वे सेवाभावी कार्यकर्ता थे। महगाँव काड मे भी वे प्रमुख कार्यकर्ता थे। विरोधी परिस्थितियो मे भी साहस और चतुराई के साथ परिषद् के शानदार अधिवेशनो को सफलता के साथ कराने मे उनका अधिक सहयोग रहा है। कई अधिवेशनो मे विरोधी दल से प्रेम के साथ टक्कर लेने मे वे पीछे नही हटे। अपनी सहनशीलता और गभीरता तथा दूरदर्शिता के कारण उन्होने जटिल से जटिल परिस्थिति को सभाला और परिषद् के अधिवेशनो को सफल बनाया।

सच्चे देशभक्त

बहुश्रुत विद्वान् श्री वासुदेवशरण
अग्रवाल

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई कि श्री तनसुखराय जैन की स्मृति मे एक ग्रथ प्रकाशित किया जा रहा है। मैं जब नई दिल्ली के राष्ट्रीय सग्रहालय मे अध्यक्ष का कार्य कर रहा था तब श्री तनसुखरायजी से मेरा परिचय हुआ। मैं उनके प्रभावशाली व्यक्तित्व से प्रभावित हुआ। उनके हृदय मे समाज-सेवा का बहुत अधिक उत्साह था। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। वे जहा कही अभाव और दु'ख देखते, उसके निवारण के लिए प्रयत्नशील हो उठते। मुझे आज तक स्मरण है कि किस प्रकार उन्होने अग्रवाल जाति के उत्थान सम्बन्धी आन्दोलन के अनेक सूत्रो को अपने व्यक्तित्व मे समेट लिया था। उनका स्वप्न था कि अग्रजाति के प्राचीन स्थान अग्रोहा का पुनरुद्धार करे। इसके लिए उन्होने अग्रोहा मे अखिल भारतीय अग्रोहा सम्मेलन का वार्षिक अधिवेशन किया और उसमे देश के अनेक नेताओ को दूर-दूर से एकत्र किया। उन्ही की प्रेरणा से मैंने उस सम्मेलन का सभापतित्व स्वीकार किया और अग्रोहे की यात्रा की। अग्रोहे का पुनरुद्धार श्री तनसुखरायजी का सच्चा कीर्ति-स्तम्भ होगा। उनकी दृष्टि मे देश-सेवा और समाज-सेवा परस्पर अविरोधिनी थी। एक सच्चे जैन, सच्चे अग्रवाल और सच्चे देशसेवक और मानवता प्रेमी व्यक्ति का स्मरण अवश्य ही सबके लिए कल्याणप्रद होगा। उनके स्मृति-ग्रथ का यही सन्देश-सूत्र है।

अपना जमाना आप बनाते हैं अहले-दिल

श्री देवेन्द्र कुमार जैन
मैनेजर दि० जैन कालिज (बड़ौत) मेरठ

जैन समाचार-पत्रो द्वारा तथा प्रकाशित विज्ञप्ति से यह जानकर हर्ष हुआ कि ला० तनसुखरायजी के सम्बन्ध मे जैन समाज की ओर से महान् स्मृति-ग्रथ प्रकाशित किया जा रहा है। मेरे तथा लालाजी के सम्बन्ध अति निकट के रहे है। अतः उनके विषय मे अधिक कुछ लिखू, यह शोभनीय नही ? तिस पर भी लालाजी वास्तव मे एक कर्मठ, निडर तथा अडिग समाज-सेवी हुए है। मैने जो देखा, सुना उस पर प्रकाश डालता हू। लालाजी का नाम जैन-समाज का बच्चा-बच्चा जानता है। वे समाज मे एक चमत्कृत सितारे की भाँति आए और समाज को एक रोशनी देकर चले गए। लालाजी ने एक साधारण परिस्थिति से उठकर अपने ज्ञानबल, बाहुबल तथा अपनी व्यवहार-कुशलता के कारण विशेष उन्नति की। वे धुन के पक्के, कर्मशील-प्राणी तथा जीवट के पुरुष थे। देश मे गाँधी युग आया। महान् परिवर्तन के साथ देश का काया-कल्प हुआ। नव-निर्माण हुआ। ऐसे क्राति-काल मे जैन-समाज मे भी चेतना आई। लाला तनसुखराय सरीखे महानुभावो ने जहा काग्रेस-पार्टी को पूर्ण सहयोग प्रदान किया, वहा वे इस क्राति-काल मे अपने समाज को भी न भूले। वे समाज के सामने नवीन, किन्तु सामयिक-प्रस्ताव लेकर आए।

वे अकेले ही चले थे जानिबे-मजिल मगर—
लोग साथ आते गए और कारवाँ बनता गया।

उन्होने अ० भा० दि० जैन परिषद् का झडा उठाया। परिषद् के प्लेटफार्म पर अपने विचार के लोगो को एकत्रित किया और एक जाग्रति समाज मे पैदा कर दी। उन्होने विधवा-विवाह का चलन, दस्सा पूजा अधिकार, मरण-भोज कुप्रथा का निषेध, विवाह-शादियो मे बढार की फिजूलखर्ची का बन्द होना तथा धार्मिक क्षेत्रो मे शिक्षा का प्रचार, छात्रवृत्तियो की देन, धार्मिक ट्रैक्टस् छापना तथा पुस्तिकाओ का वितरण आदि उत्तम कार्य किए हैं।

भारत भर मे ख्याति प्राप्त दि० जैन पोलिटेक्निक-इन्स्टीट्यूट बड़ौत की आधारशिला की स्थापना उन्हीके वरद्-हस्तो द्वारा हुई। पोलिटैक्निक-इन्स्टीट्यूट वह पौधा है जिसे लालाजी ने रोपा था। आधुनिक युग को इस ऐसी सस्था की कितनी आवश्यकता है। यहाँ से प्रति वर्ष अनेक जैन तथा जैनेतर प्रशिक्षार्थी उद्योग-धधो मे प्रवीण होकर अपने भरण-पोषण के लिए आत्म-निर्भर होते है। देश की सेवा करते है। असल मे दि० जैन पोलिटैक्निक बड़ौत की उपादेयता के साथ लाला तनसुखराय का नाम स ैव अमर रहेगा। इस नश्वर ससार मे कोई सदा तो रहा नही—तिस पर भी कुछ लोग होते है जो कभी-कभी होते हैं। लालाजी के निधन मे समाज को भारी क्षति पहुची।

ज़ाहिरा दुनिया जिसे महसूस कर सकती नहीं—
आ गई हममें कुछ, ऐसी कमी, उनके बग़ैर।

भगवान् उनकी आत्मा को सद्गति दे, शान्ति दें, और हमारी पीढी के लोग उनके उपयोगी पथ के राही बनें। उनकी स्मृति मे निकलने वाले ग्रथ की मै सराहना करता हू।

A Man of Inspiration

Shri Bhikha Lal Kapasi
Pandara Road, New Delhi.

When I came to New Delhi in August 1940 as Assistant Information Officer in the Ministry of Information and Broadcasting, Government of India, my first association with Lala Tansukhrai Jain was at a meeting of Jain Sabha New Delhi Then I met him several times later on when he was incharge of Tilak Insurance Co Ltd. and my association grew gradually and I must also give credit to him for making me insurance minded.

Afterwards he was instrumental in calling a meeting after some years for discussing the questions of establishing unity amongst Jain community in Delhi and I had the good luck to preside at a meeting at the premises of Mahavir Jain Library when the question of Jain Unit was discussed and he was mainly instrumental in collecting all prominent Jains of Delhi and New Delhi for this purpose. I also associated myself with his various activities namely Jain Cooperative Bank, Jain Club, All India Humanitarian Conference, Bharat Vegetarian Society etc He was a source of inspiration to many young Jains of Delhi and he always encouraged all activities relating to social, economic and cultural development of Jains in Delhi. I may also mention here that when I discussed the question of starting Jain Milan at Delhi in September 1960 he gave me the encouragement and took active part in its activities in the initial state, though because of his ill-health later on, he had to curtail all his activities.

The Jain Milan of Delhi is an informal organisation started in september 1960 and during this short career of four years it has gained popularity mainly because of its democratic atmosphere. This organisation has no president, no office bearers, no membership fee and no constitution. However, with the goodwill of

friends and sympathizers, this informal association is gaining strength day by day. After starting this organisation with the help of friends like Mr Daulat Singh Jain, Mr. Deputy Mall Jain and other friends, this organisation is now being continued with the help of convener friends like Shri Daulat Singh Jain, Shri Lodha, Shri Mehtab Singh Jain, Shri R. C Jain and Shri B. [illegible] Jain and the present convenors of Jain Milan are Mr. Daulat Singh, Shri R C Jain, Shri Adishwar Prasad Jain, Shri Lodha and Shri Kapur Chand Jain. In this connection, it may not be out of place to mention here one unique achievement of this gathering of calling all the leaders of Jain community belonging to various sections, who had come here to give evidence before the Select Committee of the Religious Trust Bill and presenting a unanimous voice by selecting one spokesman for giving evidence and in this connection one cannot, but remember the services rendered by M.Ps, Shri Rajpath Singh Dugger and Shri R. K Malviya, through whose effort a meeting was called at the residence of Shri Rajinder Kumar Jain to decide this question. It now rests with the members of the Jain community in Delhi to fulfill the high ideals and aspiration of late Lala Tansukhrai Jain for giving tangible shape for having a strong central organisation in Delhi which can coordinate the activities of various small and big organisations and which would, besides, improving the social economic, cultural and political status of the Jain community would also be useful for having its due share in the overall development of the capital of the country.

★ ★ ★ ★

महावीर वाणी

कोहो पीइ पणासेइ, माणो विणय नासणो ।
माया मित्ताणि नासेइ, लोभो सव्व विणासणो ॥

क्रोध प्रीति का नाश करता है, मान विनय का नाश करता है । माया मित्रता का नाश करती है और लोभ सभी सद्गुणों का नाश करता है ।

मानव-हृदय का आलोक

श्री सुलतानसिंह जैन, एम ए
मत्री अ० भा० दि० जैन परिषद-शाखा शामली (उ० प्र०)

"लाला तनसुखरायजी जैन समाज के ही नही अपितु समस्त वैश्य वर्ण के महान् सेवक, कर्मठ कार्यकर्ता, नवयुवको के प्रेरणा-स्रोत, जैन परिषद् के स्थायी स्तम्भ एव मानवता के सच्चे पुजारी थे। उन्हे समाज-सुधारक, राजनीतिक, साहित्यिक, प्रकाण्ड पण्डित, सिद्धहस्त लेखक, धर्मप्राण या और भी कुछ कहे तो कोई अत्युक्ति नही होगी। वस्तुत वे सब कुछ कहलाने के सच्चे अधिकारी थे। नि सदेह ऐसे महान् पुरुष का ससार से उठ जाना, सभी के लिए हृदय-विदारक ही होता है।

यद्यपि मै कभी उनके दर्शन न कर पाया था; किन्तु उनके कार्य-कलापो से परिचित होकर ही कृत-कृत्य हो गया। उनके 'वीर' मे प्रकाशित लेखो से जो प्रेरणा मुझे प्राप्त हुई, उसीके फलस्वरूप मै धार्मिक कार्यो मे रुचि लेने लगा और सेवा-कार्य को अपने जीवन का प्रमुख उद्देश्य समझकर समाज के अखाडे मे कूदकर समाज-सेवा करने के लिए अनायास ही प्रवृत्त हो उठा। मेरी कोई आकाक्षा नही कि मै क्या बनू और क्या न बनू, किन्तु प्रति-क्षण किसी न किसी सेवा-कार्य मे रत रहना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझता हू। और उसी मे सुख का अनुभव करता हू।

अत मे मेरी हार्दिक कामना है कि लालाजी की दिवगत आत्मा को शान्ति प्राप्त हो और उनके सतप्त परिवार एव स्नेहीजन को धैर्य तथा सान्त्वना मिले। यही नही, उनके किये गये कार्य मानव-मात्र के हृदय को सदैव आलोकित करते रहे।

लगनशील कार्यकर्ता

जैनरत्न सेठ श्री गुलाबचन्द टोग्या
इन्दौर

स्वर्गीय लाला तनसुखरायजी जैन एक लगनशील, कर्मठ समाज-सेवक थे। उन्होने न सिर्फ जैन समाज की ही सेवा की बल्कि स्वतत्रता सग्राम मे भी भाग लिया था।

तिलक इश्योरेंस क० १९३५ मे स्थापित हुई थी। १९३६ मे इसका इन्दौर मे भी ब्राच आफिस खुल गया था। १९४० तक यहा उसका ब्रॉच आफिस रहा। इस बीच वे लगभग १२ १५ बार इन्दौर आये। जब भी आये, मुझसे हमेशा मिलते रहे। समाज-सेवा के सम्बन्ध मे ही उनकी चर्चाएँ होती रहती थी। भा० दि० जैन परिषद् का कार्य उन दिनो बहुत जोरो पर था। परिषद् के आप स्तम्भ थे। आपने अपना पूरा जीवन धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक कार्यो मे ही व्यतीत किया। ऐसे कर्मठ कार्यकर्ता को मै अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

लालाजी की स्मृति मे आप स्मृति-ग्रथ प्रकाशित कर रहे है यह प्रसन्नता की बात है—उसकी सफलता की कामना करता हू।

प्रेरणा के स्रोत

डा० ताराचन्द जैन (बख्शी)
M.Sc., LL.B , N.D.D.Y.
जयपुर

लाला तनसुखरायजी निश्चय ही उन महान् विभूतियो मे से थे, जिन्होने बिना स्वार्थ के अपने आपको देश तथा समाज-सेवा के कार्य मे मिला दिया, घोल दिया। एकमात्र कर्त्तव्य को ही उन्होने अपना धर्म समझा। राष्ट्रीय-आन्दोलन मे उन्होने अपना पूरा सहयोग दिया और देश की खातिर वे जेल भी गये। लेकिन उनमे पद की लोलुपता नही थी। यदि वे चाहते तो मिनिस्टर भी बन सकते थे, लेकिन देश के स्वतत्र होने के बाद उन्होने अपने आपको समाज-सेवा के ठोस कार्य मे लगा दिया। उन्होने सैकडो सेवाभावी कार्यकर्ता पैदा किये—वे प्रेरणा के स्रोत थे। उनके सम्पर्क में जो भी व्यक्ति एक बार आ जाता था वह सदा के लिए उनका हो जाता था। उनका जीवन युवको के लिये आदर्श है।

लालाजी से मेरा परिचय सन् १६५२ मे हुआ, जबकि वे एक सस्था का उद्घाटन करने आये से—उसके बाद से वे जब भी जयपुर मे पधारते थे हमारे यहा ही ठहरते थे। और मै भी कई बार दिल्ली गया, तब उनसे अवश्य मिलकर आता था। उनके दर्शनो से ही गजब की प्रेरणा मिलती थी। उनकी प्रकृति व आकृति बहुत सौम्य थी।

समाज-सेवा के कार्यों मे उनकी बेहद लगन थी। समाज का ऐसा कोई कार्य नही है जिसमें उन्होने अपना सहयोग नही दिया हो। उनके कार्यों, त्याग और उदारता को देखकर सब लोग उनकी भूरि-भूरि प्रशसा किया करते थे। वे देश, समाज के उन कर्मठ, अनुभवी और कर्त्तव्य-परायण कार्य-कर्ताओ मे से थे, जिनका जीवन अनुकरणीय है। आज उनकी सेवाओ की देश व समाज को अत्यन्त आवश्यकता थी। ऐसे असमय मे वे हमारे बीच से उठ गये, अभी उनकी आयु भी अधिक नही थी। किन्तु ऐसे योग्य व त्यागी महान् पुरुषो की परलोक मे भी आवश्यकता रहती है। मै दिवगत आत्मा के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

साहसी तेजस्वी नररत्न

रायबहादुर बा० दयाचन्दजी जैन
एक्स चीफ इंजीनियर, दरियागंज, दिल्ली

सेवा का कार्य महान् है, सेवा करने वालो को कदम-कदम पर कठिनाइया उठानी पडती हैं। यदि काम विगड गया तो सब जी-भर के बुराई करते हैं और कदाचित् काम सफल हो गया तो उसका श्रेय उस व्यक्ति को न देकर अन्य को देना चाहते है। स्वय तो करना नही चाहते और यदि कोई कर रहा हो तो उसकी प्रशसा न करके बुराई टटोलने मे लगे रहते हैं। यही कारण है कि हमारे यहा अच्छे समाजसेवक और उत्तम कार्यकर्ताओ का अभाव है। परन्तु कुछ ऐसे तेजस्वी नर-रत्न होते हैं जो इन बातो की चिंता नही करते। अपना धर्म मानकर देश और समाज की सेवा करते है। लाला तनसुखरायजी ऐसे ही थे जिन्होने कार्य करते किसी की परवा नही की और जिस काम को अच्छा समझा दृढ सकल्प से कर डाला।

मैं उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करता हू और भगवान् से प्रार्थना करता हू कि हमारे समाज मे अच्छे लोक-सेवक जन्म लें।

सर्वतोमुखी प्रतिभा

सर्वश्री कान्ता जैशीराम
मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, दरियागंज, दिल्ली

आज देश मे मासाहार का प्रचार बढ रहा है, भ्रष्टाचार की अधिकता है। चीजो में मिलावट का रोग इस तेजी से बढता जाता है कि शुद्ध पदार्थ खाने तक को नही मिलते। शरीर को बलिष्ठ और शक्तिशाली बनाने के लिए शुद्ध घी, दूध की आवश्यकता है। लालाजी की दृष्टि इस ओर गई। उनकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उन्होने बम्बई के मेयर सेठ आसकरनदासजी की अध्यक्षता मे घी-दूध मिलावट निषेध कान्फ्रेंस की और पूरे जोर-शोर के साथ उसका प्रचार किया जिसका अच्छा फल हुआ और शाकाहार के प्रचार के लिए Vegetarian Conference की और समिति बनाकर महत्वपूर्ण कार्य प्रारम्भ किया जिसकी आज बडी आवश्यकता है। मै युवको का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहती हू कि वे लालाजी के अधूरे कार्य को पूरा करें। शाकाहार के सम्बन्ध मे अपनी रुचि लगावें। मै उनके प्रति अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करती हू।

महान् परोपकारी

सेठ मिश्रीलाल पाटनी बैंकर्स
डीडवाना ओली लश्कर (म० प्र०)

जैन समाज मे भी ऐसे महान् कार्यकर्ता, कर्मठ व्यक्ति थे कि वाकई इनके कार्यों को पढ कर ऐसे महान् वीर, कर्मठ कार्यकर्ता का जैन समाज से विछोह हो जाना महान् दुख की बात है जिसकी पूर्ति होना इस काल मे बडी मुश्किल व असमव-सी है।

श्री दानवीर साहू शान्तिप्रसादजी, श्री अक्षयकुमारजी एव श्री सुमेरचन्दजी शास्त्री आदि आप माहवान ने प्रसिद्ध देशभक्त, कर्मवीर, समाज-सेवी, प्रभावशाली, विख्यात नेता, अनेक सस्थाओ को प्राण देने वाले महान् यशस्वी पुरुष के कार्यों की स्मृति हेतु एक स्मृति-ग्रथ तैयार करने का आयोजन किया। यह सकलन उनके सेवा-कार्य व बिखरी हुई सामग्री का सग्रह कर एक जगह एकत्रित कर जनता के सदुपयोगार्थ रखने का विचार किया यह अत्यत सुन्दर है। मै श्री तनसुखरायजी के प्रति श्रद्धाजलि भेजता हू और यह भी शुभ कामना भेज रहा हू कि आपका यह प्रयास आपके उत्साह एव भावनानुकूल शीघ्र ही निर्विघ्न सम्पूर्ण होकर यह लालाजी का स्मृति-ग्रथ बडा ही लाभोपयोगी बने यह मेरी भावना है। और मै इस समिति के समस्त सदस्यो का भी आभार प्रदर्शित करता हू।

VERY GOOD WORKER

Shri Narendra Kumar Jain, B A
Dehradun.

I just received a few papers relating to Shree Tansukh Rai Jee. This is really a very good adventure and this reminded me my association with him on so many occasions He was really dynamic man and perhaps the only person who realised at one stage to bridge the rift among Jain Youth and the organisation of the Parishad. It was at that time I had an opportunity to come in contact with him and I was very much impressed by his method of dealing the things in the interest of the community I have also seen him working for the Congress and Congress Organisational matters I can say he was a man who always took optimistic views and was always successful.

I wish the work taken up be successful and it will be a good contribution in the old memories

× × × ×

सफल जीवन

श्री रूपचंद गार्गीय जैन
पानीपत

स्व० जैनधर्म-भूषण ब्र० सीतलप्रसादजी ने अपने जीवन-काल मे जैन समाज के नवयुवको के दिलो मे धर्म व समाज-सेवा की एक गहरी लगन पैदा की थी जिसके परिणाम-स्वरूप समाज मे सुधार के कई महत्वपूर्ण कार्य हुए। बहुत-सी नई शिक्षण सस्थाए खुली। समाज के नवयुवको में धर्म-सिद्धात के ज्ञान की वृद्धि हुई तथा उनके आचार-विचार मे भी उन्नति हुई। हमारे मित्रवर स्व० लाला तनसुखरायजी को भी उन्ही ब्रह्मचारीजी की सगति बचपन से ही प्राप्त हुई जिसकी गहरी छाप उनके जीवन पर लगी, फलस्वरूप दिन पर दिन उनके दिल मे धर्म, समाज-सेवा व देशोद्धार की लगन बढती ही गई। अपने जीवन के अन्दर जिस समाज-सेवा व देश-सेवा के कार्य मे उन्होने हाथ डाला उसीमे उनको सफलता मिली। इसका एक कारण यह भी था कि किसी कार्य मे सफलता प्राप्त करने के लिये उसे सुव्यवस्थित रूप से चलाने की कला उन्हे आती थी। वे सदा हसमुख रहते थे, अतिथि-सेवा का पूरा ध्यान रखते थे। १९३४ से दि० जैन परिषद् के द्वारा उन्होने जैन समाज के सुधार-कार्यो मे अपनी सेवा का क्षेत्र बढाया, तब से ही मेरा उनसे सम्पर्क रहा है। १४ जुलाई १९६३ को वे हमसे सदा के लिये विदा हो गये। हमने एक सच्चा मित्र खोया और समाज ने अपना एक सच्चा हितैपी खोया। मै उन्हे उनके गुणो के कारण अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

सबके प्रिय नेता

श्री हीराचंद जैन
मांडला, राजस्थान

लालाजी का जीवन सादा और पवित्र था। वे जैन समाज के गौरव थे। भ० महावीर के सिद्धातो को सरल रूप से प्रचार करने मे वे बड़ी रुचि रखते थे। महावीर जयती उत्सव मनवाकर उन्होने एक आदर्श कार्य किया। आज जब हिंसा की अधिकता बढ रही है तब उसके विरोध मे आवाज उठाने वाले दृढप्रतिज्ञ साहसी नेता की बडी आवश्यकता थी। लालाजी ऐसे ही शक्तिशाली रत्न थे जो सिद्धातो की रक्षा के लिए निरन्तर तत्पर रहते थे। वे हमारे पुराने मित्र थे। मैं उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

× × × ×

कर्मवीर श्री तनसुखरायजी

जीवन के पश्चात् नाम उसका ही रहता,
सत्य-सिद्धि के लिए कष्ट जो बहुधा सहता,
वह मनुज-रत्न होता है, सब कुछ पावन,
पर सेवा के लिए करे जो अर्पण तन-मन,
श्रीयुत् तनसुखराय ने, की जो सेवा धर्म की,
व्याप रही है आज भी, यश गाथा सत्कर्म की ।।१।।

श्री गुणभद्र जैन,
कविरत्न

श्री मद्राजचंद्र आश्रम
आगास (सौराष्ट्र)

सेवक मिलते जहाँ-तहाँ, स्वार्थी अभिमानी,
करते आग्रह विवश सर्वदा वे मनमानी,
कहकर कलियुग दोष, सत्य को नहिं अपनाते,
करते स्वय अनीति, अन्य से और कराते,
सेवक लालाजी सदृश, है मिलना दुर्लभ महा,
सेवा का आदर्श ही, नस-नस मे जिसके रहा ।।२।।

सरल सत्यता, न्याय नीति थी उनके मन मे,
सादाई को ग्रहण किया था निज जीवन मे,
हुए नही गर्विष्ठ क्षणिक वैभव को पाकर,
सेवाये की यथा समय घर-घर भी जाकर,
हो निरीह निज देश की, सेवा वे करते रहे,
देकर के निज द्रव्य भी, पर दुख वे हरते रहे ।।३।।

सुन निन्दा वे नही डिगे थे अपने प्रण से,
था सुधार से प्रेम, नही नश्वर जीवन से,
परिषद् के थे प्राण, कर्म के थे उत्साही,
करके पर-उपकार प्रशसा कभी न चाही,
देख धर्म के ह्रास को, दु खित था उनका हिया,
सत्य धर्म रक्षार्थ ही, सब कुछ था उनने किया ।।४।।

कर्मवीर है वही न जो बाधा से डरता,
बढता रहे सदैव नही पग पीछे धरता,
मिली सफलता उन्हें हाथ जिसमे भी डाला,
पाला निज कर्तव्य, कभी भी उसे न टाला,
जाति सुधारक सर्वदा, लाला तनसुखराय थे,
दीन-हीन जन के लिए, सच्चे प्रबल सहाय थे ।।५।।

× × × ×

बिरले महापुरुष

श्री नरेन्द्र (कैप्टेन)
सुपुत्र श्री जमनाप्रसादजी बैरिस्टर, नागपुर

लालाजी जैन समाज के महान् सुधारक थे। उनके मन मे सदैव देश और समाज-सेवा की भावना जागृत रहती थी। हमारे पिता बैरिस्टर जमनाप्रसादजी उनकी सदैव प्रशसा किया करते थे। ऐसे महापुरुष ससार मे बिरले ही होते है। मैं उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पण करता हू।

× × × ×

अपने काल के संरक्षक

प्राच्य विद्यामहार्णव श्री जुगलकिशोरजी मुख्त्यार
अधिष्ठाता वीर सेवा मंदिर, दिल्ली

हर्ष का विषय है कि वीर शासन जयन्ती के शुभ अवसर पर श्रीमान् लाला तनसुखराय जैन (मैनेजिंग डाइरेक्टर तिलक बीमा कम्पनी) दिल्ली का भाई अयोध्याप्रसादजी गोयलीय सहित, उत्सव के प्रधान की हैसियत से वीर सेवामन्दिर में पधारना हुआ। आपने वीर सेवामन्दिर के कार्यों को देखकर अनेकान्त के पुन प्रकाशन की आवश्यकता को महसूस किया और गोयलीयजी को तो उसका बन्द होना पहले से ही खटक रहा था, वे उसके प्रकाशक थे और उनकी देशहितार्थ यात्रा के बाद ही वह बन्द हुआ। अत. दोनो का अनुरोध हुआ कि "अनेकान्त" को अब शीघ्र ही निकालना चाहिए। लालाजी ने घाटे के भार को अपने ऊपर लेकर मुझे आर्थिक चिन्ता से मुक्त रहने का वचन दिया, और भी कितना ही आश्वासन दिया साथ ही उदारतापूर्वक यह भी कहा कि यदि पत्र को लाभ होगा तो उस सब का मालिक वीरसेवा मन्दिर होगा। और गोयलीयजी ने पूर्ववत् प्रकाशक के भार को अपने ऊपर लेकर मेरी प्रकाशन तथा व्यवस्था सबन्धी चिन्ताओ का रास्ता साफ कर दिया। ऐसी हालत मे दीपमालिका से नये वीर निर्वाण सवत् के प्रारम्भ होते ही अनेकान्त को फिर से निकालने का विचार सुनिश्चित हो गया। उसी के फलस्वरूप यह पहली किरण पाठको के सामने उपस्थित है और इस तरह मुझे अपने पाठको की पुन सेवा का अवसर प्राप्त हुआ है। प्रसन्नता की बात है कि यह किरण आठ वर्ष पहले की सूचना अनुसार विशेषाक के रूप मे निकाली जा रही है। इसका सारा श्रेय लालाजी तथा गोयलीयजी को प्राप्त है—खासकर अनेकान्त के पुन प्रकाशन का सेहरा तो लालाजी के सर पर ही बंधना चाहिए जिन्होंने उस अर्गला को हटाकर मुझे इस पत्र को गति देने के लिए प्रोत्साहित किया जो अब तक इसके मार्ग मे बाधक बनी हुई थी।

इस प्रकार जब अनेकान्त के पुन. प्रकाशन का सेहरा ला० तनसुखरायजी के सिर पर बँधना था, तब इससे पहले उसका प्रकाशन कैसे हो सकता था ? ऐसा विचार कर हमे सन्तोष धारण करना चाहिए और वर्तमान के साथ वर्तते हुए लेखको, पाठको तथा दूसरे सहयोगियो को पत्र के सहयोग विषय मे अपना-अपना कर्तव्य समझ लेना चाहिए तथा उसके पालन मे दृढ-सकल्प होकर मेरा उत्साह बढाना चाहिए।

स्वजनों की ओर से श्रद्धाञ्जलियाँ

श्री किशनलालजी
मोडलबस्ती, दिल्ली

लालाजी मेरे मामा थे। मुझे यह सौभाग्य प्राप्त हो सका कि मै उनकी बीमारी की अवस्था मे कुछ सेवा कर सका। इसे मैं अपना अहोभाग्य समझता हूँ। वे एक प्रतिभा-सम्पन्न समाज के नेता थे। जैन समाज शक्तिशाली और गौरवशील बने वे इस बात का सदैव प्रयत्न करते थे।

श्रीभगवानदासजी जैन, मोडलबस्ती, दिल्ली
श्री शान्तिप्रसादजी जैन, झरिया, बिहार

हम अपने को बडा भाग्यशाली समझते है कि लालाजी की छत्रछाया हमारे ऊपर रही। हमारे जीवन पर उनका बडा प्रभाव है। उदारता, प्रेम और कर्तव्यपरायणता की भावना उनमे अनुपम थी। उन जैसे गुण समाज के युवको मे आ जावें तो हमारा समाज शक्तिशाली बन जावे।

श्री कुलभूषणजी
रोहतक

मेरे पिताजी का स्वर्गवास उस समय हुआ जब मैं ढाई वर्ष का था। मेरा पालन-पोषण ताऊजी ने किया। उनकी छत्रछाया मे मैंने शिक्षा पाई और योग्य हुआ। मैं उनके ऋण से कभी उऋण नही हो सकता। ताऊजी ने धर्म और समाज की तो सेवा की ही उन्होंने परिवार की भी बहुत उत्तम रीति से सेवा की। यह हमारा सौभाग्य है कि हमारे परिवार मे इस प्रकार के तेजस्वी नररत्न का जन्म हुआ।

श्री कलियारामजी
दरियागज, दिल्ली

लालाजी को मैं अपने बडे भाई के समान मानता हूँ वे मेरे अत्यत निकट थे। मेरे दुःख सुख के साथी थे। सदा मेरे मार्गदर्शक और सलाहगीर थे। उनके अभाव मे मै अपने को असहाय अनुभव करता हूँ। सामाजिक कार्यों के करने मे उन्हे बड़ा उत्साह रहता था। किसी बदले की इच्छा के बिना परोपकार की भावना थी। उनका सिद्धात था 'नेकी कर दरिया मे डाल'।

श्री विद्यावती, स्वदेशरानी
(दोनो पुत्रियां)

पिताजी का हमारे ऊपर अपरिमित स्नेह था। उन्होंने हमें सभी प्रकार से योग्य बनाया। वे हमारी उन्नति का सदैव ध्यान रखते थे। अतिथि सत्कार, सेवा उपासना और बडों का सम्मान आदि गुण उनमे कूट-कूट कर भरे थे। बाहर से पधारे धार्मिक और राष्ट्रीय नेताओं और कार्यकर्ताओ का जब भी घर पर आना होता उनके सत्कार के लिए [illegible] उत्साहित होते और अपने को धन्य समझते उन्होंने सेवा करके कभी भी बदले की इच्छा नहीं की। [illegible] से ही घर स्वर्ग बन जाता है। ऐसे मनुष्य रत्न को हमारा उनके चरणों मे [illegible] नमस्कार है।

अम्मादेवी, संतोषकुमारी, त्रिशलादेवी
(तीनो छोटे भाई की पुत्रियाँ)

पूज्य ताऊजी, ही हमारे सब कुछ थे। हमने अपने पिता के दर्शन भी नही किए वे छोटी आयु मे ही हम सब बालको को छोडकर स्वर्ग सिधार गए। हमारी माता असहाय थी। उसकी देखरेख और व्यवस्था का कोई साधन न था। परतु ईश्वर की कृपा से हमें इस बात का कभी अनुभव नही हुआ। कि हमारे ऊपर किसी की छत्रछाया नही है। हमारा पालन पोषन, शिक्षा और विवाह का कार्य अत्यन्त उत्तम रीति से किया जिसके कारण हम सब सुखी है और सदैव उनकी पावन स्मृति हमारे हृदय मे विद्यमान रहेगी। हमारा उनके चरणो मे बारम्बार नमस्कार हो।

प्रसिद्ध समाजसेवी, श्रीमंत विद्वान् ला० राजकृष्णजी
दरियागंज, दिल्ली

भाई तनसुखराय हमारे ऐसे साथियो मे से थे जिन्हे देश, धर्म और समाजकी सेवा मे बडा आनद आता था। धार्मिक कार्यों मे नवीनता आवे समाज प्रभावशाली बने। रात दिन इस बात का ध्यान रखते थे। तीस वर्ष से हमारा उनका भाई जैसा सम्बन्ध था। पूज्य वर्णीजी के वे अनन्यभक्त थे। देश धर्म और समाज के सच्चे सेवक थे। सुधार वादी दष्टिकोण रखते थे। निर्भीक साहसी और स्पष्ट वादी समाज के कार्यकर्ता थे। उनके अभाव से समाज का एक तेजस्वी कार्यकर्ता चला गया जिसकी निकट भविष्य मे पूर्ति होनी कठिन है। मै उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

स्नेहशील महापुरुष

श्री शांतिकुमार गोधा
डिग्गी हाउस, जयपुर

लालाजी बडे सज्जन व स्नेहशील महानुभाव थे। धर्म और देश सेवा करना उनका मनचाहा विषय था। सामाजिक, धार्मिक व राजनैतिक क्षेत्र मे जो कार्य उन्होने किए है वे सदैव स्मरणीय रहेंगे। मै उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

पितृतुल्य स्नेहधारी

श्री नन्दनकुमार, हीरालाल मन्नूलाल
जुमेंती बाजार, मेरठ

लाला तनसुखरायजी को मै अपने पिता के समान मानता था। सेवा का भाव मेरे हृदय मे उनकी गतिविधियो को देखकर हुआ। वे जहा पहुच जाते वही के युवको मे उत्साह का सचार कर देते थे। उमग और उत्साह की साक्षात् मूर्ति थे। जैन समाज के अद्वितीय रत्न थे।

⚜ ⚜ ⚜ ⚜

सफल कार्यकर्ता

श्री रतनलालजी
Ex. M.L.A.

उन्होंने परिषद् मे कधे से कधा मिलाकर बड़ा कार्य किया था। उनके प्रयास से परिषद् लोकप्रिय बन गई थी।

★ ★ ★ ★

चमकते हुए हीरे

श्री जगत प्रसादजी
बम्बई

भाई तनसुखरायजी के प्रति मेरे मन मे अगाध प्रेम था। मैं किन शब्दो मे उन्हें व्यक्त करू ? वे जैन समाज के ऐसे चमकते हुए हीरे थे जिन पर सभी को गौरव होता था। राष्ट्र-प्रेम उनमे कूट-कूट कर भरा था। जब समाज से जाति के क्षेत्र में आए तो उन्होंने आशातीत कार्य किया। परिषद् और वे एकार्थवाची हो गये थे। मैं उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

★ ★ ★ ★

कुशल कार्यकर्ता

रायबहादुर सेठ श्री हीरालाल जैन 'भैयासाहब
कल्याण भवन, इन्दौर

लाला तनसुखरायजी का सार्वजनिक क्षेत्र मे एक महत्वपूर्ण स्थान था। सामाजिक कार्यो मे उनकी विशेष रुचि थी। जलसा और दूसरे सार्वजनिक कार्यो की व्यवस्था करने मे वे अत्यन्त पटु थे। दिल्ली में जो उन्होने मेरा सार्वजनिक स्वागत कराया वह सुखद स्मृति सदैव याद रहेगी।

× × × ×

अद्वितीय समाज सेवक

श्री दरबारीलाल जैन
न्यायाचार्य, M.A.

उन जैसा समाज-सेवक और समाज के लिए टीस रखने वाला मुझे दूसरा कोई व्यक्ति दिखाई नही देता। उनकी कार्य-प्रणाली और ठोस कार्य करने की शक्ति से मै तब से परिचित हू जब १६३५ मे आबू क्षेत्र पर यात्रियो के लिए गवर्नमेंट द्वारा लगाये टैक्स का उन्होने डटकर विरोध किया था और हम जैसे युवको को आह्वान किया था। अब तो उनका व्यक्तित्व, प्रभाव और सेवा का ढग केवल रमरणीय रह गये है।

उनके स्थान की पूर्ति होना कठिन है। मै और मेरी श्रीमती उनकी आत्मा की शाति के लिए कामना करते है तथा आपके प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते है। भगवान् श्री जिनेन्द्र से प्रार्थना है कि वे आपको इस असह्य कष्ट को सहन करने का बल प्रदान करें।

× × × ×

सेवाभावी, मधुरभाषी

श्री भगवतीप्रसाद खेतान
खेतान भवन, बम्बई

स्वर्गीय लाला तनसुखरायजी की स्मृति में आप एक ग्रथ प्रकाशित कर रहे है जिसका सूचना पत्र प्राप्त हुआ। पढ कर बहुत ही खुशी हुई।

मेरा भी उनके साथ कुछ सपर्क दिल्ली में दो तीन बार हुआ था। इनकी सेवाभावी मिलनसार वृत्ति से मै परिचित हूँ और उनके चतुराई भरे मधुर शब्द अभी तक नही भुला सका हूँ। उनका सार्वजनिक कार्य में सपर्क तो बहुत ही था और ऐसे सेवाभावी व्यक्ति के लिए स्मृति-ग्रन्थ प्रकाशित करने का आयोजन आपने किया इसके लिए अनेक धन्यवाद। उनकी पुण्यस्मृति में मै श्रद्धाजली भेंट करता हूँ।

बड़े मेहवाननवाज़

श्री उग्रसेन जैन
मंत्री भा० दि० जैन परीक्षाबोर्ड, काशीपुर (नैनीताल)

भाई तनसुखरायजी बडे उत्साही कार्यकर्ता थे। उनमे टक्कर लेने की शक्ति थी। और कुशल प्रबन्धक तथा मेहमाननवाज थे। मेरा उनका ३५ वर्ष से अधिक समय से सम्पर्क रहा। परिषद् के कार्यों मे उनके सामने बडी-बडी कठिनाइया आईं परन्तु उन्होने उसकी थोडी-सी भी चिंता नही की और लगातार जीवन भर समाज और देशसेवा के कार्यो मे लगे रहे।

मैं ऐसे कर्मवीर पुरुष के प्रति हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता है।

प्रेरणा प्राप्त करें

श्री भुवनेन्द्र 'विश्व'
जवाहरगंज, जबलपुर

स्व० तनसुखरायजी का स्मृति-ग्रन्थ तैयार करने का आयोजन किया जा रहा है। यह समाज के लिए गौरव का विषय है कि वह अपने कर्मठ व्यक्तियो का समुचित सम्मान करने के लिए प्रयत्नशील है।

मेरा उनका कोई व्यक्तिगत सम्बन्ध नही था फिर भी मै उनकी समाज सेवा की लगन से बहुत प्रभावित रहा हूँ।

मैने उनको झासी और दिल्ली के परिषद्-अधिवेशन मे देखा है। हर काम मे उन्ही को सक्रिय सहयोग देते हुए देखकर लगता था कि यदि परिषद् का प्रत्येक कार्यकर्ता इसी लगन से समाज सेवा मे तत्पर रहे तो परिषद् अपने उद्देश्य मे पूर्ण सफल हो सकेगी।

मैं प्रत्येक नवयुवक से आग्रह करता हूँ कि वह भी अपने आपको स्व० तनसुखरायजी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त करे और उनकी तरह से तन, मन, धन और मनसा वाचा कर्मणा जाति, समाज और देश की सेवा में समर्पित कर दे।

× × × ×

परिषद् का सपूत

श्री सलेकचंद जैन
बड़ौत (मेरठ)

समाचार पत्रो मे कई बार पढने मे आया है कि ला० तनसुखराय जैन की स्मृति मे एक ग्रथ निर्माण किया जा रहा है। इस बात से मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। लालाजी की स्मृति मे ग्रथ का प्रकाशन समाज की उदारता का परिचायक है। वास्तव मे ला० तनसुखरायजी, जैन समाज मे अपने समय के एक क्रातिकारी, समाज-सुधारक, तथा जैन समाज मे नव-परिवर्तन करने वाले बडे साहसी पुरुष हुए हैं। लालाजी ने लगभग ४० वर्ष तक निरन्तर जैन समाज की सेवा मे अपना समय लगाया और साथ-साथ अपने तन, मन, धन को लगाया। जो भी कदम उठाया वह अति प्रशसनीय तथा सराहनीय रहा। परिषद् से लालाजी अधिक प्रकाश में आये किन्तु मुझे यह कहने मे जरा भी हिचक नही कि परिषद् की नीव को सुदृढ करने तथा परिषद् की ख्याति बनने-बनाने मे लालाजी का सहयोग एक वरदान सिद्ध हुआ है। ला० तनसुखरायजी जैन ने परिषद् के प्लेटफार्म से जैन समाज को नवीनता दी। समाज मे नव-चेतना का सचार किया। मुझे यह कहने मे कोई सकोच नही कि उनकी मृत्यु के पश्चात् अब परिषद् शक्तिहीन और निर्बल सस्था पड गई है। लालाजी परिषद् के सजग प्रहरी थे। उनकी स्मृति मे आज जैन समाज की ओर से यह स्मृति-ग्रथ प्रकाशित करना अपने योग्य तथा कर्मठ कार्यकर्ता के प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करना हू।

अन्त मे—"वे अमर रहे हजारो वर्ष, हर वर्ष के हो हजार दिन"।

× × × ×

देशभक्त और प्रबल समाजसुधारक

माननीय श्री चिरंजीलाल जी वड़जात्या

माननीय श्री वडजात्याजी जैन समाज के पुराने समाजसेवी और कट्टर देशभक्त है। पूज्य गाधीजी के पाचवे पुत्र स्वनाम धन्य सेठ जमुनालाल जी वजाज के यहा प्रमुख कार्य करने वाले कार्यकर्ता है। गाधीजी की शिक्षाओ को आपने अपने जीवन मे उतार कर सात्विक रहन-सहन और उच्च विचारो का महान् आदर्श प्रस्तुत किया। लाला तनमुखरायजी से आप अत्यधिक प्रभावित थे। आपके भावमयी उद्‌गार प्रशसनीय और उनके प्रति असीम प्रेम प्रकट करने वाले है। आपने ग्रन्थ के कार्य मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया है।

आदरणीय लाला तनसुखरायजी जैन समाज में एक सम्माननीय व्यक्तियो मे हो गए। स्व० लालाजी का नाम जैन समाज के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से लिखा जाएगा। निःस्वार्थ भाव से देश एव समाज की उनके द्वारा अनेक सेवाएँ हुई है।

वे दिगम्बर जैन परिषद के मत्री थे। समाज मे जो अनेक त्रुटियाँ थी उनमे सुधार कर समाज के अनेक पंथो को एक सूत्र मे लाने का महान कार्य उनके उत्साह एव सहयोग से ही पूरा हो सका है। अन्तर्जातीय विवाह के वे वहुत-वहुत पक्षपाती थे जिस कारण अनेक अन्तर्जातीय विवाह सम्पन्न हुए। समाज के पढे-लिखे और होनहार विद्यार्थियो पर उनका वहुत स्नेह था। इस लिए ऐसे विद्यार्थियो को जगह-जगह अच्छे काम पर लगा दिया करते थे। वह विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति भी दिलवाते थे और खुद के पास से स्वय देते भी थे।

स्व० लालाजी बडे शान्त, नम्र और धैर्यशाली व्यक्तियो मे से थे। किसी बात का निर्णय वह जल्दवाजी मे न कर वहुत सोचकर ही उचित निर्णय करते थे। इस कारण कितना भी दु खी हृदय का व्यक्ति उनके पास जावे वह सुखी और समाधान कर ही उनके पास से लौटता था।

श्री तनसुखरायजी भारत जैन महामडल की वर्किंग कमेटी के भी एक सदस्य थे इस कारण उनके विचार का लाभ मडल को हमेशा मिलता रहा है। समग्र जैन समाज को एक सूत्र

मे लाना और समाज मे भाईचारा बढाना जैसे जटिल कार्य मे उनका सहयोग हमेशा मिलता रहा है।

उनका मुझ पर भी बड़ा स्नेह था। जब तीन साल पहले लकवे से मै बीमार हो गया था तब उनके कई स्नेह भरे पत्र मुझ को मिले जिससे मुझे बहुत शान्ति मिली और सतोष भी हुआ। बाद मे मेरे स्वास्थ्य मे कुछ सुधार होने पर जब मैं दिल्ली गया तो उनसे मिला था। हमारी अनेक विषयो पर चर्चा हुई। यह मेरी उनसे आखिरी मुलाकात थी। पता नही था कि वह इतनी जल्दी हम लोगो से बिछुड जावेगे। बाद मे वह अचानक बीमार हो गए जिस कारण हमको चिन्ता होना स्वाभाविक था। इस बीच मे उनके स्वास्थ मे कुछ सुधार भी हुआ लेकिन विधि का विधान कुछ और ही था। ईश्वर की इच्छा। अन्त मे वह हम लोगो को छोड़कर चले ही गए। उनके स्वर्गवास से हमको बडा आघात पहुँचा क्योकि वह मेरे अभिन्न मित्रो में से थे। जब भी मैं उनसे मिलता था मेरे को बडी शान्ति मिल जाती थी। उनका हसमुख चेहरा और मधुर स्वभाव हमेशा हमको स्मरणीय रहेगा। मै उनकी धर्मपत्नीजी से भी दो-तीन बार मिला था और कई बार उनके यहाँ भोजन का साथ भी मिला था। लालाजी जैसे बहुत कम व्यक्ति इस ससार मे जन्म लेते है और समाज पर अपनी छाप छोड़कर महाप्रस्थान करते है।

श्रीमान लालाजी श्री तनसुखरायजी से मेरा परिचय करीबन ३५ सालो से था। दिल्ली निवासी श्री लालाजी जौहरीमलजी सर्राफ बडा दरीबा ने मेरी उनसे मुलाकात करवाई थी। मुझ पर उनके व्यक्तित्व का बहुत प्रभाव पड़ा। मैंने एक दम निश्चय कर लिया कि श्री लालाजी द्वारा देश व समाज की बहुत सेवा होगी तत्पश्चात क्रमश खडवा, सतना, जबलपुर मे हुई भारत दिगम्बर जैन परिषद् के अधिवेशन मे उनसे मुलाकातें हुई। सभा का अधिवेशन व जिस उत्साह से, जिस लगन और सुचारु रूप से करते थे वह तो मे ताकता ही रह जाता था। मुझे उन पर गर्व था। समस्त जैनीवर्ग मे रोटी-बेटी व्यवहार चालू हो इस बात के लिए वे सदा ही प्रयत्नशील रहते थे। दस्सा-पूजा-अधिकार के आन्दोलनो के वे समर्थक थे व इस आन्दोलन मे उन्होने काम भी किया था। पूज्य श्री महात्मा गाधीजी के सिद्धान्तानुसार वे सदा असहयोग आन्दोलन मे भाग लिया करते थे व जेल जाने वालो की वे हर प्रकार से मदद करते थे। खादी आन्दोलन की शुरूआत से ही वे खादी पहनने लगे और जीवनपर्यन्त पहनते ही रहे। दलित-जातियो व अछूतोद्धार के काम में वे हमेशा सलग्न रहा करते थे। जब सन् १६२६ में काग्रेस की सेवा मे मेरी सम्पत्ति खत्म हो गई थी तब लालाजी ने ही मुझे उत्साह हिम्मत बढ़ाई थी। मुझे जब लकवा मार गया था तब हमेशा उनके सान्त्वना भरे पत्र आते रहे थे और जब ठीक होने के बाद मैं उनके पास दिल्ली गया तो कुछ कमजोरी तथा प्रेमवश आ जाने की वजह से मै बहुत रोया तब उन्होंने मेरी हिम्मत को सुदृढ बनाया। मुझे धैर्य प्रदान करते रहे। आबू जैन मन्दिर मे यात्रियो पर सरकार ने टैक्स लगाया था उस आन्दोलन में भी उन्होने बहुत काम किया। मेरे मालिक श्री कमलनयनजी बजाज के सभापतित्व मे उन्होने 'अग्रवाल महासभा' का अधिवेशन करवाया था। श्री कमलनयनजी उनके काम की बहुत तारीफ करते थे।

मैं जब-जब भी दिल्ली जाता था तब-तब मैं रोज उनसे मिलता था। जिस दिन उनसे नही मिलता था उस रात की नीद ही हराम हो जाती थी। लालाजी साक्षात करुणा व दया की मूर्ति थे। मैं उनको एक तरह से देवता ही समझता था। वे चार बार वर्धा आए थे और हर बार अपने चरणकमलो से मेरे घर को पवित्र किया था। दिगम्बर जैन परिषद् के तो वे प्राण ही थे। दिगम्बर जैन परिषद् का अधिकाश काम उन्होने ही किया था। उनकी अभिलाषा थी कि दिल्ली मे समस्त जैनियो का एक कनवेन्शन किया जाय मगर बीमार हो जाने की वजह से उनकी इच्छा अधूरी ही रह गई। भारत जैन महामडल वर्किंग कमेटी के वे मेम्बर थे।

मेरे तो वे खास मित्र थे। उनके स्वर्गवास से मुझे बहुत दुख पहुँचा। उनके निधन से समाज की व देश की बहुत बडी हानि हुई है। मै हृदय से उनको श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ। लाला तनसुखरायजी ने सैकडो विद्यार्थियो को पुरस्कार दिए और दिलाए। सैकडो नौजवान (जैन अजैन) को नौकरी से लगाया। अपने यहाँ रखा और दूसरी जगह भी रखवाए। जैन भारत-मडल का २० वर्ष कार्य किया। उसमे उन्होने हर प्रकार की मदद की, सहयोग दिया। तिलक बीमा कपनी मे कई नौजवानो को नौकरी से लगवाया। एक प्रकार से जैन सगठन था।

प्रसिद्ध समाजसुधार और मूकसेवक

श्री रतनेश कुमार जैन
रांची (बिहार)

स्व० लाला श्री तनसुखरायजी की स्मृति मे आप स्मृति-ग्रथ प्रकाशित करने जा रहे है। लालाजी की सेवाए धर्म, समाज एव राष्ट्र के क्षेत्र मे सदैव स्मरण होती रहेगी। आपके कार्य की अवश्यमेव सराहना करूगा कि कार्यकर्ताओ को उनके अनुरूप सम्मान इसी तरह दिया जाना चाहिये। जीवितावस्था मे नही तो मरणोपरात ही सही।

मैंने लालाजी के कई दफा दर्शन किए है और परिषद् के देवगढ अधिवेशन मे उनकी चिर कार्य-प्रणाली देखने का अवसर भी मिला है।

आशा है आपका प्रयास ऐसा ठोस प्रयास होगा जिसे युगो तक अनुकरणीय रूप मे वे स्मृति रूप मे सजो कर रखा जाएगा।

काम करने की अद्भुत शक्ति

श्री पन्नालाल जैन अग्रवाल
नई दिल्ली

ला० तनसुखरायजी को मै अर्से से जानता हू । आप एक परिश्रमी, उद्योगी, धर्म-प्रेमी व्यक्ति थे । आप मे काम करने व लेने की अद्भुत शक्ति थी । आप जिस काम को हाथ में लेते थे, पूरा करके ही छोडते थे । आपने कई आन्दोलनो का भी श्रीगणेश किया, कई सभा-सोसाइटियो में भी कार्य किया । सबका श्रेय आपको ही है । आपके जीवन से सबको सबक लेना चाहिए ।

* * * *

पत्रकारों की दृष्टि में

श्री उमाशंकर शुक्ल
वर्धा

यह जानकर प्रसन्नता हुई कि आप श्री तनसुखराय स्मृति-ग्रथ के प्रकाशन का आयोजन कर रहे है । उनसे मेरा परिचय तो नही था किन्तु उनके बारे मे जो जानकारी प्राप्त हुई, उससे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आपने यह जो महत्वपूर्ण काम अपने हाथ में लिया है, उससे सैकडो, हजारो व्यक्तियो को स्व० तनसुखरायजी के जीवन से स्फूर्ति व प्रेरणा प्राप्त होगी । मैं आपके इस साहस की सराहना करता हू तथा ईश्वर से प्रार्थना करता हू कि आपने यह जो पुण्य कार्य हाथ मे लिया है, उसमे आपको सफलता प्राप्त हो । मै लालाजी को अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू ।

ग्रथ यदि मुझे प्राप्त हुआ तो मैं उस पर कुछ लिखू गा ।

पंजाब में जागृति का श्रेय

श्री गुलाबसिंह जैन एडवोकेट
हिसार (पंजाब)

पूज्य बडे भाई साहब ने पजाब प्रान्त के बड़े २ शहरो मे धर्म जागृति पैदा करने मे बड़ा महत्वपूर्ण कार्य किया । अन्य प्रान्तो की अपेक्षा इस प्रान्त मे त्यागी विद्वानो का पदार्पण बहुत कम होता है । इसलिए धार्मिक जागृति बहुत कम दिखाई देती है । परन्तु कार्य करने की लगन और धर्म श्रद्धा स्वभाव से इस प्रान्त में विशेष है । गोहाना, रोहतक, हिसार, अम्बाला आदि स्थानो पर जो समाज मे विशेष उत्साह दिखाई देता है उसका श्रेय स्व० लाला तनसुखराय जी को है ।

× × ×

मार्ग दर्शक

श्री गिरिवरसिंह
बडौत (मेरठ)

सन् १९४४-४५ में दिल्ली के परेड ग्राउड में दि० जैन परिषद् की ओर से एक महान् सम्मेलन का आयोजन था। बडा पडाल, ऊचे-ऊचे शामियाने, बडा-सा मच था उसमें। सम्मेलन मे एक विशेष-प्रस्तावपेश किये जाने की चर्चा थी। जैन-जनता का सागर कुछ पक्ष मे, कुछ विपक्ष मे उमड पडा। प्रस्ताव समय पर घटित हुआ। विरोधी पार्टी ने इतना शोर-गुल मचाया कि उत्सव का रूप भीषण सघर्ष में बदल गया। जलसे की व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गयी। उपस्थित नेतागण, पडित वृन्द तथा अनेक वक्ता एव सम्भ्रान्त अतिथि भाग-दौड मे निकलने और जान बचाने का मार्ग खोजने लगे। ऐसे समय मे लालाजी ने युक्ति से काम लिया। उन्होने पडाल की पिछली ओर की कनातें तुटवाकर एक छोटा-सा द्वार बनाया और सभ्य-जनो को ससम्मान उस उमड़ती भीड मे से कुशलपूर्वक निकालकर सुरक्षित स्थान पर भेजा। उस समय की लालाजी की सूझ और विरोधी पक्ष का आक्रमणात्मक भयावना दृश्य मुझे अभी तक खूब याद आता रहता है।

लालाजी का हृष्ट-पुष्ट शरीर रोग से जर्जरित हो गया था। घुटनो मे दर्द और आंखो में पीड़ा रहने लगी थी। आखो की शक्ति कम हो जाने से, वे अब बहुधा रोग-शय्या पर ही रहने लगे थे। एक दिन मै उनसे मिलने के लिए उनके पास गया, मैंने जीने मे से ही आवाज लगाई— लालाजी ! और वे 'आओ भाई आओ' कहते हुए वे खडे होकर मुस्कराने लगे। बैठने का संकेत करते हुए, झिझकते से बोले—ऐं आप, आप कौन साहब हैं। मैं चकित-सा होकर बोला। लालाजी ! क्या आपने मुझे नही पहिचाना है। और उन्हे कुछ चेत-सी आई। बोले, अहा ! अरे भाई गिरिवरसिहजी हैं। अपने पर वे पश्चाताप-सा करते हुए बोले, भाई ! कम सुनने लगा है। कम दीखने लगा है। नाराज न होना। इतना कहते-कहते वे घर में गये, ४ केले, २ सन्तरे और कुछ मिष्टान लाकर मेरे सामने रख दिया। अब मैं उनकी आत्म-वत्सलता, ममत्व और निश्छल प्रेम पर विचार करते हुए उनसे अनेक बातें कर रहा था।

मैं सन् १९६३ मे पुस्तकालय-विज्ञान के प्रशिक्षणार्थ मुस्लिम यूनिवर्सिटी अलीगढ़ गया। मेरी आर्थिक स्थिति सीमित थी। परिवार का भार वहन करने मे भी मैं अशक्त था। उन दिनो ला० नन्हेमल जैन जिन्दा थे और मैने उन्ही की प्रेरणा से प्रेरित होकर वहा जाने का साहस किया था। यूनीवर्सिटी से स्वीकृति और उधर आर्थिक विषमता, से मैं परेशान था। लालाजी के फड से मासिक छात्र-वृत्ति का वचन मिलने से मैं ट्रेनिंग पर चला गया। कुछ कालान्तर पश्चात् छात्रवृत्ति का मिलना बन्द हो जाने से मैं दुविधा मे पड़ गया। ट्रेनिंग रूपी सरिता की मझधार मे मेरी तरणी डावा-डोल थी। इसको पार लगाने के सहायतार्थ एक पत्र मैंने लालाजी को अलीगढ से लिखा। उन्होंने तुरन्त अपनी भगनी की पुत्र-वधू को जिनके पास छात्रो के लिये मासिक-छात्रवृत्ति का कोष था, एक पत्र भेज देने के लिये मुझे लिखा। तुरन्त वहां से सहायता चालू हो गयी और मैं शान्ति-पूर्वक शिक्षण प्राप्त कर वहां से चला आया।

एकता के स्तंभ

सूरजभान जैन "प्रेम"
आगरा

लालाजी की जीवन-यात्रा

मानव जीवन के दो पहलू है एक सामाजिक दूसरा धार्मिक। लालाजी ने अपने जीवन मे दोनो भागो को अपनाया था। उन्होने सामाजिक और धार्मिक दोनो क्षेत्रो मे अपना जीवन व्यतीत किया। राष्ट्रीयता, परोपकार, सेवाभाव और सदाचार उनके जीवन के मुख्य अग थे। उन्होने देश सेवा को अपने जीवन मे उतारा और भगवान महावीर के दो अटल सिद्धान्त सत्य और अहिंसा को अपने जीवन मे अपनाया। बड़े बडे विद्वानो का मत है कि वह जीवन क्या जिसे कोई जान न सके। यो तो पशु भी अपना जीवन व्यतीत कर जाते हैं। और मनुष्य भी अपने परिवार के भरण पोषण करते-करते ससार चले जाते है। उन्हे कोई ज्ञान ही नही होपाता कि कब आए और कब गए। ऐसे विरले ही व्यक्ति होते हैं जो देश सेवा मे रत रहते हुए धार्मिक ज्ञान उपार्जन कर अपना कल्याण कर जाते है। और अपनी स्मृति छोड़ जाते है। ऐसे विरले व्यक्तियो मे लाला तनसुखरायजी का नाम भी आता है, जिन्होंने अपने जीवन का एक एक क्षण परोपकार और देश सेवा मे लगाया।

समाज की एकता के लिए अ० भा० दि० जैन परिषद् मे आपने तन, मन, धन से पूरा सहयोग दिया। आज यह परिषद् का वृक्ष आपका सींचा हुआ ही है।

लालाजी का जन्म सन् १८९९ मे मुलतान मे हुआ। आपके पिता श्री जौहरीलालजी अग्रवाल जैन थे। सन् १९०८ में ब्र० शीतलप्रसादजी मुलतान पधारे। वह उनकी सेवा करते रहे। बचपन से ही लालाजी को धार्मिक प्रवृत्ति और सामाजिक कार्यो मे अनुराग रहा।

सन् १९१४ मे इनके पिता सुकुटुम्ब भटिंडा चले गए। उन्होने सन् १९१८ में सरकारी रेलवे विभाग मे नौकरी की। सन् १९२१ मे गाधीजी के असहयोग के कारण राजनैतिक क्षेत्र में सक्रिय सहयोग देने लगे और त्यागपत्र देकर नौकरी छोड दी। स्वदेशी वस्त्रो और वस्तुओ के प्रयोग का वृत ले लिया तथा सैकडो व्यक्यिो से स्वदेशी वस्तुओ की प्रतिज्ञा कराई। खादी प्रचार, हिन्दी भाषा प्रचार समिति में जोरो से काम किया। सन् १९२४ मे आप अपने जन्म स्थान रोहतक मे आगए। सन् १९२६ मे पजाब की क्रान्तिकारी सस्था नौजवान भारत सभा के सदस्य बने। १९३३ तक आपने असहयोग आन्दोलन मे जोरो से कार्य किया। जिससे सी० आई० डी० पुलिस भी २ साल तक पीछे लगी रही और ८ मास का कारावास भी भोगना पड़ा। सन् ३१-३२ मे हरिजन सुधार का भी कार्य किया। इस बीच मे पजाब क्रान्तीय काग्रेस कमेटी की कार्यकारणी के सदस्य चुने गए और काग्रेस ने आपको प्रतिनिधि चुन कर लाहौर अधिवेशन में भेजा। वैसे तो राष्ट्रीयता से जीवन भर प्रेम रहा और दीन दु खियो के प्रति करुणा भाव सदा ही उमडता रहा। सन् १९३३ मे रोहतक मे बाढ आई और आपने बाढ पडितो के लिए एक रिलीफ कमेटी बनाई।

सन् १९३४ मे आप लक्ष्मी बीमा कपनी के मैनेजर होकर दिल्ली चले आए और इसी साल दिल्ली में आपने अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद् का सफल अधिवेशन कराया। उसमे आप स्वागत समिति के प्रधान मत्री थे। यह अधिवेशन बडी सज धज के साथ विशाल पैमाने पर हुआ।

आपने सन् ३४ से ३८ तक ५ वर्ष तक परिषद् का कार्य बहुत जोरो से किया। देश भर मे इसका प्रचार किया और कई स्थानो पर परिषद् के सफल अधिवेशन कराए। वास्तव मे आप परिषद् के प्राण थे।

सन् ३९ मे आपने कोआपरेटिव बैंक और जैन क्लब की स्थापना की। वीर सेवा मदिर के वीर शासक जयन्ती समारोह मे सभापति बनाए गए। उसी वर्ष निवसेडा मे भीलो की सभा के प्रधान बनाए गए और आप ने ५००० भीलो से मास-भोजन का त्याग कराया।

सन् ४० में जिला मडल के प्रधान मत्री और ४१ मे नई दिल्ली काग्रेस कमेटी के प्रधान चुने गए। सन् ४२ ४३ मे काग्रेस के "भारत छोडो" आन्दोलन मे तन, मन और धन से पूरा सहयोग दिया। सन् ४४-४५ मे वनस्पति घी निषेध कमेटी के पद पर रहते हुए हजारो व्यक्तियो के हस्ताक्षर करा कर सरकार के पास भेजे।

सन् ४६ मे अ० भा० मानव धर्म सम्मेलन के प्रधान मत्री रहकर जोरो से कार्य किया। सन् ४७ से ५१ तक अग्रवाल महा सभा और मारवाडी सम्मेलन के कार्य को खूब बढाया और प्रधान मत्री चुने गए। इसके पश्चात् प्रधान भी बनाए गए। सन् ५५ मे भारत के शाकाहार का प्रचार किया। सन् ५६ से ५८ तक जैन परिषद् के खडवा अधिवेशन मे प्रधान मत्री चुने गए और दरियागज दिल्ली काग्रेस मडल के सदस्य चुने गए। सन् ५८ से ६४ तक अस्वस्थ रहते हुए भी मे यथाशक्ति भाग लेते रहे। इसप्रकार आपका सारा जीवन सामाजिक, राष्ट्रीय और धार्मिक कार्यो में व्यतीत हुआ। अन्त मे १४ जुलाई ६४ को अपना व्यक्तित्व दिखा कर ससार से विदा हो गए।

× × × ×

मनुष्य की उन्नति के लिए जैन धर्म का चरित्र बहुत ही लाभकारी है। यह धर्म बहुत ही ठीक, स्वतन्त्र, सादा तथा मूल्यवान है। ब्राह्मणो के प्रचलित धर्मों से वह एकदम भिन्न है। साथ ही साथ बौद्ध धर्म की तरह नास्तिक भी नही है।

—मेगास्थनीज, ग्रीक इतिहासकार

अदम्य साहस।

श्री कौछल जी वकील
सागर

मध्य भारत के लब्ध-प्रतिष्ठित वकीलो मे श्री कौछल जी का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है जो समाज और देश सेवा के लिए सदैव अग्रसर रहते है। आपके समाज मे सुधार करने का भाव प्रशसनीय है। लालाजी के साथ आपने जाति मे सुधार और रूढ़ियो के विरोध मे ऐसी शक्तिशाली आवाज उठाई जिसके कारण मध्य भारत मे अपूर्व जागृति दिखाई देती है। आपका लालाजी के प्रति अति अनुराग था।

श्री लालाजी मेरे आत्मीय मित्रो मे से रहे। मेरा उनसे घनिष्ठ प्रेम रहा। मेरा उनसे सन् ४० मे अधिवेशन काल से सम्बन्ध रहा और मेरे सभापतित्व मे जो परिषद् ने जैन समाज के एकीकरण और साम्प्रदायिकता तथा जातिवाद को नष्ट करने मे जो कार्य किया, और आर्थिक परिस्थिति जब परिषद् की ठीक नही रही उस समय तूफानी दौरा करके तथा आबू के धर्म-विरोधी कर का उन्मूलन करके रहे। साथ-ही-साथ जैन श्वेताम्बरी साधुवर्ग और कार्यकर्ताओ का अनन्य सहयोग प्राप्त कर विजयश्री परिषद् को प्रदान की। कितना परिश्रम ग्रीष्म-काल में राजपूताना का दौरा कर उठाया कितनी सहिष्णुता और त्याग लालाजी ने किया। यह उनके अदम्य साहस का परिचय है। मेरा उनसे इतना भाईचारा रहा है कि जो अन्त समय तक बना रहा। सन् ६२ में मेरी उनसे आखिरी मुलाकात हुई जब वे रोग मे ग्रसित थे, मगर फिर भी उनके प्रेम मे वही आत्मीयता रही।

× × × ×

मानवता के महान् पूत

श्री ग्यानवती जैन
जैनयात्रा संघ, दिल्ली

हे धरती के प्रिय सपूत।
जन मत के तनसुखराय प्रिय ॥
विश्वशान्ति के अडिग प्रणेता।
अमर वीर सेनानी हिय ॥
धन्य-धन्य तन श्रम निर्माता।
शान्त क्रान्त के अग्रिम दूत ॥
सादर श्रद्धा पुष्प समर्पित।
मानवता के महान पूत ॥

× × × ×

मेरे सामाजिक गुरु

श्री भगतरामजैन
बहादुरगढ़ रोड, दिल्ली

मैं लाला तनसुखरायजी को सन १९३२-३३ से जानता था, परन्तु मुझे उनके साथ कार्य करने का अवसर १९४४ से हुआ। लाला दीपचन्दजी सम्पादक वर्धमान आदि के प्रयत्नो से दिल्ली मे स्थानीय अ० भा० दिगम्बर जैन परिषद की शाखा स्थापित हुई जिसमे मत्री पद का कार्य करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। तब से लालाजी से मेरा सम्पर्क दिनो दिन बढता गया।

लाला भगतरामजी परिषद के प्रतिष्ठित कार्यकर्ताओ मे से है। बहुत अच्छे समाज-सेवी और उत्तम आन्दोलन करने वाले है। महावीर जयन्ती के जलूस और परिषद के कार्यों मे सदैव अग्रसर होकर सेवा के कार्यो मे अग्रसर रहते है। समाज को आपसे बडी आशाये है।

परिषद के मुजफ्फरनगर अधिवेशन पर लालाजी प्रधान मत्री व मुझे मत्री चुने जाने के कारण सामाजिक कार्यो मे उनका मेरा हर समय का साथ होगया। बाद मे तो वह इतना बढ गया कि हर सामाजिक कार्य मे वह मुझे अपने साथ रखते थे।

वह कार्यकर्ता की बडी कदर करते थे व उसकी हिम्मत बढाते रहते थे। उनमे प्रचार करने का बड़ा गुण था। जब भी कोई कार्य हाथ मे लेते थे, अपने ढग से करते थे। दूसरो का दखल उन्हे पसन्द नही होता था। अपने विचार के पक्के थे। उनके समय मे समाज मे कई आन्दोलन हुए। उन्होने बडी हिम्मत से उनका प्रचार किया। हर क्षेत्र मे उनके कार्यो के कारण उन्हे प्रतिष्ठा प्राप्त हुई। उनका समस्त जीवन राष्ट्रीय व सामाजिक कार्यो मे अधिकतर लगा।

उनका स्वभाव गर्म होने पर भी थोड़ी देर मे ठीक हो जाता था। मेरे साथ अनेको अवसर आये कि वह बिगडे परन्तु कुछ देर बाद वैसे के वैसे हो जाते थे। सुधारक होने पर भी धर्म मे पक्के थे। जैन धर्म की आन पर हर जगह लोहा लेने को तैयार रहते थे। उनके विषय मे क्या लिखू, समझ मे नही आ रहा है। अनेको उदाहरण है जिनसे उनकी हिम्मत, कार्य करने की दृढता की झाँकी प्राप्त हो सकती है। परन्तु मैं केवल एक का उलेख यहा करके अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हू।

१९५० मे जब परिषद का अधिवेशन दिल्ली में हुआ, उसमें आने वाले हरिजन मन्दिर-प्रवेश के प्रस्ताव पर समाज मे बडा वादविवाद हुआ था। उसके पास होने के कुछ दिनो बाद मुझे तीन पत्र प्राप्त हुए जिनमे बडा बुरा-भला लिखने के साथ-साथ मारने तक की

(शेष पृष्ठ ८२ पर)

मंजुल मूर्ति

श्रद्धामय व्यक्तित्व

श्री केशरलाल बख्शी
न्यू कालोनी, जयपुर

> माननीय केशरलालजी बख्शी जयपुर जैन समाज के वयोवृद्ध समाज सेवी और सुप्रसिद्ध कार्यकर्ता है। आपकी देखरेख में कई सस्थाओ का सचालन सुचारु रूप से चल रहा है। लालाजी के आप पुराने मित्र है। आपने लालाजी के प्रति उत्तम उद्गार प्रकट किए है।

लाला तनसुखरायजी जैन वडे ही उच्च व उदार विचारो के व्यक्ति थे। वे सच्चे देशभक्त, प्रसिद्ध समाज-सेवी व कर्मठ नेता थे। युवको मे नवीन जागृति पैदा करना व उन्हे देश तथा समाज-सेवा के लिए प्रोत्साहन देने की उसकी उत्कठ अभिलाषा थी। उनकी प्रकृति व आकृति भी बहुत सौम्य थी। उनकी सम्पर्क मे जो भी व्यक्ति एक वार आ जाता था, वह उनके आकर्षण के कारण सदा के लिए उनका हो जाता था।

वैसे लालाजी से मेरा परिचय तो बहुत समय पहले से था, लेकिन उनसे निकट सम्पर्क सन् १८५२ मे हुआ, जव कि उन्होने उद्योग उन्नतिमडल नाम की सस्था का जयपुर मे उद्घाटन किया और उसका आफिस मेरे मकान वख्शी भवन, न्यू कालोनी, जयपुर मे ही रखा—तब से मेरा उनके साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बढता ही गया—और मैने उन्हे अत्यत ही व्यवहारिक व सर्वसम्पन्न व्यक्ति पाया। उन्होने इसी विशेष गुण के कारण प्रत्येक क्षेत्र मे सफलता प्राप्त की।

आज जव कि देश व समाज मे उनके जैसे कर्मठ व समाज-सेवी नेता की अत्यत आवश्यकता थी, वे हमारे बीच मे से असमय मे ही उठ गए। समाज मे उनके अभाव की क्षति-पूर्ति निकट भविष्य में सम्भव नही है। मै दिवगत आत्मा के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

(पृष्ठ ८० का शेष)

धमकी दी गयी थी। जब परिषद में उन पत्रो पर चर्चा चली, तव किसी की राय थी कि इन्हें पुलिस मे दे दिया जावे, किसी की राय थी कि ऐसी तरफ ना जाया जावे जहा इसका डर हो, व हिफाजत से जाया जावे आदि २, परन्तु लालाजी ने कहा था कि इन पत्रो को पुलिस मे देने की आवश्यकता नही है और न किसी प्रकार का भय खाने की, वेफिक्र जहा भी आओ-जाओ। मेरी राय भी उनके अनुसार थी। ऐसा ही किया।

लालाजी को मैं अपना सामाजिक गुरू मानता था। जब भी कोई अडचन आती थी उनसे विचार-विमर्श करने पर हल जाती थी। इतनी लगन वाले बहुत ही कम पैदा होते हैं।

निडर कार्यकर्ता

श्री विशनचन्द न ओवरसियर
साहू सीमेंट सर्विस, नई दिल्ली

लाला विशनचन्दजी लालाजी के पुराने साथियो मे से है। महावीर जयन्ती का उत्सव प्रारभ कराने और जैन मित्रमडल द्वारा साहित्य वितरण करने का कार्य आपकी देखरेख मे हुआ था। आपने बड़ी लगन के साथ समाज-सेवा का कार्य प्रारभ किया था। वयोवृद्ध होने पर सेवा कार्यो मे सबसे आगे है। लालाजी की सेवाओ का आपने सुन्दर ढग से वर्णन किया है जो पठनीय है।
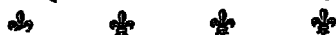
आपसे लगभग ३० वर्ष पुराने सबन्ध थे। जब भी मैं बाहर से दिल्ली आता, आपसे जरूर मिलता था, और आपसे जैन धर्म प्रचार व जैन समाज की उन्नति के सम्बन्ध मे बातें होती थी। आप की जैन धर्म प्रचार व जैन समाज को ऊचा उठाने मे बड़ी बडी उमगें, सच्ची लगन, धुन व ऊचे ऊचे विचार तथा श्रद्धा थी। आपका सुझाव बड़ा अच्छा और लाभदायक होता था। लेकिन आप कई साल से पेट के ओपरेशन आदि के कारण बीमार रहते थे। इसी कारण आपका स्वास्थ्य ठीक नही रहता था इसलिये इस दौरान मे कुछ कार्य नही कर सके, लेकिन फिर भी बीमार होते हुए भी आप जैन धर्म के विषय मे कुछ-न-कुछ लिखते ही रहते थे, जैसा कि पत्रो के देखने से पता चलता है।

आज वह हमारे बीच नही है, हमारे से अलग हो गये है। मै अपने पुराने साथी श्री ला० उमरावसिंह, ला० रघुवीरसिंह, महोकमलाल, जौहरीमल सर्राफ, ला० महावीरप्रसाद (नूरीमल) व ला० चुन्नीलाल रोशनाई वाले जो जैन मित्रमडल दिल्ली के खास कार्यकर्ताओ मे से थे, उनका तो दु ख भूल ही न सका था कि अचानक आज श्री ला० तनसुखरायजी जैन का भी दु ख सहन करना पड़ रहा है।

आपके निधन से जैन समाज के कार्यों मे बड़ी भारी हानि हुई है, मैं आपको श्रद्धाजली भेंट करता हुआ श्री जी से प्रार्थना करता हूँ कि आपकी आत्मा को शान्ति प्राप्त हो और उनके कुटुम्बी जनो को इस दुखद वियोग मे धैर्य प्राप्त हो।

श्रीमान ला० तनसुखरायजी जैन रोहतक के रहने वाले थे, कनाट प्लेस नई दिल्ली में आपने एक तिलक बीमा कम्पनी के नाम से एक फर्म खोली थी, किसी कारण से वह फेल हो जाने से बन्द करनी पडी उसके बाद वह देहली मे ही रहकर अपना कार्य करने लगे और २१ दरयागज मे आपने अपना मकान बनवा लिया। आप उसी मे रहते थे।

आप जैन समाज तथा और दूसरे समाजो में सिपाही के रूप मे सचाई व बहादुरी के साथ निडर होकर कार्य करते थे। आपके दिलेरपन के बारे मे क्या २ बातें बतलाऊँ, अब से १८ वर्ष पूर्व जब मैं जैन मित्र मडल दिल्ली का मत्री था तब आपको भी अपने साथ कार्य करने के वास्ते जैन मित्र मडल देहली के एक विभाग का मत्री बना दिया था।

श्री महावीर जयन्ती मनाने के कुछ वर्षो वाद हम लोगो के दिलो मे यह विचार पैदा हुए कि श्री महावीर जयन्ती का नये ढग से वडे पैमाने मे (विराट जलूस) निकाला जाये जिसके द्वारा जैन धर्म के प्रचार मे और वढोतरी हो। लेकिन वर्षो तक दिल्ली जैन समाज के अलग २ विचारो के कारण इस कार्य मे सफलता प्राप्त न हो सकी यह मामला झगड़े मे पडा रहा। लेकिन इस कार्य को असली जामा पहनाने लाने के वास्ते दिल मे सच्ची लगन व धुन लगी हुई थी, विचार किया कि इस कार्य मे किस प्रकार कामयाबी (सफलता) प्राप्त हो सकती है। आखिरकार मैने आपसे श्री महावीर जयन्ती के जलूस निकालने के वारे मे मशवरा किया, आप इस कार्य के वास्ते स्वय तैय्यार हो गये, चुनाचे जैन मित्रमडल दिल्ली की कार्यकारणी कमेटी ने महावीर जयन्ती का जलूस निकालने की मजूरी दे दी। और जलूस के निकालने की वागडोर स्व० श्रीमान ला० तनसुखराय जैन ने अपने हाथ मे ले ली। और आपके वतलाए हुए ढग के मुताविक जलूस की तैय्यारी की गई। . ... की कम्पनी वाग (. ..... .) से वड़े-वडे ऊचे झडो आदि के साथ "श्री महावीर जयन्ती की छुट्टी होनी चाहिये" के नारो के साथ जलूस वडी धूम-धाम के साथ निकाला गया तमाम वाजार झडी आदि से सजे हुये थे, और उस रोज देहली के तमाम वाजार वद रहे, भूखो को खाना खिलाया गया। महावीर जयन्ती की छुट्टी का प्रस्ताव पास किया गया, सब से पहले जैन मित्र मडल दिल्ली ने ही महावीर जयन्ती का जलसा व जलूस तथा महावीर जयन्ती की छुट्टी मागने का आन्दोलन भारत वर्ष मे शुरू किया था जिसके कारण अब गाव-गाव में महावीर जयन्ती मनाई जा रही है और बहुत से प्रान्तो मे महावीर जयन्ती की छुट्टी होने लगी है। यह था ला० जी की वहादुरी व निडरपन का कार्य जिससे सदा के लिये जैन समाज के वच्चे २ के दिलो से डर निकला और यही कारण है कि आज दिल्ली में बहुत बडे पैमाने के रूप में श्री महावीर जयन्ती का जलूस निकाला जाता है।

आप भारतवर्ष दि० जैन परिषद के भी महामन्त्री रह चुके है। मुझे भी परिषद के कार्यों से बडी दिलचस्पी रही है, चुनाचे सन १९४० मे जब भारतवर्ष दि० जैन परिषद का सालाना अधिवेशन झासी मे हुआ था तव मै भी देहली से उनके साथ गया था। परिषद के पडाल मे जव रात्रि को जलसा हो रहा था तब जैन समाज के कुछ भाइयो ने झगडा शुरू कर दिया कि परिषद का जलसा न होने पावे।

तब भी आपने वडी होशियारी व बहादुरी से किसी वात की परवाह न करते हुए भीड मे वडी हिम्मत व बुद्धि के साथ निडर होकर स्टेज पर खडे होकर पब्लिक को शात किया और परिषद के सालाना अधिवेशन मे शान्ति के साथ सफलता प्राप्त हुई।

दिल्ली मे जव अखिल भारतीय दि० जैन महासभा का सालाना अधिवेशन स्वर्गीय श्रीमान दानवीर ला० सेठ हुकम चन्द जैन इन्दौर निवासी के सभापतित्व मे हुआ था, तव भी जैन समाज को परिषद के कार्यो के वारे मे भडकाया गया था, उस समय भी आप किसी से न डरे आप परिषद के असूलो पर डटे रहे और निडर होकर श्री ला० सेठ हुकमचन्दजी जैन आदि के मुकावले मे खुद जोर शोर के साथ भाषण दिया और वतलाया कि परिषद जो कार्य कर रही है

ठीक कर रही है ठोस कार्य कर रही है वह समय दूर नही है जब भारतवर्ष के हर-जैनी को इस मे शामिल होकर इसके असूलो पर कार्य करना पड़ेगा, आखिरकार वाद-विवाद के बाद यह हुआ कि महासभा और परिषद एक हो जावे। विचार किया गया। तै पाया कि श्री महावीर जी मे महासभा और परिषद की मीटिंग करके इस मामले को सुलझाया जावे। इस प्रकार के बीच मे कई बार झगडे आये और सब मे निडर होकर कार्य किये। स्व० श्रीमान दानवीर ला० सेठ हुकमचन्द जैन भी आपका बडा आदर करते थे।

आप आल इण्डिया कांग्रेस के भी कार्य कर्त्ता थे। वहा भी आपने खूब कार्य किया है। आप जैन महामडल के भी मत्री रह चुके है। इसके अलावा आप और बहुत सी सस्थाओ के कार्य कर्ता व सभासद थे। आपने समाज में और बहुत से कार्य किये है जिनके बारे में मुझे जानकारी नही है। मेरी भावना है कि जैन समाज मे ऐसे कार्य कर्ता पैदा होकर जैन समाज के कार्यों को अपने हाथो मे ले।

स्वजनों की ओर से

श्री जगदीशराय गुप्ता

मानसर मंडी

भाई साहब तनसुखराय जैन मे सेवक वृति, प्रेम भाव, उदारहृदयता का समावेश जब जबसे मुझे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तभी से मैंने देखा। उनके हृदय मे प्रेम की ऐसी भावना घर कर गई थी जो उन्हे सभी को एक दृष्टि से देखने को लालायित करती थी, जीवन-पर्यन्त उन्होने कांग्रेस की सेवा मे जो भाग लिया वह प्रशसनीय है। मानवता की टूटी-फूटी बिखरी अभिलाषाओ रूपी शृ खलाओ को नये रूप मे लाने का साहस भी उन्ही की एक जीती-जागती कसौटी थी—एक महान् आत्मा मानव के रूप मे इस भूलोक पर उतरी थी जो अपनी क्षणिक झलक दिखाकर उस लोक मे चली गई जिसे हम मे से बहुत कम लोग समझने का प्रयत्न करते है। उस दिवंगत आत्मा को मैं शत् शत् प्रणाम करता हूं।

निर्भीक साहसी वीर

सेठ मिश्रीलालजी पाटनी
लश्कर, मध्यप्रदेश

सेठ मिश्रीलालजी पाटनी मध्य प्रदेश के ऐसे खामोश कार्यकर्ता है जो अपने कार्यों से धर्म और समाज की सच्ची सेवा करते रहते है। यश की पर्वाह नही करते। लश्कर (ग्वालियर) के कई सस्थाओ के सचालक है। जैन मिशन की प्रदर्शनी विभाग के सर्वेसर्वा है। जैन धर्म प्रचार और पुरातत्व के प्रति आपकी विशेष रुचि है। आपने ग्रथ के कार्य मे समुचित सहयोग प्रदान किया है।

श्रीयुत लाला तनसुखरायजी एक कर्मठ साहसी जैन वीर युवक, एक जैन महान विभूति थे। उन्हे जैन धर्म व जैन समाज व राष्ट्रीय एव समाज की प्रत्येक प्रकार की निर्भीकता से सेवाए की जो भुलाई नही जा सकती वह चिरस्मरणीय है व रहेगी जिनका विशेष विस्तृत उल्लेख पाठकगणो को आगे पढने को मिलेगा। मै ऐसे महान जैन वीर एव साहसी व्यक्ति के लिए श्रद्धाजलि भेज रहा हूँ और जो समिति ने अभिनदन ग्रथ संकलन कर प्रकाशित किया जाने का प्रयत्न चालू किया है वह अति उत्तम है और यह कार्य समिति के कार्यक्रम के अनुसार सम्पूर्ण हो, यही मेरी शुभ कामना है।

जैन मन्दिर के पुस्तकालय के प्रबन्धको से निवेदन है कि ऐसे ग्रथ को खरीद कर मन्दिर में व पुस्तकालयो मे अवश्य स्मृति हेतु रखे। साहसी वीरता इससे प्रगट होती है। प्रत्येक समाज के चतुर साहसी वीर विद्वान लोग भी इसे अवश्य पढ कर पुनरावृत्ति कर साहसी वीर बन कर चलें।

कह चरे? कह चट्टे? कहमासे? कह सए?
कह भुजन्तो भासन्तो पाव कम्म न बन्धइ?

(भन्ते! कैसे चले? कैसे खडा हो? कैसे बैठे? कैसे सोए? कैसे भोजन करे? कैसे बोले?—जिससे कि पाप कर्म का बन्धन न हो)

जय चरे जयं चट्ठे जयमासे जय सए!
जय भुजन्तो भासन्तो पाव कम्म न बन्धइ!!

(आयुष्मन्! विवेक से चलो, विवेक से खड़ा हो, विवेक से बैठो, विवेक से सोए, विवेक से भोजन करे और विवेक से ही बोले तो पाप कर्म नही बँध सकता)

कर्मठ सेनानी लाला तनसुखरायजी

बाबूलाल जैन जमादार
नया बाजार बड़ौत, मेरठ

इस नीति को स्मरण करते हुए हम कह सकते हैं कि लाला जी तनसुखरायजी ने समाज और वंश की उन्नति मे पूर्ण सहयोग दिया। असाधारण प्रतिभा वाले इस कर्मठ सेनानी के साथ हजारो समाज-सेवक काम करते थे। और हँसते हँसते कार्य को सफल बना देते थे।

श्री बाबू लाल जी जैन 'जमादार' बड़ौत कालेज मे जैन धर्म के प्राध्यापक है। ओजस्वी वक्ता और कुशल निर्भीक कार्यकर्ता है। समाज को आपसे बड़ी आशाएँ हैं। आप समाज के ऐसे आज्ञाकारी सिपाही है जब समाज सेवा का अवसर आता है तत्काल सेवा के लिए तत्पर रहते है।

लालाजी के साथ कार्य करने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हुआ। इनमे से कुछ सस्मरण पाठको के सम्मुख उपस्थित कर रहा हूँ।

संस्मरण नं० १

"मैं कहता हूँ कोई भी वालण्टियर प्रतिकार की भावना से कार्य नही करेगा। सिर्फ जूते ही तो हम लोगो पर पड़े है, सिर ही तो टूटे हैं, कौनसी बड़ी मुसीबत सामने आ गई जो हम प्रतिशोध की ज्वाला मे जलने लगे है। जलसा होगा और उसी स्थान पर होगा जहाँ बाबू रतन लाल जी व बाबूलाल धनुजी पिटे है। लेकिन नवजवानो हिम्मत से काम लो और रात्रि को मीटिंग मे अधिक से अधिक उपस्थित हो जाओ तुम्हारा दस्सा पूजाधिकार प्रस्ताव निश्चित पास होगा।"

"परिवर्तनशील संसारे मृत को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्॥

इन वाक्यो को सुनकर नवयुवको मे असीम चेतना जागृत हुई। बड़ौत, मुजफ्फरनगर, सरधना तथा दिल्ली के युवको ने अपने नायक की बात मानकर अदम्य उत्साह से सभा-स्थल की ओर कूच किया। और अपने "दस्सा-पूजा-अधिकार" का प्रस्ताव उस प्रागण मे पास किया जहाँ पर दस्सो के विरोधी लोगो ने मारपीट कर के उन्हें पीछे हटा दिया था।

उपर्युक्त घटना १९३८ ई० मे श्री हस्तिनापुर क्षेत्र के विशाल मेले पर परिषद के जलसे के समय पर घटित हुई थी। दस्सा पूजा अधिकार के पक्ष वालो की काफी पिटाई शास्त्र सभा-स्थल पर ही हुई थी जिसमे लाला तनसुखरायजी ने अदम्य साहस का परिचय दिया था। इसमे भाई शीलचन्द्रजी मवाने वालो की खतौली पाठशाला मे लगी हुई नौकरी छूटी थी लेकिन लालाजी के सहयोग से दैनिक 'विश्वामित्र' मे नियुक्ति शीघ्र हो गई थी।

मेरे भी १४ रु० से १६ रु० अर्थात् २ रु० की तरक्की शीघ्र हो गई थी। नव-जवानों को पूर्ण विश्वास आपके सहयोग का सदैव रहा है और यही कारण है कि आपके साथ कार्य करने वाला सदैव प्रसन्न व श्रीसम्पन्न रहा।

संस्मरण नं० दो

सन् १९५० ई० मे दिल्ली के परेड ग्राउण्ड में विशाल पण्डाल के चारों ओर परिषद के अधिवेशन के समय पर हरिजन विरोधी आन्दोलन के कार्यकर्ता अपने मोर्चे लगाए हुए डटे खडे थे। दि० जैन कॉलिज के स्वयसेवक सतर्कता से ड्यूटी दे रहे थे कि यकायक लालाजी मेरे डेरे पर लपके हुए चले आए। उस समय भाई चतरसेनजी व शीलचन्द्रजी सहित उत्तर प्रदेश के प्रमुख कार्यकर्ता विचार-विमर्श मे लीन थे कि लालाजी ने आते ही शीघ्र सेनापति की तरह आदेश दिया कि "आप लोग मेरे मकान पर शीघ्र पहुँचो समस्या विकट हो चुकी है इस पर बात करनी है।" सब लोगो ने कहा कि यही बता दी जाए तो अच्छा है इस पर लालाजी एकदम बिगड़ पडे बोले "विरोधियो के मोर्चे के अन्दर विचार-विमर्श करना अक्लमन्दी नही है, तुम जैसा समझो करो मेरा काम जो था कह दिया।"

यह कहकर लालाजी यकायक चले गए। हम लोग शीघ्र लालाजी के मकान पर पहुंचे जहाँ पर मान्यवर बाबू रतनलालजी बिजनौर और कुछ दिल्ली के प्रमुख सज्जन स्व० लाला नन्हेमलजी स्व० लाला रघुवीरसिंहजी लाला भगतरामजी बाबू हसकुमारजी आदि गभीर मुद्रा मे बैठे हुए कुछ सोच रहे थे।

हम लोगो को यकायक आता देखकर मुस्कराए और बोले कि "लाला तनसुखरायजी को क्या हो गया जो प्रत्येक कार्य मे वहम करने लगे हैं। उन्हे उपद्रव का ही खतरा समा रहा है।"

सच यह था कि हम लोगो ने लालाजी की बात का आधा विश्वास किया था और जिन लोगों पर विश्वास किया था वे वास्तव में साथी थे नही इस बात को लालाजी अच्छी तरह जानते थे। इसीलिए वे परिषद अधिवेशन के प्रत्येक कार्य को बगैर पदाधिकारी हुए भी पूर्ण जिम्मेवारी से देखते थे।

आखिर परिषद अधिवेशन का उद्घाटन मान्यवर श्री श्रीप्रकाशजी तत्कालीन राज्यपाल बम्बई द्वारा हुआ। माननीय साहू श्रेयासप्रसादजी ने अध्यक्षता की और मच पर मा० साहू शान्तिप्रसादजी सहित जैन समाज के प्रसिद्ध कर्मठ कार्यकर्ता उपस्थित होकर अधिवेशन की शोभा बढ़ा रहे थे लेकिन लाला तनसुखरायजी मच पर न आकर स्वयसेवको के पास भागे-भागे फिर रहे थे। उन्हे चैन नही था।

जिस समय मच पर व पण्डाल मे हरिजन-मन्दिर-प्रवेश पर हगामा मचा उस समय सबकी आँखे लाला तनसुखरायजी पर ही जाकर टिकी। उनकी दूरदर्शिता पर सबको विश्वास हुआ। साहू बन्धुओ को येनकेन प्रकारेण पण्डाल से बाहर निकालकर ले जाना पड़ा।

श्री दिगम्बर जैन कालिज

बड़ौत (मेरठ) उत्तरप्रदेश

श्री दिगम्बर जैन कालिज बडौत की स्थापना २० जनवरी १९१६ को एक छोटीसी पाठशाला के रूप में हुई थी। सन् १९२१ मे हाई स्कूल के लिये मान्यता प्राप्त हुई तथा समाज के सतत प्रयत्नो से हाईस्कूल १९४० से इण्टर कालिज के रूप मे परिणत हो गया। उसी समय स्वर्गीय ला० तनसुखरायजी के कर-कमलो द्वारा इसके नवीन भवन का शिलान्यास हुआ। आपने कालिज को १००१) रु० का दान दिया। आजकल उस भवन मे दिगम्बर जैन पॉलिटैकनिक कक्षाएँ चल रही हैं।

वर्तमान मे दिगम्बर जैन कालिज में एम० ए०, एम० एस० सी०, वी० ए०, बी० एस० सी०, तथा वी० ए० की शिक्षा का समुचित प्रवन्ध है तथा इसी के अन्तर्गत एक इण्टर कालिज, प्राइमरी स्कूल, वालनिकेतन एव बालिका विद्यालय स्थापित हैं। इन सब सस्थाओ में लगभग ३००० छात्र शिक्षा पा रहे हैं।

●
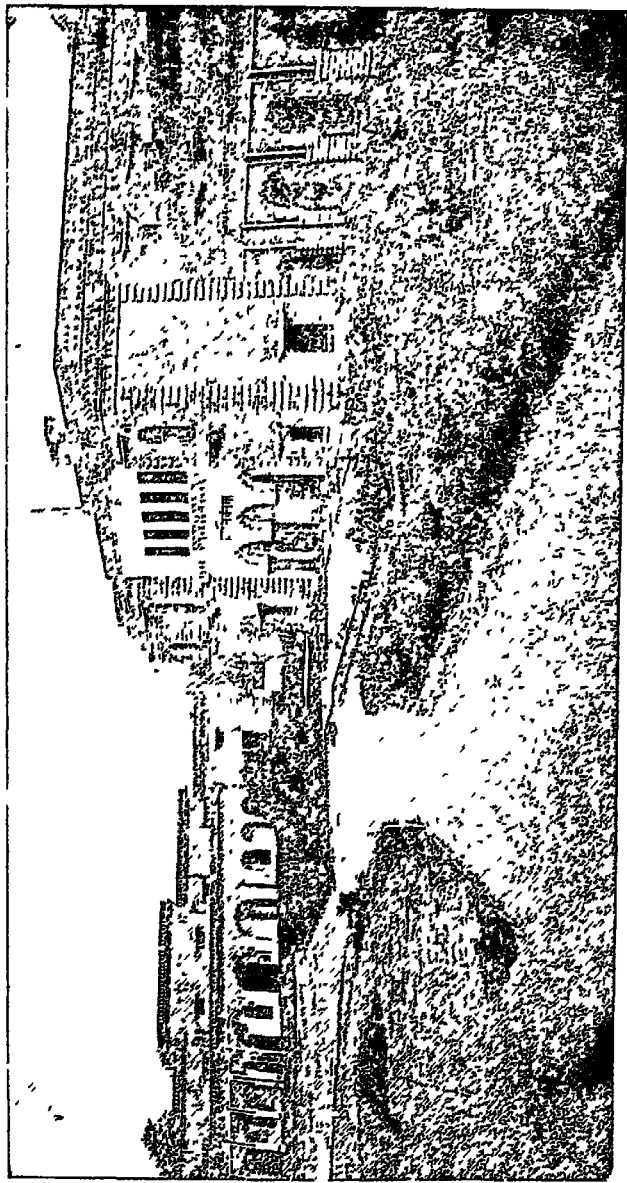
श्री दिगम्बर जैन कालिज
बड़ौत (मेरठ) उत्तर प्रदेश

एक निस्तब्ध वातावरण उपद्रव के बाद सामने आया।

रात्रि के तीन बजे लालाजी के मकान पर मीटिंग हुई और अधिवेशन मे घटी घटनाओ के प्रति सबके मुख मलिन हो रहे थे कि लालाजी यकायक तमक कर बोल उठे।

"आज काश आप लोग मेरी बात मानते तो यह दृश्य सामने न होता और अच्छा उत्तर दिया जा सकता था। अब अधिवेशन अवश्य होगा, हरिजन-मन्दिर-प्रवेश प्रस्ताव दोहराया जाएगा भले ही हमारी लाशो पर विरोधी लोग आगे बढ़ सकें।"

आप लोग निश्चिन्त रहो मैने रात ही रात मे महावीर दल के स्वयसेवको की सेवाएँ और अपने प्रमुख साथियो की सेवाएँ प्राप्त कर ली है, और हुआ भी ऐसा ही।

दूसरे दिन अधिवेशन पूर्ण तनाव के वातावरण में, मान्यवर साहू श्रेयासप्रसादजी की अध्यक्षता मे, विरोधियो के महान विरोध के मध्य मे, लालाजी की दूरदर्शिता से पूर्ण हुआ। उपद्रवी लोग पण्डाल के अन्दर पहुँच तो क्या सकते थे नजदीक भी नही फटक सके।

एक ओर लाला तनसुखरायजी व्यवस्था पर थे तो दूसरी ओर बहिन लेखावती अम्बाला।

हम सब सिपाही उनकी कार्यदक्षता देखकर हैरान थे। आखिर अधिवेशन सफल हुआ।

उपर्युक्त दो सस्मरण तो मात्र सकेत के तौर पर लिखे है। आपके कितने ही सस्मरण है जो सन् १६३८ से १६६३ तक उनके साथ रहने से सम्बन्धित है जिन्हे लेखक हृदय में सजोये है। परन्तु यह सत्य है कि लाला तनसुखरायजी गरीबो के हमदर्द, दुखियो के साथी, मित्रो पर तन मन निछावर करने वाले, समाज-सेवक, देशभक्त मुनिगुरुभक्त और धर्म रक्षक थे। उनके प्रति विनम्र श्रद्धाजलि समर्पित करते हुए लेखनी को यही विश्राम देता हूँ।

× × × ×

पराधीनात्तु जीवाना, जीवस्य मरण वर,
मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रत्वं, वितीर्ण केन कानने।

पराधीन जीवन से जीवो का मरना अच्छा। सिंह के मस्तक पर रोली से कौन तिलक करता है।

'मेरे भ्राता'

श्री मखमली देवी जैन
१६ दरियागंज, दिल्ली

"बहिन मखमलीदेवीजी जैन समाज की उन तेजस्वी कार्यकर्त्री बहिनो मे से है जिनमे उदारता, सत्य औरवात्समाज सेवा का भाव असीमित भरा है। आपने मातुश्री चदाबाईजी की प्रेरणा से श्री जैन महिलाश्रम का कार्य सचालन किया। आज सस्था की जो इतनी उन्नति होती हुई दिखाई दे रही है उसका सारा श्रेय आपके समस्त परिवार को है। आप स्वय, आपकी सुयोग्य सुपुत्री श्री कान्ता जैशोराम ऑनरेरी मैजिस्ट्रेट और पुत्रवधू लीलावतीजी तथा रायबहादुरजी बा० दयाचदजी चीफ इजीनीयर सस्था की उन्नति के लिए अहर्निश प्रयत्नशील रहते है। जैन समाज को ऐसे परिवार पर अत्यत गौरव है जो शिक्षा प्रचार मे शक्तिभर तन, मन, धन से सहयोग देते है। 'मेरे भ्राता' के नाम से लालाजी के सम्बन्ध में अत्यत आत्मीय उद्‌गार प्रकट किए है जो मननीय है।"

भैय्या तनसुखराय को मै सन् १६३० से जानती हूँ। वे जैन धर्म के धार्मिकोत्सवो पर तथा राष्ट्रीय काग्रेस के जलसो मे बहुधा भाषण दिया करते थे। दिल्ली उन दिनो उनके इस कार्य-क्षेत्र का केन्द्र था। उनके द्वारा आयोजित बहुधा सभाएँ तथा बहुत-से जलसे भी मैने देखे है। उनके मुखारविंद से परोपकारी एव मधुर पुष्प समान झडते हुए मेने सुने है। और देखा है उनमे मानवता का उज्जवल एव ज्वलत प्रतीक।

भैय्या तनसुखराय का व्यवहार प्राय सीधा-सादा और सौम्यपूर्ण था। उनकी इस आकृति के कारण मेरे मन मे उनके प्रति अपनत्व की भावना ओत-प्रोत हुई। मै उनके जीवन मे क्या देखा, क्या सुना आदि सभी पहलुओ का परिचय देने नही जा रही, इसके विषय मे तो विद्वान लोग, नेता लोग आपको कुछ बताएँगे। परन्तु मै कुछेक उन वर्षो को दृष्टि मे रखकर—जोकि समय के साथ-साथ सुषुप्तावस्था की ओर चले जा रहे है—उन मे के बिखरे विचार बता रही हूँ। इन्ही वर्षो मे मेरा उनका पड़ौस रहा है। वास्तव मे उनका जीवन घटनापूर्ण था। उसके व्यक्तित्व मे पूर्ण निष्ठा था। गहरी और गम्भीर प्रेरणा थी और समाज-सेवा का उनमे परम उत्साह था। इस पर भी कुछ लोगो की धारणा है कि वे जिद्दी-स्वभाव के व्यक्ति थे। इस सम्बन्ध मे मेरा यह कहना अनुचित न होगा कि वे सचमुच इस धारणा के विपरीत थे। उन्हे तो परखने की थाह तक उतरने की आवश्यकता थी। उनमें अपनो के लिए तथा पीड़ितो के लिए एक टीस थी, तडप थी। वे पर-सेवा मे अपनी शक्ति को भूलकर अपने ऊपर कष्ट उठाने को तत्पर हो जाया करते थे। निराश्रित-व्यक्तियो का तो वे मात्र केन्द्र-विन्दु थे। भारत की स्वतन्त्रता और धर्म तथा समाज की मान-मर्यादा का प्रश्न उनके जीवन का मात्र लक्ष्य था। इस पर तो सब कुछ न्योछावर कर देने का एक मूक आह्वान् उनके द्वारा प्रदर्शित होता था। सुडौल

लम्बा कद, गेहुँवा रग और उस पर शुद्ध खादी की अपनी शोभा फबती थी। वे एक आदर्शवादी, कर्मठ सुधारक थे। जब से उन्होने हमारे पड़ौस में अपना निवास-स्थान बनाया तब से उन्हे और भी निकट से देखने का हमें अवसर मिला। मैंने उनमे देश-सेवा, समाज-सेवा, आश्रम-सेवा इन दोनो शक्तियो का अद्भुत-स्रोत प्रवाहित होते देखा है। कार्य पूर्ति के लिए उनमे कठोरता भी थी और कोमलता भी परिपूर्ण थी। अगस्त १९६३ के दिन उनकी अंतिम विदाई के समय, जब मेरे आंसू अजस्र-धारा बनाकर बह पडे—तो, मैने उन्हे अपने सपनो मे डूबा हुआ एक समाज-सेवी, समाज-प्रहरी और देश-रक्षक तथा मानवता का पुज ही कहा?—वे महान थे। उनका अन्तर-बाहर पवित्र था। हृदय कोमल था। कर्त्तव्य मे कठोरता थी, पूर्ण निष्ठा थी। समाज का पतन उनके मन के दीप को जैसे बुझाने जा रहा था। और उस काल महाकाल की ओर से प्रलयकारी झझावात का एक अजीब झोका आया, जो कि उनके विचार-चित्र को गिराकर चकना-चूर करता चला गया। हृदय-गति बन्द हो गई और वे सबके देखते आखें मूद इस नश्वर ससार की मोह माया को छोड़ अनन्त की ओर चले गए।

इस थोडे से जीवन में मेरा सम्बन्ध प्राय. अनेक समाजसेवियो से रहा है। मैं पूर्ण निष्ठा तथा पूर्ण विश्वास के साथ कहती हूँ कि जो व्यक्ति समाजोत्थान की चिन्ताओ के प्रति भावुक होता है, जिसका मन दर्द-पीडा से द्रवित हो उठता है, उसकी सहानुभूति उतनी ही गहरी, तीव्र और महान तथा क्रान्तिकारी होती है। उस क्रान्ति से देशसेवा और समाजोत्थान के लिए सुख-सौन्दर्य जन्म लेता है। किन्तु उस सुख-सौन्दर्य को उपजाने वाले क्रान्तिकारी "वीर" बहुधा उस प्रसव की पीडा को सहन किया करते है। भैय्या तनसुखराय भी इस अपवाद के प्रतीक थे। उन्होने कितने कष्ट सहन किए। उनका व्यक्तित्व विशाल था और शक्तिशाली था। वे बिना किसी प्रपच के अपने अन्तिम दिनो तक अपने विचारो के प्रहरी और अडिग रक्षक बनकर रहे। यद्यपि कई लोग उनसे ईर्षा भी रखते थे, परन्तु उन से डर भी वे उतना ही मानते थे। और उन्हे प्यार करते तथा आदर की दृष्टि से देखते थे। समाज-सेवा का मच उनके बिना हिलता न था और समाज उनकी सेवाओ का मान करता था। ऐसे थे वे महान और ऐसी थी उनकी महान भावनाएँ।

मैं अपने सम्पर्क मे आई अनेक घटनाओ की गुत्थी को सुलझाने के लिए जब भी समय-समय पर उनके पास गई, उन्होने बडे प्रेम से, ममता से बिठाकर उन बातो को समझाया और हर बात को सफल बनाने मे योग दिया करते थे। आज आश्रम का कार्य उनके बताए हुए पद चिह्नो पर चलता हुआ विशाल प्रगति की ओर चला जा रहा है। महिलाश्रम मे हायर सेकेण्ड्री स्कूल तथा छात्रावास आदि आदि योजनाएँ उन्ही की बताई हुई है। हम इन्हे सफल बनाकर रहेगे। परन्तु हमे इसके साथ-साथ इस बात का खेद है कि वे भाई जो इन परोपकारी योजनाओ के दाता थे, इनके निर्माता होने पर भी हमारे बीच नही होगे। अन्त मे मै भगवान से याचना करती हूँ कि उनकी शुद्ध आत्मा को शान्ति प्राप्त हो।

भा० दि० जैन परिषद् के प्राण

श्री तनसुखराय एक तेजस्वी पुरुष थे। उनके हृदय में देश सेवा की आग सुलगती रहती थी। सामाजिक कार्यों मे उनका बहुत उत्साह था। जब कठिन से कठिन कार्य का अवसर आता तो उनका साहस बहुत बढ जाता था। नि सदेह वे एक साहसी और दृढ कर्मठ पुरुष थे। भा० दि० जैन परिषद के तो प्राण ही थे। उन्होने समाज में अपूर्व साहस से कार्य किया। समाज में उनकी स्मृति सदैव बनी रहेगी।

लाला
राजेन्द्रकुमार जैन
बैंकर्स
अध्यक्ष
भा० दि० जैन परिषद्

* * * *

श्रीमन्त तनसुखराय जैन

हजारीलाल जैन 'प्रेमी'
आगरा

योभूरि' सुकृता सदाशामलता जीवेषु सजीवताम्।
याम. सयमिने जिनोन्नत जिनाचार रूप सचारताम्।
बीमा कम्पिनिकासुता सुविदितो बीमावता ख्यातिमान्।
श्रीमान् तनसुखराय जैन विबुधो भूद् भारतीयो महान्॥
ज्ञानी ज्ञानजने गुणी गुणीजने मानी सदा मानिनि।
त्यागी त्यागीजनोजयी विजायिनि प्राज्ञस्तु विद्वज्जने।
रागी रागीजने पटु' पटुजने जैनेषु जैनाग्रणी।

× × × ×

युवक समाज द्वारा सत्कार

आबू आन्दोलन मे आपने देश के विभिन्न भागो मे दौरे किए। विशेषकर राजस्थान मे यह अत्यन्त महत्वपूर्ण रहे। जगह-जगह समाज की ओर से मान-पत्र भेंट किए गए। थैलियां भेंट की गई। और आपको आश्वासन दिया गया कि आन्दोलन मे हम तन-मन-धन से आपके साथ हैं। उस समय के अभिनन्दन पत्रो में प्राप्तयुवक समाज की ओर से दिया गया ऐसा ही एक अभिन्दन-पत्र इस प्रकार है।

अभिनन्दन-पत्र

महावीर हीरोज

लाडनूं (मारवाड)

हे कर्मवीर !

आज आपने हमारे नगर मे अपने सहयोगियो सहित पधारकर जो अनुगृहीत किया है उसके लिए हम आपके आभारी है। हम आपकी पवित्र सेवा मे सम्मानरूप यह अभिनन्दन-पत्र भेंट करते हुए फूले नही समा रहे है। यो तो आप अनेको राष्ट्रीय एव धार्मिक कार्यो को तन-मन-धन से करते रहते हैं किन्तु वर्तमान मे जो आपने आबू मन्दिर टैक्स आन्दोलन को उठाकर सोती हुई हिन्दू तथा जैन जाति को उसके जातीय अपमान का ध्यान दिलाया है—वह प्रशसनीय ही नही अपितु ससार के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से लिखा जायगा।

"आबू के मन्दिरो पर सिरोही स्टेट द्वारा लगाया हुआ टैक्स टैक्स नही किन्तु कलंक है। यह टैक्स हमारी धार्मिक स्वाधीनता मे बाधक है तथा स्वाभिमान का घातक है" आपके इस पुनीत सन्देश से जनता मे क्रान्ति मच गई है और वह अब आप जैसे कर्मवीर नेता के साथ अपने धार्मिक अधिकारो के लिए सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार हैं। हमारे महावीर हीरोज को आप जैसे कर्मठ नेताओ पर अभिमान है। हम आपको विश्वास दिलाते है कि जाति और धर्म के प्रत्येक यज्ञ मे आपके निर्देश पर सदैव हर प्रकार का त्याग करने को तैयार रहेंगे।

* * *

बड़े नक्षत्रजीवी

डा० महेन्द्र सागर प्रचण्डिया
एम० ए०, पी०-एच० डी०,
खिरनीगेट, अलीगढ़

जिस प्रकार हिन्दू-समाज मे व्यक्ति के दिवगत होने पर परिजनो द्वारा श्राद्ध का आयोजन किया जाता है, उसी प्रकार सामाजिक कार्यकर्ताओ के लिए मनीषी जगत में 'स्मृति-ग्रथ का प्रकाशन दिया जाता है।

श्राद्ध में सज्जन को असन और कही कही पर वसन वेष्टित भी किया जाता है, किन्तु स्मृति ग्रन्थ में प्राय प्रेरणा का इजेक्शन भरा जाता है। यहाँ लालाजी ने अपने जीवन के पचास वर्ष—समाज, जाति, तथा धर्म के उत्कर्ष में खपा दिए, यही रहस्य— उद्‌घाटित होता है।

प्रत्येक अस्तित्व का महत्त्व उसके अभाव मे उत्थित हुआ करता है। जब लालाजी कार्यरत रहे बहुतो ने उनकी योजनाओ के प्रति सदिच्छा व्यक्त की किन्तु अनेक ऐसे भी पाए गए जिन्होने अनिच्छा अभिव्यक्ति की। आज वे सभी मिलकर उनके व्यक्तित्व और कृतित्व को दुहाई देते है—यह जगत की, जीवन की विलक्षण विडम्बना है।

समाज की सेवा करना एक व्यसन हो गया है। जो व्यक्ति व्यसन के वशीभूत होकर कुछ करते है मेरे दृष्टिकोण से वह काम किसी काम का नही मात्र ढेर है लेकिन जो इससे मुक्त होकर कुछ नव्य किन्तु भव्य कार्य-प्रणालियो की स्थापना कर प्राणी मात्र का उपकार करते है वह श्रम-सफल बनाता है।

मुझे जहाँ तक पता लगा लालाजी अपने काल और क्षेत्र के अनुसार अपने को ढालकर जिस तन्मयता, कर्मठता और सहनशीलता से सफलता की स्थापना कर सके है वह उनका समग्र तन्त्र-तत्व और मन्त्र-महत्त्व वस्तुत श्लाघनीय है।

लालाजी नक्षत्री जीव थे। जिस प्रकार नक्षत्र अधेरे से अन्त तक जूझता रहता है, लालाजी हरदम हर बुराइयो से झगडते रहे। सत्याग्रही की सदा विजय हुआ करती है। लालाजी सत्याग्रही थे। इसीलिए उन्हे अपने प्रत्येक प्रयास मे सफलता प्राप्त हुई। लालाजी महान थे, वे बेमिसाल थे, साकार अनन्वय अलकार थे।

श्रीमान लाला तनसुखराय जैन स्मृति ग्रन्थ निकालकर उनकी समूची सेवाओ, भावनाओ और कामनाओ को मूर्तरूप देने का प्रयास किया गया है, प्रसन्नता की बात है।

ऐसे सामाजिक कर्ता को मेरे करोड़ो प्रणाम पहुँचे, यही कहकर अपनी श्रद्धाञ्जलि सम्मिलित करने जा रहा हूँ।

श्रीमान देशभक्त, कर्मवीर

लाला तनसुखराय के प्रति

श्री राजेन्द्र कुमार 'कुमरेश' आयुर्वेदाचार्य
चन्देरी (मध्य प्रदेश)

देशभक्त तुममे स्वदेश का था अनुपम अनुराग।
सदा राष्ट्र के लिए हृदय मे जाग रही थी आग ॥

आगे बढकर स्वतन्त्रता के लिए किया सग्राम।
किया दिखावा कभी न तुमने चाहा कभी न नाम ॥

सह न सके तुम कही धर्म का किंचित् भी अपमान !
लगा दिए अवसर आने पर अपने तन-मन-प्राण ॥

सदा रूढियो के विरुद्ध तुम करते रहे प्रचार !
नित कुरीतियो की छाती पर करते रहे प्रहार ॥

अलख जगाते रहे जागरण का स्व-जाति मे मौन।
धर्म समाज स्वदेश हितैषी तुमसा साधक कौन ॥

कर्मवीर यश अनाकांक्षी तुम्हें न था अभिमान।
होता रहे स-शक्त देश यह था उर मे अरमान ॥

हे कर्मठ ! सेवक समाज के याद तुम्हारी आय।
श्रद्धाञ्जलि लो आज हमारी लाला तनसुख राय ॥

जैन जाति दया के लिए खास प्रसिद्ध है, और दया के लिए हजारो रुपया खर्च करती हैं। जैनी पहले क्षत्री थे, यह उनके चेहरे व नाम से भी जाना जाता है। जैनी अधिक शान्ति प्रिय हैं।

श्री आटोरोय फिल्ड सा० कलेक्टर

बोलो जवाहरलाल

ताराचन्द 'प्रेमी'
सदस्य नगरपालिका, फिरोजपुर

धरती का बेटा धरती की नैय्या, लाया भवर से निकाल।
किसके सहारे छोडा है प्यारे, बोलो जवाहरलाल ॥
रोती है माता दिन तक बेटा, सामो मे आके समाजा।
रोती है गगा रोती है जमुना, आजा हिमालय के राजा ॥
खोकर के तुमको भूखा ये नगा, इन्सा, हुआ है पामाल।
किसके सहारे छोडा है प्यारे, बोलो जवाहरलाल ॥
विश्वास इतना तुम पर निछावर, जीवन के अनमोल मोती।
स्वरूप रानी के पुष्प विकसित, कमला के नैनो की ज्योती ॥
पाया था दिल तूने कितना निराला, जैसे ये सागर विशाल।
किसके सहारे छोडा है प्यारे, बोलो जवाहरलाल ॥

× × × ×

मेरी एक भेंट

लगभग आठ वर्ष पूर्व की बात है दिल्ली दरियागज मे वीर सेवा मन्दिर के भवन का शिलान्यास साहू शान्तीप्रसादजी के करकमलो से होने वाला था साहू जी का पालम हवाई अड्डे पर स्वागत करने वालो मे ला० तनसुखरायजी, ला० राजकिशनजी, बा० छोटेलालजी कलकत्ता, तथा मै "ताराचन्द प्रेमी" चार व्यक्ति स्वागतार्थ उपस्थित थे । ला० तनसुखराय जी के परिचय मे आने का मेरे लिए यह प्रथम अवसर था वीर सेवा मन्दिर के इस शिलान्यास समारोह मे मुझे भी एक गीत पढना था, मेरे गीत के पश्चात् लालाजी ने गदगद होकर मुझ से कहा था कि प्रेमीजी, आपने तो जादू कर दिया, फिर तो मुझे अनेक वार उनके सम्पर्क मे आना पडा। उनके व्यक्तित्व को बहुत समीप से देखने का मौका मिला। समाज सुधार के लिए मैने उनके हृदय मे एक बे-मिसाल तडप देखी। अस्वस्थ होते हुए भी, लालाजी हर समय सामाजिक गतिविधि के लिए चिन्तित रहते। जबकि कभी मैं उनसे मिलता वह एक बात अवश्य कहते कि पुण्य से तुम्हे कला का वरदान मिला है। इस कला का उपयोग अधिक से अधिक धर्म और समाज-सेवा मे होना चाहिए।

२२ जनवरी १९६३ को अस्वस्थ होते हुए भी लालाजी मेरी पुत्री के विवाह मे फिरोजपुर-झिरका पधारे। दिल्ली से बाहर जाने की सम्भवत यह अन्तिम यात्रा थी। फिर मैं समय-समय पर अनेक बार उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार लेता रहा। उनका स्वास्थ्य गिरता ही गया और एक दिन सुना कि लालाजी अब नही रहे, हृदय को बडा आघात पहुँचा। मैं कहूँगा कि ला० तनसुखरायजी का सम्पूर्ण जीवन सामाजिक सेवाओ का एक इतिहास रहा है, वह चले गए उनकी सेवाएँ अमर रहेगी।

श्री तनसुखरायजी

—क्रांतिकारी नेता

श्री शीलचन्द्र जैन 'शास्त्री'

भू० पूर्व अध्यक्ष नगरपालिका, मवाना (मेरठ)

जैन समाज मे फैली हुई कुरीतियो को दूर करने मे जितना सहयोग लाला तनसुखरायजी का रहा है उतना कर्मठ सहयोग जैन समाज उत्थान के सिलसिले मे बहुत ही कम लोगो का मिला है।

दिगम्बर, श्वेताम्बर एव स्थानक वासी सम्प्रदायो को एकता के सूत्र मे बाँधने का लाला जी का प्रयास जैन समाज के इतिहास मे अक्षुण्ण बना रहेगा। लालाजी का दिल हमेशा जैन समाज के उत्थान के लिए लालायित रहता था। महुगाव काड, आबू पहाड, एव दस्सा पूजा अधिकार के आन्दोलन को घर-घर तक पहुँचाने का श्रेय स्व० लाला तनसुखरायजी को ही है।

अपने स्वास्थ्य की कुछ परवा न करते हुए भी देश, समाज की जो कुछ सेवाए उन्होने की है उनका अवलोकन, उनका त्याग, कार्य-कुशलता, कठोर परिश्रम एव परोपकार भावना से आका जा सकता है। समाज मे जो कुछ भी आज सुधार दिखाई दे रहा है उसका श्रेय माननीय लालाजी को ही है। हमारी उनके लिए सच्ची श्रद्धाञ्जलि तभी हो सकती है: जब हम उनके किए हुए अधूरे कामो को सलग्नता के साथ पूरा कर सकेंगे।

मिलनसार और प्रेमी सज्जन

श्री रघुवीरसिंहजी जैन कोठीवाला

श्री जैन शिक्षा बोर्ड, कूचा सेठ, दिल्ली

ला० तनसुखराय जैन एक कर्मठ कार्यकर्ता थे। आपका कार्यक्षेत्र काग्रेस और जैन समाज रही। मेरा आप से परिचय लगभग ३० वर्ष से था। आप हसमुख, मिलनसार और प्रेमी सज्जन थे। श्रीमती लेखवती जैन के चुनाव को लेकर आपका काग्रेस में विवाद प्रारम्भ हुआ जिसका अत तिलक बीमा कम्पनी खुलने से हुआ।

आपने अपने जीवन काल मे अनेक आन्दोलन उठाए उन्हे सही मोड़ दिए, सफलता आपका लक्ष्य रहा। अग्रसैन जयती, वनस्पति घी, आबू का कर, उनमे मुख्य थे।

आपके जीवन का अधिक समय जैन परिपद मे बीता, वास्तव मे आप उसके प्राण रहे।

आपके कार्य की यह विशेषता रही यदि आपने महसूस किया कि किसी भी कार्य छोड़ने के उसमें प्रगति होगी तो आपने उसको सहर्ष दूसरे को सौंप दिया, सामाजिक कार्य मे आपने कभी स्वार्थ का समावेश नही किया।

प्रतिष्ठित समाज-सेवक

देशभक्त श्री दौलतराम गुप्ता
लक्ष्मी निवास, रोहतक

सम्माननीय लाला दौलतराम जी गुप्ता पजाब के प्रतिष्ठित समाज सेवक और कट्टर देशभक्त है। आपके साथ लालाजी ने समाज-सेवा का कार्य प्रारम्भ किया। आपके हार्दिक उद्गार इस बात के प्रतीक है कि लाला जी मे समाज-सेवा के भाव प्रारम्भ से ही कितने अधिक थे जो समय आने पर विकसित होते हुए उच्चकोटि पर पहुँच गये।

लाला तनसुखराय जैन १९२७ से पहिले रोहतक से बाहर रहे थे, वह जब रोहतक मे आये तो पहले भारत बीमा कम्पनी तदनन्तर लक्ष्मी बीमा कम्पनी से रोहतक मे कार्यवाहक हुए थे, १९२७-२८ मे मैं जिला काग्रेस कमेटी का अध्यक्ष था, तो वह मेरे सम्पर्क मे आये, और वह काग्रेस आन्दोलन मे पूर्णरूपेण वा अन्य राजनैतिक सस्थाओ (नौजवान भारत सभा सरीखी) मे अपना योगदान देने लगे, तनसुखरायजी मे कार्य करने की बड़ी लगन एवम् अथाह उत्साह था, और पूरी क्षमता थी। १९३० मे मेरे साथ ही एक ही दिन पकडे गये, एक साथ ही हम पर अभियोग लगा और कारावास भेज दिये गये, हम दोनो साथ-साथ ही रोहतक, लाहौर, केन्द्रीय जेल एव मुलतान गये, कारावास मे रहे, फिर साथ ही छूटे। तब हम मे वह सहयोग सहवास मित्रता में परिणत हो गया १९३२ मे हमने गाधीजी के आह्वाहन पर रोहतक मे जिला हरिजन सेवक सघ स्थापित किया। मै और वह उसके अध्यक्ष एव मन्त्री १९३४ तक रहे। हमने यहाँ १९३२ मे हरिजन छात्रो के लिए एक छात्रावास भी स्थापित किया, जो अब भी अपनी बिल्डिंग मे चालू है। १९३३ मे रोहतक जिले मे बाढ आई थी, हरिजनो की उससे बडी हानि हुई थी। उसकी कुछ क्षति पूर्ति के लिए हमने भरसक प्रयत्न किया था, मै तनसुखराय जी स्वर्गवासी ला० त्रिलोकासत जी और ला० आशाराम जी लाहौर जाकर भी कुछ धनराशि ल. सके थे और यथा-शक्ति हरिजनो के कष्ट निवारणार्थ कार्य्य कर सके थे, इस सब कार्य मे तनसुखराय का बडा योगदान था। इसके पश्चात् वह दिल्ली चले गये और वहा उनके लिए सार्वजनिक सेवाओ का विस्तृत क्षेत्र था—हमारा जन कल्याण कामो मे साथ तो छूट गया, परन्तु हमारी मित्रता उनके अन्तिम दिनो तक गहरी बनी रही। मैं अधिक स्थान न लेकर अपने प्यारे तनसुखराय जी की पुण्य स्मृति मे अपनी श्रद्धा के पुष्प भेट करता हूँ।

नवयुवकों के प्रेरणा-स्रोत

श्री सुल्तान सिंह जैन एम०ए०
मंत्री अ०भा०दि० जैन परिषद्-शाखा, शामली (उ० प्र०)

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने कहा है—

"विचार लो कि मर्त्य हो न मृत्यु से डरो कभी,
मरो परन्तु यो मरो कि याद जो करे सभी।
हुई न यो सुमृत्यु तो वृथा मरे, वृथा जिये,
मरा नही वही कि जो जिया न आपके लिए।
यही पशु-प्रवृत्ति है कि आप आप ही चरे,
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।"

उपरोक्त पद मे गुप्तजी ने स्पष्ट रूप से अंकित कर दिया है कि विश्व मे उन्ही लोगो का जीना और मरना सफल है जो दूसरो के लिए जीते-मरते है। जब हम लाला तनसुखरायजी के जीवन को उक्त पद की कसौटी पर परखते हैं तो वह बावन तोले पाव रत्ती सही-उतरता है।

यह बात किसी से छिपी नही है कि लालाजी एक पुराने, तपे हुए, कर्मठ, अनुभवी, नि स्वार्थ, कर्त्तव्य-परायण, नम्र एव लगनशील समाज-सेवक थे। निःसन्देह उनका अधिकाश जीवन समाज-सेवा, राष्ट्र-सेवा तथा जन-कल्याण में व्यतीत हुआ था।

लाला तनसुखरायजी की प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। सभी विषयो में उनकी अबाध गति थी। यदि गम्भीरतापूर्वक देखा जाये तो ज्ञात होगा कि वे गुदडी के लाल थे, क्योकि वे छिपे-छिपे वे सभी कार्य करते रहते थे जो कि महान व्यक्ति को करने चाहिए। किन्तु उनकी कभी भी यह आकाक्षा नही रही कि किसी भी काम के करने से उन्हे ख्याति प्राप्त होगी और लोग उन्हे महान विभूति के रूप मे पूजेंगे।

जब हम लालाजी के समूचे जीवन पर दृष्टिपात करते है तो वह हमे चहुँमुखी पल्लवित एवं पुष्पित दृष्टिगोचर होता है। इसका प्रमुख कारण है कि उनका कर्त्तव्य-क्षेत्र ही बहुमुखी था। उन्होने जीवन-पर्यन्त सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक क्षेत्रो मे नि स्वार्थरूप से जी-जान से सेवायें की थी। उनके जीवन की कुछ झलकियाँ देखिए —

राजनैतिक सेवाएँ —सन् १९१९ मे जिन दिनो लालाजी रेलवे-विभाग में नौकरी कर रहे थे, उन्ही दिनो असहयोग आन्दोलन आरम्भ हो गया। आपने सरकारी नौकरी की चिन्ता न की और तुरन्त ही स्वदेशी वस्तुओ एव वस्त्रो को अपनाने की दृढ प्रतिज्ञा कर ली। सन् १९२१ शेरे पजाब लाला लाजपतराय जी की प्रेरणा से आपने सरकारी नौकरी को तिलाजली दे दी,

सन् १६२२ मे स्वदेशी वस्तुओ के प्रचारार्थ आपने समिति बनाकर अनेकानेक लोगो को स्वदेशी वस्त्र तथा वस्तुओ को अपनाने के लिए प्रोत्साहित किया एव उनसे दृढ प्रतिज्ञायें कराईं। सन् १६२२-२४ मे आप अपनी जन्मस्थली रोहतक मे आकर रहने लगे थे और वही पर कर्मठ काग्रेसी कार्यकर्ता के रूप मे कार्य करने लगे थे। १६२५ ई० मे आपने खादी-प्रचार का बीडा उठाया था और तत्सम्बन्धी एक समिति की स्थापना की थी।

लाला तनसुखराय की राजनीतिक गतिविधि यही समाप्त नही हो जाती है वरन् १६२६ में वे पजाब की क्रान्तिकारी सोसाइटी—"नौजवान भारत-सभा" के सक्रिय सदस्य बने थे। यही नही, १६२७ मे आप पजाब मे "मजदूर-किसान सभा" के प्रान्तीय-सम्मेलन के प्रधान मन्त्री निर्वाचित किये गये थे। १६२८ में आपको पजाब प्रान्तीय काग्रेस कमेटी की कार्यकारिणी परिषद् का सदस्य चुना गया था। सन् १६२६ मे इण्डियन नेशनल काग्रेस के लाहौर में होने वाले वार्षिक अधिवेशन में आपको पजाब से प्रान्तीय प्रतिनिधि के रूप मे भेजा गया था। वहाँ पर आपने स्वय सेवको के कप्तान के रूप मे जो-जो सेवाएँ की थी, उनकी सर्वत्र भूरि-भूरि प्रशसा की गई थी।

सन् १६३० में जब पुन असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तब आपने रोहतक जिले मे सत्याग्रहियो की भारी भरती की थी। आप ही ने उनके रहन-सहन, खाने-पीने आदि का कार्य सुचारुरूप से कुशलतापूर्वक निभाया था। प्रस्तुत आन्दोलन-कार्य मे भाग लेने के कारण आपको ६ मास का कठोर कारावास भुगतना पडा ।

सन् १७४० मे आप जिला-मण्डल, देहली के प्रधान-मन्त्री तथा १६४१ में अध्यक्ष निर्वाचित किये गये थे। सन् १६४२ के "भारत-छोडो" आन्दोलन के अवसर पर आपने जेल जाने वाले बन्धुओ के कुटुम्बियो की भरसक सहायता एव सेवा की थी। तभी आपने एक सोसायटी की स्थापना कर जेल-मन्त्रियो की पैरवी करने मे सक्रिय भाग लिया था। सन् १६५८ मे यद्यपि आप अस्वस्थ रहने लगे थे, किन्तु फिर भी आपको दरियागज दिल्ली काग्रेस मण्डल-कमेटी का सक्रिय सदस्य चुना गया था। यह सब कुछ लालाजी की राष्ट्रसेवा एव राष्ट्रभक्ति के परिणामस्वरूप ही तो।

धार्मिक एवं सामाजिक सेवायें – यह कहने अथवा लिखने की बात नही कि लाला तनसुखरायजी ने बडी धार्मिक सेवाएँ की है। नि सन्देह शैशव काल से ही उन्हे धर्म से अगाध प्रेम था। उनकी मनोवृत्ति प्रारम्भ से ही धार्मिक कार्यों की ओर अनायास ही प्रवृत्त हो जाती थी।

सन् १६०८ मे जब लालाजी केवल नौ वर्ष ही थे, तब ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी का पजाब मे विहार करते हुए मुल्तान मे आगमन हुआ। लालाजी ब्रह्मचारीजी के पास रहते थे और उन्ही की सेवा में रत रहते थे। सन् १६३४ में आप लक्ष्मी बीमा कम्पनी के मैनेजर होकर दिल्ली आये। इसी वर्ष अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् का अधिवेशन दिल्ली

में हुआ और आप उसकी स्वागत-समिति के प्रधान-मन्त्री चुने गये। आपके सद्प्रयत्नो से वह अधिवेशन बडा सफल रहा। तभी आपके परिषद का मन्त्री चुना गया और आप उस पद पर निरन्तर सन् १६३८ तक आरूढ रहे। अपने मन्त्रित्व-काल मे उन्होने परिषद् का प्रचार एवं उन्नति करने मे अपनी ओर से कुछ न उठा रखा। सन् १६३६ मे आपने जैन कोआपरेटिव बैंक एव जैन कल्व की स्थापना की और उसी वर्ष वीर-सेवा मन्दिर" मे मनाई जाने वाली 'वीर-शासन जयन्ती' के आप सभापति बनाये गये। उसी वर्ष आप निवखेडा (मध्य भारत) में भीलो की एक कान्फ्रेंस के सभापति बनकर गये और वहाँ पर आपके व्यक्तित्व एव धार्मिक प्रेम से प्रभावित होकर ५००० भीलो ने मास न खाने की दृढ प्रतिज्ञा की।

सन् १६४० मे आप मुजफ्फरनगर में होने वाले परिषद् के अधिवेशन मे सभापति बनकर गये थे। सन् १६४१ मे जब सरकार ने दिल्ली की मस्जिद के सम्मुख जैनियो के जलूस के बाजे बजने पर रोक लगा दी थी तब आपने एक बडा आन्दोलन आरम्भ करके सरकार से टक्कर ली और उसमे भारी सफलता प्राप्त की। यही नही, सिकन्द्राबाद (उ० प्र०) नामक नगर मे जब जैनियो के उत्सव मे कुछ उत्पादियो ने रंग मे भग मे कर दिया था, तब आपके ही प्रयास से उत्पातियो को लम्बी-लम्बी सजाएँ भुगतनी पड़ी थी। इसी वर्ष जब आप आबू पर्वत पर वहाँ के मन्दिरो के दर्शनार्थ गये थे, तब सिरोही स्टेट द्वारा यात्रियो से भारी कर (टैक्स) वसूल किया जाता था। आपने उस टैक्स का डटकर घोर विरोध किया और कहा—"यह जैनियो पर टैक्स नही वरन् उन पर कलक है। इतना ही नही हमारी स्वाधीनता तथा स्वाभिमान पर कठोर प्रहार है।" आपके इन प्रेरणात्मक शब्दो को सुनकर जैन समाज जागृत हो उठा और उस टैक्स को समाप्त कराके ही शान्ति की बासुरी बजाई।

आपने दिगम्बर जैन पोलिटैक्निकल कॉलेज, बडौत का अपने कर-कमलो द्वारा शिलान्यास करके जैन नवयुवको को तकनीकी शिक्षा देने की विशाल योजना का श्रीगणेश किया। जिस समय भदैनी घाट पर स्थिति स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी के भवन को गगा नदी के थपेड़े जर्जर कर रहे थे, तथा विशाल जैन मन्दिर की दीवारें डगडगाने लगी थी, तब लालाजी के प्रयास एवं अथक परिश्रम के द्वारा सरकार ने उसके उद्धार के लिए पर्याप्त धनराशि देकर सहायता की थी।

लालाजी चरित्र चक्रवर्ती आचार्य शान्तिसागरजी महाराज के परम भक्त थे। आप अनेक बार उनके दर्शनार्थ जहाँ कही भी वे होते थे, वही पहुँचा करते थे।

उपरोक्त धार्मिक कार्यो के अतिरिक्त लालाजी ने वनस्पति घी निषेद्ध कमेटी, अखिल भारतवर्षीय मानव धर्म (ह्यूकोनिटेरियन) सम्मेलन, अग्रवाल महासभा, वैश्य कान्फ्रेंस, वैश्य महासभा, हरिजन आश्रम की स्थापना, मारवाडी सम्मेलन कलकत्ता, सेवा-समितियो, बम्बई जीव,

दया मण्डली, भारतीय वैजिटेरियन सोसायटी आदि अनेकानेक सस्थाओ की सक्रिय, नि स्वार्थरूप से सेवा की है।

लालाजी जो भी कार्य करते थे, उसको सम्पन्न करने मे आप तन-मन-धन से जुट जाते थे और आशातीत सफलता प्राप्त करते थे।

६४ वर्ष की आयु मे लालाजी का देहावसान हो गया; परन्तु अपने जन्मकाल मे उन्होने जो-जो भी राजनीतिक, धार्मिक एव सामाजिक कार्य किए हैं, वे किसी भी व्यक्ति से भुलाये नही जा सकते है; अपितु भावी नागरिको के जीवन को दीपशिखा की भाति सदैव आलोकित करते रहेगे और उनके जीवन की पतवार के समान सिद्ध होगे।

अन्त मे, यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि वे जैन-समाज के ही क्या, वैश्य वर्ण के महान् सेवक, सफल कार्यकर्त्ता, नव युवको के प्रेरक, जैन-परिषद् की अडिग शिला एव मानवता के सच्चे पुजारी थे।

तनसुखरायजी को शुभाशीर्वाद

श्री दयाशंकर ज्योतिषी
८५, मुन्नालाल स्ट्रीट, कानपुर

विधि दे बडाई, बाहुबल वीर्य विक्रम को,
ज्ञानमान युक्त बजरगबली बल दे।

शकर दे सकल सुफल मनकामना को,
जेतो भूमि वैभव सुरेश सो सकल दे।

राम रमणीयता दे कृष्ण कमनीयता दे,
अम्बिका भवानी शत्रु साहिनी को दल दे।

राजो जैन वंश अवतस तनसुखराय,
धन दें धनेश श्रीगणेश पुत्र फल दें।

समाज सुधारक

डॉ० नन्द किशोरजी
७, दरियागंज, दिल्ली

डा० नन्दकिशोरजी लालाजी के साथियो मे से है जिन्हे लालाजी की पैनी दृष्टि ने परखा और अपने साथ रख लिया। वे उत्तम कार्यकर्त्ताओं को प्रोत्साहन देते थे। इसी के फलस्वरूप महगांव काण्ड आबू आन्दोलन आदि कामो मे लालाजी को आशातीत सफलता मिली। डा० नन्दकिशोरजी के उद्‌गार प्रशसनीय है। जो इस बात को बता रहे है कि लालाजी कितने अतिथि-परायण थे।

लाला तनसुखराय जी से मेरा परिचय दस्सा पूजा अधिकार कान्फ्रेंस के अवसर पर हुआ। उसके पश्चात् हमारे सम्बन्ध बढते ही गए और उनके प्रेम और प्रयत्न ने मुझे कांधला (जिला मुजफ्फरनगर) से दिल्ली बुला लिया। मैंने भाई साहब को बहुत निकट से देखा है। वे चोटी के 'आर्गेनाइजर' तो थे ही, उससे अधिक भी बहुत कुछ थे।

सन् १९४२ मे जबकि वे जैन मित्र मण्डल दिल्ली के प्रधान मन्त्री थे, उन्होने महावीर जयन्ती महोत्सव को सर्वप्रथम वह रूप दिया जिसकी नकल अब भी की जाती है। वह प्रथम ऐतिहासिक उत्सव था जिसमे जैन पडितो और गधर्वो के अतिरिक्त दिगम्बर और श्वेताम्बर साधुओ के भाषण हुए थे और पार्लियामेंट के जैन तथा जैनेतर सदस्यो ने भाग लिया था। आबू के प्रसिद्ध जैन मन्दिरो मे प्रवेश करते समय जैन धर्म अनुयाइयो से कर लिए जाने को वह जैन समाज का अपमान समझते थे और उक्त कर से मुक्ति के लिए सन् १९४२ में ब्यावर मे उनकी प्रधानता मे एक विशाल कान्फ्रेंस हुई थी। उन्हे जैन धर्म और जैन समाज से कितना प्रेम था। यह इससे विदित है कि तिलक इन्शोरेंस कम्पनी से (जिसके वह मैनेजिंग डायरेक्टर थे) वेतन पाने वाले कई चोटी के कर्मचारी अपना काफी समय जैन समाज के सुधार कार्यो मे लगाते थे। वे अपने साथियो पर पूर्ण विश्वास करते थे। और सदैव उन्हे आगे बढाने का प्रयत्न करते थे। उनका दस्तरखान सदैव सबके लिए बिछा रहता था। ये शब्द मैने भावुकतावश नही लिखे है बल्कि मैने जो लिखा है वह सब स्वय देखा है।

जैन क्षेत्र के अतिरिक्त जैनेतर क्षेत्र मे भी उनकी मान्यता थी। तभी तो सन् १९५४ मे दिल्ली में होने वाले हरिजन मन्दिर प्रवेश अधिवेशन मे जब परिषद् विरोधियो ने वह कहना चाहा जो अशोभनीय था तो लाला तनसुखराय ने अग्रसेन दल के स्वयसेवको की दीवार कान्फ्रेंस के द्वारो पर खडी कर दी।

जिस कदर कार्य उन्होने जैन समाज के लिए किया यदि किसी अन्य समाज मे कोई व्यक्ति इतना कार्य करता तो उसका नाम धर्म स्थानो और समाज के भवनो मे स्वर्ण अक्षरो में लिखा

होता। परन्तु अपना समाज व्यक्ति को सेवा और योग्यता के द्वारा नही बल्कि पैसे के गज से नापता है और हमारे धर्म स्थानो और समाज भवनो में उन्ही गृहस्थो के नाम के पत्थर और फोटू लगाये जाते है जो उस नाप में पूरे उतरे।

प्रत्येक व्यक्ति की कुछ निजी कमिया, आकाक्षाये और विवशताये होती है जो उसके द्वारा किए गए कार्यो को या तो पूर्णरूप से प्रकाश मे आने में बाधक होती है या उनका श्रेय उल्टे या सीधे तौर से दूसरो को पहुँच जाता है।

कुछ भी हो, दस्सा पूजा अधिकार, बालविवाह विरोध, हरिजन मन्दिर प्रवेश, आबू मन्दिर टैक्स विरोध इत्यादि क्रान्तिकारी आन्दोलनो मे उन्होने प्रमुख कार्य किया था और उनके द्वारा की गई सेवाये भुलाई जाना सम्भव नही है। वे कहा करते थे मै परिषद का एक सिपाही हूँ और जैन समाज का तुच्छ सेवक और यही उनकी महानता थी।

यद्यपि विधि के विधान के अनुसार वे हमे सदैव को छोडकर चले गये है परन्तु उनकी पवित्र याद हम कभी न भूल सकेंगे।

तू न होगा तो तेरी याद रहेगी।

नेकी कर दरिया में डाल

पं० परमेष्ठीदासजी जैन, न्यायतीर्थ
मालिक जैनेन्द्र प्रेस, ललितपुर (झाँसी)

परिषद के मन्त्री ला० तनसुखराय जी जैन तो परिषद की सफलता को अपनी मुट्ठी मे लिए फिरते थे। उनके रहते हुए कभी कही कोई अव्यवस्था, गड़बडी या परिषद के प्रभुत्व को डिगाने वाला कार्य हो ही नही सकता। उनके कार्यो, त्याग और उदारता को देखकर मेरा दृढ निश्चय हो गया है कि वे परिषद के प्राण है। समाज अभी उनके त्याग को नही जान सकी है। उनका त्याग बीज के बलिदान की भाँति है, जिसका बलिदान मिट्टी मे मिलना किसी को नही दिखाई देता, किन्तु उसके फल ही दिखाई देते है। इसी प्रकार समाज को यह नही मालूम कि लालाजी परिषद के लिए चुपचाप कितना बलिदान करते रहते है, किन्तु परिषद की उत्तरोत्तर सफलता देखकर ही हम सब सन्तुष्ट होते रहते है।

मै जहाँ तक मालूम कर सका हूँ, ला० तनसुखरायजी परिषद के लिए अपना तन-मन लगाये हुए थे। मगर वे किसी को अपनी सेवा ज्ञात नही होने देते थे।

✿ ✿ ✿ ✿

लगनशील लालाजी

श्री गुलाबचंद पांड्या
भोपाल (म० प्र०)

श्री गुलाबचदजी पाड्या भोपाल जैन समाज के सुयोग्य सेवा-भावी कार्यकर्ता है। और सामाजिक कार्यो मे सदा अग्रसर रहते है। आपका लालाजी के प्रति बड़ा प्रेम रहा है।

लाला तनसुखरायजी का जन्म सन् १८९६ ई० में० दि० जैन अग्रवाल लाला जौहरीमल जी के यहाँ हुआ। आपकी माता ने आपमे बडे ही धार्मिक सस्कार बचपन से ही ऐसे डाले कि लालाजी जीवन पर्यन्त देश, धर्म-समाज की बड़ी भारी लगन से सेवा करते रहे। जैन समाज के महान विद्वान पूज्य ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी से इनको सेवा करने की प्रेरणा प्राप्त हुई—मै बचपन से ही लाला जी के प्रेरणाप्रद लेख जैन पत्रो में पढता रहा—मैंने देखा—जब भी जैन समाज के किसी भी कार्य में चाहे वह सामाजिक हो चाहे धार्मिक किसी भी प्रकार की रुकावट या शिथिलता आई फौरन लालाजी का प्रेरणाप्रद बुलेटिन पत्रो मे आ जाता। आपको ये पसन्द ही नही था कि हमारा देश गुलाम रहे। इसीलिए आप गांधीजी के असहयोग आन्दोलन मे सन् १९३० ई० मे कूद पड़े। आपने अपनी सर्विस से त्यागपत्र दे दिया। आन्दोलन मे सक्रिय भाग लिया, फलस्वरूप आपको ९ मास का कारावास भुगतना पडा। आप काग्रेस के कर्मठ कार्यकर्त्ता रहे। पजाब कार्यकारिणी के सदस्य, मन्त्री आदि कई पदो पर रहे। दि० जैन परिषद के तो आप प्राण ही थे। आप ही के कारण कई अधिवेशन सफल हुए। आप निज की बीमा कम्पनी के डायरेक्टर थे। इसकी भोपाल मे भी शाखा थी। मेरा आप से साक्षात्कार का अवसर तब आया जब आप कुछ वर्ष पूर्व ही लाला प्रेमचन्दजी कन्ट्रेक्टर (लाला राजकृष्णजी) जैन दरियागंज दिल्ली के यहाँ ठहरे थे। उसी समय विश्व मे शाकाहार सम्मेलन काशी मे चल रहा था। भोपाल स्टेशन से एक स्पेशल पास हुई। हमें मिशन सचालक बाबू कामता प्रसाद के पत्र से ठीक समय मालूम हुआ। मैंने लाला जी से कहा स्टेशन चलना है। फौरन तैयार हो गए साथ मे गए। अग्रेजी मे उन्होने जैन धर्म और शाकाहार पर विदेशी विद्वानो से खूब वार्तालाप किया। उस समय आपने मुझसे बातचीत के दौरान मे कहा था हमारी समाज ईसाई मिशनरियो के मुकाबले धर्म प्रचार मे बहुत पीछे है। हमारा धर्म पूर्णरूप से वैज्ञानिक है। जो विद्वान् इस पर मनन, अध्ययन एक बार करता है हीरे की तरह इसकी कद्र करता है। परन्तु हमारे प्रचार की कमी के कारण जैन धर्मरूपी कोहनूर हीरा सब को प्राप्त नही हो पाता। समाज दान देने के लक्ष्य मे थोडा सुधार करे तो यह काम सहज ही हो जाता है। लालाजी जैसे कर्मठ वीर लगनशील आत्मा का समाज मे पैदा होना बड़े गौरव की बात थी। उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजली अर्पित हेतु यह स्मृति-ग्रन्थ का प्रकाशन प्रशसनीय है। मै लालाजी के प्रति हार्दिक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करता हूं। समाज के युवक भाइयो का कर्त्तव्य है कि लालाजी के जीवन से प्रेरणा प्राप्त कर;

उत्साहपूर्वक जैन धर्म-अहिंसा धर्म का प्रचार, सामाजिक, कुरीतियो का निवारण कर। आज दहेज प्रथा के कारण जैन समाज का आर्थिक ढाचा अस्त-व्यस्त होता जा रहा है। लालाजी ने परिषद के माध्यम से अन्तर्जातीय विवाह का भारी प्रचार किया। फलस्वरूप आज सैंकड़ो अन्तर्जातीय विवाह हो चुके। इनको प्रोत्साहन देते रहने की आवश्यकता है। स्वर्गीय आत्मा को शान्ति लाभ हो, यही शुभकामना है।

* * *

लाला तनसुखरायजी की संक्षिप्त जीवन झांकी

श्री सुरेश कुमार जैन
दिल्ली

लाला तनसुखराय जैन एक पुराने समाज-सेवी, नम्र और लगनशील कार्यकर्ता थे। इनका अधिकाश जीवन समाजसेवा और जन-कल्याण मे बीता। आपकी कार्यशैली बहुत आकर्षक थी और समाज के कठिन से कठिन कार्य करने में भी वे नही झिझकते थे।

ला० तनसुखराय जी का जन्म सन् १८६६ में अग्रवाल दिगम्बर जैन घराने मे ला० जौहरीमल जी के यहाँ हुआ। इनके परदादा ला० छज्जूमलजी ने अपने पुत्र गनेशीलालजी के साथ गदर के बाद सन् १८६५ मे रोहतक से मुलतान की ओर प्रयत्न किया। वहाँ जाकर उन्होंने सर्राफा और लेनदेन का काम शुरू किया। ला० छज्जूमलजी बहुत परोपकारी थे और उन्हे वैद्यक का बहुत शौक था। गरीबो को दवा मुफ्त दिया करते थे और घर जाकर रोगियो का देखते थे। अल्पकाल मे उन्होंने ख्याति प्राप्त की। सरकार मे भी इन्हे बहुत मान मिला। उन्हें सरकारी खजाने का खजानची बना दिया गया। इसके बाद सराफे और लेनदेन का काम बहुत समय तक इनके दादा व पिताजी भी करते रहे। १९१४ में इनके पिता ला० जौहरीमल सकुटुम्ब भटिण्डा (पटियाला) रहने लगे, और वहाँ व्यापार शुरू किया। भटिन्डा मे श्री तनसुखरायजी ने १९१८ में सरकारी नौकरी की और गांधीजी के असहयोग आन्दोलन के कारण सन् १९२१ मे सरकारी नौकरी छोडकर राजनैतिक क्षेत्र मे कूद पडे।

सन् १९०८ मे ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी मुलतान मे पधारे। ला० तनसुखरायजी की बचपन से ही धार्मिक मनोवृति थी। जब तक ब्रह्मचारीजी मुलतान मे रहे, वे अपना अधिक समय उनकी सेवा मे बिताते रहे। तबसे जीवनपर्यन्त लालाजी की धर्म और सामाजिक कामो में लगन बराबर बनी रही।

सन् १६१४ मे आपके पिता ला० जौहरीमलजी भटिण्डा से पटियाला मे रहने लगे। उन दिनो पजाब मे सेवा समितियो का बहुत प्रचार था। श्री तनसुखरायजी भी वहाँ की सेवा समिति के एक स्वय-सेवक बने। उनके उत्साह और सेवा-कार्य की सराहना सबने की और वहाँ की जनता उन्हे बहुत चाहने लगी।

सन् १६१८ मे रेलवे के दफ्तर में गवर्नमेंट की मुलाजमत मे प्रवेश किया। सादगी व स्वदेशी कपड़ो से बचपन से ही प्रेम था। गवर्नमेंट मुलाजमत होने हुए भी स्वदेशी वस्तुओ का प्रयोग व स्वदेशी वस्त्रो को धारण करने की प्रतिज्ञा कर ली और राजनैतिक कार्यो मे दिलचस्पी लेते रहे।

सन् १६२१ में असहयोग आन्दोलन मे शेरे-पजाब ला० लाजपतरायजी के आदेश पर गवर्नमेट मुलाजमत को त्याग कर राजनैतिक क्षेत्र मे आये। आपने ला० लाजपतरायजी के साथ तिलक स्वराज्य फण्ड एकत्रित करने मे काफी काम किया। आप पर ला० लाजपतरायजी का बहुत प्रेम था।

१६२२ में स्वदेशी वस्तु के प्रचारार्थ समिति बनाकर सैकड़ो लोगो ने स्वदेशी कपडा तथा वस्तुओ को धारण करने का प्रण कराया।

१६२३-२४ मे आप अपने जन्म-स्थान रोहतक मे आ गये और काग्रेस के कार्य मे हिस्सा लेने लगे, कुछ दिनो मे वहाँ के अच्छे काग्रेसी कार्यकर्ताओ मे लालाजी की गिनती होने लगी।

१६२५ में खादी प्रचार समिति तथा हिन्दी प्रचार समिति का कार्य किया।

१६२६ मे नौजवान भारत सभा जो कि पजाब की क्रान्तिकारी सोसायटी थी, उसके सदस्य बने और सन् २७ मे मजदूर किसान सभा का पजाब प्रान्तीय सम्मेलन किया, जिसके प्रधानमन्त्री बने। उसके कारण सरकार की कडी निगाह हो गई और दो साल तक सी. आई. डी. इनके पीछे लगी रही।

१६२८ मे पजाब प्रान्तीय काग्रेस कमेटी की कार्य-कारिणी के सदस्य चुने गये और १६२६ के लाहौर काग्रेस अधिवेशन मे आपको प्रतिनिधि चुनकर भेजा गया। इस अधिवेशन मे आपने स्वयसेवको के कप्तान बनकर बड़ी सेवा की।

१६३० का असहयोग आन्दोलन मे आपने बहुत सक्रिय कार्य किया, रोहतक जिले मे सत्याग्रहियो की भरती, उनके खाने-पीने रहने व धन एकत्रित करने का सारा भार उन पर ही था। आन्दोलन में हिस्सा लेने के कारण आपको ६ मास कारावास मे भी रहना पडा।

१६३१-३२ मे हरिजन-उद्धार का कार्य जोरो से किया और हरिजन विद्यार्थियो के लिए आश्रम की नीव डाली, जिसका बहुत सारा खर्चा आप अपने पास से करते थे।

१९३३ में रोहतक जिले मे बहुत जोरो के साथ बाढ आई। इस समय बाढ-पीडितो के लिए एक रिलीफ कमेटी बनाकर कपडा, औषधि व धन सहायता की, जिसके मन्त्री आप थे।

१९३४ में शुरू मे आप लक्ष्मी बीमा कम्पनी के मैनेजर होकर दिल्ली चले आये और दिल्ली आने पर आप सेवा-कार्यो में भाग लेने लगे। उसी साल दिल्ली में अखिल भारत दिगम्बर जैन परिषद का अधिवेशन कराया, जोकि एक बहुत सफल अधिवेशन था। उसकी स्वागत समिति के प्रधान मन्त्री आप थे। अ० भा० दि० जैन परिषद के आप मन्त्री भी चुने गए। सन् ३४ के बाद सन् ३५—३६—३७—३८ मे अ० भा० दि० जैन परिषद का कार्य बहुत जोरो से किया और सारे भारत में धूम मचादी। और उन दिनो सतना खडवा अ० भा० दि० जैन परिषद के अधिवेशन, इतिहास मे अपना विशेष स्थान रखते है।

सन् ३९ मे जैन को-आपरेटिव बैंक तथा जैन क्लब की स्थापना की और उसी साल सरसावा में वीर सेवा मदिर की ओर से मनाये जाने वाले वीर शासन जयन्ती के सभापति बन कर गये। वहाँ आपने अनेकात पत्र के दो साल के घाटे की जिम्मेदारी अपने ऊपर ली और दो वर्ष तक उस पत्र का घाटा पूरा किया। उसी साल निबखेडा (मध्य भारत मे भीलो की एक कान्फ्रेंस में प्रधान बन कर गये। वहाँ के ५००० भीलो ने मांस न खाने की प्रतिज्ञा आपकी प्रेरणा से ली थी।

सन् ४० में जिलामण्डल देहली के प्रधानमन्त्री चुने गये। उसी साल मुजफ्फरनगर में जिला दिगम्बर जैन कान्फ्रेंस के सभापति बनकर गये। जिस समय जापान ने कलकत्ते पर कमबारी की और वहाँ से हमारे मारवाडी भाई कलकत्ता छोडकर अपने देश आ रहे थे उस समय मारवाडी रिलीफ सोसायटी दिल्ली के मत्री पद पर रहकर सेवा कार्य किया।

सन् ४१ मे नई दिल्ली कांग्रेस कमेटी के प्रधान चुने गये। गवर्नमेंट ने मस्जिद के आगे जैनियो के जुलूस के बाजो पर पाबन्दी लगा दी थी। अभी तक जैनियो के जुलूस के बाजे मस्जिद के आगे बराबर बजते थे। इस अधिकार के लिए आपने आन्दोलन प्रारम्भ किया और सफलता प्राप्त की। इस आन्दोलन के मत्री आप थे। सिकन्द्राबाद यू० पी० मे कुछ उत्पातियो ने जैन उत्सव में बाधा पहुँचाई। आपने वहाँ जाकर उत्सव को सफल बनाया और जिन्होने बाधा डाली थी उन्हे सजा दिलवाई। उसी वर्ष बडौत के दिगम्बर जैन इण्टर कालेज का शिलान्यास आपके द्वारा हुआ। उसी साल आप आबू पर्वत पर दर्शनार्थ गये। वहाँ यात्रियो पर टौल टैक्स लगता था। उसके विरुद्ध आपने भारत व्यापी आन्दोलन प्रारम्भ किया और बडे सघर्ष के बाद उसमें सफलता मिली। इसी वर्ष ब्यावर जैन कान्फ्रेंस के प्रधान बन कर गये।

सन् ४२-४३ मे काग्रेस का भारत छोडो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ आपने उसमे जेल जाने वाले भाइयो के कुटुम्बियों की सहायता की और एक सोसायटी बनाकर उन भाइयो की पैरवी की तथा सक्रिय भाग लिया।

सन् ४४-४५ मे वनस्पति घी निषेध कमेटी के पद पर रहते हुए, आपने आन्दोलन किया और हजारो आदमियो के हस्ताक्षर कराकर, सरकार के पास भेजा।

सन् ४६ में अखिल भारतवर्षीय मानव धर्म (ह्यूमेनिटेरियन) सम्मेलन जिसकी अध्यक्षता श्रीमती रुकमणि देवी अरुण्डेल ने की थी, उस सम्मेलन के प्रधानमत्री बनकर उसे सफल बनाने का कार्य किया।

सन् ४७-४८ मे अग्रवाल महासभा, वैश्य कान्फ्रेस व वैश्य महासभा तथा मारवाडी सम्मेलन कलकत्ता के कार्य को देहली बढ़ाकर उसका सचालन किया।

सन् ४९-५०-५१ मे अग्रवाल महासभा को अधिक गति दी। उसका अधिवेशन अग्रवालो के उत्पति स्थान अमरोहा में हुआ, उसके प्रधान श्री कमलनयनजी बजाज बम्बई थे। उस अधिवेशन को सफल बनाने मे प्रमुख भाग लिया। अ० भा० अग्रवाल महासभा के प्रधानमंत्री नियुक्त हुए।

सन् ५३-५४ मे अ० भारतीय अग्रवाल सभा के अध्यक्ष का कार्य किया। इसी वर्ष बम्बई जीव-दया मण्डली के कार्य का दिल्ली मे विशेष प्रचार किया और इस काम को बढ़ाया। साथ ही 'रविदास' जन्म उत्सव की स्वागत समिति के चेयरमैन पद पर रहकर उस उत्सव को सफल बनाया।

सन् ५५ मे भारत की वेजिटेरियन सोसायटी द्वारा शाकाहार भोजन का प्रचार किया।

सन् ५६ में अ० भा० दि० जैन परिषद के देवगढ अधिवेशन मे आपको प्रधानमन्त्री बनाया गया।

सन् ५८ मे दरियागज देहली कांग्रेस मण्डल कमेटी के सदस्य चुने गये।

सन् ५८ से अब तक आप अस्वस्थ रहते हुए भी बराबर धार्मिक, सामाजिक कार्यों मे यथाशक्ति भाग लेते रहते है। इस प्रकार आपका पूरा जीवन सामाजिक, राजनैतिक तथा धार्मिक कार्यो मे ही व्यतीत हुआ। आप समाज के कर्मठ कार्यकर्ता थे। भारत जैन महामण्डल के कार्यों में दिलचस्पी लेते रहे और उस काम को बढाने मे प्रयत्नशील रहे।

१४ जुलाई, १९६३ को ६४ वर्ष की अवस्था मे आपका स्वर्गवास हो गया। जिससे समाज का एक तेजस्वी नक्षत्र उठ गया। लालाजी के उत्तम कार्यो की स्मृति सदा जनता के मानस पलट पर बनी रहेगी।

× × × ×

कर्मठ सेवा-भावी कार्यकर्ता

श्री रतनलाल जैन
बिजनौर

बाबू रतनलालजी जैन Ex MLA परिषद के सस्थापको मे से है। समाज और देश सेवा की ओर आपकी स्वाभाविक रुचि है। त्याग और सेवा की मूर्तिमान ज्योति है। दृढ कर्मठ, साहसी और निरखे हुए समाज के ऐसे रत्न है जिन पर जैन समाज को गौरव है। आपसे युवको और तरुणो को बडा प्रकाश मिलता है। लालाजी के सम्बन्ध मे लिखा गया आपका सस्मरण रोचक और पठनीय है।

श्री तनसुखराय जी से मेरा परिचय सन् १६३४ में देहली के भा० दि० जैन परिषद के अधिवेशन मे हुआ था। उस समय स्वागत-कारिणी समिति के वे प्रधान मन्त्री थे। उस अधिवेशन के सभापति स्वर्गीय ला० सुमेरचन्द जी एडवोकेट थे। उस अधिवेशन का कार्य बडी सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ था। उस अधिवेशन में उनकी कार्यदक्षता देखकर परिषद ने उन्हे मन्त्री और मुझे प्रधान मन्त्री बनाया था।

श्री तनसुखराय जी ने पूरे सप्ताह के साथ परिषद के कार्य को आगे बढाया। उस समय वे देहली स्थित लक्ष्मी इन्श्योरेन्स कम्पनी के मैनेजर व सर्वेसर्वा थे। श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलीय व श्री कोमलप्रसादजी उनके साथ उपरोक्त कम्पनी मे कार्य करते थे। इन दोनो सज्जनो ने सहयोग से परिषद के कार्य की प्रगति को बडे वेग के साथ बढाया।

उस समय ग्वालियर राज्य के अन्तर्गत महगांव काड हुआ। यहा जैनियो की पूज्य प्रतिमाओ का घोर अपमान किया गया। इसके विरोध में परिषद ने आन्दोलन प्रारम्भ किया। उस आन्दोलन के वेग को तीव्र करके भारतव्यापी बना दिया। स्थान-स्थान पर जल्से हुए, भाई तनसुखरायजी ने मेरे साथ महगाव आदि स्थानो का दौरा किया। इस आन्दोलन ने जैन समाज में नया जीवन व स्फूर्ति उत्पन्न कर दी। इस युग मे पहला अवसर था कि जब जैन समाज को अपनी संघ शक्ति का भान हुआ। ग्वालियर राज्य का शासन डोल गया और उसने जैन समाज से समझौता किया। वे १६४० तक मेरे साथ सहमन्त्री रहे। इस काल मे सतना व खडवा के अधिवेशन बडे महत्व के हुए। महगाव काड के विरोध में सफलता एव खडवा आदि अधिवेशनो की सफलता का श्रेय भाई तनसुखराय जी को है।

सन् १६४० में बडौत अधिवेशन मे मेरे सभापति हो जाने एव तत्पश्चात् असहयोग आन्दोलन मे मेरे कारावास चले जाने पर भाई तनसुखराय जी ने परिषद के प्रधान मन्त्री के पद को सम्भाला और उसके कार्य को बडी योग्यता के साथ सचालन किया। उनकी सेवाओ को देखकर बड़ौत जैन समाज ने परिषद अधिवेशन के शुभ अवसर पर उनसे बड़ौत जैन कालिज की नीव रखवाई।

परिषद ने अपने प्रारम्भिक जीवन में अपने कार्यकर्त्ताओ के अथक परिश्रम से पुरानी, सदियो से ग्रस्त जैन समाज को उनसे मुक्त किया और नवीन स्फूर्ति प्रदान की जिसके कारण जैन धर्मानुयायी जातियो मे अन्तर्जातीय विवाहो को प्रचलित करके छोटी-छोटी उपजातियों के जीवन की रक्षा को जा सकी, मरण भोज आदि कुत्सित प्रथाओ को दूर किया। विवाहो में एक रोज की बारात व सामूहिक विवादो को प्रचलित करके जैन समाज की अपव्यय से रक्षा की। जिस दस्सा पूजा (विनैकवार) के मामले मे प्रतिक्रियावादी जैनो ने जैनदस्सो को जिन पूजा से वंचित करके प्रात स्मरणीय प० गोपालदास जी वरैया आदि समाज-सुधारको का अपमान व बहिष्कार किया था उस दस्सा पूजा को जैन समाज से मान्यता दिलाई। श्रद्धा व शुद्धता-पूर्वक आने वाले हरिजनो के लिए जैन मन्दिर के द्वार खुलवाकर जैन धर्म की उदारता का परिचय दिया। जैन समाज को प्रगतिशील व उदार बनाने का बहुत कुछ श्रेय भाई तनसुखराय जी को है।

देहली में परिषद का द्वितीय अधिवेशन लाल मन्दिर के मैदान में साहू श्रेयासप्रसाद जी की अध्यक्षता मे हुआ था। सभामण्डप जैन जनता से खचाखच भरा हुआ था सात आठ हजार जनता थी। रात्रि का समय था। हरिजन मन्दिर प्रवेश का प्रस्ताव रखा जा रहा था। उस समय प्रतिक्रियावादियो का एक समूह हुल्लड़ मचाता हुआ सभा मे घुसा और मच के पास जाकर प० परमेष्ठीदास जी प्रस्तावक को खीचकर मच से गिरा दिया, जल्से मे गड़बड मच गई। परिषद के कार्यकर्त्ताओ को भी सभामण्डप मे आना पड़ा। रात्रि के ११ बजे श्री राजेन्द्रकुमारजी की कोठी पर परिषद के नेता व कार्यकर्त्तागण एकत्रित हुए, सभा मे प्रतिक्रियावादियो द्वारा किये गये हुल्लड व अधिवेशन मे पास होने वाले प्रस्तावो पर विचार विनिमय हुआ। कुछ कार्यकर्त्ताओ ने कहा कि प्रतिक्रियावादियो के झगडे से बचने के लिए यह अच्छा होगा कि हम जल्सा नयी देहली के जैन मन्दिर में करके हरिजन मन्दिर प्रवेश का प्रस्ताव पास कर लें। इस पर हम दोनो (भाई तनसुखरायजी व मैंने) ने कहा कि यदि निश्चित स्थान व पडाल को छोडकर नयी देहली के जैन मन्दिर मे जल्सा करके हरिजन मन्दिर प्रवेश वाला प्रस्ताव पास करलें, तो उसका कोई महत्व नही होगा, जनता यही कहेगी कि हरिजन वाला प्रस्ताव फेल हो गया। अत जल्सा लाल मन्दिर के मैदान मे निश्चित पडाल व निश्चित समय पर ही होना चाहिए, उसके प्रबन्ध की जिम्मेदारी हम दोनो ने ली। श्री तनसुखराय जी ने उसी रात को १०० स्वयसेवको का प्रबन्ध किया और अगले दिन निश्चित स्थान व पडाल को निश्चित समय पर परिषद अधिवेशन को हरिजन मन्दिर प्रवेश आदि प्रस्तावो को पास कराकर अधिवेशन को सफल बनाया।

श्री तनसुखरायजी बड़े उत्साही, साहसी, वीर व लगनशील थे। कार्य करने की क्षमता उनमें अपूर्व थी। वे बडे मेहमान निवाज (अतिथि सत्कार) थे। अतिथियो का सत्कार करते थे। कोई दिन ही ऐसा व्यतीत होता होगा जबकि उनके यहा कोई न कोई अतिथि न ठहरा हो। ऐसे प्रेमी कार्यकर्ता के निधन से जो क्षति जैन समाज मे हुई है उसकी पूर्ति निकट भविष्य मे होना कठिन ही प्रतीत होती है।

लालाजी एक संस्था थे

(मधुर स्मृति)

श्री यशपाल जैन
७८, दरियागंज, दिल्ली

भाई साहब तनसुखरायजी से मेरी पहली भेंट कब और कहा हुई थी, याद नही आता; लेकिन एक प्रसग आज भी मेरे स्मृति-पलट पर यथावत अकित है। उन दिनो वे 'तिलक बीमा कम्पनी' का सचालन कर रहे थे और उनका कार्यालय नई दिल्ली मे ओडियन के पास किसी इमारत मे था। भाई अयोध्याप्रसाद गोयलीय उनके साथ काम करते रहे थे। उस समय का उनका वैभव और तेजस्विता आज भी भूले नही भूलती। पर सबसे बडी बात जिसने मुझे अपनी ओर खीचा, यह था कि वैभव के बीच होते हुए भी वे उस सारे ठाठ-बाट से ऊपर थे। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि उनका अन्तर मानवीय मूल्यो से परिपूर्ण था।

सन् १९४६ के बाद मुझे उनके निकट सम्पर्क मे आने का अवसर मिला और मैंने उनके जीवन के विभिन्न पहलुओ को देखा। जैन समाज में उनसे अधिक धनी-मानी व्यक्ति थे, लेकिन उनको जो मान प्राप्त था, वह बहुत ही कम लोगो को उपलब्ध हो सका। उनकी सामाजिक सेवाओ ने उन्हे व्यक्ति से अधिक सस्था का रूप दे दिया था। अखिल भारतीय दिगम्बर जैन परिषद के वे अनेक वर्षो तक महामन्त्री रहे थे, लेकिन सच बात यह है कि वे परिषद के प्राण थे। न जाने कितने वर्षों तक उन्होने इस सस्था को अपने पसीने से सीचा और अपने परिपक्वानुभव से उसे गति दी। बहुत-सी प्रवृत्तिया उसके अन्तर्गत चलाई। परिषद के अतिरिक्त और भी बहुत से लोकापयोगी कार्य उनके द्वारा सम्पादित हुए।

समाज-सेवा की उनकी लौ कभी मन्द नही पड़ी। उल्टे उत्तरोत्तर तीव्र होती गई। मुझे याद आता है, अपने अन्तिम दिनों में जबकि उनका शरीर साथ नही दे रहा था, वे वैजीटेरियन सोसायटी को लेकर कई योजनाएँ बना रहे थे। कुछ साहित्य प्रकाशन की भी बात थी।

इन सारी प्रवृत्तियो के पीछे उनकी एक ही भावना थी और वह यह कि हमारा भारतीय समाज शुद्ध और प्रबुद्ध बने। समाज की मूलभूत ईकाई मानव है और वह मानते थे कि यदि मानव का जीवन परिष्कृत हो जाय तो समाज अपने आप सुधर जायेगा। वे मूलतः धार्मिक व्यक्ति थे, और उनकी मान्यता थी कि मानव का परिष्कार धर्म के आधार पर ही हो सकता है। लेकिन स्मरण रहे कि उनका धर्म रूढियो से बधा धर्म नही था। वे व्यापक धर्म में आस्था रखते थे, अर्थात् वह मानते थे कि मनुष्य को सच बोलना चाहिए, सचाई का जीवन जीना चाहिए, अहिंसा का पालन करना चाहिए, सयम से रहना चाहिए, आदि-आदि। इस प्रकार उनके लिए धर्म का

वास्तविक अर्थ था चरित्र की ऊचाई। उनका स्वय का जीवन बडा उदार था और उनको इस अमोघ गुण के सामने मेरा मस्तष्क बार-बार श्रद्धा से नत होता है।

वे वणिक कुल में पैदा हुए थे, लेकिन वे वणिक नही वही बने। उन्होने बड़े-बडे पदो पर पर कार्य किया। उन्हे जीवन मे एक-से-एक बढकर सुविधाएँ प्राप्त की। यदि इनके स्थान पर दूसरा होता तो लखपति बन सकता था, लेकिन वे लखपति तो क्या, हजार पति भी नही बने। जिनकी आस्था मानवीय मूल्यो मे होता है, वे धन के प्रति आसक्ति नही रखते और धन विना आसक्ति के इकठ्ठा हो नही सकता।

उन जैसा साहसी व्यक्ति तो आज के युग में मुश्किल से मिल सकेगा। उन्हे जो बात ठीक लगती थी, उसे कहने मे वह कभी नही हिचकिचाते थे। उन्हे आजीवन इस बात की चिन्ता नही हुई कि उनकी बात से कोई बुरा मानेगा। जो ठीक लगा, उसे उन्होने साफ-साफ कहा। चूकि उनकी बात मे दुर्भावना नही होती थी, इसलिए उनकी कटु-से-कटु बात भी किसी को चोट नही पहुँचाती थी।

परिश्रमशील तो वे हद दर्जे के थे। उच्चे स्थान पर पहुँच कर प्राय. व्यक्ति श्रम से अपने को बचाने लगता है और दूसरे के श्रम का लाभ लेना चाहता है, लेकिन भाई साहब मे ये बातें नही थी। वे स्वय इतना परिश्रम करते थे कि कोई युवक भी उनके परिश्रम को देखकर लज्जा अनुभव कर सकता था। श्रम उनके जीवन का प्रमुख अग बन गया था इतना कि वे उससे एक पल भी छुटकारा नही पा सकते थे।

समाज-सेवा के अतिरिक्त राजनीति मे भी उनका भारी योगदान रहा। कुछ समय तक उन्होने राजनीति मे सक्रिय भाग लिया। स्वाधीनता-सग्राम की छोटी-बडी सभी प्रवृत्तियो मे मदद की, जीवन के अन्तिम क्षण तक आदतन खादी पहनी, लेकिन जब उन्होने देखा कि राजनीति मे आडम्बर का समावेश आरम्भ हो गया है तो उन्होने थोडा पीछे हटना अच्छा समझा। फिर भी उनसे जो कुछ बना, बराबर करते रहे। पदो के लिए उनके मन मे मोह न था। वे चाहते तो किसी भी बड़े-से-बड़े पद पर पहुँच सकते थे। लेकिन चाहते तब न। वे मूक सेवक थे और उनके जीवन का लक्ष्य नि स्वार्थ-भाव से सेवा करना था।

वे अच्छे वक्ता एव लेखक भी थे। उनकी एक बडी विशेषता यह थी कि वे जो कुछ कहते थे, नाप-तौल कर कहते थे। शब्दो का आडम्बर उन्हे प्रिय न था। यही बात उनके लिखने के बारे थी। उन्हें जो कुछ कहना होता था, थोडे से शब्दो मे कह देते थे। इसलिए उनकी भाषा बडी गठी और मजी हुई होती थी। उनके विचार बडे स्पष्ट थे, इस वजह से उनकी भाषा और शैली भी स्पष्ट थी।

भाईसाहब ने लम्बी बीमारी पाई, पर वे उनसे पराभूत नही हुए। मुझे याद है, वे नित्य नियम से सवेरे राजघाट पर टहलने जाया करते थे। बीमारी ने जब उन्हें अशक्त कर दिया तब

भी उन्होने साहस नही खोया। वे बार-बार कहा करते कि मै जल्दी ही ठीक हो जाऊँगा और पहले की तरह राजघाट घूमने आया करूगा। हुआ भी ऐसा ही। ज्योही उनकी तबियत सभलने लगी, वे रिक्शा में राजघाट आने लगे और बाद मे उन्होने पैदल चलना भी शुरू कर दिया, लेकिन कौन जानता था कि वह बुझते दीपक की अन्तिम चमक थी।

भाईसाहब चले गये, पर आज भी यह नही लगता कि वे हमारे बीच नही है। उनका हसमुख चेहरा, मधुर बाते, अच्छे कार्यो के लिए उनकी लगन और न जाने क्या-क्या बातें सामने आती है। वे जीवन-भर समाज को देते रहे, लेने की चाह उन्होने कभी नही की। यथार्थत उनका अन्तर भरा-पूरा था।

हमारा परम सौभाग्य था कि उन जैसा व्यक्ति हमारे बीच आया। उनको खोकर आज हम बडी रिक्तता अनुभव करते है। उनकी प्रेरणाए हमारा मार्ग-दर्शन करती रहे, ऐसी प्रभु से प्रार्थना है।

मैं उनकी स्मृति में अपनी विनम्र श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

अहिंसा के प्रेमी और पशुधन के रक्षक

माननीय श्री जयन्तीलाल, मानकर

सचालक, जीवदया ह्यूमिनी लीग, बम्बई

भगवान महावीर ने उस समय राज वैभव और ऐश्वर्य को लात मारकर जैनेश्वरी दीक्षा स्वीकार की जब कि रूढिभक्त धर्म के नाम पर पशुओ को यज्ञ की धधकती हुई अग्नि मे स्वर्ग प्राप्ति के लिए बलिदान कर देते थे। उन्होने अहिंसा का बिगुल बजाया और प्राणीमात्र की रक्षा का सदेश दिया। आज भोजन और विटामन के नाम पर पशुओ का बडी निर्दयता के साथ वध किया जा रहा है। देश की समृद्धि का मूल स्रोत गोधन का ह्रास हो रहा है। आज देश को अहिंसा की बड़ी आवश्यकता है। पशु धन की रक्षा करना प्रत्येक का कर्तव्य है। लालाजी ने इस सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण कार्य किया, शाकाहार को प्रोत्साहन दिया और अहिंसा धर्म का प्रचार किया। मैं नेताओ का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि वे पशुधन की रक्षा करें। लालाजी के प्रति मै अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

× × × ×

लालाजी एक योद्धा

युवकरत्न श्री सत्यंधर कुमार सेठी
उज्जैन

प० सत्यन्धरकुमार जी सेठी कुशल-व्यवसायी और निर्भीक वक्ता है। मिशनरी भावना से ओतप्रोत जिनशासन के अनन्य भक्त है। जैन मिशन के सक्रिय कार्यकर्ता है। वे समाज के ऐसे तेजस्वी उदीयमान नक्षत्र हैं जिन पर समाज को गर्व है।

लाला तनसुखरायजी जैन का स्मृति-ग्रन्थ निकालकर दि० जैन समाज ने एक निस्वार्थ एव कर्मठ कार्यकर्ता के प्रति अपनी श्रद्धा का परिचय दिया है। लाला तनसुखरायजी जैन का नाम उन पुरुषो की श्रेणी मे ले सकते हैं जिन्होने देश, धर्म, समाज और राष्ट्र के लिए अपने आपको अर्पित कर दिया है। लालाजी का जन्म एक वैश्य परिवार में हुआ था, लेकिन वे यही तक सीमित नही रहे। वे राष्ट्र और समाज के एक लाड़ले पुत्र माने जाते थे।

सामाजिक क्षेत्र के पहले लालाजी का जीवन राष्ट्रीय क्षेत्र मे अधिक विकसित हुआ। सन् १९१८ मे लालाजी सरकारी नौकरी करते थे। ज्योही पूज्य महात्माजी के नेतृत्व मे ब्रिटिश गवर्नमेंट के खिलाफ असहयोग आन्दोलन छिडा, लालाजी इससे प्रभावित हुए और वे नौकरी छोडकर निर्भीक सेनानी की तरह असहयोग आन्दोलन में कूद पड़े। यह लालाजी का पहला महान् त्याग था। उस वक्त ऐसा करना ब्रिटिश सरकार की दृष्टि मे गहरा अपराध था। लालाजी प्रारम्भ से ही कर्मठ और निर्भीक कार्यकर्ता थे। आपकी कार्यशैली से बड़े-बड़े देश-नेता भी प्रभावित थे। इसलिए थोडे से समय मे ही लालाजी देशनायक प० जवाहरलाल नेहरू व लाला लाजपतरायजी के सपर्क मे आ गये। और आपने डटकर राष्ट्रीय क्षेत्र मे कार्य करना प्रारम्भ कर दिया। बडे-बडे क्रान्तिकारी नेताओ का ध्यान भी आपकी तरफ गया। वे चाहते थे कि लाला तनसुखरायजी हमारा साथ दें। उस वक्त पजाव मे नौजवान भारत सभा एक क्रान्तिकारी सस्था थी जिस पर सरकार की कड़ी दृष्टि रहती थी। आप उसके सदस्य वने जिससे ब्रिटिश सरकार की दो वर्ष तक आपके ऊपर वडी दृष्टि रही। और अन्त मे सन् १९३० मे आपको कारावास का मेहमान वनना पड़ा।

इसके वाद आपने एक नहीं अनेको आन्दोलनो मे भाग लिया, और देश को आजादी मिली। यहाँ तक आप राष्ट्रीय क्षेत्र मे अवाधरूप से कार्य करते रहे जिनमे हरिजन उद्धार हरिजनो के बच्चो के लिए आश्रम बनवाना, रोहतक जिले मे वाढ पीडितो की सहायता करना व कराना। खादी प्रचार समिति व हिन्दी प्रचार समिति आदि का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

इसके साथ-साथ आपका धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र शून्य नही रहा। आप राजनैतिक क्षेत्र के योद्धा थे। फिर भी आपकी आत्मा धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र से भी प्रभावित थी। अत. आपने राजनैतिक क्षेत्र मे काम करते हुए भी सामाजिक क्षेत्र व धार्मिक क्षेत्र को गौरव नही दिया। सामाजिक क्षेत्र मे लालाजी ने कई उल्लेखनीय सेवायें की है जिनके कारण जैनत्त्व चमका और उसकी सस्कृति का सरक्षण हुआ। लालाजी ने जैन समाज की चहुँमुखी प्रगति में योग दिया। बडे-बडे सामाजिक आन्दोलन किए। लेकिन दु ख है कि जैन समाज ने उनके साथ पूर्ण सहयोग नही दिया, और कुछ रूढि भक्त लोग तो अन्त तक लालाजी के विचारो का विरोध करते ही रहे लालाजी को जैन समाज मे कई वार कठिनाइयो का सामना करना पडा है। फिर भी वे अडिग भाव से डटे रहे। वे जानते थे जैन समाज अभी बहुत पिछडा हुआ समाज है। वह धर्म क्या है यह भी नही जानता। और समाज कैसे ऊचा उठ सकता है इसका भी विचार नही करता। लालाजी ने सक्षिप्त रूप मे यह समझ लिया था कि जैन धर्म एक मानवतावादी धर्म है जहाँ प्राणीमात्र को अपना विकास करने का अवसर दिया गया है। धर्म-जाति वर्ण का कोई स्थान आता नहीं। धर्म तो वस्तुत. स्वभाव है।

लालाजी के विचारो से कुछ बुद्धिजीवी लोग अवश्य प्रभावित हुए, उन्होने एक अखिल-भारतीय परिषद के नाम से सगठन किया। और उसकी वागडोर लालाजी के हाथ मे सौंप दी। लालाजी उसके महामन्त्री रहे। आपके मन्त्रित्व मे परिषद के कई अधिवेशन महत्त्वपूर्ण रहे।

लालाजी जिस काम को अपने हाथ मे लेते उससे वे क्यो पीछे नही जाते और न हटते। सामाजिक क्षेत्र मे काम करते हुए भी उन्होने कई आन्दोलन ऐसे किये जिनमे दूसरा व्यक्ति सफल नही हो सकता था। जैसे महगाव काण्ड आवू मदिर टैक्स।

इसके अलावा लालाजी की और भी कई सार्वजनिक सेवाये है, जैसे जैन कोआॅपरेटिव वैंक व जैन क्लब की स्थापना। नीमखेडा मे ५००० भीलो से मास छुडवाना, मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी शाखा दिल्ली के मन्त्री पद पर रह कर मारवाडी भाइयो की अपूर्व सेवा करना, भारत छोडो आन्दोलन मे जेल जाने वाले भाइयो के कुटुम्वियो को मदद करवाना, वनस्पति घी निषेध आन्दोलन करना, अखिल भारतवर्षीय मानव धर्म सम्मेलन के प्रधान मन्त्री बनकर उसे सफल बनाना आदि-आदि।

लालाजी की ये सेवायें आज भी मूलरूप ले जीवित है और वे हमे प्रेरणा देती है। लालाजी वास्तव मे प्रेरणा के स्रोत थे। जैन युवको का कर्तव्य है कि वे लालाजी के जीवन से प्रेरणा ले और जिन कार्यो से उन्हे रुचि थी उनको पूर्ण करने का प्रयत्न करें। लालाजी सामाजिक रूढियो के कट्टर विरोधी थे। समाज मे आज भी कई रूढ़ियाँ ऐसी हैं जिनसे समाज जर्जरित हो रहा है जिनमे दहेज प्रथा का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस प्रथा ने समाज मे इतना घर कर लिया है कि फलस्वरूप समाज की कई अबोध वच्चियो को इस प्रथा के नाम पर अश्रु बहाने पड़ रहे है। क्या समाज हितैषी युवक ध्यान देंगे, और इसके विरोध मे अपना कदम बढावेंगे। लालाजी आज भी हमको याद आते है। और कभी-कभी हम सोचते है कि यदि लालाजी आज होते तो वे कभी भी इस प्रथा को नही पनपने देते।

वास्तव मे लालाजी एक कट्टर वीर योद्धा थे। जिनके सामने श्रद्धा से अपने आप सर नमित हो जाता है।

आन्दोलनकारी लालाजी

श्री बलभद्र जैन
आगरा

लाला तनसुखराय समाज के उन गिने-चुने सार्वजनिक कार्यकर्ताओ मे से थे, जिनकी सूझ-बूझ, कार्य-क्षमता और लगन पर किसी समाज को गर्व हो सकता है। उनका सारा जीवन सार्वजनिक-सेवा मे ही बीता। राष्ट्र-सेवा के क्षेत्र मे उतर कर उन्होने अपने सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ किया। इसके लिए उन्हे कई बार कारावास का दण्ड भोगना पड़ा। किन्तु जीवन के अन्त तक उन्होने राष्ट्र-सेवा के व्रत से मुँह नही मोडा।

पं० बलभद्रजी जैन समाज के ऐसे नव-पीढी के विद्वान् है जो कलम और वाणी दोनो के धनी है। पिछले दो वर्षो से भारत-गौरव आचार्य रत्न देशभूषणजी महाराज के सानिध्य में रह कर आपने अच्छी कीर्ति प्राप्त की है। इससे आपका यश बढा है। हम आशा करते है कि समाज ऐसे प्रचारकीय भावना सम्पन्न के विद्वानो को सहयोग देकर उनसे यथोचित लाभ उठावे।

वे प्रगतिशील विचारो के समर्थक थे। रूढिवादिता से उन्हे घृणा थी। वे समाज का नव निर्माण करने के हामी थे। वे चाहते थे कि समाज धर्म और सस्कृति के पुरातन आदर्शो पर कायम रह कर अपने कदम युग के साथ बढाये। सकीर्णताओ और निरर्थक बन्धनो मे जकडकर समाज की प्रगति को जिन मान्यताओ ने अवरुद्ध कर दिया है उन मान्यताओ को पुरातनता की दुहाई देकर कायम रखना वे कभी स्वीकार नही कर सके। रूढिगत मान्यताओ के पुनर्मूल्याकन और उपयोगितावाद की नीव पर उनके पुनरुद्धार मे उनकी गहरी आस्था थी।

उनके काम करने का अपना एक ढग था। वे जन-मानस को आन्दोलित करने मे कुशल थे। सघर्षो को स्वस्थ रूप देना, आन्दोलनो को सचालन करना, विषम परिस्थितियो मे अविचल रह कर सूझ-बूझ से काम लेना ये उनकी अपनी विशेषताएँ थी। और इसे मानने मे वे वास्तविक नेता कहे जा सकते है। आन्दोलन प्रारम्भ करने से पूर्व वे उसके परिणामो पर भली-भाति विचार करते थे। उसकी रूपरेखा बनाते समय भली-भाति निरीक्षण कर लेते थे कि छिद्र तो नही रह गया। तब वे समाज मे फीलर फेक कर समाज के मानस मे एक परिस्पन्द पैदा करते थे। धीरे-धीरे समाज की चेतना उद्‌बुद्ध करके वे उस पर छा जाते थे। तब वे अनिवार्य समाज के लिए। इस प्रकार का ढग उनके आन्दोलन करने का। इसीलिए उन्होने जो आन्दोलन उठाया, उसमे पूर्णत सफल हुए। जिस कार्य को भी उठाया, उसीको एक आन्दोलन का रूप दे दिया और समाज के मानस को उस पर विचार करने, उससे प्रभावित होने और उसमे सक्रिय सहयोग देने को विवश कर दिया। यदि उन्हे आन्दोलनकर्ता कहा जाय तो उनका सही चित्र सामने आ सकता है।

भा० दि० जैन परिषद में जीवन नही था। लालाजी मन्त्री चुने गये और परिषद चमक उठी। उसका विगत चैतन्य लौट आया। लोग आश्चर्य से देखने लगे। कैसा है यह जादू और इसका जादूगर, जिसने जादूगर की छडी लगाते ही मुर्दो मे जान फूंक दी; सोई नसो मे रक्त प्रवाहित होने लगा और मुर्दे जानदारो से भी बाजी मारने लगे। लालाजी के मन्त्रित्व-काल में परिषद सही अर्थो मे प्रगतिशील विचारो की एक प्रतिनिधि सस्था थी। परिषद को खडा करने में लालाजी को जो कुर्बानियाँ देनी पडी, उसका सही मूल्याकन समाज ने कभी नही किया, यह इतिहास की एक दुर्भाग्यपूर्ण घटना थी। किन्तु लालाजी के मन पर इसका कभी प्रभाव नही पडा।

आबू का जैन मन्दिर शिल्प और स्थापत्य कला का बे-जोड, अनुपम नमूना माना जाता है। वह पर्यटको का आकर्षण केन्द्र है। सिरोही स्टेट ने वहाँ जाने वाले यात्रियो पर टैक्स लगा दिया। यह असह्य अन्याय था। इसके विरुद्ध लालाजी ने आवाज उठाई। जनता के मन में जो विरोध घुमड रहा था, उसे आन्दोलन का रूप दिया। यह आन्दोलन जनता का आन्दोलन बन गया। सिरोही स्टेट को घुटने टेकने पडे और टैक्स हटाना पडा।

पशु-रक्षा-आन्दोलन, दहेज प्रथा विरोधी आन्दोलन, दहेज प्रदर्शन विरोधी आन्दोलन, मरण भोज विरोधी आन्दोलन, सामूहिक विवाह आन्दोलन आदि अनेको आन्दोलन का नेतृत्व करके लालाजी ने अपनी जीवन कार्य-शक्ति का परिचय दिया। वास्तव में लालाजी का जीवन सघर्षो का जीवन रहा है और उन्होने रचनात्मक प्रतिभा और जीवित नेतृत्व से समाज को जीवन-दान दिया है। क्या समाज निर्माण से उनका योगदान किसी भी अर्थ मे कम महत्वपूर्ण है ?

मरण जीवन का अनिवार्य परिणाम है। किन्तु जन-सेवा करके जिन्होने अपने जीवन को सफल किया है, उनका मरण शोक नही; गौरव का विषय बन जाता है। लालाजी आज हमारे बीच नही है, किन्तु उन्होने अपने जीवन को जन-जन की सेवा मे समर्पित करके सार्थक किया था। उनका जीवन उद्देश्यपूर्ण था। इसलिए उनका मरण भी गौरवशाली और स्मरणीय बन गया है।

सामाजिक व धार्मिक सेवायें

ज्योतिष रत्न पं० रामलाल जैन
पचरान, ललितपुर

स्वर्गीय लालाजी के जीवन का प्रत्येक क्षण सस्मरणीय है तथा देश, जाति, समाज और धर्मानुराग से ओतप्रोत है। विदेश तथा सामाजिक सेवाओ के लिए अपने जीवन का प्रभावक चमत्कार हमे दे गये है जो जीवन में प्रकाश का काम करता रहेगा।

१ देश-भक्ति के वे बडे उपासक रहे है अपना जीवन स्वदेशी गाढे के कपडो से साधारणतया बिताते रहे। न कभी शौकीनी व शृंगार की भावना रही, न कभी सिनेमा, नाच, तमाशे और विलासप्रियता के जाल मे वे फसे, जेल भी गये, सब कुछ त्याग किया। बलिदान अपने जीवन का देशभक्ति मे अर्पण किया। लालाजी का जीवन, निरभिमानता, सात्विक, सदाचार और सद्विचारो में व्यतीत हुआ है।

वे हमे अपने देश भक्त, कर्मवीर, सादा और सात्विक जीवन व्यतीत करने का सन्देश दे गये है।

२. सामाजिक-सेवा—लालाजी की सर्वोपरि कही जा सकती है। उन्होने समाज के सगठन, एकता पर बडा भारी प्रयत्न किया और उसमें सफल भी हुए परन्तु दुर्भाग्यवश अवसर आने पर भी आ० दि० जैन महासभा, सघ और परिषद का एकीकरण न हो सका परिषद जैसी प्रगतिशील सुधार सस्था का भी जीवन बलिदान कर देने पर भी एकमात्र महासभा की छत्रछाया मे ही रहना स्वीकार कर लिया। साहू शान्तिप्रसादजी जैसे धनकुबेर, उदारमना उत्साही के बार-बार प्रेरणा देने पर भी समाज का भाग्य जाग्रत न हो सका और आज भी सन्निवेश की दशा मे पडा है। हमारे समाज-सेवी, कर्मवीर ने इस दुराग्रह और कदाग्रह की परवाह नही की और कार्यक्षेत्र को उत्साहपूर्ण आगे बढाया। १० हजार सदस्यो की सख्या बा० लालचन्दजी एडवोकेट के नेतृत्व मे सतना अधिवेशन के बाद कर सगठन कार्य किया प्रान्तीय के लिए साहूजी के अतुल धनराशि से सुसगठित कार्य किया, परिषद द्वारा स्वीकृत प्रस्तावो को कार्यान्वित करने के लिए अपने साथियो के सहयोग से पूर्ण सफलता प्राप्त की। कुछ नाम जैसे मरण भोज की कुप्रथा का जनाजा निकाला गया, जैन धर्म पतितोद्धारक निराबाध सिद्ध है प्रत्येक प्राणी-शक्ति अनुसार अपनी योग्यता से उससे लाभ ले सका है। अत किसी को मारना, दुर्व्यवहार करना किसी भी सूरत मे ठीक नही है। इसमे लालाजी व उनके साथियो को कटुतर अपमान के उन्मुख अनेक प्रयत्न किये गये परन्तु लालाजी का यह दृश्य देखने व स्मरण करने योग्य है। ऐसा मालूम पडता था मानो सीना ताने सिकन्दर बादशाह आ रहा है। मानापमान की पर्वाह न करके हताश न हुए और साथियो को सान्त्वना दिलाकर आगे बढने मे अग्रसर हुए, सिकन्दराबाद रथोत्सव मे अपमान का चकनाचूर किया। देहली महावीर जयन्ती के अवसर पर जब जलूस के

डिक्टेटर लालाजी थे, सरकार के अनुचित प्रतिरोध पर दृढता से सामना कर सफलता प्राप्त की।

(ग) महगाव काण्ड नगा नाच धर्म-विरोधी आततायियो द्वारा ग्वालियर स्टेट मे हुआ। जैन मन्दिर मे प्रतिमाओ की चोरी, शास्त्रो का अग्निकाण्ड आदि होने तथा सूबेलाल जैन की मृत्यु आदि से जैन समाज क्षुब्ध हो उठा और उसकी बागडोर हमारे स्व० लालाजी ने सभाली। दर्शको और योग्य वकीलो, बैरिस्टरो के जाने का ताता बाध दिया फलत स्टेट सरकार ग्वालियर भयभीत होकर थर्रा गई और हमारी शानदार विजय हुई। स्टेट के इतिहास मे यह मौलिक उदाहरण लालाजी छोड़ गये थे।

(घ) आबू का आन्दोलन—सिरोही स्टेट में हिन्दू व जैन मन्दिरो पर टैक्स देना पडता था। ऐसे दुराग्रह का विरोध करने के लिए ला० तनसुखरायजी ने अपनी सारी शक्ति और उसका त्याग कर सत्याग्रह की तैयारी की, दौरा किया। जगह-जगह थैलिया, मानपत्र मिले उत्साह बढता गया, आखिर सफलता लेकर ही लौटे। ऐसे एक नही सैकडो उदाहरण है जिन्हे इस साथी ने प्राणपण से साथ किया।

(च) परिषद अधिवेशन झाँसी, सतना, खडवा, देहली, भेलसा आदि की सफलता का पूर्ण श्रेय लालाजी को है जो जैन इतिहास मे सदा उल्लेखनीय रहेगे। उन्होने अपने जीवन मे क्रान्ति से आलिंगन करना ध्येय समझा। आँधी आई, ओले बरसे, खूब तिरस्कार हुआ पर वीरात्मा इनकी परवाह नही करते हैं सफलता आलिंगन ही करती रही।

हमे समाज-सेवा में लालाजी की लगन, उत्साह, धैर्य का अनुसरण करना चाहिए। अथक परिश्रम करने पर भी हताश नही होना चाहिए। धुन का पक्का रहकर समाज-सेवा मे दत्तचित्त रहना चाहिए—यह सिखा गए है।

धार्मिक जीवन—लालाजी धार्मिक सेवा में जैसे अग्रसर रहते थे वैसा ही उनका आचरण रहा है। कभी नाचरग, खेल-तमाशा रेडियो पर गाना सुनना सिनेमा देखने के वे विरोधी रहे हैं। खान-पान सात्विक एव शाकाहारी होना, सादा धार्मिक जीवन व्यतीत करना। सामाजिक कार्य अन्तिम जीवन से बहुत पूर्व करने लग गये थे। यही कारण था कि श्री शान्तिसागरजी आचार्य के अनन्य भक्त थे और भी अनेक गुणगाथाएँ है जिन्हे लेख बढ जाने से विराम देना ही उचित समझा।

लालाजी की धर्मपत्नी उनके विरह से दु खी है परन्तु उनमे भी लालाजी के समान गुण विद्यमान है। वे महिला समाज की जाग्रति तथा जैन महिलाश्रम देहली की सेवा तन-मन-धन से करेंगी और स्व० आत्मा का आशीर्वाद पाकर उनके चरण चिन्हो पर चलकर लालाजी के नाम को अमर बनाकर उनके पदचिह्नो पर चलेंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

कर्मठ समाज-सेवी

श्री मोतीलाल जैन 'विजय'
अमर सेवा समिति, कटनी (म० प्र०)

राष्ट्रीय कार्यो मे जैन समाज कभी पीछे नही रहा और न रहेगा यह बात निर्विवाद है। इतिहास साक्षी है, राणा प्रताप को हृदय से चाहने वाले नर-रत्न भामाशाह ने आर्थिक-दृष्ट्या विपत्ति आने पर सारा वैभव तथा कोष महाराणा के कर-कमलो मे सौंप दिया था। मानवता की सेवा, सभी बन्धुओ मे एकत्व तथा ममत्व की भावना जागृत करना, सगठन तथा समाज सेवा का व्रत, निरीह, दुखी एव कष्टापन्न व्यक्तियो को सहायता प्रभृति कुछ ऐसे मानवीय कर्म हैं जिनमें हाथ बंटाकर समाज-सेवी, कर्मठ तथा लगनशील व्यक्ति अवश्य ही रुचि लेता है। परतन्त्र भारत मे राष्ट्रीय भावनाओं को पल्लवित एव पुष्पित करने तथा स्वतन्त्रता का जयघोष करने वाले राष्ट्रीय नेताओं की हुकार को जन-जन तक पहुचाने मे लालाजी सर्वप्रथम एव अग्रसर रहा करते थे।

राष्ट्र-सेवी महान संगठन—लालाजी मे देश-प्रेम तथा सेवा भाव कूट-कूटकर भरा था। राष्ट्र-भक्ति को सर्वोपरि मानकर शासकीय सेवा को छोड आप गाँधीजी के असहयोग आन्दोलन मे सम्मिलित हो राजनैतिक जीवन व्यतीत करने लगे थे। स्वदेशी वस्तु प्रचार, खादी प्रचार, हिन्दी प्रचार, प्रभृति समितियो का सयोजन, नौजवान भारत सभा, मजदूर किसान सभा-सम्मेलन, हरिजनोद्धार, बाढ-पीड़ितो की सहायता जैसे अनेक ज्वलन्त उदाहरण हैं जिनसे लालाजी की सगठन शक्ति का परिचय मिलता है। लाला लाजपतराय तथा जनता के हृदय-सम्राट प० नेहरु जैसे अग्रणी नेताओं का स्नेह व सक्रिय साथ मे लालाजी ने विभिन्न जिलों में प्रभूत ख्याति अर्जित की थी। उनका स्वभाव अत्यन्त मृदुल, सरल तथा निष्कपट था।

शाकाहार का प्रचार उनके जीवन का महत्त्वपूर्ण कार्य रहा है। सच्चे काग्रेस सेवक के रुप मे उन्होंने जन्मस्थान रोहतक तथा भटिण्डा, एव अधिकाश समय भारत की राजधानी देहली में दिया था। सन् १६४१ मे नई दिल्ली काग्रेस समिति का प्रधान चुना जाना इस बात का द्योतक है कि उनमे अपूर्व सगठन शक्ति थी।

महान समाज सेवक—सच्चे स्वतन्त्रता सग्रामी होने के साथ ही लालाजी मे धर्म तथा जाति की उन्नति की भावना अपने उदारमना माता-पिता से धरोहर के रुप मे मिली थी। इस युग के दि० जैन समाज के निर्माता, ब्र० शीतलप्रसादजी तथा बैरिस्टर चम्पतरायजी जैसे क्रान्तिकारियों तथा समस्त भारत के आध्यात्मिक सन्त आचार्य शान्तिसागरजी महाराज का प्रभाव आपके हृदय पर पडा। तदनुसार आपने अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के माध्यम से जैन समाज तथा जैन धर्म मे व्याप्त रुढियाँ, वाद-विवाद, समस्याए और उनका समाधान ही अपना ध्येय बना लिया था। राष्ट्रीय संगठनो मे जहाँ वे अत्यन्त निपुण थे, जातीय संगठन में उतने ही

निष्णात। अहिंसा का प्रचार, माँसाहारियो को माँस की दुरुपयोगिता सही रूप से समझाकर मास का त्याग कराना जैसा कठिन कार्य, महावीर जयन्ती पर सार्वजनिक अवकाश दिलाने का प्रयास, वस्त्र औषधि का बाढ-पीडितो के लिए निजी व्यय, धार्मिक कार्यो मे पूर्ण अभिरुचि, मिलावट विरोधी कान्फ्रेंस (सभा) का सगठन, वाराणसी स्थित भदैनीघाट के शासन की सहायता से कार्य, दिगम्बर जैन कालेज बडौत की उन्नति मे रुचि जैसे अनेक कार्य हैं जिनमे लाला तनसुखरायजी हृदय से कार्य करते थे तथा उनकी सफलता के लिए दिन-रात व्यस्त रहते थे।

युवकों के पथ-प्रदर्शक–

अखिल भा० दि० जैन परिषद, भारत जैन महामण्डल, वैश्य कान्फ्रेस, अग्रवाल सभा, भारत शाकाहारी परिषद के आप परम हितैषी थे। जैन नवयुवको मे प्रेरणा, उत्साह तथा लगन की प्रेरणा आप 'जैन मित्र' आदि पत्रो तथा उपरिलिखित परिषदो के माध्यम से सदैव देते रहते थे। उन्होने अपने ६४ वसन्तो के प्रारम्भिक वसन्त क्रान्तिकारी के रूप में विताए थे। सत्य को सत्य कहते हुए भी यदि अग्रेजो ने वर्वरता का परिचय दिया तो हमारे स्वतन्त्रता प्रेमी नवयुवक मस्तक ऊँचा ही किए रहे हैं। उन्ही तरुणो मे लालाजी भी थे।

महात्मा गाँधी के आह्वान मात्र पर भारत के कितने ही युवक असहयोग आन्दोलन सम्मिलित हो गए थे। लालाजी मे धार्मिक सस्कार वाल्यावस्था से ही थे अत. धर्म व जाति के नाम पर अत्याचार वे देख नही सकते थे। आबू पर्वत पर टौल टैक्स का वन्द करवाना, दिल्ली स्थित मस्जिद के आगे से जुलूस के वाजो के ले जाने की मनाही पर न्यायिक जाच करवाना, कोई भी सामाजिक आपत्ति आने पर भारतव्यापी समर्थन लेकर उसका सही निर्णय कराना—इन सव सामाजिक कार्यो मे वे आगे रहते थे।

विगत दिनो मे जैन समाज पर हुए अत्याचारो जवलपुर मे दि० जैन मन्दिर, जैन बन्धुओ की दूकानो पर आक्रमण, खाजियाधाना मे जैन मूर्त्तियो के सिर उतारा जाना, पुरलिया (प० वगाल) मे स्व० १०८ मुनि चन्द्रसागरजी के शव के साथ दुर्व्यवहार आदि का उल्लेख करते हुए लालाजी जैनमित्र के श्रावण सुदी ९ वी० स० २४८८ के अक मे नवयुवकों से अपने हृदय की टीस "जैन समाज, चेत" इस शीर्षक मे इस प्रकार व्यक्त करते हैं—"जैन समाज के नवयुवको ! समाज का भविष्य वनाने वालो ! तुम्हें क्या हो गया ? क्या तुम्हारी रगो में खून नही रहा और स्वाभिमान नही जहा जो धर्म पर कुठाराघात चुपके-चुपके सहन कर रहे हो और जोश नही आता। मुझे यह कहने मे जरा भी सकोच नही कि यदि हमने करवट न वदली तो भारत देश जीवित नर-नारियो का देश न रहकर केवल पहाडो, नदियो तथा शहरो मे खड़ी गगन-चुम्वी अट्टालिकाओ का एक देश रह जाएगा। देव, शास्त्र, गुरु की रक्षा का प्रश्न जैन समाज के लिए आज एक वडी चिन्ता का विषय है।"

जैन समाज में संगठन का अभाव उन्हे सदा खलता रहा। उनके विचार इसी लेख में आगे इस प्रकार है—' जैन समाज के अखिल भारतवर्षीय सस्थाओं के पदाधिकारियो, विद्वानो, त्यागियो और समाज के प्रमुख महानुभावो से मेरा नम्र निवेदन है कि वह समय को पहचानें और एकचित्त होकर समाज का सगठन बनायें। यदि समाज सगठित हो गई तो आपका धर्म सुरक्षित रह सकेगा, यदि अब भी न चेते तो फिर कुछ न होगा। "फिर पछताए क्या होत है, जब चिडियाँ चुग गईं खेत ।।"

लालाजी जैन समाज के भारत व्यापी सगठन को सक्रिय रूप देना चाहते थे जो उनके जीवित रहते न हो सका। समाज-सेवा तथा धर्म-प्रेम उनकी नस-नस मे हिलोरे लेता था। उनके हृदय की भावना का सुन्दर दर्शन, एक लेख "जैन समाज के सगठन का रूप कैसा हो" मे होता है—

"अ० भा० दि० जैन महासभा, परिषद और भा० दि० जैन सघ अपने-अपने ढग से अपने-अपने उद्देश्यो का अपने-अपने मे प्रचार कर रहे है। परन्तु दु ख इस बात का है कि समाज या धर्म पर जब कोई सकट आता है तो एक-दूसरे के मुंह की तरफ झांकते है। इसका मुख्य कारण यह है कि भारतवर्ष मे दि० जैन समाज का कोई एक प्लेटफार्म नही, कोई एक नेता नही और न ही तमाम समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली समिति ही है।"

उन्ही के आगे ये शब्द है—"मेरा यह सुझाव है कि तमाम भारतवर्ष के दि० जैन समाज का एक प्लेट फार्म हो, एक आवाज हो और प्रतिनिधित्व करने के लिए एक सयुक्त दि० जैन समिति बनायी जानी चाहिए, जो कि तमाम समाज का नेतृत्व करे। इस समिति मे सभी अ० भा० दि० जैन सस्थाओ के दो-दो चार-चार प्रतिनिधित्व सस्थाओ की कार्यकारिणी द्वारा चुनकर भेजे हुए सज्जनो को सयुक्त समिति का सदस्य बनाया जाय।

इस प्रकार 'बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' की सर्वोच्च भावना से किये गये राष्ट्रीय, सामाजिक, राजनैतिक अथवा धार्मिक कार्य लालाजी की सच्ची निशानी है। वे अहिंसावादी, शाकाहार के पोषक तथा अपने लेखो के माध्यम से युवक, वृद्ध, नारियो सभी को सहज एव सुकर मार्ग दर्शन देते थे। ऐसे कर्तव्यनिष्ठ, कर्मठ, राष्ट्र, समाज तथा धर्म-सेवी महानर को हमारी भावपूर्ण श्रद्धाजलि!!

स्मृतियां और श्रद्धांजलि

श्री श्यामलाल पांडवीय
मुरार, ग्वालियर

जैन समाज के अमूल्य रत्न बाबू तनसुखराय जैन से मेरा सम्बन्ध गत ३० साल अर्थात सन् ३५ से उनकी मृत्यु तक रहा है। समाज भूला नही होगा जब आज से ३० वर्ष पूर्व सन् १९३५ मे भूतपूर्व ग्वालियर् राज्य मे जैन धर्म और जैन समाज पर एक बडा सकट आकर उपस्थित हो गया जो महगाव काण्ड के नाम से सारा जैन समाज परिचित है। महगाव के जैनियो द्वारा जिन भगवान का रथ तथा समोशरण माधव जयन्ती के लिए माधव महाराज की तसवीर को बिठाकर निकालने के लिए देने से इन्कार कर दिया था और उस पर से क्रुद्ध होकर जैन मन्दिर की प्रतिमाओ का खण्डित किया गया था और जैन धर्म तथा जैन शास्त्रो का अपमान किया गया था जैनियो का वहा रहना कठिन हो गया था। मैं उन दिनो ग्वालियर राज्य जैन ऐसोसिएशन का मन्त्री था। दि० जैन परिषद के दिल्ली अधिवेशन मे इस प्रश्न को लेकर दिल्ली अधिवेशन मे सहायता करने की माँग लेकर गया था अधिवेशन का अन्तिम दिन था, अधिवेशन समाप्त होने जा रहा था। मैने सब परिस्थिति रखकर इस सकट मे सहायता करने की माँग की पर सब सुनकर रह गये। अधिवेशन खतम हो गया है अब क्या हो सकता है आगे इसे देखेंगे। मैं निराश हो गया आँखे डबडवा आई कि राजा के डर से कोई सहायता करने का साहस नही कर रहा है। इतने में एक तेजस्वी युवक अचकन और चूड़ीदार पायजामा पहिने चेहरे पर मुस्कान तेजस्वी रूप तपक कर सामने आ गया और पूछने लगा कहिये क्या सकट है। यही थे बाबू तनसुखराय और यही था मेरा सन् १९३५ मे इस प्रसग को लेकर मेरा सर्वप्रथम परिचय और तब से मृत्यु दिन तक हम बराबर साथी और मित्र बने रहे।

लाला तनसुखराय ने सारी हालत सुनकर जोर देकर कहा कि हमको सहायता करनी चाहिए और करेंगे। कभी पीछे नही हटेंगे और इसके विरोध मे परिषद का प्रस्ताव कराया और महगाव काण्ड का आन्दोलन चलाकर सारी जिम्मेदारी ले ली और अन्त तक बड़ी लगन और शक्ति से इसको सफल बनाया।

लाला तनसुखराय के प्रयत्न से परिषद ने भारत-व्यापी जोरदार आन्दोलन उठाया। फलस्वरूप सारे देश मे जैन समाज मे आग लग गई। जगह-जगह पर महगांव कांण्ड विरोधी दिवस मनाया गया, विरोध मे जलूस निकाले गये और प्रस्ताव पास किये जाकर ग्वालियर राज्य तथा भारत सरकार को भेजे गये। जैन समाज मे यह पहला अवसर था जब उसने संगठित होकर अपनी शक्ति का परिचय दिया। इस अत्याचार के प्रतिकार करने के इस प्रयास से राज्य का आसन डोल गया। इसकी सफलता का सारा श्रेय तनसुखराय को ही है। वे यदि आगे बढ़कर इसको अपने हाथ मे नही लेते तो न जाने जैन धर्म और जैनियो पर वहाँ क्या बीतती।

बात यही पर समाप्त नही हुई। ग्वालियर सरकार ने चिढकर जैनियो पर मुकद्दमा चलाया जिसकी पैरवी का परिषद की ओर से सारा प्रबन्ध तथा व्यय उठाकर सफलता प्राप्त करने मे भी बाबू तनसुखराय का ही प्रयत्न था। श्री दलीपसिंह वकील को तो कई महीनो तक निरन्तर वहाँ रहना पडा। लाला श्यामलाल गवर्नमेंट एडवोकेट, बाबू लालचन्दजी आदि वकीलो की सहायता और सहयोग आपके ही सद्प्रयत्नो का फल था इस प्रान्त के आसपास इससे जैनियो की काफी धाक बैठी, उनकी प्रतिष्ठा बढी और फिर किसी को जैन मन्दिर, जैन धर्म और जैनियो को अपमानित करने का हौसला नही हुआ। इस क्षेत्र तथा उसके आस-पास के क्षेत्र की जैन जनता उन्हे सदा याद करती रहेगी। उनकी याद वह कभी नही भूल सकेगी। बाबू तनसुखराय को इस सम्बन्ध मे अनेको बार आना-जाना पडा, व्यवसाय की हानि उठानी पडी, कष्ट भी उठाना पडा पर मैंने न कभी उत्साह मे कमी पाई और न थकान। ऐसे कर्तव्यपरायण बाबूजी का असमय उठ जाना समाज की महान् क्षति है जो पूरी नही हो सकती। मुझे महगाव काण्ड के सम्बन्ध मे पूरे दो साल तक उनके साथ काम करने और साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त रहा। उस आधार पर मैं कह सकता हूँ कि उन जैसे कर्मठ, क्रियाशील और उत्साही नेतृत्व प्रदान करने वाले व्यक्ति समाज मे बहुत कम होगे। खेद इस बात का है कि समाज उनकी योग्यता और क्षमता का पूरा लाभ नही उठा सका। वे आज से तीस वर्ष पहिले दि० जैन परिषद में आये और उसको काफी बल प्रदान किया।

वह किसी भी परिस्थिति से न घबराते थे और न हार मानते थे। साहू श्रेयासप्रसादजी जैन की अध्यक्षता मे होने वाले दिल्ली अधिवेशन मे रात्रि को जब ललितपुर के बा० परमेश्वरीदास जैन मन्दिरो मे हरिजन प्रवेश का प्रभाव प्रस्तुत कर रहे थे तब प्रतिक्रियावादियो के झुण्ड ने जलसे मे घुसकर पण्डितजी को धक्का देकर मच से गिरा दिया और हुल्लड मचाकर जलसा छिन्न-भिन्न कर दिया और ऐसी परिस्थिति बन गई कि परिषद के नेताओ को भी जलसा छोडकर जाना पड़ा। तब बाबू तनसुखराय ने हिम्मत नही हारी। रात्रि को घूम-फिर कर स्वयसेवको का प्रबन्ध किया और दूसरे दिन उसी स्थान पर उसी मण्डप मे दिन के समय शान के साथ हरिजनो का मन्दिर मे प्रवेश का प्रस्ताव पास कराकर ही छोडा। परिषद की शक्ति और बढी और प्रतिक्रियावादियों के साहस ढीले पड गये।

सन् १९३४ मे दिल्ली अधिवेशन मे वे परिषद के प्रधान मन्त्री चुने गये। सन् १९३५-३६-३७-३८ इन चार सालो मे परिषद के कार्यो को इतनी गति दी कि परिषद का प्रभाव देश-व्यापी हो गया। सतना और खडवा के सफल अधिवेशनो ने परिषद मे एक नई जीवन-शक्ति फू की। परिषद का कार्य उन्होने खूब बढ़ाया और मरते दम तक परिषद के हर कार्य मे वे सदा सहायक रहे।

जैन समाज की ओर परिषद को उनके न रहने से काफी हानि उठानी पडी है। परिषद के कार्य को आगे बढ़ाने मे उन्होने उनका सदा साथ दिया। उन्होने भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन में बडा योगदान देकर जैनियो का मस्तक ऊचा किया है। कांग्रेस के एक कर्मठ कार्यकर्ता थे

और काग्रेस मे उनकी काफी प्रतिष्ठा थी। उनकी प्रतिभा चौमुखी थी, गजब की काम करने की शक्ति, सूझ-बूझ, कठिनाई मे रास्ता निकालने की बुद्धि सदा मुस्कराता चेहरा, काम करने की लगन, सदा उनकी याद दिलाती रहेगी।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद मैं मध्यभारत का मन्त्री बना। मेरे लम्बे मन्त्रिकाल मे भी मेरा उनका सहयोग सार्वजनिक कार्यो मे बराबर रहता रहा। भारत के इस सपूत और जैन समाज के योग्य नेता के असमय मे उठ जाने से जो क्षति हुई है वह सहज मे पूरी होने वाली नही है। मै उनके प्रति अपनी नम्र श्रद्धाजलि इस अवसर पर भेंट करके अपने को धन्य मानता हूँ। उनकी स्मृतियाँ मेरे हृदय पटल पर सदा अकित रहेंगी जो मुझे प्रेरणा देती रहेगी।

परिषद् के प्रमुख संस्थापक

जैनबिम्ब प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर देहली में ता० २६ जनवरी सन् १६२३ को श्री भा० दि० जैन महासभा का अधिवेशन श्री खण्डेलवाल सभा के मण्डप मे हो रहा था। श्रीमान् साहू जुगमन्दिरदासजी ने "जैन गजट" के उपसम्पादक के लिए स्व० बाबू चम्पतरायजी बैरिस्टर का नाम पेश किया। इसका समर्थन डा० निर्मलकुमारजी ने किया, किन्तु कुछ सज्जनो ने माननीय बैरिस्टरजी (जो महासभा के सभापति पद को सुशोभित कर चुके थे और उन्होने अपने सभापतित्व मे महासभा की श्लाघनीय सेवाए की थी) को अयोग्य शब्द कहे, जिनसे झलकता था कि वे बैरिस्टरजी को जैनधर्म का अश्रद्धालु, प्रमाणित कर रहे है। इस अयोग्य वर्ताव से अनेक जनो का मन महासभा के अधिवेशन में सम्मिलित होने से उदास हो गया। इसी कारण वे लोग रात को महासभा की सबजेक्ट कमेटी में सम्मिलित न होकर सामाजिक-उन्नति तथा धर्म-प्रचार के लिए एक अन्य सगठन का विचार करने मे लग गये। इन सज्जनो की दूसरे दिन २७ जनवरी को सभा हुई। इस दिन की कार्यवाही 'जैनमित्र' वर्ष २४, अक १४, पृष्ठ १६४ पर जो प्रकाशित हुई थी, वह इस प्रकार है—

दिगम्बर जैन परिषद की स्थापना

देहली मे ता० २७ जनवरी सन् १६२३ ई० को राय साहब बाबू प्यारेलालजी वकील देहली के डेरे मे एक जल्सा होकर निश्चित हुआ था कि—इस जल्से के सभापति रायबहादुर ताजिरुल्मुल्क सेठ माणिकचन्दजी झालरापाटन सर्वसम्मिति से निर्वाचित किए जावें। सेठ साहब ने सभापति का आसन ग्रहण किया, तत्पश्चात् निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वसम्मति से निर्णीत हुए :—

न० १—दि० जैन धर्म के प्रचार और जैन समाज की उन्नति के उद्देश्य से भारतवर्षीय दि० जैन परिषद नाम की सस्था स्थापित की जाये।

न० २—रायबहादुर ताजिरुलमुल्क सेठ मणिकचन्दजी इस परिषद के सभापति निर्वाचित किये जावें। श्रीयुत बैरिस्टर चम्पतराय मन्त्री और श्रीयुत रतनलालजी B A LL.B. बिजनौर और बाबू अजितप्रसादजी वकील लखनऊ सहमन्त्री और श्रीयुत ला० देवीदास (सभापति स्थानीय जैनसभा लखनऊ) कोषाध्यक्ष नियत किये जावे।

न० ३—इस परिषद का एक पाक्षिक मुखपत्र हिन्दी भाषा मे "वीर" नाम से प्रकाशित किया जावे। निम्नलिखित महाशयो ने इस परिषद का सदस्य होना स्वीकार किया और सूची पर हस्ताक्षर कर दिये।

नामावली

१. जैनधर्म भूषण, ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी, २ ब्रह्मचारी छोटेलालजी भरतपुर, ३. रा० ब० सेठ माणिकचन्दजी सेठी झालरापाटन, ४ बा० चम्पतराय जैन बैरिस्टर एट-ला हरदोई, ५. बा० ज्योतिप्रसाद जैन स० "जैनप्रदीप" देवबन्द, ६. रा० ब० ला० द्वारिकाप्रसादजी रईस नहटौर, ७. ला० शिखरचन्द मार्फत ला० देवीदास मदनलाल गोटेवाले लखनऊ, ८ राय-बहादुर ला० सुल्तानसिंह दिल्ली, ९. सुमतलालजी मन्त्री, स्याद्वाद महाविद्यालय काशी, १०. बा० फतहचन्दजी जौहरी चौक लखनऊ, ११ ला० बरातीलालजी जैन यहियागज लखनऊ, १२. ला० जुगलकिशोर मार्फत ला० वशीधर कुन्दलाल यहियागज लखनऊ, १३. ला० मगलसेन मार्फत ला० बद्रीदास छेदीलाल चौक लखनऊ, १४. ला० सुन्दरलाल गोटेवाला चौक लखनऊ, १५ महेन्द्रजी, सम्पादक "जैसवाल जैन" आगरा, १६. रामस्वरूप भारतीय जारखी आगरा, १७. बा० कपूरचन्द जैन मालिक महावीर प्रेस आगरा, १८. श्री चिरजीलाल जैन बी० ए० हेडमास्टर त्रिलोकचन्द हाई स्कूल इन्दौर, १९ केशरलाल अजमेरी मालिक केशरलाल सुन्दरलाल त्रिपोलिया बाजार जयपुर, २० गेदीलाल गगवाल मार्फत केशरलाल सुन्दरलाल त्रिपोलिया बाजार जयपुर, २१. मोहनलाल जैन मार्फत केशरलाल सुन्दरलाल त्रिपोलिया बाजार जयपुर, २२. रघुनाथसहाय जैन, झाँसी, २३ बाबूलाल जैन टूडला, २४ प० जुगलकिशोरजी सरसावा जि० सहारनपुर, २५. डा० भागीरथप्रसाद फैजाबाद, २६. रामचन्द जैन, बी० ए०, बी० एस० जालन्धर, २७ जम्बूप्रसाद देवबन्द, २८. बालमुकन्द जैन बी० ए० मार्फत सर सेठ हुकमचन्द इन्दौर, २९. हीरालालजी जैन एम० ए० एल-एल०-बी रिसर्च स्कालर प्रयाग, ३० जमुनाप्रसाद जैन बी० ए० जैनहोस्टल प्रयाग, ३१ वैद्यरत्न पं० मित्रसेन अजमेर, ३२, बलवीरचन्द्र जैन मुजफ्फरनगर, ३३. धर्मचन्द जैन डीग (भरतपुर), ३४ कपूरचन्द जैन डीग (भरतपुर), ३५. केशवदेव रेजावाला जैनी डीग (भरतपुर), ३६ सोनपाल छोटेलाल जैन डीग (भरतपुर), ३७. झमनलाल जैन कामा (भरतपुर), ३८. श्रीचन्दजी जैन मुजफ्फरनगर, ३९. विशम्भर-दासजी लाहौर, ४०. मुन्नीलाल माणिकचन्द्र कलकत्ता, ४१. ला० अमरचन्द जैन जसवन्तनगर,

४२ राजाराम जैन कुरावली, ४३ मनोहरलाल जैन अम्बाला, ४४ विश्वम्भरदास गार्गीय झाँसी, ४५. श्यामलसिंह सेक्रेटरी डि० बो० हिसार, ४६. चेतनदास हेडमास्टर मथुरा, ४७. बद्रीदास जैन वकील बिजनौर, ४८. शकरलाल वैद्य मुरादाबाद, ४९. माईदयाल जैन हिन्दू कालिज देहली, ५०. सी० एस० मलिनाथ सं० "जैन गजट" मद्रास, ५१ अनूपसिंह जैन सदर बाजार देहली, ५२ कनकुमार जैन बोर्डिंग इन्दौर, ५३ कपूरचन्द जैन बोर्डिंग इन्दौर, ५४. ब्रजभूषणलाल जैन हरिदौदी, एटा, ५५. आदीश्वरलाल जैन देहली, ५६. दलीपसिंह खजान्ची ताता बैंक हापुड, ५७. प्यारेलाल कासलीवाल, बी० ए० कौंसिलर जयपुर, ५८ चन्दमलजी रायबहादुर अजमेर, ५९ सेठ ताराचन्दजी नसीराबाद, ६०. सुमेरचन्द सेक्रेटरी जैन सभा शिमला, ६१. लट्टूरमल जैन कोसी, ६२ कुन्दनलाल हेडमास्टर भरतपुर, ६३. खेती-लाल कामा, ६४. मानमल काशलीवाल ७८, क्लाइव स्ट्रीट कलकत्ता, ६५. लछमनलाल मुन्शीराय जयपुर, ६६ दुलीचन्द परवार कलकत्ता, ६७ श्यामलाल पाढमीय मुरार ग्वालियर, ६८ अतरसेन जैन मेरठ, ६९ फूलचन्द जैन बिल्सी जि० बदायू, ७० बद्रीप्रसाद जैन, जैन कम्पनी मथुरा, ७१. सुगनचन्द जैन आगरा, ७२. सुगनचन्द जैन घीयामण्डी मथुरा, ७३ रा० ब० मोतीसागर जज लाहौर, ७४. रायसाहब बा० पार्श्वदास, दिल्ली, ७५ कन्हैयालालजी मथुरा, ७६ गुलाब-चन्द सेठ की कोठी मथुरा, ७७ रतनलाल जैन डीग भरतपुर, ७८. मूलचन्द किशनदास कापडिया सूरत, ७९. यादव दाजीबा श्रावणे वर्धा, ८० रघुनन्दनप्रसाद साहू अमरोहा, ८१. चन्द्रलाल जैन फीरोजपुर, ८२. कामताप्रसाद जैन देहली, ८३ शिवनारायणलाल जैन जसवन्त नगर, ८४ जैनेन्द्रकुमार जैन नागपुर, ८५ उत्तमचन्द जैन मेरठ शहर, ८६ नेमीचन्द जैन मुरादाबाद, ८७ हीरालाल जैन प्रेसीडेंट जैन समाज शिमला, ८८. ज्योतिपरत्न जियालाल जैन फर्रुखनगर, ८९. अर्हदास पानीपत, ९० नंनीदास वाइस प्रेसीडेंट जैनसभा शिमला, ९१ बख्तावरसिंह रोहतक, ९२ सिंघाई वशीलाल पन्नालाल अमरावती, ९३. शम्भूदयाल चादनी चौक देहली, ९४. ऋषभदास बी०ए० वकील मेरठ।

ये देश के भिन्न-भिन्न स्थानो के ९४ जैन प्रमुख व्यक्तियो के हस्ताक्षर है जिन्होंने परिषद की स्थापना की थी। इनमे सबसे ऊपर स्व० ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी के हस्ताक्षर है। अत जैन समाज की प्रगतिशील भा० दि० जैन परिषद के आद्य सस्थापक श्रद्धेय ब्रह्मचारीजी थे।

तरुण-गीत

श्री राजेन्द्र कुमार जैन 'कुमरेश'
आयुर्वेदाचार्य, बिलराम (एटा)

तरुण ! आज अपने जीवन मे, जीवन का वह राग सुना दे।
सुप्त-शक्ति के कण-कण मे उठ ! एक प्रज्वलित आग जगा दे।।

धधक क्रान्ति की ज्वाला जाए, महाप्रलय का करके स्वागत।
जिससे तन्द्रा का घर्षण हो, जागे यह चेतनता अवनत।।
प्राण विवशता के बधन का, खण्ड खण्ड करदे वह उद्गम।
अग अग की दृढ़ता तेरी निर्मापित कर दे नव जीवन।।

स्वय, सत्य-शिव-सुन्दर-सा हो, जन जनमे अनुराग जगादे।
तरुण ! आज अपने जीवन मे जीवन का वह राग सुना दे।।

तेरा विजयनाद सुन काँपे भूधर सागर-नभ-तारक-दल।
रवि मण्डल भू-मण्डल काँपे, काँपे सुरगण-युत आखण्डल।।
नव परिवर्तन का पुनीत यह गूँज उठे सब ओर घोर रव।
तेरी तनिक हुंकार श्रवण कर काँपे यह ब्रह्माण्ड चराचर।।

तू अपनी ध्वनि से मृतको के भी मृत-से-मृत प्राण जगा दे।
तरुण ! आज अपने जीवन में जीवन का वह राग सुना दे।।

तेरी अविचल गति का यह क्रम पद-मर्दित कर दे पामरता।
जडता की कडियाँ कट जाएँ, पाजाए यह ध्येय अमरता।।
हृदतल की तड़फन मे नूतन जागृत हो वह विकट महानल।
जिसमे भस्मसात् हो जाए अत्याचार पाप कायर दल।।

तेरा खौलित रक्त विश्व कण-कण से अशुभ विराग भगा दे।
तरुण ! आज अपने जीवन मे जीवन का वह राग सुना दे।।

अपने सुख को होम निरन्तर, तू भू पर समता बिखरा दे।
जिसमे लय अभिमान अधम हो, ऐसी शुचि ममता बरसा दे।।
सत्य-प्रेम की आभा से हो अन्तर्धान पाप की छाया।
रूढ़ि, मोह, अज्ञान, पुरातन भ्रम, सब हो सुपने की माया।।

तू प्रबुद्ध हो, सावधान हो, स्वय जाग कर जगतजगा दे।
तरुण आज अपने जीवन मे जीवन का वह राग सुना दे।।

× × × ×

श्रद्धेय ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजी की जीवन-झांकी

पं० परमेष्ठी दासजी 'न्यायतीर्थ'
ललितपुर (झांसी)

ब्रह्मचारीजी की प्रतिमा सर्वतोमुखी थी। इस युग के समाज निर्माण तथा इसके सभी क्षेत्रो मे ब्रह्मचारीजी की प्रमुख साधना और उनकी व्यापक दृष्टि थी। राजमार्ग के चौराहे पर प्रतिष्ठित उनके कीर्तिस्तभ की प्रकाश-रश्मियो में वस्तुत जैन समाज की पिछली अर्द्ध शताब्दी का इतिहास सन्निहित है।

ब्रह्मचारीजी जैन समाज के उन दैदीप्यमान रत्नो मे से हैं जिन्होने जैन धर्म की बड़ी सेवा की। एक लेख २४ मई सन् १८६६ ई० के हिन्दी जैन गजट मे प्रकाशित हुआ था। उस लेख का कुछ अंश निम्न प्रकार है:—

ए जैनी पडितो! यह जैन धर्म आपके ही आधीन है। इसकी रक्षा कीजिये, ज्योति फैलाइये। सोतो को जगाइये। और तन, मन, धन से परोपकार और शुद्धाचार लाने की कोशिश कीजिये जिससे आपका यह लोक और परलोक दोनो सुधरे।

१८ वर्ष की आयुवाले उदीयमान समाजोद्धारक श्री शीतलप्रसादजी के ये लेखाश धर्म-प्रचार और समाज-सेवा के सूत्र थे। स्वनामधन्य सेठ माणिकचदजी के सम्पर्क से आपके मन में समाजसेवा के भाव जागृत हुए। सेठजी सच्चे कार्यकर्ताओ के पारखी थे। आपने वैरागी जिन-धर्मभक्त और सच्चे समाजसेवी श्री ब्रह्मचारीजी को अपने यहाँ बम्बई में रहने के लिए आग्रह किया। श्री ब्रह्मचारीजी ने उनके पास रहकर उनको धार्मिक कार्यो और समाज-सेवा के लिए उकसाया और अपना सहयोग दिया। स्व० सेठजी ने बम्बई, सागली, आगरा, अहमदाबाद, शोलापुर, कोल्हापुर, लाहौर आदि स्थानो मे जैन बोर्डिंग हाउस सभा आदि जैनोपयोगी अनेक सस्थाओ को स्थापित किया। इनमे अधिकतर स्व० ब्रह्मचारीजी का हाथ था। स्व० सेठजी प्रत्येक धार्मिक और सामाजिक कार्यो मे पूज्य ब्रह्मचारीजी से सम्मति लेते थे।

ब्रह्मचारीजी मे शुद्ध चरित्र पालन करने के भाव और संस्कार बाल्यकाल से ही होगये थे। ब्रह्मचारीजी के चरित्र मे धार्मिकता, जैनधर्म में लगन और चरित्रनिष्ठा को निर्माण करने की आधारशिला का न्यास आपके पितामह द्वारा रक्खा जा चुका था। इसको स्वाध्याय, सत्सग, और आत्म-मनन ने और बढाया। अत मे आपने ३२ वर्ष की आयु मे सन् १६११ ई० में मार्गशीर्ष मास मे श्री ऐलक पन्नालालजी के समक्ष शोलापुर में ब्रह्मचर्य प्रतिमा धारण की। ब्रह्मचारीजी चरित्र के बडे पक्के थे। शुद्ध आहार, प्रासुक जल और शुद्धता के कट्टर पक्षपाती थे। त्रिकाल सामायिक ग्रन्थो के स्वाध्याय आदि दैनिकचर्या मे कभी कमी नही होने पाती।

अध्यात्मरस मे उनका अतरग रँगा था। उदारता, सहिष्णुता और विश्वकल्याण उनकी अपनी विशेषता थी। जैनो मे, अजैनो मे, स्वदेश मे, विदेश मे जैनत्व की झलक भरने का प्रयत्न करना उनका मधुर सगीत बन गया था।

वे पडितो मे पडित थे और बालको मे विद्यार्थी। उदारता और कट्टरता का उनमें विलक्षण समन्वय था। आटा हाथ का पिसा हो। मर्यादा के अन्दर हो। जल छना हुआ तथा शुद्ध हो। गृहस्थ की जैनधर्म मे नि शकित श्रद्धा हो। वही उनका आहार होना था। उनका आहार-विहार शास्त्रोक्त था। साथ ही उनका दृष्टिकोण उदार था। सुधारको मे वे उग्रतम सुधारक थे। कुरीतियो और लोक मूढताओ के लिए तो वे प्रलयकारी ज्वाला थे। जननी जाति के लिए उनका हृदय तडपता था।

वे असाधारण मिशनरी थे।

जैन धर्म की छाया मे आप भी आत्म-कल्याण करें। अजैनो के लिए उनका यह पवित्र सन्देश था। इसी रटना से उन्होने अटक से लेकर कटक तक और कन्याकुमारी से लेकर रास-कुमारी तक भ्रमण किया था। बौद्ध सस्कृति और साहित्य से निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिए वे लका भी गए। जैनो मे ब्रह्मचारीजी एक मात्र ऐसे नेता थे जो जैनदूत बनकर स्व० लाला लाजपतरायजी से मिले और जैन समाज की सेवा के लिए तैयार कर सके। काग्रेस मे भी उन्होने जैन त्यागियो के लिए स्थान प्राप्ति का प्रयत्न किया। शहरो मे नही देहातो मे भी उन्होने जागृति का मन्त्र फूका। आप अजैन विद्वानो के सामने एक सच्चे जैन मिशनरी की स्प्रिट से जा पहुचते थे। आज पजाब विश्वविद्यालय के वाइसचासलर प्रो० वुल्लाद को प्रभावित कर विश्वविद्यालय मे जैन दर्शन प्रचार की जड जमाई जा रही है तो कल राधास्वामियो के 'साहब' जी को जैनदर्शन की खूबिया समझाने दयालबाग पहुँच रहे है।

ब्रह्मचारीजी बडे तीर्थोद्धारक थे। तीर्थों की रक्षा के लिए आपने बडा प्रयत्न किया। द्रव्यसग्रह और तत्त्वार्थसूत्र को वे जैनो की बाईबिल समझते थे। जहाँ जाते योग्य छात्रो को पढाते। इन ग्रन्थो का अधिक से अधिक प्रचार करते।

वे बडे देशभक्त थे। राजनीति मे उनके विचार काग्रेस के समर्थक थे। राष्ट्रीय महासभा के प्रत्येक अधिवेशन मे वे शामिल होते थे।

धर्म-प्रचार और समाज विशेष सुधार के लिए ब्रह्मचारीजी की आशाएँ वकीलो वैरिस्टरो विद्यार्थियो और नवयुवको मे विशेषरूप से केन्द्रित थी। इस क्षेत्र मे सदैव जागृत रह कर प्रचार करते थे।

वीर पत्र का भली प्रकार सम्पादन किया। जैनमित्र के तो प्राण ही थे। सनातनधर्म उन्होने शुरू करवाया। ब्रह्मचारीजी की साहित्य-सेवा अवर्णनीय है। आप प्रतिदिन बारह घन्टे लिखते रहते थे। ब्रह्मचारीजी द्वारा विभिन्न विषयो पर रचना किए गये स्वतन्त्र ग्रन्थो, भाषा-टीकाओ और पुस्तको की सख्या लगभग ७७ है।

आपकी लेखन-शैली जैसी सरल और सरस है वैसी मनमोहक भी है। आपने तारण-साहित्य का उद्धार किया। उनके ६ ग्रन्थो का सम्पादन कर तारण समाज का उद्धार किया। आपने बौद्ध साहित्य का भी अध्ययन किया। अपने जीवन मे अनुपम साहित्य लिखा। उनके ग्रन्थो को देखकर हिन्दी साहित्य परिषद जयपुर ने उनके सम्बन्ध मे लिखा। ब्रह्मचारी को जैन साहित्य का अत्यन्त विद्वान् रूढिवाद के निष्पक्ष आलोचक, समाज और साधु सस्थाओ के विषय मे मौलिक विचार रखने वाला स्वीकार किया।

वे अनेक सस्थाओ के सस्थापक और सचालक थे। उनके अनुपम कार्यों के कारण वे मूर्तिमान जागृत सस्था वन गये थे। यही कारण था कि २८ दिसम्वर १९१३ ई० को काशी मे पूज्य ब्रह्मचारीजी के सम्मान के लिए डा० हर्वन जैकोवी की अध्यक्षता मे 'जैन धर्म भूषण' की पदवी से विभूषित किया गया। उन्होने सामाजिक सुधार के लिए भा० दि० जैन परिषद की स्थापना की। वे उग्र सुधारक थे। अपने पथ के पथिक थे किसी वहिष्कार की पर्वाह नही करते थे।

इस वीसवी सदी मे विशाल जैनसघ के प्रथम सयोजक के रूप मे हम उन्हे देखते है। इसके लिए उन्होने अनेक स्थानो पर अनेक परमार्थिक सस्थाएं स्थापित की। वे समाज के श्रीमानो विद्वानो और योग्य कार्यकर्ताओ से मिले और उनसे पृथक्-पृथक् कार्य लिए। महिलाओ को जागृत करने, उनकी जीवन साधनाओ की पूर्ति करने महिलाओ के जन्मसिद्ध अधिकारो की प्राप्ति के लिए उन्होने अपने मान-अपमान की भी परवा नही की। उन्होने अपनी जीवन-साधना से समाज मे अनेक स्थानो पर अनेक युवको और आदर्श महिलाओ का निर्माण किया। उनके हृदयो मे वह मन्त्र फूका जो जीवन भर देश-समाज की सेवा करेंगे। जैन धर्म के प्रसार के लिए अपने जीवन की वाजी लगायेंगे।

ब्रह्मचारीजी इस युग के समन्तभद्र थे जिनके हृदय मे सतत जैन शासक के प्रचार की अद्भुत लगन थी। आज ब्रह्मचारीजी नही है, पर उनका आदर्श सदैव समाज के सेवको को वल और प्रकाश देता रहेगा।

विद्यावारिधि

वैरिस्टर चम्पतराय जैन, बार एटला

श्री त्रिशला कुमारी जैन

वैरिस्टर चम्पतराय इस युग के महान पुरुषो में से थे। उन्होने इस मानव जीवन मे विश्व को अपने ज्ञान से नवीन आलोक और अपूर्व विचार शैली थी। मानव समाज वास्तविक मानवता को प्राप्त करे, यह आपके जीवन की साधना थी। वैरिस्टर साहब के जीवन के मध्याह्नकाल में जब उनका ज्ञान-सूर्य अपने प्रकाश और प्रताप की किरणो से ससार को आलोकित कर चुका था। वैरिस्टर साहब का कार्यकर्ताओ के प्रति अगाध प्रेम था। वैरिस्टर साहब को अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा और अनवरत उद्योगो से जीवन की विविध साधनाओ मे सफलता मिली थी। वे इस युग के धर्म सत्य के खोजियो और तुलनात्मक पद्धति के प्रवर्तको मे प्रमुख साधक थे। देश-विदेशो मे जैन धर्म प्रचार करने मे इस काल के अकलक वीर थे। अग्रेजी के जानकार जैन विद्वानो और जैन युवको के लिए धार्मिक श्रद्धा की सजीव मूर्ति थे। सोते हुए जैन समाज को जगाने तथा उद्बोधन देने और स्वय कर्तव्य करने मे ही आपकी प्रवृत्ति थी। उनकी समाज-सेवा के भार को न हमारे पास योग्य तराजू है और न उनके प्रचुर साहित्य को ठीक-ठीक आँकने के लिए हमारे पास उपयुक्त मापदण्ड है। जैन समाज में उनकी सम्मेदशिखर की रक्षा की कीर्ति और ससार मे उनका साहित्य-सूर्य कभी अस्त न होगा।

वे विश्व की विभूति थे। अपने जीवन मे ससार के सभी देशो के विविध विद्वानो और विचारको से उनका सम्पर्क रहा।

हमारी पीढी ने स्वर्गीय वैरिस्टर चम्पतरायजी को एक सफल वैरिस्टर गम्भीर, विद्वान्, कुशल लेखक, प्रभावशाली वक्ता और आदरणीय नेता के रूप मे पहचाना और सराहा। हम उनके कृतज्ञ है कि उन्होने समाज मे नये युग का आह्वान किया और विरोध को चुनौती दी। और सघर्ष से टक्कर ली। वह अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के प्रमुख सस्थापक और आदि सभापति थे। परिषद की पतवार अपने समर्थ हाथो मे लेकर उन्होने न कभी तूफान की परवा की और न प्रलय की। इस अनुभव और उत्साह से सदा तरुण रहे।

वैरिस्टर साहब का सर्व प्रधान गुण सम्यक् श्रद्धान था। वह जैनधर्म के मर्मज्ञ थे। पर उनकी मर्मज्ञता कोरे ज्ञान की प्रखर ज्वाला न वनकर श्रद्धा से ओत-प्रोत दीप-शिखा की तरह शान्त, स्निग्ध, स्थिर और रुचिर थी।

विद्यावारिधी वैरिस्टर चम्पतरायजी समाज के उन धर्मसेवियो मे से थे जिन्हे धर्म के उत्कर्ष की महान् चिन्ता थी। उनका दृष्टिकोण जैनधर्म को केवल भारतीय ही वनाये रखने का नही था। अपितु जगन्मान्य आत्मोद्धारक श्री वीर प्रभु की पवित्रतम वाणी को प्रत्येक जीव के हितार्थ देश-विदेशो मे भी प्रसारित किया जाय। यही उनकी आन्तरिक भावना थी। यह उनकी

वैरिस्टर चम्पतरायजी

स्वनामधन्य वैरिस्टर चम्पतरायजी उच्चकोटि के विद्वान, समाज-सुधारक और जैन सिद्धान्त के दिग्गज विद्वान थे। उन्होने विदेशो मे जाकर जैन धर्म का आधुनिक ढग से प्रचार किया। वे यह अनुभव करते थे कि पाश्चात्य ससार तार्किक और वैज्ञानिक है उन्होने थोड़े ही समय मे आशातीत उन्नति की है। वे बहुत जल्दी वस्तु के सही रूप को गृहण करने में सिद्धहस्त है। यदि ऐसे विद्वानो के सम्मुख जैनधर्म का मर्म रक्खा जाय तो उनकी आत्मा को अपूर्व शान्ति मिलेगी और विश्व अहिंसात्मक भावनाओ की ओर अग्रसर होगा। वैरिस्टर साहब इसी भावना से विदेशो मे गये और उन्होने जन्म भर जैन धर्म का प्रचार किया।

वैरिस्टर सा० ने अग्रेजी मे जैन-साहित्य लिखकर मानव समाज की अपूर्व सेवा की है। उनका प्रभाव विदेशो मे खूब पडा। जहाँ भी वे गये उनका अपूर्व सत्कार हुआ। जैन समाज के कई उदीयमान युवक उनसे इतने प्रभावित थे कि जैन-साहित्य और समाज की सेवा के लिए उन्होने जीवन मे प्रशसनीय कार्य किया। ला० तनसुखरायजी के जीवन पर उनका अद्भुत प्रभाव पड़ा। जो उन्हे समाज-सेवा के मार्ग की ओर अग्रसर कर सका।

केवल भावना ही नही थी वल्कि इसके लिए उन्होने यथा-शक्ति विदेशो में भ्रमण किया। फलत' वह वीर वाणी को विदेशो मे प्रसारित कर स्व कर्तव्य में सफल हुए।

किसी भी धर्म का साहित्य ही उसे जीवित रखने मे सजीवनी के समान कार्य करता है। और जिस धर्म का साहित्य देशी-विदेशी कई भाषाओ में उपलब्ध हो वह धर्म शीघ्रातिशीघ्र विकास को प्राप्त हो जाता है। वैरिस्टर साहव ने इस आग्ल भाषा के युग मे लगभग २० ग्रन्थ इस भाषा मे लिखे है। इतना ही नही अपितु आपने अपनी प्रभावित वक्तृत्व शैली द्वारा देश-विदेशो मे धर्म श्रवण कराकर विदेशियो को प्रभावित किया और अपना जीवन सफल वनाया।

आप वैरिस्टर होकर व विदेश भ्रमण करते हुए भी जैन सिद्धान्त के परम श्रद्धानी थे जिसे कि आजकल के शिक्षित विद्वानो मे बहुत कम देख पाते है। आपकी धर्मनिष्ठा और आत्मनिष्ठा सदैव स्थिरता रूप रही। यह सुनकर आश्चर्य होता है कि आप रात्रि मे जल भी ग्रहण नही करते थे। अन्य नियम और स्वाध्यायादि तो आपकी दिनचर्या के साथी ही थे। आपका ज्ञान आपके परिणामो का सदा ही रक्षक रहा था। आप वास्तव मे सच्चे कर्मठ धर्मात्मा और जैन समाज के महान पुरुष थे।

चारित्रमूर्त्ति श्रावक

वैरिस्टर साहव केवल धर्म तत्व के दार्शनिक विद्वान् या उसके श्रद्धालु भक्त मात्र ही न थे। उन्होने रत्नत्रय धर्म को अपने जीवन मे यथा सम्भव मूर्त्तिमान वनाने का उद्योग किया था। वे महान् थे। इसलिए नही कि उनको महान वनने की आकाक्षा थी। महत्वाकाक्षा कभी भी मनुष्य को महान् नही बनाती। त्यागवृत्ति और सेवा धर्म ही मनुष्य को ऊँचा उठाते है। वैरिस्टर साहब महान् हुए। क्योकि वह त्याग और सेवा धर्म को जानते और उस पर अमल करते थे लखनऊ महासभा अधिवेशन के वे सभापति मनोनीत हुए, परन्तु उस पद को ग्रहण करने के पहले उन्होने स्थूल रूप मे पचाणुव्रत धारण किए।

उन व्रतो का उन्होने यावज्जीवन पालन किया। विलायत मे भी वे व्रतो को धारण करने मे पूर्ण सावधानी रखते थे। लन्दन से दिए गए एक पत्र मे वे लिखते है —

"शाम को मैं अपना भोजन स्वय वनाता हूँ। मेरे कमरो के पास ही एक छोटा-सा रसोईघर है। भोजन कमरो के किराये मे लगभग बीस पौड प्रतिमास खर्च होता है। प्रात. मैं फल और मलाई लेता हू कभी-कभी चाय भी पी लेता हूँ। ६--४५ पर उठ वैठता हूँ और पौने आठ बजे सामायक पर बैठ जाता हूँ। जिसमे मुझे ३५ मिनट लगते है। उसके बाद ही मैं ६ के करीब फलाहार करता हूँ। उपरान्त पास के वगीचे मे घूमने चला जाता हूँ। वहा से १२-३० बजे लौटता हूँ। तव मैं खाना बनाता और खाता हू जिसमे रोटी और भाजी मुख्य होती है। दिन मे दो बजे से पाँच बजे तक लिखने मे समय विताता हूँ। और ६-३० अपनी शाम की

ब्यालु बनाकर खाता हूँ। लोगो ने मुझसे कई बार पूछा है कि क्या विलायत मे एक व्रती श्रावक का जीवन बिताना सम्भव है ? मुझे तो लगता है सब चीजें बाजार मे मिलती है और यदि रसोईघर है तो मनचाहा बनाकर खाइए। इसमे दिक्कत ही क्या है ? रही बात मानसिक शान्ति और निराकुलता की सो भारत की अपेक्षा विलायत मे अधिक निराकुलता और शान्ति है। क्योकि यहा उनके विरोधी साधन ही नही है। यह सच है कि यहाँ के जीवन मे बहुत-सी लुभावनी बाते है। परन्तु थोडे बहुत यह बात तो सभी ठौर है।

मनुष्य लुभावो मे पड़कर कहा नही गलती कर सकता ? वास्तव मे यह प्रश्न तो चारित्र मोहनीय कर्म के क्षयोपशम से सम्बन्ध रखता है। यदि उसका क्षयोपशम है तो बाह्य निमित्त निरर्थक होगे। और चारित्रमोहनीय के उदय मे रहते हुए भी एक व्यक्ति बम्बई में भी भ्रष्ट हो सकता है। अत आठवी एव उससे न्यूनतम प्रतिभाओ के धारी श्रावक विलायत में सानन्द रह सकता है। एक खूबी इस देश मे और है वह यह है कि यहाँ चीटियाँ और कीड़े-मकोड़े प्रायः होते ही नही। अत हमे उनकी आरम्भजनित हिंसा का भी पाप नही लगता।"

पूज्य बैरिस्टर साहब सयमी जीवन पालन करने मे कितने जागरुक थे। उनका आदर्श बरबस हमसे कह रहा है कि सयम का पालन करो। श्रावक हो तो श्रावक के आठ मूल गुणो का पालन करो। मद्य, मास और मधु तथा पच उदुम्बर फल मत खाओ। पानी छानकर पियो। रात मे खाना मत खाओ।

बैरिस्टर साहब तो वहाँ भी दिन ही मे भोजन कर लेते थे। जहा सब ही प्राय रात्रि भोजी थे। वह अपने व्रतो मे खूब सावधान थे। एक दफा वह बहुत प्रात ही रवाना होने को थे। उनके मित्र नाश्ता लाये। भुकभुका हो चुका था। पौ फटने को थी। बैरिस्टर साहब ने कहा, अभी रात है, मैं नाश्ता नही करूगा। मित्र का आग्रह निरर्थक था। बैरिस्टर साहब के जीवन मे अपूर्व शान्ति का सिरजन उनकी परीक्षा प्रधानता के कारण ही हुआ। यदि उनकी प्रज्ञा सुवृत्ति न होती वह वस्तुस्थिति के परीक्षक न होने तो विलासता के गहरे गर्त से वह बाहर नही निकल सकते थे। उस पर भी वह शास्त्रों मे लिखी हुई प्रत्येक पक्ति को इसलिए ही नही स्वीकार कर सकते थे कि उस पर तीर्थङ्कर कथित होने की मुहर लग गई थी। वह उस बात को तर्क और विज्ञान की कसौटी पर कसते थे। और जब उसे ठीक पाते थे तभी उसे मान्य करते थे। पूज्य बैरिस्टर साहब ने सन् १९२६ मे नार्वे (Norway) देश की यात्रा की। वहां उन्होने ता० ११ जौलाई १९२६ को अपनी आखो से बराबर रातदिन सूर्य को चमकते पाया। वहा तीन-चार महीने तक मुतवातिर सूर्य अस्त नही होता। सर्वज्ञ का कथन इस प्रत्यक्ष के अविरुद्ध ही हो सकता है। बैरिस्टर साहब ने वहा का मनोरजन वर्णन लिखा है। रात के ११॥ बजे सूर्य अस्ताचल रेखा को चूमने लगा। बारह बजते-बजते उसका आधे से ज्यादा भाग डूब गया। शेष भाग आखो के सामने रहा। आधी रात के पश्चात् सूर्यास्त होना बन्द हो गया। सूर्य का जो भाग नेत्रो के सामने था वह धीरे-धीरे ऊपर को उठने और निकलने

लगा। डेढ बजे रात को पूरा सूर्य निकल आया था। चारो ओर धूप ही धूप थी। वह दृश्य देखते ही बनता था। इस प्राकृतिक दृश्य का तारतम्य जैन सिद्धान्त के करणानुयोग से कैसे बैठता है। यह बताने वाले साधन-सूत्र अभी प्रकाश मे नही आए है। बैरिस्टर साहब उन सर्वज्ञ प्रणीत सूत्रग्रन्थ को पाकर फूले न अघाते। वे राष्ट्रीयता के सच्चे पोषक थे। वीर की सिंह गर्जना उनमे थी। शान्ति का अर्थ दब्बूपन और अहिंसा से मतलब कायरता के नही। जैनधर्म के लिए स्वार्थ-त्याग और आत्म-बलिदान करने की आवश्यकता है। कोई अत्याचार करे तो उससे दबने की आवश्यकता नही। अन्याय को हटाने के लिए हमे धर्म रक्षा के लिए लड़ने-मरने को तैयार हो जाना चाहिए।

बैरिस्टर साहब ने जैन साहित्य की अपूर्व सेवा की वे एक महान् धर्म प्रचारक और परीक्षा प्रधानी श्रावकरत्न थे। हमारा कर्तव्य है कि उनके पद चिन्हो पर चलकर धर्म को जीवन मे उतारे।

बैरिस्टर साहब के कतिपय शिक्षा-प्रद आदेश

प्रत्येक जैन युवक जैन धर्म का ज्ञाता बने। शिक्षित जैनो मे जैनत्व की भावना पैदा हो।

जैन धर्म तो पारस पत्थर है जो लोहे के समान अशुद्ध जीव को शुद्ध स्वर्ण तुल्य बना सकता है।

जैनो की उपजातियो मे परस्पर वैवाहिक सम्बन्ध होना चाहिए। इससे कई लाभ है।

जैन धर्म एक विज्ञान है। कारण कार्य सिद्धान्त पर अवलम्बित है। जैसा बोओगे वैसा काटोगे। परन्तु आज हम धर्मविज्ञान को भूल गये। वे धन, यश पुत्रके लिए मन्दिर नही जैन मन्दिर भिखारियो के लिए नही। मोक्षाभिलाषियो के है धर्मशिक्षा और स्वाध्याय की पद्धति में सुधार होना चाहिए। नई पद्धति से वस्तु का स्वरूप समझने व जानने की जरूरत है। मुख्यतः सात तत्वो को जानने की जरूरत है। वैज्ञानिक शैली से पुस्तकें रची जानी चाहिए। आत्मज्ञान, न्याय, समाज शास्त्र, और इतिहास की नई पद्धति पर प्रतिपादन करना चाहिए।

सीधे-सादे शब्दो मे युक्ति और प्रमाण के आधार पर आप गजट मे मैत्री प्रमोद, कारुण्य और मध्यस्थ के खिलाफ कोई लेख प्रकट न हो।

विद्वानो को विद्वत्तापूर्वक लेख लिखने के लिए प्रेरणा करो। सम्पादकीय विद्वत्तापूर्ण हो। पहले समाज मे जैन सस्कृति मनुष्यमात्र के लिए आदर्श सस्कृति थी। और हर जगह जैनी मनुष्य के नेता थे। वही आदर्श आज हमारे सामने होना चाहिए। हमको अपनी आवाज और चारित्र प्राचीन काल के समान ऊचा करना उचित है। तब दुनिया खुशी से हमारे पीछे चलेगी।

प्राचीन जैन तत्व की रक्षा कीजिए।

समन्तभद्र स्वामी का अपने सामने आदर्श रूप थे। जैन समाज को उन्नत बनाने के लिए ससार मे सुख शान्ति फैलाने के लिए जैन विश्व विद्यालय स्थापित करना आवश्यक है।

लालाजी के नेतृत्व में परिषद् का शानदार अधिवेशन

श्री पंचरत्नजी

आपके प्रधान मन्त्रित्वकाल मे परिषद के तीन अधिवेशन हुए। तीनो ही अधिवेशन बहुत ही शानदार ढग से सम्पन्न हुए। जिसमे हजारो की सख्या मे देश के विभिन्न भागो से जैन कार्यकर्ता और समाज सेवी सम्मलित हुए। उन्ही अधिवेशनो में एक सतना अधिवेशन किस प्रकार सम्पन्न हुआ उसका दिग्दर्शक आपके सामने है। परिषद् की जन्मभर सेवा करने वाले पडित रामलालजी पचरत्न उस समय प्रचारक थे उनकी ही कलम से आँखो देखा हाल अधिवेशन का इस प्रकार है।

सतना अधिवेशन

परिषद अधिवेशन का निमंत्रण सतना से आया था परन्तु कारण विशेष से १ सप्ताह बाद पत्र मिला कि जो निमंत्रण सतना मे परिषद् अधिवेशन का दिया गया था उसे कैन्सिल कर दिया जाय आदि।

जब मैं बाहर से आकर प्रधान मत्री परिषद् लाला तनसुखरायजी से मिला तो कहने लगे वर्ष अधिवेशन का समाप्त होने वाला है। निमत्रण सतना का आया था पर न मालूम क्यो इन्कार करते हैं। आप बिस्तर न खोलें और तुरन्त सतना जाकर व्यवस्था करें और कारण ज्ञात करें मैं उसी क्षण सतना को रवाना हो गया अगले दिन दोपहर के समय सतना पहुँचा मालूम हुआ कि श्री मदिरजी मे मीटिंग हो रही है मैं वहाँ पहुँचा। लोगो से मिला। लोगो ने कहा कि प०जी सतना मे रथ ५० वर्ष से निकला नही है। श्री महाराजा रीवा नरेश ने बडी कठिनता से इस वर्ष रथ निकालने की आज्ञा दी है हम लोग ठाठबाट व प्रभावना के साथ जैन रथ निकालना चाहते हैं। यह भी समाज ने निश्चय किया था कि दि० जैन परिषद् को निमत्रित भेज दिया जाए। निमत्रण गया भी, परन्तु जब हम लोग सिवनी रथ माँगने गये जो कि बडा सुन्दर बना हुआ है वहाँ के समाज ने कहा कि अगर तुम रथोत्सव पर जैन महासभा को निमत्रण करते हो तो हम रथ देने को तैयार हैं अन्यथा नही इस मजबूरी को देखते हुए हम जबानी स्वीकृति दे आये हैं। इसी सबध मे आज मीटिंग थी। मीटिंग के निश्चयानुसार निमत्रण महासभा को भेजना स्वीकार किया गया है और यह निमत्रण है जो भेजा जा रहा है। मैंने आध घटे परिषद् के सबध मे जोशीला भाषण दिया। फल यह हुआ कि परिषद् को भी निमत्रण दे दो। दोनो के एकीकरण होने का श्रेय सतना को प्राप्त होगा। मैंने कहा रही रथ की बात सो प०जी कह ही रहे हैं कि मेरी जिम्मेवारी है हम रथ का प्रबन्ध कर देंगे। निमत्रण परिषद् को पुन लिखा गया। यह मुझे दिया गया। महासभा का निमंत्रण जो डाक मे डालना था वह भी लिया और वापिस होकर तार द्वारा सूचना निमत्रण की दी। वहाँ से तार द्वारा जैन मित्र, सदेश आदि को खबर कर दी गई। अगले अक मित्र सदेश मे "परिषद्

अधिवेशन सतना मे होगा" ऐसा समाचार पढा गया। शीघ्र ही कार्यसमिति द्वारा योजना प्रकाशित की गई।

दिल्ली से फिर सतना प्रबन्ध करने आया तो लोगो ने कहा परिषद् का निमन्त्रण स्वीकारता का मित्र, वीर मे प्रकाशित हो गया है। महासभा का कोई जिक्र नही आया। मैंने कहा मैं उस दिन डाकखाने गया तो सोचने के बाद निश्चय किया कि एक म्यान मे दो तलवारे नही आ सकती इस वर्ष परिषद् का अधिवेशन सतना मे हो जाने दो, दूसरी बार महासभा का। इस कारण दूसरा पत्र मैंने नही डाला था। कुछ लोगो ने अच्छा कुछ ने बुरा भी कहा। परिषद् के सम्बन्ध मे मदिरजी मे अच्छा प्रभाव डाला। स्वागत समिति का निर्माण किया।

श्री दयाचन्द धर्मदास को सभापति, उपसभापति क्रमश बनाया। तैयारिया होनी शुरू हो गई। महाराजा रीवा नरेश से सहयोग प्राप्त करने के लिए प्रमुख दरबारी लोगो के साथ मैं भी गया। सबने गिन्नी भेंट की। मैंने श्रीफल और सवा रुपया भेंट कर आशीर्वादात्मक श्लोक पढा महाराजा मेरी ओर देख कर प्रसन्न हुए।

मेरा परिचय होने के पश्चात् मैंने कहा। राजन् ? आपके राज्य सतना मे आल इडिया दि० जैन परिषद् का अधिवेशन होना चाहता है। असेवली के बडे-बडे नेतागण आपके राज्य मे पधारेंगे। स्टेट का प्रबन्ध जिनके हाथ मे है उनके पधारने की भी आशा है। महाराजा ने प्रसन्न होकर सतना की राजकोठी खाली करने के लिए कर्मचारियो से कहा। यह भी कहा कि आगन्तुक अतिथियो को किसी प्रकार का कष्ट न हो। वे यहाँ से बुरी भावना लेकर न जावे। सोने-चादी की दो कुर्सी भी भिजवाने के लिए कहा तथा ऊँट, हाथी, घोडे आदि जिस-जिस सामान की जरूरत हो मैं स्वीकृति देता हूँ परन्तु अतिथियो को रच मात्र भी कष्ट का अनुभव न हो यह ध्यान रहे। मैंने कहा राजन् ! मैं तो आपको पधारने का निमन्त्रण देने आया हूँ। महाराजा सा० ने कहा कि मैं जरूर अधिवेशन मे आऊंगा। तुरन्त समाचार पत्रो मे दिये गए। राज्य की ओर से तैयारियाँ शानदार होने लगी तहलका मच गया। विशाल सुन्दर मडप बनाया गया। नाटक का भी प्रबन्ध किया गया। सुन्दर बाजार सजाया गया। तोरण मडप बनाया गया। राजसी ठाठ किया गया। यह चर्चा अ०जैनो मे भी फैली कि जैन रथ मे नग्न मूर्ति निकाली जायगी। ब्राह्मणो ने घोर विरोध किया कि ऐसा नही होने देंगे। हम जेल भर देंगे। तब उन्होने ओझा (एक जाति होती हे जो यन्त्र-मन्त्र मे प्रवीण होती है जो अपने मन्त्र बल से रथ को तोड देती है। ऐसा कई जगह हुआ भी है) को बुलाया और जैन के विरोध में नाना तैयारिया होने लगी यह खबर जैन समाज सतना को मिली सब बडे चिंतित हुए मुझे बुलाया सब हाल कहा ? मैंने कहा चिंता की कोई बात नही है जाकर उस ओझा से कह दो कि हमारे यहा बडे भारी मन्त्र तन्त्र वादी विद्वान पधारे हुए है उन्होने कहा कि आपका बडा लडका मरणासन्न है जाकर खबर लो दैव की बात कि उनके पास इस विषय का तार आया और वह चला गया तथा उसका बडा बेटा मर भी गया उसने आने से इन्कार कर दिया सकट टला लोगो मे मेरा अत्यधिक विश्वास बढा खूब सम्मान दिया।

लोगो ने कहा प० जी यह सी० पी० प्रान्त है परिषद् के विरोध मे काफी लोग है। आगन्तुको की संख्या थोडी होगी तो क्या शोभा होगी। मैंने कहा चिंता की कोई बात नही है देखते रहिये मैं क्या-क्या प्रवन्ध करता हूँ जगह-जगह गया यहाँ प्रचार किया कि ओझा द्वारा जैन रथ रोका जायगा जैन विद्वान रथ चलायेंगे ओझा को कीला जाएगा यह दृश्य जैन प्रभावना की दृष्टि से देखने योग्य होगा काफी तादाद मे लोग पधारेंगे। यह चर्चा दूर-दूर तक फैल गई और बेशुमार आदमी आ गया रथ जैसी भीड हो गई. महाराजा रीवा नरेश के अन्तर्गत अन्य राजाओ से भी मिला, उन्होने भी आने का वचन दिया खाने पीने ठहरने आदि की पूर्ण व्यवस्था की गई राजसी प्रवन्ध किया गया। इधर अधिवेशन के दिन निकट आने पर श्री अयोध्या प्रसाद जी गोयलीय सतना आ गये मैंने स्वागत समिति मे प्रस्ताव रक्खा कि सभापति अधिवेशन ट्रेन से आयेंगे अत इलाहावाद मे सभापति महोदय और साथ ही नेताओ का स्वागत होना चाहिए अपना प्रवन्ध वहाँ होना चाहिए गोयलीय जी और मैं इलाहावाद गये वहा पर कैलाशचन्दजी से मिलकर उन्हे निमंत्रण देकर सभापति का स्टेशन पर शानदार स्वागत किया गया भोजन व्यवस्था की गई इसी तरह मार्ग मे कई जगह व्यवस्था की गई। यह सव प्रवन्ध मैंने ही किया सतना स्टेशन पर मखमल तथा तूस के फर्श पर से सभापति को लाया गया उस पर फूल मालाओ से वेष्टिन जयकारों के नारो से सभापति का सम्मान किया गया। सभापति महोदय को सोने के हौदे मे हाथी पर वैठाया गया। महिला परिषद् की सभा नेत्री श्री लेखावती जी को दूसरे हाथी पर ऐसे ४ हाथी कई ऊँट कई घुड सवार वैंड वाजे वगियो द्वारा शहर मे जुलूस निकाला गया मार्ग मे हर जैन घर पर हाथी को खड़ा किया गया वहाँ सभापति का सम्मान हुआ अशर्फी रुपया श्रीफल भेट किये गये दृश्य देखने योग्य था। जिस समय सभापति वा० लालचन्द जी अपना वक्तव्य दे रहे थे। खवर मिली कि महाराजा पधार रहे है खलवली मच गई सतना निवासी लोगो ने कहा महाराज रीवां नरेश पधार रहे हैं भाषण वन्द कर देना चाहिए और उनके वैठने का प्रवन्ध खास होना चाहिए।

मैंने कहा—आने दो आखिर सारे भारत का सभापति भाषण दे रहा है महाराजा भी सुनेंगे आखिर सभापति अधिवेशन के वरावर मे कुर्सी डालकर सम्मान से उन्हे विठाया गया और सम्मानित किया गया परन्तु वे वैठे नही मखमल के फर्श पर वैठे, भाषण पश्चात् उन्हें उच्च स्तर पर विठाकर प्रो० हीरालाल जी ने सुसज्जित भाषण दिया और अध्यक्ष महोदय ने जैन सिद्धांत के खास २ ग्रथ महाराजा को भेट किये महाराजा को अभिनन्दन पत्र भेट किया गया जिसका उत्तर महाराजा ने थोडे शब्दो मे महत्वपूर्ण दिया और कहा—"आज हम लोगो का भाग्य है कि इतनी दूर २ से राज्य मे अतिथि पधारे है उन्हे कोई कष्ट न हो इस वात का ध्यान राज्य निवासियों को रखना चाहिए। राज्य प्रवन्ध तथा समाज की ओर से सव प्रकार का प्रवन्ध था परिषद् के इतिहास मे सतना का अधिवेशन अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

शाही अधिवेशन कराने मे मैंने जो प्रवन्ध किया वह सव प्र० मंत्री परिषद् ला० तनसुखराय जी का ही प्रवन्ध कहा जा सकता है।

(शेष पृष्ठ १५१ पर)

जैन और हिन्दू

बहुश्रुत विद्वान्
डा० ज्योति प्रसाद जैन
M.A. Ph. D.
लखनऊ

"प्रसिद्ध ऐतिहासज्ञ और बहुश्रुत विद्वान डा० ज्योति प्रसादजी ने हमारे विशेष आग्रह पर 'जैन और हिन्दू' सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण निबंध प्रस्तुत किया है। जिसमे आपने उन प्रचलित सभी मान्यताओं का खंडन किया है। जिनके आधार पर कतिपय कानिद जैनो को हिन्दू समझते हैं। राष्ट्रनायक स्व० पं० जवाहरलालजी नेहरू ने अपने प्रसिद्ध-ग्रंथ 'डिस्कवरी आफ इण्डिया' में लिखा है कि जैन धर्म और बौद्ध धर्म निश्चय से न हिन्दू धर्म हैं और न वैदिक धर्म ही, तथापि उन दोनों का जन्म भारतवर्ष मे हुआ और वे भारतीय जीवन सस्कृति एवं दार्शनिक चिन्तन के अविभाज्य अंग रहे हैं। जैन धर्म अथवा बौद्ध धर्म भारतीय विचारधारा एव सभ्यता का शत प्रतिशत उपज है तथापि उनमे से कोई हिन्दू नहीं है।"

"विद्वान लेखक ने अनेक प्रमाणो के आधार पर इसी बात को सिद्ध किया है जो पठनीय एवं तर्क सम्मत और यथार्थ है।"

क्या जैन हिन्दू है ? अथवा, क्या जैनी हिन्दू नही है ?—यह एक ही प्रश्न के दो पहलू है, और यह प्रश्न आधुनिक युग के प्रारभ से ही रह रह कर उठता रहा है। सन् १९५०-५५ के बीच तो सन् ५१ की भारतीय जन गणना, तदनन्तर हरिजनमदिर प्रवेश बिल एव आन्दोलन तथा भारतीय भिखारी अधिनियम आदि को लेकर इस प्रश्न ने पर्याप्त तीव्र वाद विवाद का रूप ले लिया था।

स्वय जैनो मे इस विषय में दो पक्ष रहे है—एक तो स्वय को हिन्दू परम्परा से पृथक् एव स्वतत्र घोषित करता रहा है और दूसरा अपने आपको हिन्दू समाज का अग मानने मे कोई आपत्ति नही अनुभव करता। इसी प्रकार तथाकथित हिन्दुओ मे भी दो पक्ष रहे है जिनमे से एक तो जैनो को अपने से पृथक् एक स्वतन्त्र सम्प्रदाय मानता रहा है और दूसरा उन्हें हिन्दू समाज का ही एक अग घोषित करने मे तत्पर दिखाई दिया है। वास्तव मे यह प्रश्न उतना तात्त्विक नही जितना कि वह ऐतिहासिक है।

जैन या जैनी 'जिन' के उपासक या अनुयायी है। जिन, जिनेन्द्र, जिनेश या जिनेश्वर उन अर्हंत् केवलियो को कहते है जिन्होने श्रमपूर्वक तपश्चरणादि रूप आत्मशोधन की प्रक्रियाओ द्वारा मनुष्य जन्म मे हो परमात्मपद प्राप्त कर लिया है। उनमे से जो समार के समस्त प्राणियो के हितसुख के लिए धर्मतीर्थ की स्थापना करते है वह तीर्थंकर कहलाते हैं। इन तीर्थंकरो द्वारा आचरित, प्रतिपादित एव प्रचारित धर्म ही जैन धर्म है और उसके अनुयायी जैन या जैनी

कहलाते है। विभिन्न समयो एव प्रदेशो मे वे श्रमण, व्रात्य, निर्ग्रन्थ, श्रावक, सराक, सरावगी या सराओगी, सेवरगान, समानी, सेवड़े, भावडे, भव्य, अनेकान्ती, स्याद्वादी आदि विभिन्न नामो से भी प्रसिद्ध रहे है।

आधुनिक युग मे लगभग सौ-सवासौ वर्ष पर्यन्त गभीर अध्ययन, शोधखोज, अनुसधान, अन्वेषण और गवेषण के परिणाम स्वरूप प्राच्यविदो, प्ररातत्त्वज्ञो, इतिहासज्ञो एवं इतिहासकारो तथा भारतीय धर्म, दर्शन, साहित्य और कला के विशेपज्ञो ने यह तथ्य मान्य कर लिया है कि जैनधर्म भारतवर्ष का एक शुद्ध भारतीय, सर्वथा स्वतन्त्र एव अत्यन्त प्राचीन धर्म है उसकी परम्परा कदाचित वैदिक अथवा ब्राह्मणीय परम्परा से भी अधिक प्राचीन है। उसका अपना स्वतन्त्र तत्त्वज्ञान है, स्वतन्त्र दर्शन है, स्वतन्त्र अनुश्रुतिएँ एव परपराएँ है, विशिष्ट आचार विचार एव उपासना पद्धति है, जीवन और उसके लक्ष्य सम्बधी विशिष्ट दृष्टिकोण है, अपने स्वतन्त्र देवालय एव तीर्थस्थल है, विशिष्ट पर्व त्यौहार हैं, विविध विषयक एव विभिन्न भाषा विपयक विपुल साहित्य है तथा उच्चकोटि की विविध एव प्रचुर कलाकृतियाँ हैं। इस प्रकार एक सुस्पष्ट एव सुसमृद्ध सस्कृत से समन्वित यह जैनधर्म भारतवर्ष की श्रमण नामक प्राय सर्वप्राचीन सास्कृतिक एव धार्मिक परम्परा का प्रागैतिहासिक काल से ही सजीव प्रतिनिधित्व करता आया है।

इस सम्बन्ध मे कतिपय विशिष्ट विद्वानो के मन्तव्य दृष्टव्य है (देखिए हमारी पुस्तक—जैनिज्म दी ओल्डेस्ट लिविग रिलीजन) यथा . प्रो० जयचन्द विद्यालकार—"जैनो के इस विश्वास को कि उनका धर्म अत्यन्त प्राचीन है और महावीर के पूर्व अन्य २३ तीर्थंकर हो चुके थे भ्रमपूर्ण और निराधार कहना तथा उन समस्त पूर्ववर्ती तीर्थङ्करो को काल्पनिक एव अनैतिहासिक मान लेना न तो न्यायसगत ही है और न उचित ही। भारतवर्ष का प्रारभिक इतिहास उतना ही जैन है जितना कि वह अपने आपको वेदो का अनुयायी कहने वालो का है।' (वही पृ० १६) इसी विद्वान तथा डा० काशीप्रसाद जायसवाल के अनुसार अथर्ववेद आदि मे उल्लिखित व्रात्य अथवा अब्राह्मणीय क्षत्रिय जैन धर्म के अनुयायी थे। (वही पृ० १७) डा० राधाकृष्णन के अनुसार जैन धर्म वर्धमान अथवा पार्श्वनाथ के भी बहुत पूर्व प्रचलित था (वही पृ० २०), तथा यह कि यजुर्वेद मे ऋषभ, अजितनाथ और अरिष्टनेमि, इन तीर्थङ्करो का नामोल्लेख है, ऋग्वेदादि के यह उल्लेख तमाम, ऋषभादि, विशिष्ट जैन तो तीर्थङ्करो के ही है और भागवतपुराण से इस तथ्य की पुष्टि होती है कि ऋषभदेव ही जैनधर्म के प्रवर्त्तक थे (वही, पृ० ४१-४२)।

प्रो० पार्जिटर, रहोड, एडकिन्स, ओल्डहम आदि विद्वानो का मत है कि वैदिक एवं हिन्दू पौराणिक साहित्य के असुर, राक्षस आदि जैन ही थे। और डा० हरिसत्य भट्टाचार्य का कहना है कि जैन और ब्राह्मणीय, दोनो परम्पराओ के साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन से आधुनिक युग के कतिपय विद्वानो का यह साग्रह मत है कि वैदिक परम्परा के अनुयायियो ने राक्षसो को

जो अत्यधिक निन्दा, भर्त्सना की है उसका कारण यही है कि वे जैन थे, यह कि वाल्मीकि रामायण मे राक्षस जाति का जैसा वर्णन है उससे स्पष्ट है कि वे जैनो के अतिरिक्त अन्य कोई हो ही नही सकते और रामायण के रचयिता ने उनका जो वीभत्स चित्रण किया है वह धार्मिक विद्वेष से प्रेरित होकर ही किया है (वही, पृ० २६, २७, ३०) अन्य अनेक प्रख्यात विद्वानो ने जैनधर्म और उसके अनुयायियो को स्वतन्त्र सत्ता वैदिक परम्परा के ब्राह्मण (या हिन्दू) धर्म और उसके अनुयायियो के उदय से पूर्व से चली आई निश्चित की है, कुछ ने सिन्धु घाटी की प्रागेतिहासिक सभ्यता मे भी जैनधर्म के उस समय प्रचलित रहने के चिन्ह लक्ष्य किये है। (वही, पृ० ३६ आदि)। उसके ब्राह्मण (हिन्दू) धर्म की कोई शाखा या उपसम्प्रदाय होने का प्रायः सभी विद्वानो ने सबल प्रतिवाद किया है।

अब 'हिन्दू' शब्द को ले। प्रथम तो यह शब्द भारतीय है ही नही, विदेशी है और अपेक्षाकृत पर्याप्त अर्वाचीन है। इतिहासकाल मे सर्वप्रथम जो विदेशी जाति भारतवर्ष और भारतीयो के स्पष्ट सम्पर्क मे आयी वह फारसदेश के निवासी ईरानी थे। छठी शताब्दी ईसा पूर्व मे ईरान के शाहदारा ने भारतवर्ष के पश्चिमोत्तर सीमान्त पर आक्रमण किया था और उसके कुछ भाग को उसने अपने राज्य मे मिला लिया था तथा उसे उसकी एक क्षेत्रयी (सूबा) बना दिया था। उस काल मे वर्तमान अफगानिस्तान भी भारतवर्ष का ही अग समझा जाता था। ईरानी लोग सिन्धु नद के उस पार के प्रदेश को भारत ही समझते थे, इस पार का समस्त प्रदेश उनके लिये चिर काल तक अज्ञात बना रहा। ईरानी भाषा में 'स' को 'ह' हो जाता है, अतएव वह लोग सिन्ध नदी को दरियाए हिन्द कहते थे और उस समस्त प्रदेश को मुल्के हिन्द, तथा उसके निवासियो एव भाषा को हिन्दी या हिन्दवी कहते थे। उनका यह सूबा भी हिन्द की सत्रयी (क्षत्रयी) कहलाता था और उनकी सेना का भी एक अग हिन्दी सेना था।

ईरानियो के द्वार से ही यूनानियो को सर्वप्रथम इस देश का ज्ञान हुआ और ईसा पूर्व ३२६ मे सिकन्दर महान के आक्रमण द्वारा उसके साथ उनका प्रत्यक्ष सम्पर्क हुआ। यूनानी लोग 'ह' का उच्चारण नही कर पाते थे। उन्होने ईरानियो के 'हिन्द' को 'इन्ड' कर दिया। वह हिन्द (सिन्धु) नदी को 'इन्डस' कहने लगे और उसके तटवर्ती उस हिन्द (सिध) प्रदेश या देश को इन्डि या इन्डिका कहने लगे। जब सिंध नदी के इस पार के प्रदेश से उनका परिचय हुआ तो पूरे भारत देश को भी वे उसी नाम से पुकारने लगे। रोम देश के निवासियो ने भी यूनानियो का ही अनुकरण किया और कालान्तर मे यूरोप की अन्य सब भाषाओ मे भी भारतवर्ष का सूचन इन्ड, इन्डि, इन्डे, इन्डियेन, इन्डीस, इन्डिया आदि विभिन्न रूपो मे हुआ जो सब एक ही मूल यूनानी शब्द की पर्याय है। इस प्रकार अग्रेजी मे भारतवर्ष के लिए इन्डिया और भारतीय विशेषण के लिए इन्डियन तथा इन्डो शब्द प्रचलित हुए।

चीनियो को भारतवर्ष की स्पष्ट जानकारी सर्वप्रथम दूसरी शताब्दी ईस्वी पूर्व मे उत्तरवर्ती हानवश के सम्राट वूति के समय मे हुई बताई जाती है और उस काल के एक चीनी

← दानवीर साहू शांतिप्रसादजी के साथ
सामाजिक विचार विमर्श
करते हुए

महाराष्ट्र केशरी श्री गाडगिल के साथ →

ग्रन्थ मे उसका सर्वप्रथम उल्लेख हुआ बताया जाता है। उसमे सिन्धुनद के लिए 'शिन्तु' शब्द प्रयुक्त हुआ है और यहाँ के निवासियो के लिए 'युआन्तु' अथवा 'यिन्तु', कालान्तर मे 'च्यान्तु'शब्द का प्रयोग भी मिलता है।

सातवी शताब्दी ई० से मुसलमान अरब इस देश मे आने प्रारम्भ हुए और वे ईरानियो के आक्रमण से इसे 'हिन्द' और इसके निवासियो को अहले हिन्द कहने लगे। दसवी शताब्दी के अन्त मे अफगानिस्तान को केन्द्र बनाकर तुर्क मुसलमानो का साम्राज्य स्थापित हुआ और वे गजनी के सुलतानो के रूप में भारतवर्ष पर लुटेरे आक्रमण करने लगे। तुर्को का मूलस्थान चीन की पश्चिमी सीमा पर था और भारत एव चीन के बीच यातायात प्राय उन्ही के देश मे होकर होता था। यह तुर्क लोग मुसलमान बनने के पूर्व चिरकाल तक बौद्धादि भारतीय धर्मो के अनुयायी रहे थे अतएव दसवी-ग्यारहवी शताब्दी मे जब वे भारतवर्ष के सम्पर्क मे आये तो चीनी, अरबी एव फारसी मिश्र प्रभाव के कारण वे इस देश को हिन्दुस्तान, यहाँ के निवासियो को हिन्दू और यहाँ की भाषा को हिन्दवी कहने लगे। मध्यकाल के लगभग ७०० वर्ष के मुसलमानी शासन मे ये शब्द प्राय व्यापक रूप से प्रचलित हो गये।

यह मुसलमान लोग समस्त मुसलमानेतर भारतीयो को, जो कि यहाँ के प्राचीन निवासी थे सामान्यत स्थूल रूप से हिन्दू या अहले हनूद और उनके धर्म को हिन्दू मजहब कहते रहे है, वैसे उनके कोप मे काफिर, जिम्मी, बुतपरस्त, दोजखी आदि अन्य अनेक सुशब्द भी थे जिन्हें वे भारतीयो के लिए बहुधा प्रयुक्त करते थे, हिन्दू शब्द का एक अर्थ वे 'चोर' भी करते थे। ये कथित हिन्दू एक ही धर्म के अनुयायी है या एकाधिक परस्पर मे स्वतन्त्र धार्मिक परम्पराओ के अनुयायी है इसमे औसत मुसलमान की कोई दिलचस्पी नही थी, उसके लिए तो वे सब समान रूप से काफिर, बुतपरस्त, जाहिल और बेईमान थे। स्वय भारतीयो को भी उन्हे यह तथ्य जानने की आवश्यकता नही थी क्योकि उनके लिए प्राय सभी मुसलमान विधर्मी थे। किन्तु मुसलमानो मे जो उदार विद्वान और जिज्ञासु थे यदि उन्होने भारतीय समाज का कुछ गहरा अध्ययन किया था प्रशासकीय सयोगो से किन्ही ऐसे तथ्यो के सम्पर्क मे आए तो उन्होने सहज ही यह भी लक्ष्य कर लिया कि इन कथित हिन्दुओ मे एक-दूसरे से स्वतन्त्र कई धार्मिक परम्पराऐं है और अनुयायियो की पृथक पृथक सुसगठित समाजे है। ऐसे विद्वानो ने या दर्शको ने कथित हिन्दू समूह के बीच मे जैनो की स्पष्ट सत्ता को बहुधा पहचान लिया। मुसलमान लेखको के समानी, तायसी, सयूरगान, सराओगान, सेवडे आदि जिन्हे उन्होने ब्राह्मण धर्म के अनुयायियो से पृथक पृथक सूचित किया है जैन ही थे। अबुलफजल ने तो आईने अकबरी मे जैन धर्म और उसके अनुयायियो का हिन्दू धर्म एव उसके अनुयायियो से सर्वथा स्वतन्त्र एक प्राचीन परम्परा के रूप मे विस्तृत वर्णन किया है।

जब अंग्रेज भारत मे आये तो उन्होने भी प्रारम्भिक मुसलमानो की भाँति स्वभावतः तथा उन्ही का अनुकरण करते हुए, समस्त मुसलमानेतर भारतीयो (इण्डियन्स) को हिन्दू और उनके धर्म को हिन्दूइज्म समझा और कहा। किन्तु १८वी शती के अन्तिमपाद मे ही उन्होने भारतीय

सस्कृति का गम्भीर अध्ययन एव अन्वेषण भी प्रारम्भ कर दिया था। और शीघ्र ही उन्हे यह स्पष्ट हो गया कि हिन्दुओ और उनके धर्म से स्वतन्त्र भी कुछ धर्म और उनके अनुयायी इस देश मे है, और वे भी प्राय उतने ही प्राचीन एव महत्वपूर्ण है भले ही वर्तमान मे वे अत्यधिक अल्प-सख्यक हो। १९वी शती के आरम्भ मे ही कोलबुक, डुबाय, टाड, फर्लांग, मेकेन्जी, विल्सन आदि प्राच्य विदो ने इस तथ्य को भली प्रकार समझ लिया था और प्रकाशित कर दिया था। फिर तो जैसे जैसे अध्ययन बढता चला गया यह बात स्पष्ट से स्पष्टतर होती चली गई। इन प्रारभिक प्राच्यविदो ने कई प्रसगो मे ब्राह्मणादि कथित हिन्दुओ के तीव्र जैन विद्वेष को भी लक्षित किया। १९वी शती के उत्तरार्ध मे उत्तर भारत के अनेक नगरो मे जैनो के रथ यात्रा आदि धर्मोत्सवो का जो तीव्र विरोध कथित हिन्दुओ द्वारा हुआ वह भी सर्वविदित है। गत दशको मे यह गाँव, जबलपुर आदि मे जैनो पर जो साम्प्रदायिक अत्याचार हुए और वर्तमान मे बिजोलिया मे जो उत्पात चल रहे है उनकी उपेक्षा नही की जा सकती। हिन्दू महासभा मे जैनो के स्वत्वों की सुरक्षा की व्यवस्था होती तो जैन महासभा की स्थापना की कदाचित आवश्यकता न होती। आर्यसमाज सस्थापक स्वामी दयानन्द ने जैन धर्म और जैनो का उन्हे हिन्दूविरोधी कहकर खडन किया। राष्ट्रीय स्वयं-सेवक सघ या जनसघ मे भी वही सकीर्ण हिन्दू साम्प्रदायिक मनोवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। स्वामी करपात्री जी आदि वर्तमान कालीन हिन्दूधर्म नेता भी हिन्दू धर्म का अर्थ वैदिक धर्म अथवा उससे निसृत शैव वैष्णवादि सम्प्रदाय ही करते है। अग्रेजी कोष ग्रन्थो मे भी हिन्दूइज्म (हिन्दू धर्म) का अर्थ ब्रह्मनिज्म (ब्राह्मण धर्म) ही किया गया है।

इस प्रकार मूल वैदिक धर्म तथा वैदिक परम्परा मे ही समय-समय पर उत्पन्न होते रहने वाले अनगिनत अवान्तर भेद प्रभेद, यथा याज्ञिक कर्मकाण्ड और औपनिषदिक अध्यात्मवाद, श्रौत और स्मार्त, साख्य-योग-वैशेषिक-न्याय-मीमासा-वेदान्त आदि तथाकथित आस्तिक दर्शन और बार्हस्पत्य-लोकायत या चार्वाक जैसे नास्तिक दर्शन, भागवत एवं पाशुपत जैसे प्रारम्भिक पौराणिक सम्प्रदाय और शैव-शाक्त-वैष्णवादि उत्तरकालीन पौराणिक सम्प्रदाय, इन सम्प्रदायो के भी अनेक उपसम्प्रदाय, पूर्वमध्यकालीन सिद्धो और जोगियो के पन्थ जिनमे तान्त्रिक, अघोरी और वाममार्गी भी सम्मिलित है, मध्यकालीन निर्गुण एवं सगुण सन्त परम्पराएँ, आधुनिकयुगीन आर्यसमाज, प्रार्थनासमाज, राधास्वामी मत आदि तथा असख्य देवी-देवताओ की पूजा भक्ति जिनमे नाग, वृक्ष, ग्राम्यदेवता, वनदेवता, आदि भी सम्मिलित है, नाना प्रकार के अन्धविश्वास, जादू-टोना, इत्यादि—मे से प्रत्येक भी और ये सब मिलकर भी 'हिन्दूधर्म' सज्ञा से सूचित होते हैं। इस हिन्दू धर्म की प्रमुख विशेषताएँ हैं ऋग्वेदादि ब्राह्मणीय वेदो को प्रमाण मानना, ईश्वर को सृष्टि का कर्त्ता, पालनकर्त्ता और हर्त्ता मानना, अवतारवाद मे आस्था रखना, वर्णाश्रम धर्म को मान्य करना, गो एव ब्राह्मण का देवता तुल्य पूजा करना, मनुस्मृति आदि स्मृतियो को व्यक्तिगत एव सामाजिक जीवन-व्यापार का नियामक विधान स्वीकार करना, महाभारत, रामायण एव ब्राह्मणीय पुराणो को धर्मशास्त्र मानना, मृत पित्रो का श्राद्धतर्पण पिण्डदानादि करना, तीर्थस्नान को पुण्य मानना, विशिष्ट देवताओ को हिंसक पशुबलि-कभी भी नरबलि भी देना, इत्यादि।

हिन्दू धर्म की इन बातो मे से एक भी बात ऐसी नही है जो जैन धर्म मे मान्य हो और न जैन धर्म का इस हिन्दू धर्म के उपरोक्त किसी भी भेद-प्रभेद, दर्शन, सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय आदि मे ही समावेश होता है। अतएव हिन्दू धर्म के अनुयायी हिन्दुओ का जैन धर्म के अनुयायी जैनो के साथ उसी प्रकार कोई एकत्व नही है जैसा कि बौद्धो पारसियो, यहूदियो, ईसाइयो, मुसलमानो, सिक्खो आदि के साथ नही है, यद्यपि एतद्देशीयता को एव सामाजिक सम्बन्धो एव ससर्गो की दृष्टि से उन सबकी अपेक्षा भारतवर्ष के जैन एव हिन्दू परस्पर मे सर्वाधिक निकट है। दोनो ही भारत मा के लाल है, दोनो के ही सम्बन्ध सर्वाधिक चिरकालीन है, इन दोनो मे से किसी के भी कभी भी कोई स्वदेश बाह्य (एक्स्ट्रा टेरिटोरियल) स्वार्थ नही रहे, जातीय, राष्ट्रीय, राजनैनिक एव भौगोलिक एकत्व दोनो का सदैव से अटूट रहा है, दोनो ही देश की समस्त सम्पत्ति-विपत्तियो मे समान रूप से भागी रहे है और उसके हित एव उत्कर्ष साधन मे समान रूप से साधक रहे है। कतिपय अपवादो को छोडकर इन दोनो मे परस्पर सौहार्द भी प्राय. बना ही रहा है।

इस वस्तुस्थिति को सभी विशेषज्ञ विद्वानो ने और राजनीतिज्ञो ने भी समझा है और मान्य किया है। प्रो० रामा स्वामी आयगर के शब्दो मे 'जैन धर्म बौद्ध धर्म अथवा ब्राह्मण धर्म (हिन्दू धर्म) से निसृत तो है ही नही, वह भारतवर्ष का सर्वाधिक प्राचीन स्वदेशीय धर्म रहा है' (जैन गजट, भा. १६, पृ २१६)। प्रो एफ. डबल्यू टामस के अनुसार 'जैन धर्म ने हिन्दू धर्म के बीच रहते हुए भी प्रारभ से वर्तमान पर्यन्त अपना पृथक एव स्वतन्त्र ससार अक्षुण्ण बनाए रखा है।" (लिगेसी आफ इडिया, पृ २१२) 'कल्चरल हेरिटेज आफ इडिया' सीरीज की प्रथम जिल्द (श्री रामकृष्ण शताब्दी ग्रन्थ) के पृ १८५-१८८ मे भी जैन दर्शन का हिन्दू दर्शन जितना प्राचीन एव उससे स्वतन्त्र होना प्रतिपादित किया है। भारतीय न्यायालयो मे भी हिन्दू-जैन प्रश्न की मीमासा हो चुकी है। मद्रास हाईकोर्ट के भूतपूर्व जज तथा विधान सभा के सदस्य टी एन शेषागिरि अय्यर ने जैन धर्म के वैदिक धर्म जितना प्राचीन होने की सभावना व्यक्त करते हुए यह मत दिया था कि जैन लोग हिन्दू डिसेन्टर्स (हिन्दू धर्म से विरोध के कारण हिन्दुओ मे से ही निकले हुए सम्प्रदायी) नही है और यह कि वह इस बात को पूर्णतया प्रमाणित कर सकते है कि सभी जैनी वैश्य नही है अपितु उनमे सभी जातियो एव वर्गो के व्यक्ति है। मद्रास हाईकोर्ट के चीफ जज (प्रधान न्यायाधीश) माननीय कुमारस्वामी शास्त्री के अनुसार "यदि इस प्रश्न का विवेचन किया जाए तो मेरा निर्णय यही होगा कि आधुनिक शोध खोज ने यह प्रमाणित कर दिया है कि जैन लोग हिन्दू डिसेन्टर्स नही है, बल्कि यह कि जैन धर्म का उदय एव इतिहास उन स्मृतियो एव टीका ग्रन्थो से बहुत पूर्व का है जिन्हें हिन्दू न्याय (कानून) एव व्यवहार का प्रमाणस्रोत मान्य किया जाता है ... वस्तुत जैन धर्म उन वेदो की प्रमाणिकता को अमान्य करता है जो हिन्दू धर्म की आधारशिला है, और उन विविध सस्कारो की उपादेयता को भी, जिन्हे हिन्दू अत्यावश्यक मानते है, अस्वीकार करता है।" (आल इडिया लॉ रिपोर्टर, १९२७, मद्रास २२८) और बम्बई हाईकोर्ट के न्यायाधीश रॉगनेकर के निर्णयानुसार "यह बात सत्य है कि जैन जन वेदो के आप्तवाक्य होने की बात को अमान्य करते है और मृत व्यक्ति की आत्मा की मुक्ति के लिए किए जाने वाले अन्त्येष्टि सस्कारो,

पितृतर्पण, श्राद्ध, पिण्डदान आदि से सम्बधित ब्राह्मणीय सिद्धान्तो का विरोध करते है। उनका ऐसा कोई विश्वास नही है कि औरस या दत्तक पुत्र पिता का आत्मिक हित (पितृ-उद्धार आदि) करता है। अन्त्येष्टि के सबध मे भी ब्राह्मणीय हिन्दुओ से वे भिन्न हैं और शवदाह के उपरान्त (हिन्दुओ की भांति) कोई क्रियाकर्म आदि नही करते। यह सत्य है, जैसा कि आधुनिक अनुसधानो ने सिद्ध कर दिया है, कि इस देश मे जैन धर्म ब्राह्मण धर्म के उदय के अथवा उसके हिन्दू धर्म में परिवर्तित होने के बहुत पूर्व मे प्रचलित रहा है। यह भी सत्य है कि हिन्दुओ के साथ, जो कि इस देश मे बहुसख्यक रहे हैं, चिरकालीन निकट सम्पर्क के कारण जैनो ने अनेक प्रथाएँ और सस्कार भी जो ब्राह्मण धर्म से सबधित है तथा जिनका हिन्दू लोग कट्टरता मे पालन करते है, अपना लिए है।" (आल इडिया लॉ रिपोर्टर, १९३९, बम्बई ३७७). स्व प जवाहरलाल नेहरू ने भी अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'डिस्कवरी आफ इडिया' मे लिखा है कि "जैन धर्म और बौद्ध धर्म निश्चय से न हिन्दू धर्म हैं और न वैदिक धर्म भी, तथापि उन दोनो का जन्म भारतवर्ष मे हुआ और वे भारतीय जीवन, सस्कृति एव दार्शनिक चिन्तन के अभिन्न-अविभाज्य अग रहे हैं। भारतवर्ष का जैन धर्म अथवा बौद्ध धर्म भारतीय विचारधारा एव सभ्यता की शत-प्रतिशत उपज है, तथापि उनमे से कोई भी हिन्दू नहीं है। अतएव भारतीय सस्कृति को हिन्दू सस्कृति कहना भ्रामक है।"

ऐतिहासिक दृष्टि से भी, वेदो तथा वैदिक साहित्य मे वेदविरोधी व्रात्यो या श्रमणो को वेदानुयायियो—ब्राह्मणो आदि से पृथक सूचित किया है। अशोक के शिलालेखो (३री शती ई० पू०) मे भी श्रमणो और ब्राह्मणो का सुस्पष्ट पृथक-पृथक उल्लेख है। यूनानी लेखको ने भी ऐसा ही उल्लेख किया और खारवेल के शिलालेख मे भी ऐसा ही किया गया। २री शती ई० पू० मे ब्राह्मण धर्म पुनरुद्धार के नेता पतञ्जलि ने भी महाभाष्य मे श्रमणो एव ब्राह्मणो को दो स्वतत्र प्रतिस्पर्द्धाओ एव विरोधी समुदायो के रूप मे कथन किया। महाभारत, रामायण, ब्राह्मणीय पुराणो, स्मृतियो आदि से भी यह पार्थक्य स्पष्ट है। ईस्वी सन् के प्रथम सहस्राब्द मे स्वय भारतीय जनो मे इस विषय पर कभी कोई शका, भ्रम या विवाद ही नही हुआ कि जैन एव ब्राह्मणधर्मी एक हैं—यही लोकविश्वास था कि स्मरणातीत प्राचीन काल से दोनो परम्पराएँ एक-दूसरे से स्वतत्र चली आई है। मुसलमानो ने इस देश के निवासियो को जातीय दृष्टि से सामान्यतः हिन्दू कहा, किन्तु शीघ्र ही यह शब्द शैव वैष्णवादि ब्राह्मणधर्मियो के लिए ही प्राय प्रयुक्त करने लगे क्योकि उन्होंने यह भी निश्चय कर लिया था कि उनके अतिरिक्त यहाँ एक तो जैन परम्परा है जिसके अनुयायी अपेक्षाकृत अल्पसख्यक हैं तथा अनेक बातो मे बाह्यत उक्त हिन्दुओ के ही सदृश भी है, वह एक भिन्न एव स्वतत्र परम्परा है। मुगलकाल मे अकबर के समय से ही यह तथ्य सुस्पष्ट रूप मे मान्य भी हुआ। अग्रेजो ने भी प्रारभ मे, मुसलमानो के अनुकरण से, सभी मुस्लिमेतर भारतीयो को हिन्दू समझा किन्तु शीघ्र ही उन्होने भी कथित हिन्दुओ और जैनो की एक-दूसरे से स्वतत्र सज्ञाएँ स्वीकार कर ली। सन् १८३१ मे ब्रिटिश शासन में भारतीयो की जनगणना लेने का क्रम भी चालू हुआ, सन् १८८१ मे तो वह दशाब्दी जनगणना क्रम सुव्यवस्थित रूप से चालू हो गया। इन गणनाओ में १८८१ से १९४१ तक बराबर हिन्दुओ

और जैनियो की सख्याएँ पृथक्-पृथक् सूचित की गई । १५ अगस्त १९४७ को हमारा देश स्वतन्त्र हुआ और सार्वजनिक नेताओं के नेतृत्व मे यहा स्वतन्त्र-सर्वतन्त्र-प्रजातन्त्र की स्थापना हुई। किन्तु १९४८ मे जो जनगणना अधिनियम पास किया गया उसमे यह नियम रक्खा गया कि जैनो को हिन्दुओ के अन्तर्गत ही परिगणित किया जाय—एक स्वतन्त्र समुदाय के रूप मे पृथक् नही। इस पर जैन समाज मे बडी हलचल मची। स्व० आचार्य शान्तिसागरजी ने कानून के विरोध मे आमरण अनशन ठान दिया, जैनो के अधिकारियों को स्मृतिपत्र दिए, उनके पास डेपुटेशन भेजे। फलस्वरूप राष्ट्रपति, प्रधान मन्त्री तथा अन्य केन्द्रीय मन्त्रियो ने जैनो को आश्वासन दिये कि उनकी उचित माग के साथ न्याय किया जाएगा।

जैनो की माग थी कि उन्हे सदैव की भाति १९५१ की तथा उसके पश्चात् होने वाली जनगणनाओ मे एक स्वतन्त्र धार्मिक समाज के रूप मे उसकी पृथक् जनसख्या के साथ परिगणित किया जाय। उनका यह भी कहना था कि वे अपनी इस माग को वापस लेने के लिए तैयार है यदि जनगणना मे किसी अन्य सम्प्रदाय या समुदाय की भी पृथक गणना न की जाय और समस्त नागरिकों को मात्र भारतीय रूप मे परिगणित किया जाय। (देखिए हिन्दुस्थान टाइम्स ६-२-५०)।

जैनो का डेपुटेशन अधिकारियो से ५ जनवरी १९५० को मिला। डेपुटेशन के नेता एस० जी० पाटिल थे। इस अवसर पर दिये गये स्मृति-पत्र मे हरिजन मन्दिर प्रवेश अधिनियम तथा बम्बई वैगर्स एक्ट को भी जैनो पर न लागू करने की मांग की। अधिकारियों ने जैनों की माग पर विचार विमर्श किया और अन्त मे भारत के प्रधान मन्त्री नेहरूजी ने यह आश्वासन दिया कि भारत सरकार जैनो को एक स्वतन्त्र-पृथक धार्मिक समुदाय मानती है और उन्हें यह भय करने की कोई आवश्यकता नही है कि वे हिन्दू समाज के अग मान लिए जाएँगे यद्यपि वे और हिन्दू अनेक बातो मे एक रहे है।' (हि० टा० २-२-५०) प्रधान मन्त्री के प्रमुख सचिव श्री ए० के० श्री एस० जी० पाटिल के नाम लिखे गये। ३१-१-५० के पत्र मे जैन बनाम हिन्दू सम्बन्धी सरकार की नीति एव वैधानिक स्थिति सुस्पष्ट कर दी गई है। शिक्षा मन्त्री मौलाना अबुलकलाम आजाद ने भी श्री पाटिल को लिखे गये अपने पत्र मे उक्त आश्वासन की पुष्टि की और आशा व्यक्त की कि आचार्य शान्तिसागरजी अब अपना अनशन त्याग देंगे। यह भी लिखा कि अपनी स्पष्ट इच्छाओ के विरुद्ध कोई भी समूह किसी अन्य समुदाय मे सम्मिलित नही किया जाएगा। (वही, ६-२-५०) लोक सभा मे उपप्रधान मन्त्री सरदार वल्लभभाई पटेल ने बलवन्तसिंह मेहता के प्रश्न के उत्तर मे सूचित किया कि जनगणना मे धर्म शीर्षक के अन्तर्गत हिन्दू और जैन पृथक-पृथक परिगणित किये जाएगे (वही, ८-२-५०)।

इसी बीच स्व० ला० तनसुखराय ने अखिल भारतीय जैन एसोसिएसन के मन्त्री के रूप मे उपरोक्त मेमोरेण्डम के औचित्य पर आपत्ति की (वही, ४-२-५०) और अपने वक्तव्य मे उन्होने इस बात पर बल दिया कि शब्द हिन्दू जातीयता सूचक है, राजनैतिक, सामाजिक एव आर्थिक दृष्टियों से जैन हिन्दुओ से पृथक नही है किन्तु उनकी अपनी पृथक सस्कृति है।

कुछ लोगो ने जैनो के इस कञ्चित आन्तरिक मतभेद का लाभ उठाया आम जैनो का उपहास किया, उन पर लाछन लगाये, उनकी निन्दा और भर्त्सना की कि वे अपने आपको 'हिन्दूइज्म' से पृथक करना चाहते है, अल्प-सख्यक करार दिये जाकर राजनैतिक अधिकार लेना चाहते हे, पृथक विश्व विद्यालय की माग द्वारा इस धर्मनिरपेक्ष राज्य मे अपने धर्म का प्रचार किया चाहते हे, इत्यादि (ईवनिग न्यूज १४-३-५० में किन्ही फर्जी 'राइट एन्गिल' साइब का लेख) वीर अर्जुन (११-६-४६) आदि मे इसके पूर्व भी जैनो को स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करने के विरुद्ध लेख निकल चुके थे कुछ पत्रो मे इसके वाद भी निकले। इस प्रकार के लेख साम्प्रदायिक मनोवृत्ति से प्रेरित होकर लिखे गए थे और बहुसख्यक वर्ग द्वारा उस जैन विद्वेषी सकीर्ण मनोवृत्ति का परिचय दिया गया था जिसे बीच-बीच मे यत्र-तत्र बहुसख्यको द्वारा जैनो पर किये गये धार्मिक अत्याचारो का श्रेय है। जिन विद्वानो, विशेषज्ञो, न्यायविदो एव राजनीतिज्ञो के मत इसी लेख मे पहिले प्रगट किये जा चुके है वे प्राय उसी कथित हिन्दू धर्म के अनुयायी थे या है, किन्तु वे मनस्वी, निष्पक्ष और न्यायशील है—धर्मान्ध या साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के नही। अल्पसख्यक समुदाय से बहुसख्यक समुदाय वैसे ही भय रहता है जो बहुसख्यको के सौहार्द एव सौभाग्य से दूर होता है, सख्या बल द्वारा दवा देने की मनोवृत्ति से नही।

इन लेखो का एक असर यह हुआ कि कुछ जैनो ने, जिनमे स्व० ला० तनसुखराय प्रमुख थे, समाचारपत्रो मे अनेको लेखो एव टिप्पणियो द्वारा कथित हिन्दुओ के इस भ्रम और आशका कि जैन हिन्दुओ से पृथक हैं का निवारण करने का भरसक प्रयत्न किया। इसकी शायद वैसी और उतनी आवश्यकता नही थी। १९५४ मे जब हरिजन मन्दिर-प्रवेश आन्दोलन ने उग्ररुप धारण किया तब भी जैनो मे दो पक्ष से दीख पडे और उस समय भी ला० तनसुखराय ने यही प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया कि जैन हिन्दुओ से पृथक नही है। सन् १९४९-५० से १९५४-५५ तक के विभिन्न समाचारपत्रो मे इन विषयो से सम्वन्धित समाचारो, टिप्पणियो आदि की कटिंग्स वह एकत्रित करके छोड गये है। उनके अवलोकन से यही लगता है कि ला० तनसुखरायजी को यह आशका और भय था कि कही धर्म और सस्कृति सरक्षण के मोह के कारण जैनो ने स्वातन्त्र सग्राम मे जो धन-जन की प्रभूति आहुति दी है—अपनी सख्या के अनुपात से कही अधिक और देश को एव राष्ट्र की सर्वतोमुखी उन्नति मे जो महत्त्वपूर्ण योगदान किया है और कर रहे है कि उस पर पानी न फिर जाय। और फिर कुछ नेतागीरी का भी नशा होता है। वरना अपनी सत्ता का मोह होना, अपने स्वत्त्वो, परम्पराओ एव सस्कृति के सरक्षण मे प्रयत्नमान रहना तो कोई अपराध नही है—वह तो सर्वथा उचित एव श्रेष्ठ कर्तव्य है, केवल यह ध्यान रखना उचित है कि देश और राष्ट्र के महान हितो से कही कोई विरोध न हो और किसी अन्य समुदाय से किसी प्रकार का द्वेप या वैमनस्य न हो, सहअस्तित्त्व का भाव ही प्रधान हो और समष्टि के बीच व्यष्टि भी निर्विरोध रूप से अपना सम्मानपूर्ण अस्तित्त्व वनाये रख सके।

अस्तु, इस सम्पूर्ण विवेचन से यही निष्कर्ष निकलता है कि भले ही मूलत हिन्दू शब्द विदेशी हो, अर्वाचीन हो, देशपरक एव जातीयता सूचक हो, उसका रूढ अर्थ, जो अनेक कारणो

से लोक प्रचलित हो गया है, एक धर्मपरम्परा विशेष के अनुयायी ही हैं और उनका धर्म हिन्दूधर्म है। हिन्दू और भारतीय—दोनो शब्द पर्यायवाची नही है—कम से कम भारत के भीतर नही है, भारत के बाहर तो भारतीय मुसलमानो को भी कभी-कभी हिन्दू कहा गया है। जिस प्रकार भारत के बौद्ध, सिक्ख, पारसी, ईसाई, मुसलमान, यहूदी, ब्रह्मसमाजी आदि भारतीय तो है किन्तु हिन्दू नही, उसी प्रकार जैन भी भारतीय तो हैं, बल्कि जितना भी पूर्णतया कोई अन्य समुदाय किसी भी दृष्टि से भारतीय हो सकता है उसमे कुछ अधिक हैं, तथापि वे जिन अर्थों मे आज हिन्दू शब्द रूढ हो गया है उन अर्थो मे हिन्दू नही है। शब्द का जो रूढ और प्रचलित अर्थ होता है वही मान्य किया जाता है—किसी समय 'पाखण्ड' शब्द का अर्थ 'धर्म' होता था, किन्तु आज ढोंग, झूठ और फरेब होता है, अत यदि आज किसी धर्म को पाखण्ड कह दिया जाय तो भारी उत्पात हो जाय। इस प्रकार के अन्य अनेक उदाहरण दिए जा सकते है।

हिन्दू और जैन शब्दो के भी जो अर्थ लोक प्रचलित है जनसाधारण द्वारा समझे जाते हैं, उन्ही की दृष्टि से इस समस्या पर विचार किया जाना उचित है।

(पृष्ठ १४१ का शेष)

रथ बडी शान व प्रभावना के साथ सरे बाजार निकाला गया विरोधियो ने भी प्रशसा की।

सतना का अधिवेशन श्री ला० तनसुख राय जी के प्रधान के मन्त्रित्वकाल मे सफलता से सम्पन्न हुआ। सफलता का विशेष श्रेय प्र० मत्री को तो है ही परन्तु तमाम सी० पी० बरार प्रान्त तथा बुंदेलखण्ड मे प्रचार सब मैंने ही किया।

प्रो० हीरालाल जी एम० ए० एल० एल० बी नागपुर अधिवेशन के अध्यक्ष चुने गये थे उनका जुलूस १४ बैलो के रथ मे निकाला गया। प्रबन्ध कार्य मे प० कमल कुमार और मैंने विशेष सहयोग दिया।

विभिन्न विषयों पर लिखे गए

लाला जी के कतिपय लेखों की झलक

लाला तनसुखराय जी एक कर्मवीर समाजसेवी देशभक्त नेता थे। वे कुशल वक्ता भी थे। नई-नई सूझ आन्दोलन के धनी थे। यद्यपि वे कलम के धनी नही थे। वे कुशल नेता थे और न कोई ऐसे विशिष्ट विद्वान थे जो ग्रन्थो का निर्माण करते। परन्तु अपने विचारो को प्रकट करने के लिए वे लिखकर बोलकर जैसा भी अवसर आता सदैव तत्पर रहते। वे साहित्यकार तो थे नही न कवि न कोई प्रसिद्ध लेखक। परन्तु जैसे आम कविता मे तीन गुण पाए जाते हैं अक्षर मिताई पद ललिताई और अर्थ की गभीरताई। थोड़े अक्षर, पदो की सुन्दरता और अर्थ की गभीरता उसी प्रकार सुन्दर गद्य मे भी तीन गुणवृत्त है। लालाजी की रचना मे भी वे सभी गुण पाए जाते है जो एक प्रतिभा सम्पन्न प्रचारक मे होते है। उनकी रचना मे जीवन है, जोश है, प्रवाह और हृदय पर असर करने वाली तेजस्वी विचारधारा है। कतिपय लेखो से इस बात की सत्यता सिद्ध हो सकेगी। यह आप स्वय अनुभव करेंगे।
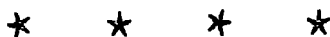
रक्षा-बन्धन

के सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण

आज रक्षाबन्धन अर्थात् सलोनो का दिन है। कोने कोने में राखियो की चहल-पहल दीख पडती है। बहिने भाइयो के घरो पर जाकर राखी बाध कर अपने पवित्र प्रेम का प्रदर्शन करती है। रक्षा-बन्धन की महत्ता के अनेक धार्मिक कारण हैं। जैन दृष्टिकोण से इसका प्रारम्भ निम्न प्रकार है :—'आज से सहस्रो वर्ष पूर्व उज्जैन नगरी मे धर्मप्रेमी राजा श्री वर्मा के बलि आदि चार जैन-धर्म-द्वेषी मन्त्री थे। एक समय नगर मे जब ७०० जैन मुनियो का सघ आया, तब राजा के साथ दर्शनार्थ जाने वाले वे चारो मन्त्री मुनि श्रुत सागर से वाद-विवाद मे परास्त होकर बदले की इच्छा से लौटे। रात्रि को उन्होने मुनि श्रुतिसागर को मारने की इच्छा की। परन्तु वहाँ के देव द्वारा कीलित किए जाने पर वह हिल भी न सके। प्रात राजा ने यह देख कर क्रोधित हो उन्हे देश निकाला दे दिया। वे ही चारो मन्त्री बाद मे हस्तिनापुर के राजा पद्मराय के यहा आकर मन्त्री बन गये और राजा को प्रसन्न कर उससे मुह मागी वस्तु पाने का वचन ले लिया। वही मुनि सघ कुछ दिनो बाद विहार करते हुए वहाँ आया। बलि ने राजा से सात दिन के लिए अपने वचनानुसार राज्य लेकर उन मुनियो के चारो ओर हाड, मास, चाम, ईधन आदि की अग्नि जलवा दी, ताकि वह मुनि दम घुट कर मर जावे। मुनि विष्णुकुमारजी पद्मराय के छोटे भाई भी थे, जिन्हे

विक्रयाऋधि (आकृति वदलने की शक्ति) प्राप्त थी उन्हे यह वात जानकर वड़ा दुख हुआ। तत्काल ही वह हस्तिनापुर वारह अगुल के ब्राह्मण का रूप धारण कर पहुँचे तथा राजा वलि को प्रसन्न कर उससे अपने पग से तीन पग पृथ्वी माँगने का वचन लिया। उन्होने अपनी अपूर्व शक्ति से ससार की समस्त पृथ्वी को तीन पग मे नाप कर राजा वलि को अत्यन्त लज्जित कर मुनि सघ की रक्षा कर उनको मृत्यु के मुख से वचाया। तभी से इस त्यौहार का नाम रक्षावन्धन पडा। यहाँ पर विचारणीय वात है मुनि विष्णुकुमार का रक्षाभाव जिसके उन्होने अपने ऊपर अधिक से अधिक कष्ट सह कर तथा मुनि पद के कर्तव्य को भी एक वार भूल कर (क्योकि जैन शास्त्रानुसार प्राय. जैन मुनि को आकृति वदलने व माँगने का अधिकार नही है) ७०० मुनियो के सघ की रक्षा की। उसी प्रकार हमारा भी कर्तव्य है कि हम हर प्रकार से अनेकानेक आपत्तियाँ सह कर भी दूसरो की, विशेषतया निर्वलो की, रक्षा करने मे अपने तन-मन-धन को लगा दे।

* * * *

दीपावली

भ० महावीर का निर्वाण दिवस—

भारतीय संस्कृति का समन्वय पर्व

भारत माँ की गोद मे जव उसके लाडले लाल स्वच्छन्द किलोल करते होगे तव की दीपावली की वात जाने दीजिए। आज भी हम इस दुर्गन्धमय दूषित वातावरण मे जवकि निराकुल और स्वतत्र श्वास लेना दूभर हो रहा है, तव भी भारतीय अपनी माँ की जिस अविरल अविचल भक्ति से दीपदान द्वारा उपासना करते है वह ससार मे अलौकिक और अनुपम है।

यो तो सात वार और नौ त्योहार भारत मे सदैव मनते रहे है और मनते रहेगे, मुहर्रम के दिन पहले भारतवासियो ने न देखे थे न सुने थे, [यह दुर्दिन तो परतन्त्र होने पर ही देखने को मिले है] परन्तु दीपावली महोत्सव सव त्योहारो का सम्राट है। इस उत्सव के मनाने मे हिन्दुओ की जिस निष्ठा, श्रद्धा और उत्साह का परिचय मिलता है वह अभूतपूर्व है।

दीपावली महोत्सव कार्तिक कृष्णा ३० को प्रत्येक भारतीय के हृदय पर प्रतिवर्ष एक आनन्द-सा वखेर कर चला जाता है। इसी पुण्यतिथि को मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम भारत-लक्ष्मी सीता का अपहरण करने वाले राक्षसो का वध करके १४ वर्ष के पश्चात साकेत पधारे थे। साकेत निवासी अपने राम का आगमन सुनकर इसी पुण्यतिथि को आनन्द-विभोर हो उठे थे, उनका मन-मयूर नाचने लगा था। सरयू नदी, जो साकेत वासियो के अश्रुओ को लेकर वन-पर्वतो मे राम को ढूंढती फिरती थी, उसी राम के दर्शन पाकर अठखेलियाँ करती हुई जन-जन को यह संवाद सुनाने दौडी थी। भारत की खोई हुई निधि और लक्ष्मी को पाकर भारतवासियो ने जो महोत्सव किया था, दीपावलि उसी पुण्यतिथि की स्मारक है।

इसी पावन तिथि को २४९१ वर्ष पूर्व विश्वोद्धारक भगवान महावीर को निर्वाण प्राप्त हुआ था। इस अनुपम विभूति ने अपने आदर्श, त्याग, दुर्द्धर तपश्चर्या से जो उस समय लोक सेवा की थी। सन्त्रस्त भारत मे सुख-शाति की जो स्थापना की थी, उसी पवित्र स्मृति मे भगवान महावीर के निर्वाण प्राप्त होने पर यह दीपावली महोत्सव किया गया था। इसी रोज गौतम गणधर को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ था और इसी रोज सुधारक शिरोमणि स्वामी दयानन्द स्वामी स्वर्गासीन हुए थे।

अत दीपावली महोत्सव सनातन जैन और आर्य सभी लोगो का महान त्योहार है? इस त्योहार के आने से महीनो पूर्व तैयारिया होने लगती है। बालक, युवा, वृद्ध सबके हृदय-कमल खिल जाते है। भारत की लक्ष्मी भारत मे ही, रहे इसी भावना के वशीभूत होकर प्रत्येक हिन्दू नर-नारी उसकी आराधना करते है। भगवान वह सुनहरा प्रभात न जाने कब दिखायेंगे जब हम अपनी भारत मा को परतन्त्रता के बन्धन से मुक्त करके उसके मस्तक पर दीपावली का मुकुट अभिषिक्त करेंगे।

× × × ×

कथनी और करनी में समानता लाइये

भगवान महावीर का जन्म-दिन मनाने का उत्तम ढंग

किसी भी महापुरुष का जन्मोत्सव मनाने का सबसे उत्तम ढग क्या है? बडे-बडे मेलो, उत्सवो और कार्यक्रमो इत्यादि का आयोजन अथवा महापुरुष की जीवनी, उसके उपदेशो इत्यादि के सम्बन्ध मे व्याख्यान, भाषण इत्यादि की व्याख्या। आमतौर पर हम इसी प्रकार महापुरुषो का जन्मोत्सव मनाते है।

किन्तु मेरे विचार मे एक अन्य ढग से भी इस प्रकार के जन्म-दिन मनाये जा सकते है। यह ढग है महापुरुषो के जिन विश्वासो मे हम श्रद्धा रखते है, उन्हे अपने जीवन मे ढालने अथवा अपनाने की चेष्टा। किन्ही भी उत्सवो, मेलो इत्यादि के आयोजन से यह ढग किसी भी प्रकार कम महत्वपूर्ण नही।

आइये, आज जब हम भगवान् महावीर स्वामी का जन्मोत्सव मना रहे है, तब देखे कि इस दिशा मे क्या कुछ कर सकते है।

अहिंसा

सबसे प्रथम हम अहिंसा को लेते है। आज जो देश और समाज उन्नत है, उनकी सफलता का मुख्य कारण यही है कि 'अहिंसा' मे हमारे समान श्रद्धा न रखते हुए और उसके

अभिप्राय को पूरी तरह न समझते हुए भी इन लोगों ने अपने आचरण और व्यवहार में मनजाने ही अहिंसा को अपना लिया है। "आत्मन- प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्" अर्थात् जो बातें, क्रियाएं और चेष्टाएं उन्हें प्रतिकूल प्रतीत होती हैं और दूसरो द्वारा किये गये जिस व्यवहार को वे अपने लिए पसन्द नही करते और अहितकर और दु:खदायी समझते हैं, उनका आचरण वे दूसरों के प्रति नही करते। फलस्वरूप अपने चारो ओर के वातावरण के प्रेम में उनके हृदय डूबे हुए हैं। उस प्रेम-सने हृदय ने उन लोगों को दृढता से एक सूत्र मे पिरो दिया है। उनके संगठन, शक्ति और उन्नति की नींव इस प्रकार अहिंसा पर स्थापित है। भगवान महावीर के जन्मोत्सव के अवसर पर हम यदि इस गुण को अपनायें, तो हमारा समाज भी वैसा ही शक्तिशाली बन सकता है।

सत्य

किसी काल में हमारा समाज अपनी सच्चाई के लिए विख्यात था। उस काल मे हमारे समाज को सर्वत्र आदर की दृष्टि से देखा जाता था। व्यक्ति, समाज और यहाँ तक कि दूर-दूर के देश तक हमारा विश्वास करते थे। इसका परिणाम वाणिज्य की वृद्धि, सबसे बन्धुत्व और मैत्री की भावना और हमारी सत्ता के अधिकाधिक शक्तिशाली हो जाने के रूप में हमें प्राप्त हुआ था। कालान्तर मे इस सत्य का ह्रास हो गया। फलस्वरूप हम अपनी पूर्व-स्थिति कायम नहीं रख सके। वाणिज्य, आपसी सम्बन्ध और सत्ता हर दृष्टि से हमें हानि उठानी पड़ी। किन्तु सत्य को पुन उसी दृढता से अपनाकर हम फिर अपने पुराने आदर और गौरव को प्राप्त कर सकते हैं। आज जो देश और समाज उन्नत हैं, उनकी ओर दृष्टिपात करने पर यह बात स्पष्ट हो जाएगी कि वे सत्य को हमारी उपेक्षा अपने-जीवन में अधिक दृढ़ता से अपनाये हुए हैं। उनकी प्रत्येक सफलता के पीठ पीछे सच्चाई का छुपा हाथ है। स्वयं अपना प्राचीन गौरव हमें सत्य की ओर प्रेरित करने वाला है।

वीरता

यह बात हम प्रतिदिन अपनी आँखों से देखते हैं कि कमजोर और दुर्बल व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र मे पग-पग पर डगमगाता और पराजय का मुँह देखता है। यही बात समाजों और राष्ट्रो पर भी लागू होती है। इसलिए उन्नति चाहने वाले व्यक्ति, समाज और राष्ट्र निरन्तर अपनी शक्ति को बढ़ाने और अधिकाधिक बलवान बनाये रखने की चेष्टा करते हैं, ये चेष्टाएं ही ऐसे व्यक्तियो, समाजो और राष्ट्रों को जीवन की दौड़ में पराजय से दूर रखती हैं। हमारे समाज की विगत पिछड़ी हुई स्थिति का कारण यही है कि अपने आपको बलवन् बनाये रखने की इस होड़ में हम पिछड़ गये। इस दिशा में हमारा ध्यान नहीं रहा। यदि हम पुनः अपनी प्राचीन स्थिति को प्राप्त करना चाहते हैं, तो हमें भगवान् महावीर स्वामी के मुख्य उपदेश को भूलना नही चाहिए। यह उपदेश है : वीर और बलवान् बनो। स्वयं जीओ और दूसरे लोगों को जीने दो। अपनी शक्ति और वीरता को अन्य लोगों की सहायता और भलाई के काम में

लाओ। किसी पर अत्याचार करना पाप है। किन्तु किसी का अत्याचार सहना उससे भी बडा पाप है। इस महापाप को किसी भी दशा में स्वीकार न करो।

शुद्धि

आत्मा के आनन्द के लिए भीतर और बाहर सर्वत्र स्वच्छता आवश्यक है। उसी दशा मे हृदय कल-कल निनाद करता हुआ किसी झरने के समान फूट पड़ता है। व्यक्ति, समाज और राष्ट्र तीनो ही के लिए आन्तरिक और बाह्य स्वच्छता की आवश्यकता रहती है। स्वच्छता आनन्द की सृष्टि के अतिरिक्त नाना प्रकार के कला-कौशलों को जन्म देती है। इससे व्यक्ति समाज और राष्ट्र के प्राण मे नये-नये रस उत्पन्न होकर उनका स्वास्थ्य-शक्ति और सम्पन्नता बढ जाते है। जिस युग मे हमारे समाज मे स्वच्छता को समुचित स्थान प्राप्त था, उस युग मे कला-कौशल की दृष्टि से हम अत्यधिक सम्पन्न थे। हमारे प्राचीन देवालयो, मठो और विहारो से इस बात का अच्छा-खासा परिचय हम प्राप्त कर सकते है। आन्तरिक और बाह्य स्वच्छता के सम्बन्ध मे सही दृष्टिकोण के अभाव मे हमारे कला-कौशलो ने अपनी नित्य नूतनता और अमरता खो दी। वे प्राण और सज्ञा-शून्य होकर रूढि मात्र रह गए। आज जब हम पुन उन्नति की दिशा मे अग्रसर है, तब स्वच्छता के सम्बन्ध मे हमे उसी दृष्टिकोण को अपनाना होगा, जो आनन्द और सौन्दर्य का स्रष्टा है।

इन्द्रिय-निग्रह

आज के भौतिकवादी युग की अशान्ति को यदि हम समाप्त करना चाहते है, यदि हमे निरन्तर भय और आशका का शिकार बने रहना अभीष्ट नहीं, तो हमे इन्द्रिय-निग्रह के महत्त्व को स्वीकार कर उसे अपनाना होगा। इन्द्रियो के मनमाने ढग पर पूरी छूट से खुल खेलने का इसके अतिरिक्त कोई परिणाम नही हो सकता कि हम शारीरिक और मानसिक रोगों से पीडित हो जाएँ। रोग-ग्रस्त व्यक्ति केवल अपने लिए ही नहीं, अपितु अपने परिवार और चारों ओर के वातावरण के लिए भी पीडा और अशान्ति का कारण बन जाता है। इन्द्रियो की मनमानी से इस प्रकार हम अशान्ति और पीडा के ऐसे बवण्डर मे फँस जाते है, जिनका उपचार सामान्य औषधियो से होना सम्भव नही। एक रोग के बढने पर दूसरा सिर उभाड लेता है, दूसरे के बाद तीसरे की बारी आ जाती है। इसी प्रकार यह चक्र चालू रहता है। आज के युग मे हम यही देख भी रहे है। आज ससार एक भीषण पीडा और अशान्ति मे से गुजर रहा है; एक समस्या का समाधान नही होता कि दूसरी सिर उभार कर खडी हो जाती है। फिर भी इन्द्रिय-निग्रह के महत्व को हम समझ नही पा रहे है।

संसार मुखापेक्षी

इन उक्त विश्वासो मे हमारी चिरकाल से श्रद्धा और आस्था है। इसी दशा मे भगवान् महावीर स्वामी के शुभ जन्म-दिवस के अवसर पर यदि हम अपनी कथनी और करनी मे तालमेल

बिठलाने अथवा समानता उत्पन्न करने की चेष्टा करें, तो जहाँ हमारा अपना और हमारे समाज का लाभ होगा वहाँ हम दूसरो के लिए भी हितकर हो सकेंगे। हमारी प्राचीन सफलताओ से प्रभावित होकर सारा समार हमसे न जाने क्या आशाएँ लगाये बैठा है। वह सदैव प्रतीक्षा करता रहेगा अथवा हम उसकी आशा की पूर्ति का साधन बन सकेंगे, यह बात बहुत कुछ हमारी करनी पर निर्भर करती है।

ढाई हजार वर्ष पूर्व का महान् क्रांतिकारी

विश्वोद्धारक भ० महावीर

आज से तीन हजार वर्ष पूर्व के उस युग की तनिक कल्पना कीजिए, जिसमे बलिदानो का बोलबाला था। जिह्वा के रसास्वादन और उदरपूर्ति के लिए आज भी जीवो की हत्या की जाती है, किन्तु उस युग की बात और ही थी। सब इस प्रकार के कर्म धर्म के नाम पर किये जाते थे। धर्म के नाम पर घोडो और अन्य पशुओ को काट कर उनसे यज्ञ सम्पन्न किये जाते थे। नर-बलि तक की प्रथा का उस युग मे प्रचलन था।

मनुष्य और मनुष्य के बीच भीषण असमानता उस युग की एक अन्य वस्तु थी। मनुष्यो को विभिन्न श्रेणियो मे बाँटा जा चुका था। इनमे दास और शूद्र जैसी कुछ ऐसी श्रेणियां भी थी, जिन्हे मनुष्य स्वीकार न कर पशुओ से भी बुरा समझा जाता था। इन लोगो से हर प्रकार का श्रम कराया जाता था और इसके बदले मे इनसे पूर्ण दुर्व्यवहार किया जाता था।

स्त्री-जाति अर्थात् जननी और मा की दशा भी उस युग मे निम्न स्थिति मे थी। ब्राह्मण धर्म के प्रचार के साथ स्त्रियो की शिक्षा पर बन्धन लगा चुके थे। वेदादि की शिक्षा महिला वर्ग को नही दी जाती थी। उच्च शिक्षा के अभाव मे स्त्री-जाति से शिक्षा का धीरे-धीरे लोप हो रहा था।

इस अन्धकारपूर्ण युग का पूरा विवरण ऐतिहासिक छान-बीन मे उपलब्ध नही। तथापि उपरोक्त तथ्यो को सम्मुख रखते हुए स्थिति की भीषणता का कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। इस अनुमान से यह बात स्पष्ट है कि हमारा समाज धीरे-धीरे पतन की दिशा मे अग्रसर हो रहा था।

महान् क्रान्ति का जन्म

समाज को पतन के गर्त मे गिरने से बचाने के लिए एक महान् विभूति ने जन्म लिया। आकाश मे बिजली की आभा सहसा ही प्रज्वलित हुई, जिसने सारे नभ मे एक क्षण के लिए

प्रकाश कर दिया। संसार के प्रथम महान् क्रान्तिकारी का यह जन्म एक अनोखी घटना है। इस क्रान्तिकारी ने जिस आलोक को उत्पन्न किया, वह बाद में अनेकों युगों तक संसार को प्रकाश प्रदान करता रहा।

साधुओं की रक्षा, दुष्टों का विनाश और धर्म की रक्षा के लिए आज से ढाई हजार वर्ष पूर्व जिस महापुरुष ने जन्म लिया, उनका नाम है भगवान् महावीर।

भगवान् महावीर का जन्म एक राजकुल में हुआ। मनुष्यों और भूमि पर राज्य करना उनका कुल-धर्म था। किन्तु देश और समाज की जो स्थिति उनके सम्मुख थी, उसने उन्हें अधीर कर दिया। बाह्य शत्रुओं को जीतने के स्थान पर उनकी आत्मा ने अपने आन्तरिक शत्रुओं को पराजित कर एक ऐसा मार्ग ढूंढने का निश्चय किया जिसके द्वारा सारे संसार का कल्याण सम्भव हो सकता था। उन्होंने अपने लिए ऐसे राज्य का चुनाव किया, जो अजेय और अमर हो।

फलस्वरूप ३० वर्ष की आयु में संसार से मुंह मोड़कर आपने जंगलों में प्रवेश किया और १२ वर्ष के कठोर तप के पश्चात् उस सत्य की खोज में सफल हो गए, जिसकी प्राप्ति के लिए आप प्रयत्नशील थे और बचपन से ही जिसके लिए आपके मन में अधीरता थी।

अहिंसा का अपूर्व सन्देश

अहिंसा की जो ज्योति बाद के युगों में बुद्ध, ईसा, गान्धी इत्यादि महापुरुषों ने जगायी, उसको सर्वप्रथम जगाने का सौभाग्य भगवान् महावीर स्वामी को ही है। अहिंसा के इस अपूर्व सन्देश का प्रकाश फैलाकर आपने पशुओं और मनुष्यों की बलि के क्रूरतापूर्ण कृत्यों को रोका और प्राणिमात्र को प्रेम की दृष्टि से देखने की शिक्षा संसार को सर्वप्रथम दी।

समाज में फैली ऊँच-नीच की भावना पर आपने जो कुठाराघात किया, उसका वास्तविक महत्त्व तो वर्ग-विहीन समाज की स्थापना के वर्तमान युग में ही भली-प्रकार समझा जा सकता है। इस दिशा में भी एक नये सन्देश का प्रारम्भ कर आपने बताया कि सब मनुष्य समान हैं। न कोई वर्ग अथवा व्यक्ति ऊँचा है और न कोई नीचा। कर्म से ही प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता प्रकट होती है। "आत्मवत् सर्व भूतेषु" की शिक्षा प्रदान कर आपने बताया कि जाति, रंगभेद, देशभेद और अन्य आर्थिक भेदों के कारण मनुष्यों को ऊँचा-नीचा नहीं माना जा सकता। सब मनुष्यों से समता से बरतना आवश्यक है।

आपके उक्त उपदेश के अन्तर्गत ही स्त्री-जाति के पुरुषों के समान अधिकारों की घोषणा की और उन्हें ज्ञान प्राप्ति का पूर्ण अधिकारी बताया। इस प्रकार समाज के रथ का जो चक्र अहिंसा के कारण दुर्बल होता जा रहा था, उसे पुनः पुष्ट बनाने की चेष्टा की गयी।

लोक-कल्याण के लिए भगवान् महावीर ने जिस प्रकाश-पुंज को प्रवाहित किया, उसकी अनेकों धाराएँ हैं। वे आज भी हमारे जीवन-मार्गों को प्रकाशित करती हैं। उनमें से कुछ

महत्वपूर्ण इस प्रकार है : "अपने जीवन को सादा बनाओ, शारीरिक सुखो मे अपने आपको अधिक न फसाओ, साधना का जीवन ही वास्तविक जीवन है, बुराई से बचो क्योकि उसके बुरे परिणाम होते है", इत्यादि ।

आज के युग मे भगवान् महावीर के सन्देशो का महत्व

आज के अशान्ति और हिंसा से पूर्ण ससार मे भगवान महावीर के सन्देशो का बडा महत्व है । आज अपने विनाश की जिन तैयारियो मे ससार लगा हुआ है, उनको रोकने के लिए भगवान महावीर स्वामी का "अहिंसा परमो धर्म" सन्देश रामबाण सिद्ध हो सकता है । यह हमे अपने झगडे आपस मे मिलकर निबटा लेने की प्रेरणा देता है । यह हमे परस्पर स्नेह करना सिखलाता है और इस प्रकार उन भीषण अणुशस्त्रो के प्रयोग से हमे रोकता है जिनके द्वारा ससार की भीषण हानि अथवा उसका सर्वथा विनाश सम्भव है ।

एक नयी दिशा की ओर अग्रसर उस देश को भी ढाई हजार वर्ष पूर्व के महान् क्रातिकारी की प्रकाश किरणो की अत्यधिक आवश्यकता है । इनकी सहायता से हमारा मार्ग प्रकाशित रहेगा और नई दिशा की ओर अग्रसर होते हुए हम अधिक भूलें नही करेंगे । भौतिक प्रगति के मार्ग की ओर अग्रसर होते हुए हम उस आध्यात्मिक पहलू को नही भुला सकेंगे, जो हमे सच्ची मनुष्यता, आपसी प्रेम और समानता की शिक्षा देता है ।

स्वय अपने व्यक्तिगत जीवनो मे भी इन सन्देशो से एक ऐसी मधुरता उत्पन्न कर सकते है, जो हमारे जीवन, पारिवारिक वातावरण और समाज को आनन्द से परिपूर्ण कर सकती है । आज के परिवर्तित जीवन मे इस आनन्द का अभाव अत्यधिक खटकने वाली वस्तु है ।

आधुनिक शिक्षा

स्वावलम्बी और चरित्र परायण बनना ही शिक्षा का उद्देश्य है

एक समय था, शिक्षा का उद्देश्य आत्मा के सच्चे आभूषण सदाचार से अलकृत कर अपनी सन्तान को सच्चरित्र बनाना था । 'सच्चरित्रता' से तात्पर्य उस सकुचित सीमित क्षेत्र की परिधि से निकल कर 'विश्व-बन्धुत्व' की भावना जागृत करना, उसका उचित हृदयाकन करना । जहाँ यह परमोत्तम भावना जगी, अकित हुई कि शेष सामयिक या आनुषगिक सद्-व्यवहार अपने आप आ गये । परन्तु अब यह पवित्र उद्देश्य कथामात्र रह गया है, आज की शिक्षा केवल जीविकोपार्जन या स्वार्थ साधन मात्र के लिए रह गई है । अब समाज को इस कटु सत्य का अनुभव होने लगा है । "भारत मे विश्व-बन्धुत्व की भावना का सिद्धान्त बालको के हृदय मे शिक्षा द्वारा अक्ति किया जाता था परन्तु अब तो जिनके बालक होते है उनके मा-बाप

पहले ही गुरुजी से यह निवेदन कर देते है कि हमारे बालक को वह शिक्षा देना जिससे वह ग्रानन्द से रोटी खा सके। जिस देश मे बालको के पिता ऐसे विचार वाले हो वहाँ बालक विद्योपार्जन कर परोपकारी बनेगे, असम्भव है। आजकल शिक्षा का प्रयोजन केवल अर्थोपार्जन तथा कामसेवन मुख्य रह गया है। स्कूलो में धार्मिक शिक्षा का प्राय अभाव है। नागरिक बनने का कोई साधन नही। ऊपरी चमक-दमक मे ही सर्वस्व खो दिया।" वस्तुत शिक्षा का उद्देश्य जबतक धनार्जन-मात्र रहेगा, धार्मिक एव नैतिक विचारधारा को प्रमुख न बनाया जायगा तबतक हमारा बौद्धिक विकास नही, विनाश ही होगा। और यह विनाश अनाकाक्षित एव असामयिक होने से बहुत खटकने वाला होगा। सुदूर भविष्य मे, खटके या निकट भविष्य मे, खटकने वाला अवश्य है। हमे चेतना होगा, और अपनी शिक्षा सस्थाओ के पाठ्यक्रम को सर्वतोमुखी लाभदायक बनाना होगा जिसमे धार्मिक तथा नैतिक शिक्षा की प्रधानता होगी। इसके लिए अच्छा यह होता कि स्कूल और कालेज खोलने की अपेक्षा जहाँ कालेज तथा स्कूल है वहा जैन छात्रावास स्थापित किये जाए। छात्रो का खान-पान, दिनचर्या जैन सस्कृति के अनुसार बनाये रखने के लिए यह बहुत जरूरी हो गये है। जिन्होने प्रयाग विश्व-विद्यालय का जैन छात्रावास देखा है वे इस तथ्य को जानते है। बम्बई वाले सेठ श्री माणिकचन्दजी की भी यही योजना रहा करती थी पर उस समय न तो इतने स्कूल और कालेज थे और न किसी का ध्यान भी उस ओर अधिक गया। सबसे पहले तो आवश्यक है माता-पिता ध्यान दे। अपने बच्चो का खानपान शुद्ध रखे और जब पढने भेजे तब ऐसे ही विद्यालयो मे भेजे जिनके पास जैन सस्कृति को प्रोत्साहन दिये रहने वाले छात्रावास हो। आगे चलकर यही छात्र गृहस्थ होते है, पिता के पद पर पहुचते है और यह स्वाभाविक है कि जैसे सस्कार उनके होगे वैसे ही इनके बच्चो के भी होगे। अत यदि अच्छे सस्कारो की परम्परा चली तो वह अधिक कल्याणकारी होगी, जैनधर्म की प्रचारक होगी।

* * * *

पशु-हत्या बन्द कराओ

अन्यथा भारत देश तबाह हो जाएगा

भीषण पशु हत्या के कारण देश की समृद्धि नष्ट हो रही है।

आज से ढाई हजार वर्ष पहले की बात है कि उस समय हमारे देश में पशुओ की घोर हत्या होती थी। धर्म के नाम पर जीवित पशुओ को हवन कुन्डो की प्रज्वलित अग्नि मे डाल दिया जाता था। उस समय अज्ञानान्धकार, आडम्बर और अशान्ति का साम्राज्य था।

उस ही समय प्रात.स्मरणीय १००८ भगवान महावीर स्वामी का जन्म हुआ। १२ साल की कठिन तपस्या के बाद उन्हे केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। उन्होने अपने आत्मबल और और ज्ञान द्वारा अनुभव किया कि जब तक पशुओ की हत्या बन्द नही होगी तबतक ससार मे सुख और शान्ति स्थापित नही हो सकती। उन्होने पशु-हत्या बन्द कराने का दृढ निश्चय किया।

जो लोग धर्म के नाम पर और जीभ के स्वाद के लिए जीवो की हत्या करते थे, उन्हे युक्तियो द्वारा तथा धर्म उपदेशो द्वारा समझाया था, उनकी अमृतवाणी का लोगो के हृदय पर गहरा प्रभाव पडा और उन्हे सही मार्ग दिखाई दिया और किसी भी प्रकार की हत्या न करने का प्रण लिया। भगवान महावीर स्वामी के पद उपदेशो से दुष्ट, दुराचारी और पापियो के हृदय के पट खुल गये। उन्हे सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ, वह सब भगवान महावीर स्वामी की शरण मे आये और सब प्रकार के व्यसनो को त्यागने की प्रतिज्ञा की। चारो ओर सुख और शान्ति की लहर दौड गई। प्राणीमात्र ने सुख और शान्ति की सास ली।

भारतवर्ष की दशा आज फिर वैसी ही है जैसी कि २५०० वर्ष पूर्व थी, आज देश मे अनुसन्धान के नाम पर विदेशो मे पशुओ की खाल, हड्डियाँ, तात आदि निर्यात व जीभ के स्वाद के लिए हजारो पशुओ की हत्या प्रतिदिन हो रही है। मॉस के कल्पित गुण बताकर उसके खाने और बूचडखाने खुलवाने का विचार सरकारी स्तर पर हो रहा है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इससे पहले भारतवर्ष मे किन्ही भी देशी या विदेशी शासको ने मास खाने और बूचड़खाने खुलवाने का प्रसार सरकारी स्तर पर नही किया। भारत सरकार के सामने मास उत्पादन की जो योजना इस समय है उसका ब्यौरा जो हमे प्राप्त हुआ है वह इस प्रकार है। कई करोड़ मन मास उत्पादन का प्रोग्राम है। आकडे अति हृदयविदारक है—

समय	गोमास का उत्पादन मनो मे	अन्य पशुओ के मास का उत्पादन	सर्व प्रकार के पशुओ के मास के उत्पादन का योग
१९६१ से १९६६ तक	११८७५०००	२१५३७५००	३२४१२५००
१९६६ से १९७१ तक	३९३७५०००	२५६७५०००	६५०५००००
१९७२ से १९७६ तक	६९५६२५००	३२४६२५००	१०२०२५०००
१९७६ से १९८१ तक	७१२५००००	४४२७५०००	११५५२५०००

मास बाजार रिपोर्ट १९५५ मे भारत सरकार ने बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, दिल्ली, कानपुर, हैदराबाद, लखनऊ, बगलौर, पटना, आगरा मे बूचडखाने खोलने की सिफारिश की है। देवनार (बम्बई) मे इसका श्रीगणेश होने वाला है। यदि देश की जनता ने इसके बन्द कराने का विरोध नही किया यो देश के सभी बडे नगरो मे बूचडखाने खुल जायेंगे, असख्य पशुओ की प्रतिदिन हत्या हुआ करेगी और देश बरबाद हो जायगा। हमारे धर्मशास्त्रो मे लिखा है —

यस्मिन् देशेभवेत् हिंसा, या पशूनाम नागसाम्।
स दुर्भिक्षादिभिर्नित्ये, अन्योपद्रव तथा ॥

"जिस देश मे निरापराध पशुओ की हत्या होती है, वह देश अकाल, महामारी और अन्य उपद्रवो से पीडित होकर नाश हो जाता है।"

भारत जैसे देश धर्मपरायण अहिंसाप्रिय देश मे जहा की जनता शाकाहारी हो और अहिसा को धार्मिक सिद्धान्त मानती हो, पशुहत्या और मास के व्यापारी को पाप समझती हो वहाँ मास खाने और बूचडखाने खुलवाने का सरकारी स्तर पर प्रयास करना उचित नही, इससे जनता के हृदयो पर गहरी ठेस पहुचती है।

भारतवर्ष मे इस समय जनता का राज्य कहा जाता है। भारतवासियो रामराज्य का स्वप्न देखनेवालो, अहिसा-प्रेमियो और दया धर्म के मानने वालो, जरा जागो और पशुहत्या को बन्द कराने के लिए जनमत तैयार कराओ, घोर विरोध करो और देश को तबाही से बचाओ।

१००८ भगवान महावीर स्वामी के अनुयायियो और अहिंसा धर्म के मानने वालो ! पशुओ की घोर हत्या बन्द कराकर, देश को समृद्धिशाली सुख और शान्ति का धाम बनाइये और अहिसा परमोधर्म का झण्डा फहराइये।

वध-योजना

६ घटे में ६०० भेड़-बकरियां ३०० गाय-बैल-भैंस और १०० सुअरो का वध

विनाश के गर्त में

जिस देश मे कभी दूध की नदियाँ बहती थी आज उस देश के नन्हे-मुन्ने बच्चो के लिए पूरा दूध भी पर्याप्त नही। पशुधन जो कि भारतवर्ष की सबसे बडी सम्पत्ति मानी जाती थी उसके सर्वनाश के लिए भारतवर्ष मे बडे-बडे बूचडखाने खोले जा रहे हैं और मास का प्रचार सरकारी स्तर पर हो रहा है।

देश जब गुलाम था तो भारत की जनता ने सब प्रकार के कष्ट सहन किये और देश को स्वतन्त्र कराया। हजारो नवयुवको ने आजादी के लिए अपनी जान की बाजी लगा दी और फासी के तख्तो पर लटक गए। सबके मन मे यही उल्लास था कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् रामराज्य स्थापित होगा। सबको पेटभर खाना और बदन ढाँपने को वस्त्र मिलने लगेगा। देश मे पशुधन की रक्षा होगी और दूध की नदियाँ बहेगी। परन्तु आज वह सब बातें स्वप्न हो गई है। खाद्य पदार्थो तथा वस्त्र के भाव दिन-प्रतिदिन तेज होते जा रहे हे। भारत का पशुधन बहुत तेजी के साथ कम होता जा रहा है।

दुर्भाग्यवश स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद हमारे देश के कुछ राष्ट्रीय नेताओ के मस्तिष्क मे पश्चिमी सभ्यता ने घर कर लिया है वह हर कार्य को उसी दृष्टि से देखते है और विदेशो

की नकल करके उनकी सलाह से देश को आगे ले जाने के लिए योजनाएँ बनाते है और उनका सहयोग प्राप्त करते है । यह स्मरण रहे कि भारत देश धर्मपरायण ऋषि-मुनियो का देश रहा है। पश्चिमी सभ्यता, परम्परायें और वहा की योजनायें हमारे देश के अनुकूल नही। भारतवर्ष ने सत्य, अहिंसा और अध्यात्मिकवाद का पाठ ससार को पढाया है। सभ्यता मे सबसे ऊँचा सर्वश्रेष्ठ देश रहा है।

इस समय एक और आश्चर्यजनक बात हमारे राष्ट्रीय नेताओ के दिमागो मे घुम गई है। वह कहते है कि मास खाना बहुत लाभदायक है। भारत मे मनुष्यमात्र को प्रतिदिन इसका प्रयोग करना चाहिये। उसके लिए उनकी यह चेष्टा है कि भारत की जनता जो कि अधिकतर शाकाहारी है उनकी विचारधारा को प्रचार द्वारा बदल दिया जाय और उनकी रुचि मास खाने की ओर कराई जाय। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए भारत सरकार द्वारा प्रकाशित सन् १९५६ की माँस रिपोर्ट मे साफ तौर से मास खाने के लिए प्रचार करने और मास उत्पादन के लिए भारतवर्ष के बडे बडे नगरो मे बडे स्तर पर स्वय-चलित यन्त्रो से युक्त बूचडखाने खोलने की योजनाओ पर जोर दिया है। माँस उद्योग की बहुत प्रशसा करते हुए उसे बढावा दिया है इसके अतिरिक्त भारत सरकार शिक्षा विभाग द्वारा मास के प्रयोग का प्रचार कर रही है।

भारत सरकार, महाराष्ट्र सरकार और बम्बई कारपोरेशन चम्बूर के पास मुकाम देवनार (बम्बई) मे एक बहुत बडा बूचडखाना शुरू कर रही है। इस बूचडखाने मे प्रतिदिन ६ घण्टे मे ६००० भेड़, बकरिया, ३०० गाय, बैल और भैसे और एक सौ सूअर काटे जाया करेंगे। सरकार इस बूचडखाने को उद्योगी ढग पर खोल रही है और उसका विचार पशुओ की हड्डियाँ-खून-जबान-खाल अतडिया और अन्य पशुओ का मास डब्बो में बन्द करके विदेशो मे निर्यात करने का है क्योकि विदेशो मे इसकी माँग बहुत अधिक है। बूचडखाने के काम करने का समय बढाया भी जा सकता है। यदि विदेशो मे पशुओ के मास और पशुओं के अन्य अगो की माग बढी उस समय पशुओ का वध और भी अधिक हुआ करेगा। कितने दु ख की बात है कि जनता का राज्य कहलाने वाली सरकार जनता की भावनाओ का ध्यान न करके उनके दिलो को ठेस पहुचाने के लिए गऊ तथा अन्य पशुओ का वध करेगी। इससे अधिक दु ख पार्लियामेट और विधान सभाओ के उन सदस्यो पर है जो कि जनता के मतो से चुनकर वहा गये है और इस विषय मे मौन है।

अग्रेजी राज्य मे सन् १९२१-२२ मे बरमा को गोमास भेजने के लिए रतौनानगर (पूर्वी मध्य प्रदेश) मे अग्रेजी सरकार ने एक बूचडखाना बनाने का निश्चय किया था। भारतवासियो ने इसका घोर विरोध किया तो अग्रेजी सरकार ने भारतवासियों की भावनाओ को ध्यान मे रखते हुए बूचडखाने की योजनाओ को रद्द कर दिया। इसी प्रकार एक और समय की बात है, जबकि अग्रेजी सरकार ने सैनिको के लिए माँस उत्पादन के वास्ते लाहौर (पजाब) के समीप बूचडखाना बनाने की योजना बनाई थी। बूचडखाना बनाने का काम भी शुरू हो गया

था और उसका कुछ भाग भी बन चुका था। जनता के तीव्र विरोध पर अंग्रेजी सरकार को वह योजना परित्याग करनी पड़ी।

भारत सरकार को हमारी धार्मिक भावनाओं और परम्पराओं का ध्यान रखकर कोई ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए जिससे कि हमारे दिलों को चोट लगे। जनता की भावनाओं, मौलिक अधिकार और परम्पराओं की रक्षा करना सरकार का प्रथम कर्त्तव्य है। इतिहास साक्षी है कि भारतवर्ष मे सभी देशी-विदेशी शासकों ने भारतीय जनता की भावनाओं की कभी उपेक्षा नहीं की और उनकी भावनाओं का ध्यान रखते हुए गोमास निर्यात करने का कभी साहस नही किया। यह ठीक है कि हम भारतीय है— भारतवर्ष हमारा है और हम देश को उन्नत देखना चाहते है परन्तु यह कदापि सहन न होगा कि भारतीय संस्कृति, परम्परा नष्ट हो रही हो और देश का पतन हो रहा हो और हम चुपचाप बैठे रहें। जनता की भावनाओं के विरुद्ध जो भी कार्य सरकार करती है वह अवैधानिक और अनियमित है। भारतवासियों का कर्त्तव्य है कि देश का नाश होने से बचाए और जनमत संग्रह करके मांस लाने के प्रचार और बूचड़खानों के बनाने की योजनाओं का विरोध करके बन्द करायें।

× × × ×

जैन एकता का मंच

भारत जैन महामंडल को दृढ़ बनाइये

सम्पूर्ण जैन समाज एक झंडे के नीचे

देश मे राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति की लहर ने जब १९वीं शताब्दी के अन्त मे बल पकड़ा तब उसका प्रभाव जैन-समाज पर पड़ना स्वाभाविक था। उस काल मे जैन-समाज श्वेताम्बर-दिगम्बर, स्थानक वासी, तेरापथी और अनेक विभागो मे बंटने के उपरान्त छिन्न-भिन्न अवस्था मे था। इन विभिन्न विभागो के आपसी मतभेद यद्यपि कुछ धार्मिक विधि-विधानों मात्र तक सीमित थे और अहिंसादि पंचव्रत, आराध्यदेव, तत्वज्ञान आदि बातों मे समस्त विभागों में पूर्ण मतैक्य था, तथापि छोटे-छोटे मतभेदो पर बल देने और मतैक्य की महत्वपूर्ण बातों पर ध्यान न देने के कारण जैन-समाज दिन-प्रतिदिन क्षीण होकर आपस मे बंटता जा रहा था।

राष्ट्रीय और सामाजिक जागृति के उस युग मे जैन-समाज की इस स्थिति की ओर कुछ व्यक्तियों का ध्यान आकृष्ट हुआ। संसार के इतिहास मे वह एक क्रांति का युग था, जिसमें पिछड़ी हुई जातियाँ और समाजें अपनी उनींदी आंखों को खोलकर जागने की चेष्टा मे संलग्न थीं। इस परिवर्तित परिस्थिति ने इन जैन बन्धुओं को भागीरथ प्रयत्न कर जैन-समाज की दिशा परिवर्तित करने के लिए प्रेरित किया। जैन-समाज को एकता के सूत्र में पिरोने के महान उद्देश्य और शासन

सम्बन्धी तथा अन्य कार्यों मे समस्त जैन समाज का प्रभावशाली प्रतिनिधित्व करने की दृष्टि मे किसी ऐसी सस्था की आवश्यकता अनुभव की गयी, जो इन कार्यों को सम्पन्न कर सके। फल-स्वरूप आज से ६० वर्ष पूर्व भारत जैन महामण्डल की स्थापना की गयी।

प्रारम्भिक कार्यकर्ताओ की अपूर्व लगन

कार्य की महानता और व्यापकता को दृष्टिगत रखते हुए यह स्पष्ट ही है कि यह कोई सरल काम नही था। इस कार्य मे अनेक रुकावटें थी। एक तो अग्रेज सरकार प्रत्येक वर्ग या क्षेत्र मे "फूट डालो और राज्य करो" की नीति को अमल मे ला रही थी। दूसरे, छोटे दायरे मे जो प्रतिष्ठा और कीर्ति प्राप्त हो सकती थी, वह विशाल और व्यापक क्षेत्र मे मिलने मे कठिनाई थी। तीसरे, आपसी झगडो के चालू रहने मे कुछ लोगो का स्वार्थ था।

इन समस्त विपरीत परिस्थितियो के होते हुए भी प्रारम्भिक कार्यकर्ताओ ने बडे उत्साह, निर्भीकता और लगन के साथ इस कार्य मे योग दिया। इन बाधाओ से वे निराश नही हुए और पूरी शक्ति से इस भागीरथ कार्य को पूरा करने मे जुट गये। इनमे से बैरिस्टर जे एल जैनी, बैरिस्टर चम्पतराय जी जैन, प्रो० के टी शाह, मानकचन्द जी वकील (खण्डवा), बा० शीतलप्रसाद जी, सूरजमल जी जैन (हरदा), वाडीलाल मोतीलाल शाह, सेठ अचलसिह आदि के नाम स्वर्ण अक्षरो मे लिखे जाने के योग्य है। प्रारम्भ मे सभापति के पद पर अजितप्रसाद जी जैन (लखनऊ), सेठ माणकचन्द जे पी (बम्बई), गुलाबचन्द जी ढढा आदि सज्जन रहे और मत्रिपद मन्हीपुर निवासी मास्टर चेतनदास जी ने सभाला।

समस्त जैन समाज का प्रतिनिधित्व करने वाली इस महान् सस्था के निर्माण मे इनके बाद सबसे प्रमुख स्थान श्री चिरजीलाल बडजाते का है। अपनी मृत्यु के समय श्री जे एल जैनी इस नन्ही सस्था को समाज की सेवा साधने के महान उद्देश्य को सम्मुख रखते हुए श्री चिरजीलाल जी को सौंप गये। उस दिन के बाद आप माता के समान इस सस्था का पालन करते आ रहे है। आपकी नीति सदैव मितव्ययता से काम लेने और नाम के स्थान पर काम को महत्त्व देने की रही है। पदो की जिम्मेवारी अपने साथियो पर डाल कर आप सदैव उनके पीछे रहते आये है। इस चीज ने सस्था को अत्यधिक बल प्रदान कर अनेक नये कार्यकर्ता सस्था के लिये उत्पन्न कर दिये हैं।

अभ्युदय का युग

१९४५ के बाद के काल को सस्था के अभ्युदय का युग कहा जाएगा। इस काल मे जैन-समाज मे सस्था के लिए आकर्पण बढा। सेठ राजमल जी ललवाणी का सहयोग श्री चिरजी-लाल जी इससे पूर्व ही प्राप्त कर चुके थे। १९४६ मे साहू-परिवार का सहयोग भी सस्था को प्राप्त हो गया। इसके बाद जिन महान उद्योगपति, तपस्वियो आदि का सहयोग इस सस्था को मिला उनमे से अमृतलाल, दलपतशाह, तपस्विनी शाताबाई, दानवीर सेठ श्री मोहनलाल जी दूगड, सेठ लालचन्द जी हीराचन्द जी, बाबू छगनमल जी जैन इत्यादि अनेक व्यक्ति सम्मिलित है। इसके

होने के कारण यह कार्य देर तक नही टाला जा सकता। आज नही तो कल हम इन सुझावो को स्वीकार करेंगे।

अपनी और अपने समाज की उन्नति के इच्छुक जैन-बन्धुओ से मेरा अनुरोध है कि वे समय की आवश्यकता को अनुभव करते हुए जैन एकता के प्रश्न मे अधिकाधिक दिलचस्पी ले और इस प्रकार भारत जैन महामण्डल के सदस्य बनकर उसके कार्यो का प्रसार करे।

* * * *

भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद् के पिछले ३७ वर्ष

एक क्रान्तिकारी संस्था का उदय

जैन समाज की जीर्ण-शीर्ण दशा और उसके सम्बन्ध मे जैन महासभा की शिथिल और स्थिति-पालक नीति को देखते हुए सन् १९२३ मे कुछ उत्साही सुधारको ने भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद की स्थापना की। इस सस्था के मुख्य सस्थापको मे वैरिस्टर चम्पतराय जी, ब्रह्मचारी शीतल प्रसादजी, श्री अजितप्रसाद जी, श्री रतनलाल जी, साहू जुगमन्दरदास जी और श्री राजेन्द्रकुमार जी के नाम उल्लेखनीय हैं। इन व्यक्तियो ने जैन महासभा के झण्डे तले रहकर समाज-सुधार के कार्य को आगे बढाने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया, किन्तु प्रतिक्रियावादी महासभा पर छा गये। उन्होने उक्त समाज-सुधारको पर "जाति-पात लोपक", "विधवा विवाह रचायक", "धर्म-भ्रष्ट" इत्यादि अनेक लाछन लगा कर उन्हे जैन महासभा से निकालना चाहा। साथ ही समाज मे किसी प्रकार सुधार करने का भी इन प्रतिक्रियावादियो द्वारा का विरोध किया गया।

आज ३७ वर्ष बाद उस समय की स्थिति को समझना सरल नही। समय ने हमारे समाज के रूप मे क्रान्तिकारी परिवर्तन कर दिये हैं। जिन बातो के विरोध मे एक समय लाठिया छूते निकाले गये थे और लोगो के गले मे रस्से डालकर उन्हे खीचा गया था, आज वही बातें रूढिवादी, प्रतिक्रियावादी और अनुदार पक्ष तक को भी ऐसे रूप मे स्वीकार है, मानो किसी काल और स्थिति मे उनका विरोध होना सभव ही नहीं हो। समय ने इन बातो को आज सहज और स्वाभाविकता मे ला दिया है।

आइये, देखे किन बातो के कारण भारतवर्षीय दिगम्बर जैन समाज के सस्थापको को "जाति-पात लोपक", "विधवा विवाह रचायक", "धर्म-भ्रष्ट" इत्यादि विशेषण दिये गये थे।

धर्म-भ्रष्ट

प्रथम महायुद्ध के फलस्वरूप १९२३ के उस काल मे भारत की जनता विदेशी के सम्पर्क मे आ चुकी थी। यह सम्पर्क युद्ध-काल मे फ्रास और तुर्की इत्यादि रणक्षेत्रो मे स्थापित हुआ था। विदेशो की भौतिक उन्नति और शिक्षा का वहा जो प्रसार था, उसने भारतीय जनता को प्रभावित किया। इन बातो से आकर्षित होकर अधिकाधिक भारतीय शिक्षा प्राप्ति के लिए विदेशो मे जाने लगे। यह एक ऐसी सामयिक घटना थी, जिससे जैन समाज प्रभावित हुए बिना नही रह सकता था। कुछ जैन भाई भी शिक्षा प्राप्ति के लिये विदेशो मे गये। बस ये यात्राएं ही समाज मे भीपण विवाद का विपय बन गयी। प्रतिक्रियावादी, रूढिवादी दल ने इस प्रकार की यात्राओ का विरोध किया। इसके विपरीत सुधारक दल ने विदेशो से प्राप्त की गयी शिक्षा के महत्व को समझते हुए इनका समर्थन किया।

आज ३७ वर्ष बाद यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि सच्चाई किस ओर थी। आज रूढिवादी का घोर से घोर समर्थक ऐसा कोई समर्थ जैन परिवार नही, जिसकी सतानें उद्योगो के प्रसार और और शिक्षा प्राप्ति के लिए विदेशो मे नही गयी हो। महासभा के समर्थको मे से बहुत से लोग स्वय अनेक बार विदेश-यात्रा पर जा चुके है। फिर भी १९२३ के उस काल मे महज विदेश-यात्रा का समर्थन करने के कारण सुधारक दल को "धर्म-भ्रष्ट" की सज्ञा दी गयी थी।

ऐसी ही एक अन्य बात मुद्रित अर्थात् छापेखाने द्वारा छपी हुई धार्मिक पुस्तको का प्रकाशन और वितरण की थी। रूढिवादी दल एकमात्र हस्तलिखित धार्मिक पुस्तको के पक्ष मे था और मुद्रित धार्मिक पुस्तको को वह धर्मविनाशकारी बतलाता था। इसके विपरीत सुधारक दल समय और परिस्थितियो के महत्व को समझते हुए अधिकाधिक जनता मे धार्मिक पुस्तको के प्रचार की दृष्टि से धार्मिक पुस्तको का मुद्रण और प्रकाशन आवश्यक मानता था। प्रतिक्रियावादी दल निजी गृहो तक मे मुद्रित धार्मिक पुस्तकें रखने के विरुद्ध था। ३७ वर्ष बाद आज क्या स्थिति है। आज जैन मन्दिरो तक मे मुद्रित जैन-शास्त्र मिलते है। जैन-शास्त्रो के मुद्रण के फलस्वरूप आज अनेको जैन-परिवारो मे शास्त्र देखने को मिल रहे हैं। १९२३ से पूर्व केवल अत्यधिक सम्पन्न परिवारो और बड़े-बड़े मन्दिरो मे ही जैन-शास्त्र दृष्टिगोचर होते थे।

जाति-पांत लोपक

१९३८ तक जैन दस्साओ एव विनेयकवारो को जिन मन्दिर मे पूजन के अधिकार प्राप्त नही थे। "सब मनुष्य समान है" भगवान महावीर स्वामी के इस उपदेश मे श्रद्धा रखने वाले जैन समाज तक मे अनेक पीढियो पुरानी किसी भूल के कारण वे भाई पूजन के अधिकार से वंचित थे। उन्हे दस्सा एव विनेयकवार इत्यादि नाम देकर नीच और अछूत जैसा समझा जाता था। परिपद के झण्डे तले सुधारवादी व्यक्तियो ने इस अन्याय का विरोध किया। सन् १९३८ के नवम्बर मास मे हस्तिनापुर तीर्थक्षेत्र मेले के अवसर पर श्री रतनलाल जी के सभापतित्व मे परिपद सम्मेलन मे
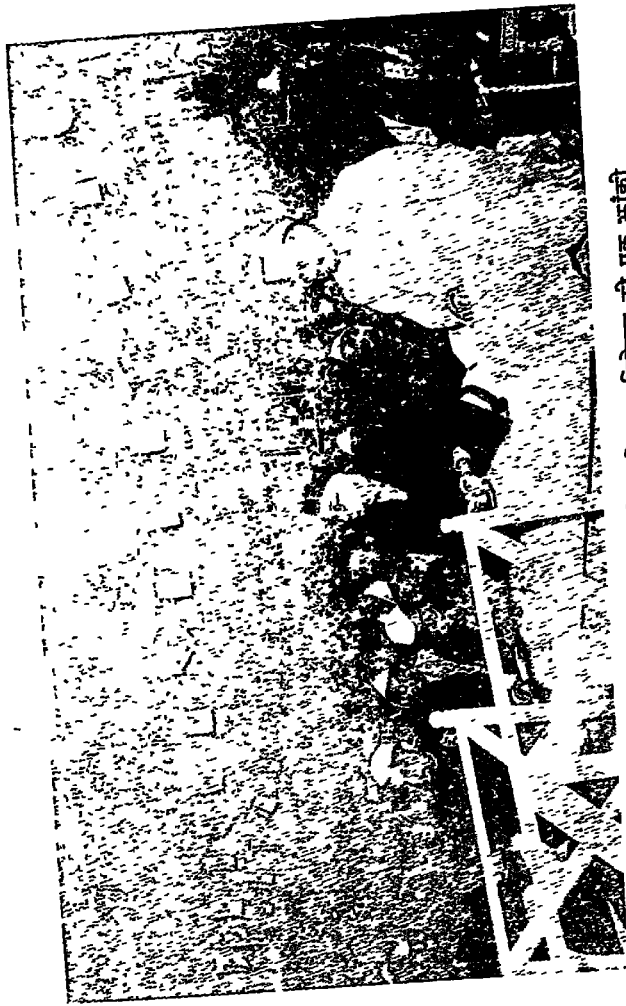
दिल्ली में होने वाले भा० दि० जैन परिषद अधिवेशन की एक झाँकी

(दायें से बायें) उद्घाटनकर्ता—माननीय श्री श्री प्रकाश जी भूतपूर्व राज्यपाल, बम्बई

अध्यक्ष—साहू श्रेयासप्रसाद जी, बम्बई

स्वागताध्यक्ष—श्री तनसुखराय जी जैन
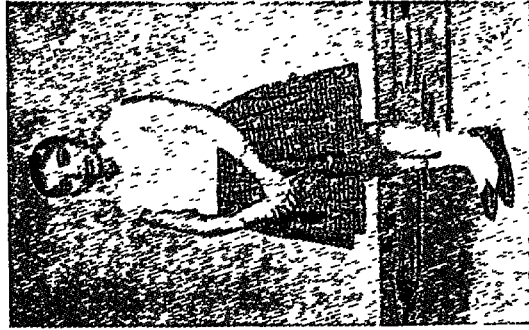
नाना की स्नेहमयी रश्मि

रश्मि लालाजी को अत्यत प्यारी थी, उन्होने इसे अपने पास रखा। उनको इस पर अपरिमित स्नेह था। वह उनकी आशा की केन्द्र और स्नेह की विन्दु थी। खेद है उनकी छत्रच्छाया इस पर अधिक समय तक नही रह सकी। नाना के गौरव की प्रतीक प्रसन्नवदना रश्मि।

●

लालाजी बच्चो के बीच मे अपना नैसर्गिक स्नेह दर्शाते हुए

दस्सा-पूजन अधिकार का प्रस्ताव पेश किया गया। प्रतिक्रियावादियो ने सैकड़ो की सख्या मे सम्मेलन स्थल मे पहुचकर तीन घन्टे तक लगातार हुल्लड मचाया और स्वयसेवको को मारा-पीटा। इस अवसर पर छुरे भी निकाले गये। किन्तु परिपद के नेताओ और स्वयसेवको के धैर्य और अहिंसामयी नीति की अत मे विजय हुई। उस सम्मेलन मे दस्सा-पूजन अधिकार जैन जनता ने स्वीकार कर लिया।

जैन एकता को दृढ करने वाले इस महान कदम को "जाति-पात लोपक" का विशेपण दिया गया। किन्तु वास्तविकता यह है कि प्रतिक्रियावादियो ने जो प्रभुत्व जैन समाज पर स्थापित कर लिया था, इस ऐतिहासिक कदम ने उसे चूर-चूर कर दिया। अनेक स्थानो मे दस्सा-पूजन करने लगे। इससे भी बडी बात यह हुई कि सुधार की भावना जैन-जगत मे घर कर गई इसी का यह परिणाम हुआ कि १९४१ मे झासी मे हुए परिपद के अधिवेशन मे मनोनीत सभापति सेठ बैजनाथ जी सरावगी ने अपना मत जब कुछ सुधारो के विरुद्ध प्रकट किया, तो जनता इस बात से भडक उठी। उसने तत्काल सुधारक श्री तानचन्द को सभापति चुनकर मच पर बिठा दिया।

आज सभी व्यक्ति, रूढिवादी, प्रतिक्रियावादी और अनुदार पक्ष तक, जैन दस्साओ और विनेयकवारो के पूजन अधिकार के समर्थक है। इस बात को समय के परिवर्तन और परिषद के सस्थापको के साहस और सूझबूझ का चमत्कार घोपित करने के अतिरिक्त क्या कहा जा सकता है।

परिपद के कार्यकर्ताओ को उक्त विशेपण देने का एक अन्य कारण जैन समाज मे होने वाले अन्तर्जातीय विवाह है। अब सभी जैन-बन्धु इस प्रकार के विवाहो मे कोई दोप नही समझते है और सैकडो अन्तर्जातीय विवाह हो रहे है, किन्तु ३७ वर्ष इस बात को जिह्वा पर लाना भी अनर्थ समझा जाता था। इस प्रकार के विवाह करने का साहस तो दूर ऐसी बात कहने वाले तक को "जाति-पाँत लोपक" की सज्ञा दी जाती थी। परिपद के कार्यकताओ ने इस प्रकार के दुर्नामो को अपने लिये स्वीकार करते हुए युगो मे समाज को जकड़ी हुई रूढियो और कुप्रथाओ से उसे मुक्त कर दिया। पुरानी जञ्जीर जर्जरित होकर एक-एक कर टूटने लगीं।

परिपद के कार्यकर्ताओ के परिश्रम, प्रचार और साहस के फलस्वरूप जिन सामाजिक बुराइयो का अन्त हुआ, उनमे मरण भोज की प्रथा प्रमुखतय है। महगाव काण्ड के सम्बन्ध मे अपूर्व, तीव्र एव प्रभावपूर्ण आन्दोलन चला कर मूर्तिया बरामद करायी और इस प्रकार जैन मदिरो की रक्षा के सम्बन्ध मे भी इन लोगो ने जैन जनता को सावधान किया। इन घटनाओ से परिपद का लोपकात स्थान पर रक्षक रूप ही दृष्टिगोचर होता है।

विधवा-विवाह रचायक

"किन्तु परिपद के कार्यकर्ताओ को सबसे अधिक दिलचस्प जो विशेपण दिया गया, वह विधवा-विवाह रचायक है। परिपद के मच से विधवा-विवाह का प्रचार कभी नही किया

गया। इसकी वास्तविक कहानी से जो लोग परिचित है, वे इस विशेषण पर हँसे बिना नही रह सकते। वास्तविक घटना इस प्रकार है—

१९२७ मे सम्मेद शिखर पर बडा भारी जैन महोत्सव हुआ। लगभग १ लाख जैन जनता वहा उपस्थित थी। इस अवसर पर वही परिषद का अधिवेशन भी किया गया। परिषद के विरोधी प्रतिक्रियावादियो ने जनता और मुनिजन को भ्रम मे डालने और परिषद का विरोधी बनाने की दृष्टि से एक महान षड्यन्त्र रचा। उसकी ओर से जोरदार प्रचार किया गया कि परिषद विधवा-विवाह की प्रचारक है।

इस जोरदार प्रचार से जैन समाज मे बवण्डर खडा हो गया। परिषद के अनेक समर्थक घबडा गये। परिषद मे दो विचारधाराए स्पष्ट दीखने लगी। एक पक्ष कहने लगा कि प्रतिक्रियावादियो के झूठे आरोप व प्रचार का प्रतिरोध करने की दृष्टि से विधवा-विवाह के विरुद्ध प्रस्ताव परिषद् पास करे। दूसरे पक्ष की सम्मति थी कि यदि इस प्रस्ताव को पास कर दिया गया तो सेतवाल, चतुर्थ, पचम आदि जैन जातियो के लिए, जिसमे विधवा विवाह जारी है, परिषद का द्वार बद हो जायगा। परिषद उस दशा मे समस्त दिगम्बर जैन समाज की प्रतिनिधि नही रह सकेगी।

अन्त में इसी पिछले पक्ष की बात स्वीकार हुई और सम्मेलन मे विधवा-विवाह के विरुद्ध कोई प्रस्ताव पास नही किया गया। तथापि इस मिथ्या प्रचार से परिषद को कुछ काल के लिये भीषण धक्का पहुचा और कितने ही व्यक्ति उससे पृथक हो गये। आज भी परिषद की नीति इस प्रश्न के सम्बन्ध मे यही है। जिन जैन-समाजो अथवा व्यक्तिगत परिवारो मे विधवा-विवाह प्रचलित है, परिषद उनका बहिष्कार करने के पक्ष मे नही। वह इस कदम को जैन एकता के प्रतिकूल समझती है।

परिषद के पिछले ३७ वर्षो के कार्यो और उसकी सफलताओ का कच्चा चिट्ठा सक्षेप मे इस प्रकार यही है कि विरोधियो की गालियो और भाति-भाति के नाम देने के बावजूद परिषद जैन समाज को एक सूत्र मे बाधने वाली मजबूत कडी सिद्ध हुई है। यह काम उसने अनेक सामयिक आन्दोलनो मे सहयोग देकर, कुप्रथाओ के विरुद्ध आवाज उठाकर, समस्त जैन-बन्धुओ के लिए समान अधिकारो की व्यवस्था कर और साहस और धीरज के साथ सत्य और अहिंसा की नीति पर डटे रहकर सम्पन्न किया है।

सन् १९५० का दिल्ली मे रजत जयन्ती अधिवेशन एक ऐतिहासिक व महत्वपूर्ण था जिसमे कि हरिजन मन्दिर प्रवेश प्रस्ताव पास किया गया था। इस अधिवेशन के सभापति साहू श्रेयासप्रसाद जी थे। ज्योही यह प्रस्ताव मच पर आया प्रतिक्रियावादियो ने हुल्लड मचाकर मच पर धावा बोल दिया। परन्तु परिषद के कार्यकर्ता डटे रहे और अगले रोज खुले अधिवेशन मे शान के साथ यह प्रस्ताव पास हुआ और प्रतिक्रियावादियो को मुहकी खानी पडी।

नये सुधार कार्य

किन्तु सामाजिक कार्यों की कभी समाप्ति नही होती। यदि कार्यकर्ताओ मे जागरूकता बनी रहे तो अनेक नये कार्य उपस्थित होते रहते है। काल और स्थान भी अनेक नये कार्यों की सृष्टि करता है। फलस्वरूप आज भी अनेक कार्य परिषद के सम्मुख है। पिछले ३७ वर्षों के समान यदि जैन जनता का परिषद को सहयोग प्राप्त होता रहा, तो इसमे सन्देह नही कि परिषद के कार्यकर्ता आज असंभव प्रतीत होने वाले अनेक कार्यों को अगले कुछ वर्षों मे उसी प्रकार सहज और सभव बना लेंगे, जिस प्रकार कि भूतकाल के अनेक कार्यों को सर्वथा स्वाभाविक बना देने मे उन्होने सफलता प्राप्त की है।

देव-शास्त्र-गुरु

हमारे आराध्य

मगलम् भगवान् वीरं मंगल गौतमी गणी।
मगलम् कुन्दकुन्दाद्यो जैनधर्मोऽस्तु मंगलम्॥

मगलमय भगवान महावीर स्वामी, उनकी वाणी-दिव्यध्वनि के विस्तारक गौतम गणधर, तथा वाणी को लिखित रूप देने वाले गुरु आचार्य कुन्दकुन्दादि तथा इन सबके द्वारा प्रचालित मगलमय जैनधर्म को साष्टाग नमस्कार करता हूँ जिसकी अमल विमल सुखद छाया मे हम भव-भव के सताप मेटते आ रहे है, जन्म-मरण के अनेको जन्मार्जित दु.खो का भार ढोते हुए भी इस मगलमय धर्म की शरण पाने से अपना सौभाग्य समझ रहे है। कठिन कार्यो के विपाक होने पर उनकी होली जला निर्वाण प्राप्त करने की आशा से निर्वाण के बाद भगवान को भी भूल जाने वाले है।

"तव पद मेरे हिय में मम तेरे पुनीत चरणो मे।
तबलो लीन रहे प्रभु ! जबलो प्राप्ति न मुक्तिपद की हो॥"

यह है वह परमपावन जैनधर्म-देव, शास्त्र, गुरु के द्वारा दिया गया एक अमोघ वरदान, जिसका आज हम दुरुपयोग कर रहे हैं ! 'पतित पावन' के 'अपावन' होने की आशका तथा भय दिखलाकर उसके मूल—देव, शास्त्र और गुरु को विकृत रूप दे रहे हैं। अब क्रमश एक-एक को ले लीजिए—

देव—

जिस वीतराग, परम दिगम्बर नाशादृष्टिधारी शान्तछवि के दर्शन से आत्मा मन्त्रमुग्ध हो जाता है, विश्व के विरोधी प्राणी वैरभाव छोड साथ-साथ विचरने लगते हैं, उस पवित्र देव को

आज हमने तमाशा बना रखा है। वीतराग कहे जाने वाले देव के चारो ओर सोने-चादी के ऐसे उपकरण परिग्रहो के ढेर लगा रखे है कि जगत के सरक्षण के भी सरक्षक की आवश्यकता पड जाती है। मन्दिर एक सेठ साहूकार की 'हवेली' सा दिखाई देता है। ऐसा सजाया जाता है कि मूर्ति की अपेक्षा वहा की सजावट मे ही मन व्यस्त हो जाता है। जैन समाज के पूज्य, भारत के आध्यात्मिक सन्त पूज्य श्री वर्णीजी महाराज को भी इस त्रुटि का दर्शन हुआ, उन्होने कहा—"एक ऐसा मन्दिर नही देखा गया जो प्राणीमात्र को लाभ का कारण होता। मूर्ति निरावरण स्थान मे होनी चाहिए जिसका दर्शन प्रत्येक कर सके।' (वर्णी-वाणी पृष्ठ १५२) इसी व्यवस्था के अभाव का कारण है लोगो मे भगवान के प्रति हीनाधिक भाव की प्रतिष्ठा की जागृति—

"चांदनपुर के महावीर! मेरी पीर हरो"

भगवान के भक्त को भारत की राजधानी के महावीर पर भी या तो विश्वास नही है या है तो चादनपुर के महावीर से कम। क्या कारण है? यही कि वहाँ जैसा ठाठ-बाट उसे वही नजर आता है अत वहाँ के महावीर को ज्यादा शक्तिशाली मानता है। अगर मन्दिर को आडम्बर रहित आराधना का सादगीपूर्ण स्थान ही रहने दिया जाता तो यह सब बाते पैदा न होती।

शास्त्र—

जब लोगो की दृष्टि बडी सकुचित थी, बुद्धि कूपमण्डूक थी, अत एक दिन था, जब कि छापाखाने के छपे शास्त्र पढना मना था। शास्त्र छापना पाप था। हस्तलिखित शास्त्र की ही पूजा होती थी। पर यह दकियानूसी ख्याल कब तक चलता? कुछ विकसित बुद्धि के लोग सामने आये और हजारो विरोधो के बाद भी जिन वाणी को प्रकाश मे लाये। उसी का फल श्री धवल सिद्धान्त जैसे पवित्र ग्रन्थ को दर्शनमात्र के लिए थे आज घर-घर मे प्रवचन के लिए उपलब्ध है। 'गागर' का यह 'सागर' सबको सुलभ है। कुछ शास्त्र ऐसे भी हैं जिन पर समय-समय पर तत्कालीन अन्य विचारधाराओ का प्रभाव पडता रहा है और इस प्रभाव के कारण उस एक ही ग्रथ मे परस्पर विरोधी विचारधाराएँ भी मिल जाती है। ऐसे विरोधी विचार इतिहास की दृष्टि से देखकर उनमे सामजस्य स्थापित किया जा सकता है। सत्य का निर्णय कर जो दूसरो के विचार हमारी सस्कृति मे, हमारे धर्म मे आ गये है उन्हे दूर किया जा सकता है। इस प्रवाह की ऐतिहासिक कारण सामगी से अनभिज्ञ, कुछ लोगो का एक प्रवाह चल पडा है। वह प्रवाह है नये शास्त्रकारो का जो अक्ल मे शून्य पर नकल मे बहुत तेज है। जो देखो वही अपनी बात को कहना है—और प्रमाणिकता के लिए दुहाई देता है—

"अस्य ग्रन्थस्य कर्तार. सर्वज्ञ देवा तदुत्तर गन्थ कर्तार. श्री गणधर देवा' प्रतिगणधर देवा तेपा वचोऽनुसारमासाद्यामया शास्त्रमिदं प्रणीतम्"

"इस ग्रन्थ के मूल कर्ता सर्वज्ञ देव है, उनके पश्चात् गणधर देव, प्रतिगणधर देव हैं। बस उन्ही की वाणी का सार लेकर हमने इस शास्त्र की रचना की है।" थोडी देर को यह सही भी मान लिया जाय। पर माने तो कैसे? शास्त्रो मे पाये जाने वाले परस्पर-विरोधी विचार क्या

इस उक्ति के साधक है ? हमारे आज के व्यक्तियो को यह आचार्य परम्परा चलाने के नाम पर शास्त्र रचना का रोग हो गया है। जनता भोली है जो सामने होता है वही उसको सर्वज्ञ प्रतीत होने लगता है, शास्त्र प्रकाशक और विक्रेता हजारो प्रतिया छापकर, बेचकर अपना भण्डार भर लेते हैं। अपने को ठगते है, दूसरो को भी ठग लेते है ! जैन समाज के शास्त्र-भण्डारो मे प्राचीन आचार्यो की विमल वाणी के अक्षय भण्डार भरे पड़े है, न उनके दर्शन होते है, न प्रकाशन होते है। नागौर आदि जैसे अनेको शास्त्र-भण्डार दीमक का भोजन बन रहे हैं !

गुरु—

देव, शास्त्र, गुरु का यह प्रकृत-विकृत रूप आज चिन्ता का विषय बन गया है। परन्तु चिन्ता करने मात्र से तो काम नही होगा। काम करने से, उपाय निकालने से होगा। मेरा निवेदन यह है--

१—मन्दिरो को अजायबघर न बनाया जाय। नई-नई मूर्तियां न लगाई जावें और जहां-जहा मन्दिर हो वहाँ नए-नए मन्दिरो का निर्माण न कराया जाए। प्राचीन जो मन्दिर हैं उनका जीर्णोद्धार कराया जाय, यत्र-तत्र जो प्रतिमाएं पडी है उन्हे एक सुव्यस्थित जगह पर लाने का प्रयत्न किया जाए।

२—शास्त्र प्रकाशन के पूर्व विद्वत्परिषद् मे भेजा जाए। सभी विद्वानो द्वारा निर्दोष कहे जाने पर ही प्रकाशित किया जाए। शास्त्रो मे जहाँ कही भी दूसरे धर्मो के प्रति कटाक्ष हों उन्हे दूर कर दिया जाए जिससे श्रोताओ को शास्त्र श्रवण से सद्भावना ही प्राप्त हो। शास्त्रो के आलकारिक तथा शृगरिक वर्णनो को कम कर शास्त्रो के संक्षिप्त रूपान्तर प्रकाशित किये जावे जिससे लोग कम समय और कम पैसे मे जैनधर्म के मान को समझ सकें।

३—किसी प्रतिष्ठित विद्वान जैनाचार्य या उनके अभाव मे विद्वत्मण्डली तथा समाज के अग्रगण्य लोगो के द्वारा विद्वत्ता तथा सदाचरण की परीक्षा करने पर ही कोई त्यागी, व्रती, प्रतिमा-धारी तथा मुनि या आचार्य हो सके। कोई मुनि या क्षुल्लक गन्थमाला आदि के नाम पर न तो स्वय चन्दा करे न दूसरो से कराये। जो ऐसे काम मे सहयोग दें उन्हे स्थानीय समाज दण्डित करे।

ऐसे और भी अनेक सुझाव हो सकते है। पर इतना हो जाय तो भी पर्याप्त है।

राजस्थान नहर योजना और उसके प्रवर्तक

राजस्थान की प्यासी भूमि को शस्य श्यामला बनाने का एक मात्र साधन

अपने मित्र का महान् प्रशंसनीय कार्य

भारत की इस पीढी के लोगो को एक स्वप्न तथा एक मधुर कल्पना को साकार होते देखने का सौभाग्य प्राप्त होगा। राजस्थान के मरुस्थल प्रदेश मे एक वडी नहर का निर्माण सभवत अव भी कुछ लोगो को एक मधुर कल्पना ही प्रतीत हो। सन् १६४८ मे जव उस समय की बीकानेर रियासत के एक मुख्य इन्जीनियर श्री कवरसैन ने सवसे पहले यह विचार रखा तो वडे-वडे इन्जीनियरो और विशेषज्ञो को यह कोरी कल्पना ही लगी। लेकिन अव यह विचार कल्पना नही रहा। अव यह साकार रूप ले रहा है और केवल राजस्थान के लोगो के लिए ही नही वल्कि समस्त देश की जनता के लिए सुख-समृद्धि के द्वार खोल रहा है। राजस्थान नहर योजना मे समस्त देश के साथ सकट को भी दूर करने की क्षमता है।

राजस्थान नहर योजना की प्रेरणा की कहानी वडी दिलचस्प है। देश के एक इलाके के लोगो को असीम कष्ट और दारुण दुख उठाते देख कर एक व्यक्ति के हृदय मे उनके कष्ट दूर करने की भावना जाग उठी। उस व्यक्ति ने उनकी समस्या का समाधान निकाला और उसी समाधान ने समस्त देश की समृद्धि के द्वार खोल दिये।

यह कहानी स्वय इस महान योजना के प्रवर्तक ने शब्दो मे व्यक्त की है —

"वहुत कम वारिश होने की वजह से इस इलाके के लोग फसलें नही उगा पाते, पानी जमीन के नीचे वहुत गहराई मे मिलता है और फिर भी यह पानी पीने तथा सिंचाई के लायक नही होता—पशुओ के लिए चारे की कमी और पीने के पानी की कमी—इन दैवी विपत्तियो के कारण इन लोगो के कष्ट और समस्त देश मे अन्न का अभाव—इन सव वातो से मुझे एक ऐसा रास्ता ढूंढ निकालने की प्रेरणा मिली जिससे यह सारा रेगिस्तान हरे-भरे खेतो से लहलहा उठे।"

लोगो की इन कठिन परिस्थितियो को देख कर श्री कवरसैन के मस्तिष्क मे एक विचार आया। इस विचार ने दृढ निश्चय का रूप ले लिया। वह दृढ निश्चय था देश के साधनो का जनता के कल्याण के लिए उपयोग और इस प्रकार देश की समृद्धि के लिए नया मार्ग प्रशस्त करना।

राजस्थान नहर योजना की कल्पना करने के दस वर्ष वाद आखिर एक दिन आया जव भारत के इतिहास मे एक नए परिच्छेद का आरम्भ हुआ। यह चिरस्मरणीय दिन तीस मार्च १६५८ था जव केन्द्रीय गृह मन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ पन्त ने ससार की इस महानतम योजना की खुदाई के काम का समारम्भ किया।

अब पहली दिसम्बर को श्री कवरसैन ने प्रधान मत्री श्री जवाहरलाल नेहरु के परामर्श पर राजस्थान नहर योजना के प्रशासक का पद सभाल लिया। वाद मे दिसम्बर १६५८ मे केन्द्रीय सिंचाई और विद्युत मत्री के सभापतित्व मे एक उच्चस्तरीय निर्देश समिति स्थापित की गई। यह समिति सरकार की प्रमुख नीतिया निर्धारित करेगी। इसी समिति के अन्तर्गत राजस्थान नहर मण्डल की स्थापना हुई जिसके प्रधान श्री कवरसैन है। यह मण्डल राजस्थान नहर योजना के समस्त कार्य को शीघ्रता तथा कुशलता के साथ पूरा कराएगा। इसके अतिरिक्त नहर योजना क्षेत्र के समस्त विकास कार्यो की जिम्मेदारी इसी मण्डल पर रहेगी। निर्देश समिति और मण्डल की स्थापना एक नई प्रणाली है जो इस महान् योजना के लिए भारत मे पहली वार अपनाई गई है।

राजस्थान नहर योजना

राजस्थान नहर ४२६ मील लम्बी होगी और इसका साढे अट्ठारह हजार घन फुट पानी सतलुज नदी पर वनाए गए हरिके वाध से आएगा। अनुमान है जलाशय के वाधो के निर्माण व्यय को छोड़ इस योजना पर साढे ६६ करोड रुपए की लागत आएगी। आशा है योजना के पूर्ण हो जाने पर देश की अन्न की उपज मे वीस लाख टन वार्षिक की वृद्धि हो जाएगी, जिसका मूल्य कोई तीस करोड रुपया वैठता है।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि राजस्थान नहर योजना ससार की एक वहुत वडी सिंचाई योजना होगी। अभी तक ससार मे कही भी इतनी वडी सिंचाई योजना का कार्य हाथ मे नही लिया गया है। इस नहर मे से वहुत वडी सख्या मे रजवाहे और सिंचाई के लिए छोटी-छोटी नहरें निकलेगी। भारत और एशिया मे यह सवसे लम्बी नहर होगी।

राजस्थान नहर योजना के लाभ

मुख्य नहर के निर्माण काल मे लगभग पचास हजार से अधिक लोगो को रोजगार मिलेगा। इसके अलावा नहर का निर्माण हो जाने पर कृषि के क्षेत्र मे कोई पचास हजार परिवारो को काम मिल जाएगा। रेलवे, सडक निर्माण, समाज सेवा, व्यवसाय और उद्योग के क्षेत्र मे भी वहुत लोग काम पर लग जाएगे।

जहाजरानी

इस समय राजस्थान के मरुस्थल प्रदेश मे सडके नाम को भी नही हैं, उचित सचार और परिवहन व्यवस्था स्थापित करने मे समय लगेगा, इसलिए नहर इतनी वडी वनाने का विचार है, जिसमे जहाज और वड़ी नौकाए चल सके। इससे नहर क्षेत्र मे वस्तिया वसाने और डाक-तार, रेल आदि के निर्माण के लिए लकडी काफी वडी मात्रा मे हरिके वाध से लाई जा सकेगी। इसके अलावा राजस्थान नहर की जहाजरानी, कृषि, अन्य पदार्थों तथा ऐसी ही अन्य चीजों को मण्डियो मे लाने का एक सस्ता साधन सिद्ध होगी।

पानी की सप्लाई

इस नहर से जैसलमेर और बीकानेर रियासत के नगरो को भी पानी दिया जा सकेगा। अधिक गहराई पर पानी पाया जाता है।

रेगिस्तान को फैलने से रोकने मे सहायक

उपरोक्त कुछ लाभो के अतिरिक्त इस क्षेत्र मे सिंचाई होने से उत्तर प्रदेश, पजाब और रेगिस्तान का विचार रुक जाएगा।

टिड्डियो का राकट

इस क्षेत्र मे बस्तिया बस जाने और खेती होने से टिड्डियो का खतरा दूर हो जाएगा क्योकि टिड्डिया रेगिस्तान मे ही अधिक पनपती है। इस प्रकार टिड्डियो से अनाज की जो भारी हानि होती है वह बच जाएगी।

सभ्यता का विस्तार

शातिपूर्ण जीविकोपार्जन के साधन हो जाने से इस इलाके मे डाकेजनी से गुजारा करने वाले लोग भी सभ्य नागरिको की तरह स्थायी रूप से बस कर अपना जीवन बितायेगे।

अकाल का निवारण

रोती के स्थायी साधन हो जाने रो अकाल का डर जो सदा बना रहता है, दूर हो जाएगा।

यह नहर राजस्थान के लिए वरदान सिद्ध होगी। जिसका मूर्तमान रूप आपके घनिष्ठ मित्र श्री कुवरसैन जी के मष्तिस्क मे आया।

वैश्य वर्ग साहस और उद्यम को अपने हृदय में स्थान दे

"मेड इन इण्डिया" की साख को मजबूत करना हमारा नया नारा है

मनुष्य शरीर के साथ समाज की तुलना करते हुए हमारे प्राचीन शास्त्रकारो ने शरीर के भिन्न-भिन्न अगो मे से वैश्य वर्ग को उदर अर्थात् पेट की सज्ञा दी है। शरीर को जीवित और पुष्ट रखने के लिए उदर का कार्य भोजन को पचाकर मास, रक्त, मज्जा इत्यादि तैयार करने वाले विविध रस जुटाना है। पेट की यह क्रिया जितनी उत्तम होगी, शरीर का पोषण और उसकी

रक्षा भी उतनी ही भली प्रकार हो सकेगी। यही स्थिति समाज के निर्माण मे वैश्य वर्ग की वतलाई गयी है।

कृपिप्रधान प्राचीन अर्थ-व्यवस्था मे वैश्य वग का महत्व यदि उक्त कथन से स्पष्ट है, तो वर्तमान युग की उद्योग-प्रधान अर्थ-व्यवस्था मे इसमे और भी अधिक अभिवृद्धि हो जाने की वात सहज ही समझी जा सकती है। आज किसी भी समाज और देश की शक्ति, सम्पन्नता, सुरक्षा और गौरव उसके व्यापार-कार्य मे सलग्न व्यक्तियो अर्थात् वैश्य वर्ग की सफलताओ पर पूर्णतया निर्भर करते है।

इस कथन के अभिप्राय को पूरी तरह समझने के लिए इस सम्वन्ध मे विस्तार से विचार आवश्यक है। तनिक सोचिए तो सही कि देश की जनता अपनी दैनिक विविव आवश्यकताओ अर्थात् भोजन, वस्त्र, वाहन और अन्य सामग्री की व्यवस्था के लिए किस वर्ग पर निर्भर है। स्पष्ट रूप से यह कार्य वैश्य वर्ग द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। फिर विदेशी मुद्रा से देश के कोश को समृद्ध वनाने वाला और विदेशो को नाना प्रकार की आवश्यक वस्तुए प्रदान कर इस प्रकार देश के गौरव और शान को चार-चान्द लगाने वाला वर्ग कौन-सा है? यह कार्य भी निर्यात व्यापार के लिए नाना प्रकार की वस्तुएँ तैयार कर वैश्य वर्ग सम्पन्न करता है। शान्तिकाल मे देश की इतनी महत्वपूर्ण सेवा करने के उपरान्त युद्धकाल मे देश की रक्षा का वास्तविक उत्तरदायित्व किस वर्ग पर है? युद्ध के लिए शस्त्रास्त्रो, तोपो, टैंको, अणु-हथियारो, गोला-वारूद, विमानो, जलपोतो और वाहनो, विभिन्न परिवानो और अन्य सामग्री का निर्यात कौन करता है? स्पष्ट रूप में यह कार्य भी वैश्य वर्ग द्वारा ही सम्पन्न किया जाता है। इस वर्ग द्वारा चलाए जाने वाले जो कल-कारखाने शान्तिकाल मे विविध प्रकार की उपयोगी सामग्री तैयार करते है, वे ही युद्धकाल मे लडाई के उपयोग मे आने वाले विविध प्रकार के पदार्थो का निर्माण करते है।

समाज की रीढ़ की हड्डी

ऐसी दशा मे समाज मे आज वैश्य वर्ग का वही स्थान है, जो शरीर मे रीढ की हड्डी का है। प्रत्येक समाज का सहारा अथवा आधार वैश्य वर्ग वन गया है। इसी नीव पर समाज का समूचा भवन खडा किया जाता है। अपने कार्य मे वैश्य वर्ग के निपुण और योग्य होने की दिशा मे समाज वडे-वडे भूचालो और तूफानो को सुगमता से झेल जाता है। दृढ आधार पर स्थापित इस अट्टालिका को कोई डगमगा नही सकता। इस प्रकार का समाज अथवा देश चिरकाल तक फलता-फूलता रहता है। नीव पक्की होने के कारण ऐसे भवन का निरन्तर विस्तार सम्भव है। नयी मजिले वनती और वढती रहती है। पुरानी मजिलो को सुवार कर, उनका नित्य नया शृंगार करके, नयी-नयी समयोचित सुविधाओ का सदा विकास होता रहता है। इस प्रकार समाज चिर-स्थायी रूप धारण कर लेता है।

आज जो देश और समाजें उन्नत और स्थायी है, उनके इतिहास की मामूली-सी छान-वीन करने से इस कथन की सत्यता का परिचय हम प्राप्त कर सकते है। इग्लैंड लगभग दो सौ वर्ष

तक सारे ससार पर राज्य करता रहा। बृटिश साम्राज्य का उस काल मे इतना अधिक विस्तार था कि उसके बारे मे यह बात कही जाती थी कि बृटिश साम्राज्य मे सूर्य कभी नही छिपता। सातो समुद्रो पर उसका शासन था। ब्रिटिश शक्ति के इस विस्तार का वास्तविक कारण उसका वणिक समाज अर्थात् वैश्य वर्ग ही था। आज ब्रिटेन की वह शक्ति नही रही, फिर भी "मेड इन इगलैंड" (इगलैड मे तैयार) इस शब्द का चमत्कार पूर्णतया नष्ट नही हुआ है। मोटे से और सर्वथा पिछड़े जापान को ५० वर्ष मे भी कम समय मे पूरब का उगता हुआ सूर्य विशेषण प्रदान करने वाला कौन था। निश्चित रूप मे इसका श्रेय जापान के वैश्य वर्ग को प्राप्त है। अल्पसमय मे असाधारण उन्नति कर उन्होंने जापान को इतना समर्थ बना दिया कि एक ओर तो वह जर्मनी, इगलैंड आदि देशों की व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा को झेलने योग्य हो गया, दूसरी ओर रूस से टक्कर लेकर वह उसके दाँत खट्टे कर सका। जापानी वैश्य वर्ग का यह चमत्कार था, जिसने उस पिछड़े हुए और पराजित देश की काया पलट दी। आज ससार मे सयुक्त राज्य अमरीका को प्रथम स्थान प्राप्त है। कौन नही जानता कि उसे यह पद दिलाने का श्रेय किसको है। अपनी प्रत्येक आवश्यकता के लिए ब्रिटेन पर निर्भर रहने वाले इस पिछड़े हुए महाद्वीप को सौ वर्ष के कठोर परिश्रम के उप-रान्त अमरीकी व्यापारिक वर्ग ने ससार मे सबसे अग्रणी बना दिया है। आज ससार मे सबसे अधिक उत्पादन इसी देश का है। अमरीकी व्यापारिक वर्ग इस स्थिति से सतुष्ट नही। अपने उत्पादन मे और भी अधिक वृद्धि करने का उसका प्रयत्न चालू है।

हेमू और भामाशाह

वर्तमान युग के वैश्य वर्ग की चमत्कारिक सफलताओ की कुछ झलकिया ये है। यदि हम अपने इतिहास की खोज करें, तो हमे अपने वैश्य वर्ग की असाधारण देनो से पूर्ण अनेक कहा-निया इतिहास के पन्नो मे छिपी हुई मिल जायेगी। भारतवर्ष को 'सोने की चिडिया' विशेषण किसने दिलाया था। नाना प्रकार की सामग्री ढो-ढोकर देश-विदेश की यात्रा करने वाले वणिक पुत्रो के परिश्रम का ही यह परिणाम था। अपनी मेहनत से इन लोगो ने इतनी धन-सपदा अर्जित की कि इस देश का भडार लबालब भर गया। देश की यात्रा करने वाले विदेशियो की आँखे इस धन की चमक से चौंधिया गयी और उन्होंने इस देश का यह नाम रख दिया।

अपने प्राचीन इतिहास की खोज करने पर हमे ऐसे अनेक युगो का परिचय मिल सकेगा जिनमे इस देश के व्यापारिक वर्ग ने दूर-दूर विदेशो मे इस क्षेत्र का नाम उज्ज्वल किया। कई सहस्र वर्ष पूर्व भारतीय वस्त्रो की बिक्री करने वाले व्यापारी मिस्र और उससे भी दूर के देशो मे पहुँचे। भारतीय वस्त्र कला के नमूने प्रस्तुत कर उन्होंने भारत का नाम इन देशो मे चमकाया देश का कोष भरने के लिए ये लोग अपने साथ विपुल सम्पदा भी लाए।

इसके बाद के युगो मे भी विदेशो मे वैश्य वर्ग का सम्बन्ध इसी प्रकार बना रहा। पूर्व मे बहुत दूर समुद्रो की वणिक पुत्रो ने यात्रायें की। इनके पूर्ण विवरण यद्यपि उपलब्ध नही और उनकी खोज का काम शेष है, फिर भी जिन देशो मे ये लोग गये वहा प्राप्त की गई सफलताओ के

स्मृति-चिह्न स्वरूप बहुत से खडहर और अन्य यादगारें बिखरे हुए मिलते है। इनसे इन यात्राओ और वहा अर्जित यश और कीर्ति और साथ ही धन-सम्पदा इन सबका पता मिलता है।

मध्यकाल मे देश के गौरव की चार-चाद लगाने वाले हेमू बनिए और भामाशाह के नाम से कौन परिचित नही। उनकी स्मृति इतिहास के पन्नो मे स्वर्णाक्षरो मे अकित है।

पतन का काल

किन्तु वैश्य वर्ग की यह स्थिति और गौरव सदैव इस रूप मे बने नही रहे। जब तक वैश्य समाज मे साहस और पराक्रम बना रहा, वह फलता-फूलता रहा और देश का दृढ आधार सिद्ध हुआ। किन्तु उसमे धीरे-धीरे शिथिलता आने लगी। इसका स्पष्ट चिह्न विदेश यात्रा पर लगने वाले प्रतिबध थे। फलस्वरूप वैश्य वर्ग की सम्पदा अर्जन करने की अपूर्व क्षमता समाप्त हो गयी। साहसपूर्ण कार्यो को सम्पन्न करने की उसकी वृत्ति पर रोक लग गई। यात्राओ के अभाव मे परिवहन व्यवस्था को अपने नियन्त्रण से रखकर उसमे निरन्तर सुधार करने की आवश्यकता नही रह गयी। फलस्वरूप इसके संगठित रूप का अन्त हो गया। विदेशी सम्पर्क के अभाव मे ससार की व्यापारिक स्थिति मे होने वाले सामयिक परिवर्तनो का कोई ज्ञान वैश्य वर्ग को नही रहा। फलस्वरूप नये-नये समयानुकूल धन्धो और कला-कौशलो का प्रारभ नही किया जा सका। साथ ही पुरानो को नया रूप देना भी सभावित नही रहा। इस स्थिति के फलस्वरूप जिन कार्यो मे पहले काफी धन मिलता था, वे हानि अथवा कम लाभ के बन गये।

इन सब बातो का परिणाम यह हुआ कि वैश्य समाज ऐसे कार्यो मे सलग्न हो गया, जो अपेक्षाकृत कम जोखिम भरे थे। जमीदारी, साहूकारी और दलाली जैसे कुछ धन्धो तक ही उसने अपने आपको सीमित कर लिया। बृटिश शासनकाल मे यही स्थिति वैश्य समाज की थी। भारतीय समाज के लिए भी वैश्य वर्ग के पतन का यह काल गुलामी का काल सिद्ध हुआ। वैश्य वर्ग की गिरावट से सारे समाज के छिन्न-भिन्न हो जाने की बात उक्त उदाहरण से अधिक अन्य किसी बात से स्पष्ट नही होती।

हमारी वर्तमान स्थिति

हमारी वर्तमान स्थिति और भी अधिक खराब है। देश के आजाद होने के बाद से ऊपर गिनाये रहे-सहे कार्य भी वैश्य समाज के हाथ से निकलते जा रहे हैं। कानून बनाकर जमीदारी की प्रथा समाप्त कर दी गई। ऋण देने की विविध प्रकार की राजकीय व्यवस्थाये अब तक की जा चुकी है। इनके फलस्वरूप साहूकारी का धन्धा भी लगभग समाप्त हो गया है। दलाली के बहुत से काम समाप्त हो चुके है। जो शेष है, उन पर भी नियन्त्रण लगा रहे है। इस प्रकार वैश्य समाज की स्थिति अब लगभग शोचनीय और दयनीय बन गयी है।

इसमे सन्देह नही कि हमारे समाज का यह चित्र काफी डरावना है। फिर भी इसे ऐसा नही स्वीकार किया जा सकता कि इससे हमारे साहस की समाप्ति होकर पूर्ण निराशा फैल

जाए। वर्तमान स्थिति जो केवल हमे सजग और सावधान करती है। यदि वैश्य वर्ग ने अपनी शिथिलता का परित्याग नही किया तो निश्चय ही उसका विनाश और समाप्ति हो जाएगी। किन्तु इसके विपरीत यदि उसने अपनी चिर-निद्रा से जागकर साहस और उद्यम से भरा अपना पूर्व रूप धारण कर लिया, तो बहुत शीघ्र ही वह सारे ससार पर उसी तरह छा जाएगा जैसे कि ४ हजार या इससे भी अधिक समय पूर्व से लेकर आज से लगभग २ हजार वर्ष पूर्व तक वह सारी पृथ्वी पर छाया हुआ था। आवश्यकता केवल साहस और सूझ-बूझ से काम लेने की है।

यह कोई कोरी कल्पना नही। जिन थोडे से भाइयो ने इन गुणो का परिचय दिया है, वे देश-विदेश मे आशिक रूप मे अपनी कीर्ति-ध्वजा फहराने मे सफल हो चुके है। उनकी छोटी-छोटी सफलताओ से हम भविष्य की महान झाकी का अनुमान आज भी लगा सकते है। अपने भविष्य का पूर्णरूपेण निर्माण हमारे अपने प्रयत्नो पर निर्भर करता है।

उत्तरदायित्व की महानता

हमारे प्रयत्नो की पूर्ण सफलता के लिए तीन बातो की जानकारी हमारे लिए आवश्यक है :—(१) वैश्य वर्ग का प्राचीन गौरव, (२) समाज की रचना मे वैश्य वर्ग का महत्व और (३) वैश्य वर्ग के उत्तरदायित्व की महानता। प्रथम दो बाते जहा हमारे साहस और सूझ-बूझ को उकसाकर हमे आगे बढाने वाली है, वहा वैश्य वर्ग के उत्तरदायित्व की जानकारी हमे सही मार्ग पर अग्रसर होने मे सहायक है। महत्व ज्यो-ज्यो बढता जाता है, उसके साथ ही व्यक्ति का उत्तर-दायित्व भी अधिकाधिक होता चला जाता है। यदि इनका सतुलन बना रहे अर्थात् बढते हुए महत्व के साथ उत्तरदायित्व की भावना की वृद्धि न हो, तो कोई भी व्यक्ति वर्ग अथवा समाज उन्नति नही कर सकता।

आज जबकि वैश्य समाज नई दिशा की खोज मे सलग्न है, जबकि वह अग्रसर होने की बात सोच रहा है, उसमे उत्तरदायित्व की इस भावना का विकास भी आवश्यक है। व्यापार-कार्य सकट और जोखिम से पूर्ण कार्य है। वह अत्यधिक साहस और सूझ-बूझ की माग करता है। कोई भी व्यक्ति सरल मार्ग को अपनाकर इस धन्धे मे लाभ नही कमा सकता। केवल तत्काल लाभ पर दृष्टि रखने से हमारा कार्य व्यापार मे नही चल सकता। सफल व्यापारी भविष्य और दूर भविष्य सभी पर नजर रखता है और उसका आचरण उसके अनुसार होता है। सभी दशा मे वह देश-विदेश मे कीर्ति और सम्पदा का उपार्जन कर सकता है।

ऐसी दशा मे हमारा वर्तमान नारा 'मेड इन इडिया' (भारत मे निर्मित) की साख को इस देश और विदेशो मे पुष्ट करना है। यदि हम इस कार्य मे सफल हो गए, तो शीघ्र ही ससार की मण्डियो मे हमारी तूती बजने लगेगी। इसके फलस्वरूप स्वय हमारा समाज और देश दोनो नव-स्फूर्ति प्राप्त कर अधिकाधिक दृढ होते चले जाएगे।

आइये महावीर जयंती पर राष्ट्र-निर्माण की प्रतिज्ञा करें

वात्सल्य और प्रभावना अंग को फैलायें

यह सर्वविदित है कि जैन धर्म किसी एक व्यक्ति विशेप का नही अपितु उस हर व्यक्ति का है जो अपनी इन्द्रियो पर काबू पाकर सासारिक वासनाओ को जीत सके। उसे जिन (इन्द्रियो को जीतने वाला) या जैन कह सकते है।

जैन धर्म एक सार्वभौमिक धर्म है और मनुष्य मात्र इसको अपना सकता है। यह आवश्यक नही कि वह किस जाति, सम्प्रदाय अथवा समाज से ताल्लुक रखता है, बल्कि जो उसके सिद्धातो मे विश्वास रखता है और उनका पूर्णरुपेण पालन करता है वह जैन है।

आज यह किसी से छिपा नही है कि जैन धर्मानुयाइयो ने समय-समय पर अपनी वीरता व धर्म-परायणता के जो कार्य किए एव देश के निर्माण मे जो अद्वितीय भाग लिया उससे जैन समाज ही का नही वरन् भारत भर का मस्तिष्क ऊँचा हुआ है। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक इसके प्रमाण मिलते हैं। इतिहास इसका साक्षी है।

माना कि जैन धर्म एक अहिंसक और सर्वपालक धर्म है किन्तु कायरता की भावनाओ वाला नही, वीरत्व की भावनाओ से पूर्ण उदार धर्म है। इसके प्रतिपालक और प्रवर्तक प्राय क्षत्री वीर ही हुए है जिन्होने सदैव जैन धर्म के मुख्य सिद्धातो को पाला। उनका दृढ विश्वास था कि किसी को सताना पाप है किन्तु किसी के द्वारा सताया जाना भी पाप है और इसी को कार्यान्वित भी किया। उन्होने सदियो तक भारत पर शासन किया किन्तु उनके शासनकाल मे किसी भी अन्य राष्ट्र और शासक की हिम्मत न हुई कि वह भारत पर आक्रमण कर सके। यही कारण है कि आज भी उनके शानदार कारनामे तथा नाम जिन्दा है।

जीओ और जीने दो का सिद्धात मानव-जाति के लिए अमूल्य और एक नई रोशनी देने वाला है। यही कारण है कि हमारा देश ससार मे इस सिद्धात को पूरा करने मे अग्रणी रहा है। यही सिद्धात आज से बहुत समय पूर्व भगवान महावीर ने अपने सदेश मे दिया और इस सिद्धात को प्रसारित करने के लिए विदेशो मे भी हमारे बडे-बडे पूर्वज गए।

सैकडो वर्षों की दासता के बाद अपना देश स्वतन्त्र हुआ है। इस स्वातन्त्र्य आदोलन मे वही जैन समाज का अहिंसा-सिद्धात एक शस्त्र था जिसे भारत के देशभक्त जैनो ने घर-घर पहुँचाने की भरसक कोशिश की। बापू और देश के अनेक उत्साही देश-सेवको के सद्प्रयत्न से यह अहिंसा-शस्त्र कारगर हुआ। इसी अहिसा के प्रवर्तक और उद्घोपक प्रात स्मरणीय भगवान महावीर का जन्म दिवस इस वर्ष की २८ मई १९५२ को है। इस शुभ अवसर पर, जब कि हम

स्वतन्त्र है, हमारा कर्तव्य क्या हो जाता है ? देखना अब यह है। केवल जलूस या जलसे मात्र से तो हमारे काम की इतिश्री नही हो जाती है अपितु एक जिम्मेदारी और भी वढ जाती है और वह है देश का नव-निर्माण। आइए, आज हम सव बैठकर इस पुनीत अवसर पर, जबकि भगवान महावीर स्वामी के जीवन-चरित्र से हमे एक नई रोशनी व प्रेरणा मिल रही है, प्रतिज्ञा करे कि हम देश का मान-स्तर ससार मे सर्वाधिक ऊचा करेगे ताकि अहिसा की वह ध्वजा ससार मे सर्वोन्नत होकर गर्व से लहराया करे।

भगवान् महावीर और अहिसा

भगवान महावीर की अहिसा का पाठ आज विश्व मे फैला हुआ है और इससे भी इकार नही किया जा सकता कि भारतीय स्वातत्र्य सग्राम मे इसी अहिसा-शस्त्र की तीक्ष्ण धार के सम्मुख बृटिश साम्राज्य भी नही ठहर सका।

भगवान महावीर इसके प्रवर्तक थे। उनकी वाणी, मन और कर्म मे अहिसा की भावना व्याप्त थी जिसने ससार को एक कर्मशीलता और विश्वबन्धुत्व की प्रेरणा दी। नि सन्देह जैन समाज उसी का अनुयायी है। हम चाहते हैं जैन समाज उनके पदचिह्नो पर चलकर मानवता की भावनाओ और उनके सन्देशो का प्रतिपादन करे। अधिक विवाद मे न पड कर इतना ही कहना काफी होगा।

आज जैन समाज और अहिसा के अनुयायी तीर्थंकर भगवान महावीर का जन्म दिवस मना रहा है। यह वडी प्रसन्नता की बात है। उनके सन्देश की रोशनी मे देश की उन्नति हो, यह हमारी कामना है।

महावीर जयन्ती पर मरकारी छुट्टी न होने से कुछ विवाद-सा छिड गया है और जैन समाज ने इसके लिए भारत सरकार से माग की है। सरकार यदि सम्भव समझती है तो अवश्य ही इस ओर कदम उठाया जाना चाहिए।

महावीर क्या थे

भगवान महावीर के विषय मे कुछ प्रमुख विद्वानो के कथन इस प्रकार है :—

"भगवान महावीर अहिसा के अवतार थे। उनकी पवित्रता ने ससार को जीत लिया था।······ महावीर स्वामी का नाम यदि इस समय किसी भी सिद्धात के लिए पूजा जाता है तो वह अहिसा है। · ''प्रत्येक धर्म की उच्चता इसी बात मे है कि उस धर्म मे अहिसा तत्व की प्रधानता हो। अहिसा तत्व को यदि किसी ने अधिक से अधिक विकसित किया है तो वे महावीर स्वामी थे।"

—महात्मा गान्धी

"वे महावीर अर्थात् महान विजयी इतिहास के सच्चे महापुरुष है। उद्धतता और हिंसा के नही किन्तु प्रेम और निराभिमानता के महावीर थे।"

—टी० एल० वास्वानी

"प्राचीन भारत के निर्माता पुरुषो मे श्री महावीर स्वामी एक थे।"

—श्री विजयराघवानन

"महावीर की शिक्षाये ऐसी प्रतीत होती है मानो वे आत्मा की विजय ज्ञार्य हो। जिसने अन्तत इसी लोक मे स्वाधीनता और जीवन पा लिया हो। हजारो आदमी उनकी ओर टकटकी लगाये है। उनको वैसी पवित्रता और शाति की चाह है।"

—डा० अल्बेर्टो पाग्गी, जिनोवा (इटली)

"ससार सागर मे डूबते हुए मानवो ने अपने उद्धार के लिए पुकारा। इसका उत्तर महावीर ने जीव को उद्धार का मार्ग बतलाकर दिया। दुनिया मे ऐक्य और शाति चाहने वालो का ध्यान श्री महावीर का उदात्त शिक्षा की ओर आकर्षित हुए विना नही रह सकता।"

—डा० वाल्टर शूब्रिग

"महावीर ने भारत मे निर्वाण के इस सन्देश का घोष किया कि धर्म रिवाजमात्र नही बल्कि यथार्थता है। निर्वाण पद की प्राप्ति सम्प्रदाय के बाह्य सस्कारो के कर लेने से ही नही हो जाती बल्कि सच्चे धर्म का आश्रय लेने से ही होती है धर्म मनुष्यो के मध्य कोई भेदभाव नही उत्पन्न करता। कहने की आवश्यकता नही कि इस उपदेश ने जाति-भेद को दबा दिया और समस्त देश को जीत लिया।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

卐 卐 卐

जैन दर्शन बहुत ही ऊची पक्ति का है। इसके मुख्य तत्त्व विज्ञान शास्त्र के आधार पर रचे हुए है। ऐसा मेरा अनुमान ही नही, पूर्ण अनुभव है। ज्यो-ज्यो पदार्थ विज्ञान आगे बढता जाता है, जैन धर्म के सिद्धातो को सिद्ध करता है और मै जैनियो को इस अनुकूलता का लाभ उठाने का अनुरोध करता हूँ।

अहिंसा सभ्यता का सर्वोपरि और सर्वोत्कृष्ट दरजा है। यह निर्विवाद सिद्ध है और जबकि यह सर्वोपरि और सर्वोत्कृष्ट दरजा जैनधर्म का मूल है तो इसकी ओर सर्वाङ्ग सुन्दरता के साथ यह कितना पवित्र होगा, यह आप खुद ही समझ सकते है। जैनी लोग अहिंसा देवी के पूर्ण उपासक होते है और उनके आचार बहुत शुद्ध और प्रशसनीय होते है, उनके व्रत और सप्त व्यसन वगैरह बातो के जानने से मुझे बहुत खुशी हुई और उनके चरित्र की तरफ मेरे दिल मे बहुत आदर उत्पन्न हुआ। जैन मुनियो के आचार देखने से मुझे वे अति कठिन जान पडते है लेकिन वे ऐसे तो पवित्र है कि हर एक के अन्त करण मे बहुत भक्तिभाव और आदर उत्पन्न करते है। ऐसे चरित्र से सर्व साधारण पर प्रभाव पडता है।

—डा० एल० पी० टेसीटोरी इटालियन

—धर्म देशणा से

जैन समाज के संगठन का रूप कैसा हो

एक मंच और प्रचार की आवश्यकता

सन् १८५७ के गदर के बाद कुछ वर्षों तक भारतवर्ष के हालत बहुत बिगड़े रहे। सारे देश में आतंक छाया रहा और जनता भयभीत रही, जिसके कारण सब कामों में शिथिलता आ गई। धीरे-धीरे विदेशी शासकों के पाव पूरी तरह भारतवर्ष में जम गए तब जनता को भी कुछ चैन मिला। विदेशी शासकों को भारतवर्ष में राज्य के कार्यों को चलाने के लिए क्लर्कों की जरूरत पड़ी। उन्होंने अपने ढंग की शिक्षा सिखाने के लिए स्कूल और कालेज खोले। विदेशियों की शिक्षा आचार-विचार, रहन-सहन और खान-पान में और भारत की शिक्षा, सभ्यता, आचार-विचार, रहन-सहन, और खान-पान में बहुत अन्तर था।

कुछ ही दिनों बाद जनता ने अनुमान किया कि हमारे बच्चों में नैतिकता और धार्मिक संस्कारों की कमी होती जा रही है, जिसके बिना मनुष्य का जीवन सार्थक नहीं। यदि इस ओर ध्यान न दिया तो हमारा पतन हो जाएगा। तमाम देश में एक ऐसी लहर दौड़ी कि भारतवर्ष की सब जातियों, समाजों और वर्गों ने नैतिक और धार्मिक संस्कार बच्चों में पैदा करने के लिए अपना-अपना संगठन बनाकर उनमें नैतिकता और धर्म-शिक्षा का प्रचार करने के लिए विचार किया।

जैन समाज में भी जागृति की लहर दौड़ी। सन् १८७५-७६ के लगभग जैन समाज के कुछ विवेकशील उत्साही और धर्म-प्रेमी नवयुवक विद्वानों का एक दल मैदान में आया जिनके हृदयों में समाज-संगठन और धर्म-प्रचार की उत्कट भावना और तड़प थी। उन्होंने समाज संगठन और धर्म-प्रचार का दृढ़ निश्चय किया जिनमें पं० गोपालदास जी बरैया—पं० चुन्नीलालजी—पं० मुकंदीराम जी मुरादाबाद, पं० छेदालाल जी अलीगढ़—पं० प्यारेलाल जी अलीगढ़ और पं० पन्ना लाल जी कासलीवाल के नाम विशेषकर उल्लेखनीय हैं। यह सब विद्वान अपनी-अपनी दिशाओं अपने-अपने ढंग से समाज-संगठन और धर्म-प्रचार का काम करने लगे। पं० छेदालाल जी और पं० प्यारेलालजी ने पाठशाला की स्थापना की और बहुत से विद्वान तैयार किए। अन्य विद्वान देश के चारों कोनों में निकल पड़े, स्थान-स्थान पर घूमकर लोगों को इकट्ठा करना, सभायें बुलाना, भाषण व उपदेश देना और स्थानीय सभायें कायम करना मुख्य कार्य था। सैकड़ों स्थानों में सभायें बन गईं। सभायें बनने के बाद लोगों के दिलों में भावना पैदा होना स्वाभाविक था कि समाज को संगठित किया जाय जिससे कि तमाम भारतवर्ष के दिगम्बर जैन समाज को एक सूत्र में पिरोया जा सके और उसके द्वारा धर्म और समाज की उन्नति के उपाय सोचे जायें और ठोस कार्य किया। इन महानुभावों ने बड़े उत्साह और लगन के साथ काम किया जाय। बीच में बहुत-सी अड़चनें आईं पर हिम्मत नहीं हारी और अपना ध्येय पूरा करने में जुटे रहे।

पूरे बीस साल के अथक परिश्रम के बाद इनका मनोरथ सफल हुआ। श्री जम्बू स्वामी की निर्वाण भूमि चौरासी (मथुरा) मे कार्तिक के मेले के अवसर पर सगठन कार्य को मूर्त रूप देने के लिए उपयुक्त समय समझा गया और सन् १८६५ मेले के मौके पर दिगम्बर जैन सभा की नीव डाली गई।

इसका पहला अधिवेशन १८६६ मे माननीय राजा सेठ लक्ष्मणदास जी के सभापतित्व मे मथुरा मे बहुत शान के साथ हुआ। अधिवेशन मे जैन गजट को भी निकालने का निश्चय किया गया जिसका सम्पादक बाबू सूरजभान जी वकील सहारनपुर को नियुक्त किया गया। महासभा के अधिवेशन का आयोजन भारत के विभिन्न स्थानो मे किया गया। हर स्थान मे महासभा के अधिवेशनो को अभूतपूर्व सफलता मिली। दि० जैन महासभा का कार्य बहुत व्यापक होता जा रहा था जिसका श्रेय राजा सेठ लक्ष्मणदास जी मथुरा, डिप्टी चम्पतराय जी कानपुर, सर सेठ हुकमचन्दजी इन्दौर, बाबू निर्मलकुमारजी आरा, बैरिस्टर चम्पतरायजी, दानवीर साहू सलेखचन्दजी नजीबाबाद, तीर्थभक्त लाला देवीसहायजी फिरोजपुर, सेठ टीकमचन्दजी सोनी (अजमेर) और ला० जम्बूप्रसादजी रईस सहारनपुर को है।

सन् १६२०-२२ तक तो अ० भ० दि० जै० महासभा का कार्य बहुत ठीक चलता रहा, सब कार्यकर्त्ता लगन और प्रेमपूर्वक उत्साह के साथ महासभा का कार्य करते रहे ; बाद मे प्रतिक्रियावादी (रूढिवादी) और सुधारक विचारधारा रखने वाले सुधारको का मुद्रित जिन शास्त्रो के प्रचार, नवयुवको को शिक्षा प्राप्त करने के लिए विदेशो मे शिक्षा के लिए जाने देना, दस्सा बिनेकवारो का जिन मन्दिरो मे पूजा का समान अधिकार देने और समाज मे जैनो की विभिन्न जातियो मे अन्तर्जातीय विवाह करने के विषयो को लेकर सुधारक और रूढिवादियों के दो दल हो गए जिसके फलस्वरूप १६२३ मे दिल्ली की बिम्ब प्रतिष्ठा के समय कुछ उत्साही सुधारक कार्यकर्त्ताओ ने भारतवर्षीय दि० जै० परिषद की स्थापना कर दी, जिसके मुख्य सस्थापको मे बैरिस्टर चपतरायजी, ब्रह्मचारी शीतलप्रसाद जी, बाबू अजीतप्रसाद जी लखनऊ, बाबू रतनलाल जी बिजनौर और साहू जुगमन्दरदास जी नजीबाबाद के नाम उल्लेखनीय है।

अ० भा० दि० जै० परिषद के उत्साही कार्यकर्त्ताओ ने बहुत सकटो का सामना करके बड़े-बड़े कार्य धर्म और समाज की उन्नति के लिए किए। आज मुद्रित जैन शास्त्र प्रायः सभी मन्दिरो मे दिखाई पड़ते है। विदेश यात्रा पर किसी को कोई आपत्ति नही, दस्सा और बिनेकवार भाइयो के लिए जैन मन्दिरो मे पूजा करने की कोई रोक-टोक नही है। जैनो के आपस मे अन्तर्जातीय विवाहो की कोई रुकावट नही।

मेरा यह सुझाव है कि तमाम भारतवर्ष के दि० जैन समाज का एक प्लेटफार्म हो, आवाज और प्रतिनिधित्व करने के लिए एक सयुक्त दि० जैन समिति बनाई जानी चाहिए जो कि तमाम समाज का नेतृत्व करे। इस समिति मे सभी अ० भा० दि० जैन सस्थाओ के दो-दो चार-चार प्रतिनिधि उन संस्थाओ की कार्यकारिणी द्वारा चुन कर भेजे हुओं को सयुक्त समिति का सदस्य बनाया जाए।

देश की रक्षा और एकता के लिए जबकि भारतवर्ष के सभी सम्प्रदाय, जातियाँ और राजनैतिक दल एक प्लेटफार्म पर एकत्रित हो सकते है तो कोई कारण नही कि एक धर्म के मानने वाले दि० जैन भाई अपने धर्म और समाज की उन्नति और रक्षा के लिए क्यो नही एक प्लेटफार्म पर एकत्रित हो सकते ?

मुझे आशा है कि दि० जैन समाज के अग्रगण्य महानुभाव यदि इस ओर ध्यान देंगे तो अवश्य सफलता मिलेगी। श्रावकशिरोमणि साहू शातिप्रसादजी जैन—सर सेठ भागचन्दजी सोनी—जैनरत्न भैया साहब राजकुमार सिह जी जो पहले से ही प्रयत्न कर रहे है उनसे मेरा नम्र निवेदन है कि वह अपने प्रयत्नो को चालू रखे। और एकता की योजना में उलट-फेर करके कोई न कोई नया रास्ता जरूर निकाले। इस समय समाज की परिस्थिति बड़ी गम्भीर तथा शोचनीय है, आप सब इसका सरक्षण करे।

भगवान् महावीर और उनके संदेश

ईसा पूर्व पाचवी-छठी शताब्दी में विदेह देश की राजधानी वैशाली (बसाढ के निकट) गडक नदी के तट पर क्षत्रिय कुण्डग्राम और ब्राह्मण कुण्डग्राम दो सुन्दर नगर स्थित थे। इन्ही दो नगरो मे से प्रथम नगर क्षत्रिय कुण्डग्राम मे ईसा से ५९९ वर्ष पूर्व, यहा के गणराजा सिद्धार्थ के घर चैत्र शुक्ला त्रयोदशी के दिन भगवान महावीर का जन्म हुआ था।

वैशाली का गणराज्य बहुत शक्तिशाली था। यहा गणसत्तात्मक राज्य की व्यवस्था प्रत्येक गण के चुने हुए नायको के सुपुर्द थी। यह 'गण राज्य' कहे जाते थे। राजा तो नाम मात्र का होता था और वह राज्य का शासन सदैव गणनायको की सम्मति से ही करता था। उस समय चेटक वैशाली का बलशाली शासक था। वह ९ गण राज्यो का अधिनायक था। इन्ही चेटक की बहिन त्रिशला का विवाह कुण्डग्राम के गणराजा सिद्धार्थ से हुआ था।

जन्म-समारोह

अपने घर पुत्र जन्म का समाचार पाकर सिद्धार्थ की खुशी का ठिकाना न रहा। पुत्रोत्पत्ति के हर्ष मे क्षत्रिय कुण्डग्राम मे दस दिन तक अपूर्व समारोह मनाया गया। कर माफ कर दिया गया, श्रमण सतो को दान-मान से सम्मानित किया गया, आनन्द और उत्साह की सीमा न

रही। सिद्धार्थ ने सबके समक्ष कहा, "भाइयो ! इस बालक के जन्म से हमारे कुल में धन-धान्य, सेना, घोड़े आदि की वृद्धि हुई है अतएव बालक का नाम 'वर्द्धमान' रखना ठीक होगा।"

वर्द्धमान बचपन ही से बड़े वीर, धीर, गम्भीर और निर्भीक प्रकृति के थे। उनके बचपन की एक रोचक घटना है—एक बार वर्द्धमान अपने साथियों के साथ उद्यान मे क्रीड़ा कर रहे थे। इतने ही मे उनके साथियों ने देखा कि वृक्ष की जड़ में लिपटा हुआ एक सर्प फुंकार मार रहा है। यह देख वर्द्धमान के साथी घबड़ा गये। सबको अपने प्राणों की पड़ गई। परन्तु वीर वर्द्धमान न डरे। वह अचल भाव से खड़े रहे और खेल ही खेल में उस सांप को अपने हाथ में पकड़ लिया। इसी प्रकार एक बार वर्द्धमान राजमहल मे बैठे हुए थे। नगर में अचानक कोलाहल मचने की आवाज कानों में पड़ी। पूछने पर विदित हुआ कि राजा का हाथी मतवाला होकर बन्धन-मुक्त हो गया है और लोगों को दुःख दे रहा है। इतना सुनते ही वर्द्धमान तुरन्त घटनास्थल पर जा पहुँचे और हाथी को पकड़ कर महावत के हवाले कर दिया। इसी प्रकार के अन्य संकटो के समय अपनी दृढ़ता और निर्भयता प्रदर्शित करने के कारण वर्द्धमान 'महावीर' कहे जाने लगे।

हृदय द्रवित हो गया

वेद काल से चली आनेवाली विचार-धाराओं का मन्थन महावीर ने गम्भीरतापूर्वक किया था। उनके जीवन पर इन विचारधाराओं का गहरा प्रभाव पड़ा था। मानव उस समय मायावी, वासनासक्त और वक्र हो गया था। हिंसा और वासना से अन्धा बना हुआ था। धर्म के नाम पर यज्ञ आदि मे मूक पशुओं की बलि दी जाती थी।

भगवान महावीर ने देखा कि चारो ओर अज्ञान फैला है। निज स्वार्थ से लोग दूसरे जीवो की हिंसा कर रहे हैं। सब जगह दुख ही दुख फैला हुआ है। यह देख कर महावीर का कोमल हृदय द्रवित हो गया। उन्होंने जग का कल्याण करने, उसमे सुख, शांति और समता भाव पैदा करने तथा सर्वप्रथम आत्मबल प्राप्त करने की दृढ़ प्रतिज्ञा की।

महावीर ने वस्त्रादि, आभूषणो, स्वादिष्ट भोजन, मित्र, बन्धु, धन आदि को सदा के लिये तिलांजलि देकर गृह त्याग दिया और ज्ञातृषंड उद्यान में जाकर पंचमुष्टि से केशों का लौंच कर ३० वर्ष की आयु मे नग्न दिगम्बर मुनि हो गये। लगभग १२ वर्ष तक उन्होंने घोर तपश्चर्या की। इस काल मे उन्हे भयंकर से भयंकर कष्टों का सामना करना पड़ा परन्तु, एक वीर योद्धा की भांति वे अपने कर्त्तव्य-पथ से कभी विचलित न हुए।

तपस्वी जीवन मे महावीर ने दूर-दूर तक भ्रमण किया और अनेक कष्ट सहे। वे विहार मे राजगृह (राजगिरि), चम्पा (भागलपुर), भद्दिया (मुंगेर), वैशाली (बसाढ़) मिथिला (जनकपुर) आदि प्रदेशो मे घूमे। पूर्वी उत्तरप्रदेश के बनारस कौशाम्बी (कोसम) अयोध्या, श्रावस्ती आदि स्थानों में गये तथा पश्चिमी बंगाल के लाढ (राढ) आदि प्रदेशों मे उन्होंने भ्रमण किया।

इस प्रकार १२ वर्ष की घोर साधना के बाद महावीर को जभियग्राम के बाहर ऋजु-वालिका नदी के तट पर स्थित एक खेत मे शाल वृक्ष के नीचे ध्यानमग्न अवस्था मे बोध प्राप्त हुआ। महातपस्वी की कठोर तपस्या सफल हुई।

अहिंसा का उपदेश

तदुपरान्त महावीर ने जनता मे सत्य, अहिंसा प्राणीमात्र के प्रति प्रेम तथा अपरिग्रह का उपदेश देना प्रारम्भ कर दिया। सर्वत्र महावीर के लोकोत्तर उपदेशो की चर्चा होने लगी। लोग दूर-दूर से उनका उपदेश सुनने आते। बहुतो ने उनके धर्म मे दीक्षा ली। इनमे मगध, कोशल, विदेह आदि देशो के ११ कुलीन ब्राह्मण मुख्य थे। महावीर का प्रथम उपदेश था अहिंसा। उन्होंने कहा—"सब जीना चाहते हैं, सबको अपना जीवन प्रिय है, सब सुखी बनना चाहते हैं, अतएव किसी प्राणी को कष्ट पहुँचाना ठीक नही।"

महावीर अहिंसा-पालन मे बहुत आगे बढ़ जाते हैं और वे समस्त प्रकृति मे जीव का आरोपण कर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति तक की रक्षा का उपदेश देते हैं। इस प्रकार उनकी अहिंसक वृत्ति और विश्व-कल्याण की भावना चरम सीमा पर पहुँच जाती है महावीर ने जिस सर्वमुखी अहिंसा का उपदेश दिया था वह अहिंसा केवल व्यक्तिपरक न थी बल्कि जगत के कल्याण के लिये उसका सामूहिक रूप से उपयोग हो सकता था।

भगवार महावीर का कहना था कि जो अधिकार पुरुष प्राप्त कर सकते हैं वही अधिकार स्त्रियो के लिये भी है। पुरुषो की भाति स्त्रिया श्राविका हो सकतीं हैं तथा श्रावको की भाति व्रत पाल सकती हैं। यदि पुरुष मुनि हो सकता है तो स्त्रिया भी आर्यिका हो सकती है यदि पुरुष तद्भव मोक्ष प्राप्त कर सकता है तो स्त्रिया भी परम्परागत मोक्ष प्राप्त कर सकती हैं। भगवान महावीर के समवशरण (सभा) मे जहा एक लाख श्रावक थे वहा तीन लाख १८ हजार श्राविकायें थी। उनके भिक्षुणी सघ मे चन्दनबाला, राजमती तथा रानी चेलना के नाम उल्लेखनीय हैं। चन्दनबाला महावीर की प्रथम स्त्री शिष्या तथा सघ की अधिष्ठात्री थी। अपने सघ मे स्त्रियो को प्रमुख स्थान देकर महावीर ने स्त्री जाति के महत्व को स्वीकार किया था।

महावीर का धर्म

महावीर का सीधा-सादा उपदेश था कि आत्मदमन करो, अपने आपको पहिचानो और स्व-पर-कल्याण के लिये तप और त्यागमय जीवन बिताओ। किसी जीव को न सताओ, झूठ न बोलो, जो एक बार कह दो उसे पूरा करो। आवश्यकता से अधिक वस्तु पर अपना अधिकार मत रखो, पर स्त्री को मा, बहिन और पुत्री के समान समझो तथा सम्पत्ति का यथायोग्य बँटवारा होने के लिये धन को बटोर कर मत रखो।

इस प्रकार हम देखते हैं कि महावीर ने आत्म-विकास, आत्म-अनुशासन और आत्म-विजय पर ही जोर दिया है।

× × × ×

जैन समाज के सामने एक समस्या

संगठन की आवश्यकता

इतिहास बताता है कि जैन समाज का भूतकाल अति उज्ज्वल और शानदार रहा है। "अहिंसा प्रेमी, सेवाभावी, दयालु और परोपकारी होने के कारण छोटे-से-छोटे गांव मे और बडे से बडे शहर में जैन धर्म के अनुयायी बहुत लोकप्रिय रहे है। जन-साधारण की दिल्ली मे सदा जैन समाज और जैन धर्म के प्रति अगाध श्रद्धा और प्रेम रहा है।

त्यागियो और मुनियो के लिए बहुत सन्मान रहा है। जिस भी स्थान मे वे पधारते थे वहाँ की जनता उनका भव्य स्वागत करती थी, उनके प्रवचनो मे आकर रस लेती थी। बडी रुचि से सुनती थी। शासको की दिल्ली मे भी जैन समाज और जैन धर्म के प्रति बहुत श्रद्धा थी।

सच्चाई, ईमानदारी और लोकप्रिय होने के कारण जैन भाइयो को सरकारी दरबार मे अच्छे और ऊचे पदो पर नियुक्त किया जाता था। शाही खजानो का कार्य भार तो प्राय.कर जैनो के हाथो मे रहा है। राजस्थान मे चिरकाल तक मन्त्री पदो और विश्वस्त स्थानो पर जैन भाई आरूढ रहे हैं। जैनी बडे-बडे सेनापति हुए हैं, दानवीर हुए हैं। धनकुवेर सेठ भामाशाह जिसने कि महाराणा प्रताप का आडे समय मे साथ दिया था और अपने धन के कोठे उनकी मदद के लिए खोल दिए थे जिससे महाराणा प्रताप ने मुगलो से बारह साल तक युद्ध लड़ा। दानवीर महाप्रतापी भामाशाह जैन ही तो थे। राजस्थान की चप्पा-चप्पा जमीन पर जैन वीरो की बहादुरी, दानवीरता, देशसेवा, स्वामिभक्ति और धर्मपरायणता की छाप अंकित है। जैन धर्म के शास्त्रो के बड़े-बडे भडार राजस्थान मे हैं। राजस्थान मे गगनचुम्बी विशाल मदिर भी बहुत हैं। ससार विख्यात आबू मे दिलवाडा का जैन मन्दिर राजस्थान मे ही है। राजस्थान की ही बात क्या देहली और अन्य स्थानो मे भी हमारे पूर्वजो ने बहुत बडे-बडे कार्य किए हैं जो सदा अमर रहेंगे और जैन समाज उन पर जितना गौरव करे थोडा है। यदि उन सब का वर्णन करे तो एक पोथा बन जाएगा।

कितना आनन्द का समय था जबकि भारतवर्ष के जैन समाज मे संगठन था, बिरादरी मे एकता थी, आचार-विचार और खान-पान शुद्ध था, धर्म मे रुचि थी, पचायतो का मानता थी, बिरादरी के बडे-बूढो का अदब-लिहाज था। किसी को मजाल नही थी कि बिरादरी के फैसले मे जरा इधर-उधर करे। भारतवर्ष मे देहली मुख्य स्थान माना जाता था। तमाम भारतवर्ष के जैन भाई देहली की जैन पचायत और बिरादरी की ओर निहारते थे और उन पर भरोसा करते थे। जो फैसले दिल्ली की पचायतें या बिरादरी करती थी सारा जैन समाज उन सुझावो का पूरा-पूरा लाभ उठाता था। तमाम भारतवर्ष मे जैन भाइयो का आपस मे बहुत प्रेम था। कोई भी जैन भाई किसी स्थान से आता था तो वहाँ के भाई उसको देखकर बहुत प्रसन्न होते थे। उनके ठहरने और भोजन की व्यवस्था करते थे। किसी तरह उन्हें कष्ट नही होने देते थे। जैन बिरादरी का अन्य धर्मावलम्बियो—समाजो—बिरादरियो और जातियो से बडा मेल-जोल था और उन पर बडा प्रभाव था। सब एक-दूसरे के दु.ख-सुख मे काम आते थे। तीज-त्योहारो, मेले-

ठेलो और धार्मिक उत्सवो को सब मिलकर मनाते थे और सम्मिलित होकर पूर्णरूप से भाग लेते थे और उसे सफल बनाते थे। जनता मे जैन समाज की वडी धाक थी। शासको को दिल्ली मे जैन धर्म के प्रति वहुत श्रद्धा थी और समाज के लिए सन्मान था।

आज समाज की दुर्दशा देखकर रोना आता है। तमाम भारतवर्ष मे समाज का नक्शा वदल गया है। स्थिति चिन्ताजनक और शोचनीय है। आपस मे वह प्रेम नही—समाज मे सगठन नही—विरादरी मे एकता नही—वडे वूढो का अदव-लिहाज नही। आचार-विचार ठीक नही। धर्म मे रुचि नही खान-पान मे शिथिलता आ गई है। कहाँ तक वताए, समाज का सारा ढाचा विगड गया है। हमारे सगठन न होने के कारण हमारे गुरुओ और देवस्थानो पर प्रहार हो रहे है। हमारी कला और सस्कृति को लोग नष्ट करने से भी नही चूकते। राज्य मे भी हमारी कोई सुनाई नही और वह प्रभाव नही। समाज का यह हाल है कि हर एक अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग अलाप रहे हैं।

❁ ❁ ❁

महावीर जयंती और हमारा कर्त्तव्य

यह सर्वविदित है कि जैन धर्म का सम्वन्ध किसी एक व्यक्ति विशेष से नही, अपितु, हर उस व्यक्ति से है, जो अपनी इद्रियो पर कावू पाकर सासारिक वासनाओ को जीत सके। इद्रियो के जीतने वाले को जिन या जैन कहते हैं।

जैन धर्म एक सार्वभौमिक धर्म है, और मनुष्यमात्र इसको अपना सकता है। यह आवश्यक नही कि वह किस जाति, सम्प्रदाय अथवा समाज से सम्वन्ध रखता है, वल्कि जो व्यक्ति जैन धर्म के सिद्धान्त मे विश्वास रखता है और उनका पूर्णरूपेण पालन करता है वह जैन है।

ऐतिहासिक प्रमाण

जैन धर्मानुयायियो ने समय समय पर अपनी वीरता और धर्मपरायणता के जो कार्य किये एव देश के निर्माण मे जो अद्वितीय भाग लिया उससे जैन समाज का ही नही वरन् भारत भर का मस्तक ऊचा हुआ है। भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक इसके प्रमाण मिलते हैं।

इतिहास इसका साक्षी है। उन्होने मद्रास, विहार और राजस्थान आदि मे जिस वीरता के साथ अनुशासन प्रदर्शित किया वह अपनी एक निराली और शानदार छाप छोड गया है, जो हमारे लिये गर्व की वस्तु है। किन्तु सबसे अधिक गौरवशाली गाथा, जो हमे इतिहास के पृष्ठो मे मिलती है, वह है सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य की धर्मपरायणता और उसके शौर्य की जिसने सैल्यूकस को पछाडा ही नही, वरन् सदैव के लिये भारत पर हमला करने की भावना से उसका मुह मोड दिया।

कायरताशून्य अहिंसा

जैन धर्म एक अहिंसक और सर्वपालक धर्म होते हुए भी कायरता की भावनाओ वाला नही है। इसके विपरीत वह वीरत्व की भावनाओ से पूर्ण उदार धर्म है। इसके प्रतिपालक और प्रवर्तक प्राय क्षत्रिय वीर ही हुए है जिन्होने सदैव जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्तो को पाला। जहाँ उनका यह दृढ विश्वास था कि किसी को सताना पाप है वहाँ वे यह भी मानते थे कि किसी के द्वारा सताया जाना भी पाप है। इसी सिद्धान्त को उन्होने कार्यान्वित भी किया। उन्होने सदियो तक भारत पर शासन किया, किन्तु उनके शासनकाल मे किसी भी अन्य राष्ट्र और शासक की हिम्मत न हुई कि वह भारत पर आक्रमण कर सके। यही कारण है कि आज भी उनके शानदार कारनामे और नाम जिन्दा है।

जीओ और जीने दो

"जीओ और जीने दो" का सिद्धान्त मानव जाति के लिये अमूल्य और एक नई रोशनी देने वाला है। यही कारण है कि हमारा भारत ससार मे इस सिद्धान्त को पूरा करने मे अग्रणी रहा है। यही सिद्धान्त आज से बहुत समय पूर्व भगवान महावीर ने अपने सदेश मे दिया और इसी सिद्धान्त को प्रसारित करने के लिये विदेशो मे भी हमारे बडे-बडे पूर्वज गये जिसका प्रभाव और स्मृति आज भी विदेशो मे शेष है जिसका प्रमाण इतिहास के पृष्ठो मे दृष्टिगोचर है।

वापू और अहिंसा

सैकडो वर्षों की दासता के बाद हमारा देश स्वतन्त्र हुआ है। इस स्वातन्त्र्य आन्दोलन मे जैन समाज का वही अहिंसा-सिद्धान्त एक शस्त्र है जिसे भारत के देश-भक्तजनो ने घर-घर पहुचाने की भरसक कोशिश की। वापू और देश के अनेक उत्साही देश-सेवको के सतत प्रयत्न से यह अहिंसा-शस्त्र कारगर हुआ।

हम प्रतिज्ञा करें

इसी अहिंसा के प्रवर्तक और उद्घोषक प्रात स्मरणीय भगवान महावीर का जन्म दिवस हम आज २८ मार्च, १९५३ को मना रहे है। देखना अब यह है कि इस शुभ अवसर पर, जब कि हम स्वतन्त्र हैं, हमारा कर्तव्य क्या हो जाता है ? केवल जलूस या जलसे मात्र से तो हमारे काम की इतिश्री नही हो जाती है, अपितु एक जिम्मेदारी और भी बढ जाती है, और

वह है देश के नव-निर्माण की। आइये आज हम सब बैठ कर इस पुनीत अवसर पर, जब कि भगवान महावीर स्वामी के जीवन-चरित्र से हमे एक नई रोशनी और प्रेरणा मिल रही है, प्रतिज्ञा करे कि हम देश का मान-स्तर ससार मे सर्वाधिक ऊचा करेंगे, ताकि अहिंसा की वह ध्वजा ससार मे सर्वोन्नत होकर गर्व से लहराये।

आज देश एक भयकर दौर मे से गुजर रहा है। देश को उत्साही, कर्मशील और ईमानदार व्यक्तियों की आवश्यकता है। यह कार्य हम कहा तक पूरा कर सकते हैं ? यह हमे सोचना होगा। हमने अब तक हर कार्य मे प्रमुख भाग लिया है और हर आपत्ति का डट कर मुकाबला किया है। विशेषकर ऐसी हालत मे जब कि दहकती आग मे कूदने के लिये कोई तैयार नही होता था। किन्तु आज तो हमारा और भी अधिक कर्तव्य हो जाता है। इसी बात ने हमे आज तक जिन्दा रखा है। यह हमारे लिये एक मूल मन्त्र है।

जैन भाइयो से अपील

अन्त मे मैं अपने भाइयो से एक अपील करूगा कि केवल जैन परिवार मे उत्पन्न हो जाने से ही हम जैन नही हो जाते। हमे चाहिये कि हम जैनत्व के मुख्य चिन्ह, उसके आदर्शो और सिद्धान्तो का पालन न करे, तो मैं यह हरगिज मानने के लिये तैयार नही। मनुष्य उसके नाम व रग से नही पहचाना जाता, बल्कि वह उसके आचरणो और कर्तव्यो से पहचाना जाता है।

मैं प्रार्थना करूगा कि जो भाई अब तक अपने को इस ओर उदासीन समझते हैं, आगे आयें और इस पावन दिवस पर प्रतिज्ञा करे कि अपने खाली समय मे कुछ न कुछ समय जरूर भगवान महावीर के सदेश को कार्यान्वित करने के लिये देंगे—जय जिनेन्द्र।

महावीर जयन्ती पर देश के नवनिर्माण के लिये प्रतिज्ञा करें

यह सर्वविदित है कि जैन धर्म किसी एक व्यक्ति विशेष का नही अपितु उस हर व्यक्ति का है जो अपनी इन्द्रियों पर काबू पाकर सासारिक वासनाओ को जीत सके। उसे "जिन" (इन्द्रियों को जीतने वाला) या जैन कह सकते हैं।

जैन धर्म एक सार्वजनिक धर्म है और मनुष्य मात्र इसको अपना सकता है। यह आवश्यक नही कि वह किस जाति, सम्प्रदाय अथवा समाज से ताल्लुक रखता है, बल्कि जो उसके सिद्धातो मे विश्वास रखता है और उनका पूर्णरूपेण पालन करता है वह जैन है।

'जीओ और जीने दो' का सिद्धात मानव-जाति के लिये अमूल्य और एक नई रोशनी देने वाला है। यही कारण है हमारा भारत ससार मे इस सिद्धात को पूरा करने मे अग्रणी रहा है। यही सिद्धात आज से बहुत समय पूर्व भगवान महावीर ने अपने सदेश मे दिया और इस

सिद्धात को प्रसारित करने के लिए विदेशो मे भी हमारे वड़े-वडे पूर्वज गये, जिसका प्रमाण इतिहास के पृष्ठ और पद-चिन्ह वताते है।

सैंकडो वर्षों की दासता के वाद देश स्वतन्त्र हुआ है। इस स्वातत्र्य आदोलन मे वही जैन समाज का अहिंसा-सिद्धात एक शस्त्र था, जिसे भारत के देशभक्त जैनो ने घर-घर पहुचाने की भरसक कोशिश की। इसी अहिंसा के प्रवर्तक और उद्घोपक प्रात स्मरणीय भगवान महावीर इस शुभ अवसर पर, जवकि हम स्वतन्त्र है, केवल जलूस मात्र से हमारे काम की इतिश्री नही हो जाती है। अपितु एक जिम्मेदारी और भी वढ जाती है, और वह है देश का नव-निर्माण। आइये आज हम सब वैठ कर इस पुनीत अवसर पर, जव कि भगवान महावीर स्वामी के जीवन-चरित्र से हमे एक नई रोशनी और प्रेरणा मिल रही है, प्रतिज्ञा करे कि हम देश का मान-स्तर ससार मे सर्वाधिक ऊचा करेंगे ताकि अहिंसा की वह ध्वजा ससार मे सर्वोन्नत होकर गर्व से लहराया करे। मैं प्रार्थना करूगा कि जो भाई अब तक इस ओर अपने को अकर्मण्य अवस्था मे समझते है वे आगे आएं और और इस पावन दिवस पर प्रतिज्ञा करें कि वे अपने खाली समय मे कुछ-न-कुछ समय देकर जरूर भगवान महावीर के सदेश हेतु करेंगे।

Report on the Marketing of Meet In India, 1955

Page—165.

This state of affairs is inevitable because, though meat in cities and towns is consumed in considerable quantities, its trade is in the hands of numerous small butchers, who pay no heed whatsoever, to hygiene production of meat As the consumption of unfit or unwholesome meats must affect the health and reduce the life of a large cross section of the population, the first pressing necessity is to purge the country of a large number of small, scattered and highly insanitary and uncontrolled slaughter-houses spread all over and to construct modern Central Slaughter-houses, in all cities and big towns and lease the same for a period of say five years, to one authority on certain conditions It is suggested that the scheme should be tried in the first instance, on an experi-

mental basis, at 9 centres, namely at Bombay, Calcutta, Delhi, Madras, Lucknow, Banglore, Hyderabad, Patna and Agra.

Page—166.

PRODUCTION

The annual value of meat along with edible offals produced in India is estimated to be over 100 crores of rupees The Importance of the industry should not, however, be Judged merely from this figure. Meat is vitally important to the Indian population because their diet is deficient in first class proteins and these could easily be obtained from meat. Therefore from economic, nutritional and public health points of view, the meat industry is of considerable importance to the country and deserves a lot more attention that it has received in the past.

Page—167

CONSUMPTION

Meat has not yet received sufficient recognition as an important food item and has hitherto been regarded as a luxurty for the town dwellers. The nutritional importance of meat is also practically unknown. For these reasons, the per capita consumption of meat in the Indian Union is very low, hardly 3.2 Lb. In many foreign countries large sums are annualy spent on "Consumers education" and sustained and successful efforts are made to drive home successfully to the consumers the value of meat and its products. Happily, there is not the same prejudice in India today against meat eating, particularly mutton and goat flesh, as existed before. Efforts to increase production are unlikely to bear fruit if steps are not simultaneously taken to increase consumption.

It is, therefore, recommended that extensive propaganda may be carried out to educate the peoples as regards high nutritive and protective value of meat and on the advisability of its increased consumption in their daily diet.

❁ ❁ ❁

मानव-धर्म

१. दुखिया जनि कोई देखिये, देखत ही दु ख होय ।
दुखिया रोइ पुकारि है—सब गुड माटी होय ।।

२. तुलसी हाय गरीब की कबहुँ न निष्फल जाय ।
मरी खाल की साँस सो, लोह भस्म हो जाय ।।

३. कबीरा सोई पीर है, जो जाने पर पीर ।
जो परपीर न जानिये, सो काफिर बे-पीर ।।

(१) हम विश्व-प्रेम के पक्षपाती बनें ।

(२) सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त को अपना आदर्श मानें ।

(३) मानव समाज मे सद्-भावना और प्रेम उत्पन्न करें ।

(४) समस्त विश्व को एक परिवार मानकर आगे बढे ।

(५) आपस के वैमनस्य और द्वेष को इस महान आदर्श के लिए त्याग दें ।

यह है उस सन्देश की कुछ पक्तिया जो ससार को अनादिकाल से प्रकाश देती आई है । जैन धर्म के २४वें तीर्थङ्कर प्रात स्मरणीय भगवान महावीर ने इस ज्योति से मानवता के एक बहुत बड़े भाग को जगमगा दिया । तब से अब तक विश्व को शान्ति के पथ पर ले जाने के लिए यह एक मार्ग साबित हुआ ।

अपने नफे के वास्ते, मत और का नुकसान कर ।
तेरा भी नुकसा होयगा, इस बात पर ध्यान कर ।।

खाना जो खा देखकर, पानी जो पी तो छानकर ।
या पाव को रख फूंककर, और खौफ से गुजरान कर ।।

कलयुग नही करयुग है यह, या दिन को दे और रात ले ।
क्या खूब सौदा नकद है, इस हाथ दे और उस हाथ ले ।।

कठिनाईयां

आदमी कठिनाइयो में पड़कर ही चमकता है ।
रत्न रगड़ा जाने पर ही रत्न प्रतीत होता है ।

विरोध का उचित रीति से सामना करना आदमी के व्यक्तित्व को निखारता है ।

श्रम शरीर को और कठिनाइयाँ मस्तिष्क को बलवान बनाती है।

दु.ख जीवन का सबसे बडा गुरु है। एक आसू दूर देखने की आखो को वह शक्ति दे देता है जो कोई दूरबीन भी नही दे सकती।

आज के सुख को, पुराने दु ख की याद मधुर बना देती है।

प्रकृति पशु, पक्षी, मनुष्य सभी पर दयालु है किसी का उससे विरोध तो है ही नही खतरा मोल लीजिए डरिए नही, बढे चलिये। आपकी केवल शुभ से भेंट होगी।

बुद्धिमान से बुद्धिमान व्यक्ति भी चोट खा जाता है पर चोट खाकर रोता मूर्ख ही है।

जो व्यक्ति असफलताओ के कडवे घूट पीने को तैयार नही होता उसे सफलता का मधुर रस कभी पीने को नही मिलता।

मूल्य सफलताओ का नही आपने उसकी प्राप्ति के लिए जो उद्योग किया है उसका है।

शुभ-कामना

कुछ लोग शरीर के रोगी होते है, कुछ लोग दिमाग के, पर आज के वैज्ञानिक युग मे जितने दिमाग के रोगी होते है उनकी तुलना मे शरीर के रोगी कम ही होते है। आपको चारो ओर जो रोगी ही रोगी दिखाई देते है उनमे से अधिकाश चाहे तो अच्छे हो सकते हैं पर उनका मानसिक दृष्टिकोण उन्हे बीमार ही रखता है।

जो लोग दूसरो का भला चाहते हैं और जहा तक बनता है उनकी भलाई के लिए कुछ करते भी है, वे दूसरो के ही कष्ट वहन करने और कष्ट से मुक्त होने मे मददगार नही होते। इस विधि से वे अपने शरीर और आत्मा को भी स्वस्थ रखते है मदद एक ऐसी दवा है जो लेने और देने वाले दोनो को ही फायदा पहुँचाती है यदि आप दूसरो की भलाई के काम में अपने को भूल जायें तो रोग स्वय जाने की ओर प्रवृत्त होते है, दूसरो की भलाई से जो सन्तोष प्राप्त होता है वह हमारी कल्पना को बनाता है और स्वस्थ कल्पना करने वालो को भी स्वस्थ ही देखती है।

भलाई करने का आनन्द मन को उत्साहित अवस्था में रखता है और वह उत्साह सारे अवसादो को दूर कर शरीर को सम्पादित अवस्था में रखता है। उपकार-रत व्यक्ति का मुँह खुशी से चमकता रहता है। उसकी मुख मुद्रा उसके आत्म-विश्वास और उसकी आत्मा की उच्चता को प्रकट करती है। खुदगर्ज का चेहरा उतरा, दबा हुआ रहता है और उस पर धुआँ-सा उडता रहता है उसके चेहरे पर उसके मन की मलीनता स्पष्ट रहती है।

अपने सम्बन्ध मे विचार करते रहना रोगो को बनाये रखने का अचूक उपाय है। यह भी एक तरह की स्वार्थ परायणता ही है। आदमी अपने ही लाभ की ही सोचता रहता है।

दूसरे की भलाई की ओर ध्यान ही नही जाता। लोगो की शुभकाक्षा और आशीर्वाद रोग के दूर करने के लिए रसायन का काम करते है और जो यह रसायन लोगों की सहायता कर प्राप्त करता रहता है और वह इनके जीवनदायक गुण का स्पष्ट अनुभव करता है।

दुनिया मे कष्टो की कमी नही है। कठिनाई, कष्ट-परीक्षा और दु ख आते ही रहते है पर जो लोग दु ख की कल्पना करते रहते हैं वे अपने कष्टो को आसानी से दूना भारी बना लेते हैं यदि उनको कही विपरीत अवस्था या निराशा से सामना करना पडता है तो वे सोचने लगते है कि उनका ही वेडा गर्क होने वाला है। भाग्य उनके विरुद्ध है और वे हर तरह से लुटने वाले है। इस तरह वे अपने को दुर्दशाग्रस्त समझने लगते है। जिसकी छाया उनके साथ रहने वालो पर पड़ने लगती है। जीवन उनके लिए एक बोझ बन जाता है। यह अवस्था बुरी है पर बदली जा सकती है उन्हे अपनी विचारधारा को बदलने के लिए कठिन प्रयत्न करना पडेगा। हमे अपने शारीरिक और मानसिक शक्ति का अपव्यय और दुरुपयोग करने का कोई अधिकार नही है।

कई बार घर की परेशानी शरीर मे जोक की तरह लिपट जाती है और जीवन-रक्त को ही चूसती रहती है। किसी-किसी के लिए पाप का पश्चाताप जलाता रहता है और उनके शरीर को क्षीण और मस्तिष्क को विकृत करता रहता है। कुछ लोग अतृप्त आकाक्षाओ से पीडित रहते है। पीडित वासना उन्हे गुमराह रखती है। आत्मा उन्हे धिक्कारती रहती है। उन्हें लगता है कि अपने पर से उनका वश छूट गया है। अपनी आखो मे ही वे गिर जाते है। जीवन मे उन्हे किसी सफलता की कोई आशा नही रह जाती।

पाप और रोग मे कार्य और कारण का सम्बन्ध है। यदि विचार गलत है तो यह उनका स्वाभाविक परिणाम होना चाहिए कि आप शरीर मे बे-आरामी महसूस करें जिसके शरीर को रोग ने जर्जर बना दिया है उन्हें एक ही नुकसान नही होता कि उनका शरीर अशक्त हो जाता है। शारीरिक दु ख तो वे आसानी से सह लेते हैं। पर मानसिक दु ख उन्हे अधिक परेशान करते है।

अशुभ कल्पना रोग को तो बढा ही देती है। वह रोग को जन्म भी देती है लोग जन्म भर बीमार रहते है। यह चिररोगी भी यदि अपने दिमाग को स्वस्थ होने के काम मे लगा दे तो स्वस्थ हो सकती है। कुछ लोगो की यह धारणा होती है कि जरा-सी ठण्डक लगी और वे बीमार पडे और वे ठण्डक लगते ही बीमार पड भी जाते हैं क्योकि वे इसकी आशा करते है कि बहुतो की तो ऐसे रोग से जिसका कारण काल्पनिक हुआ करता है मृत्यु ही हो जाती है।

सदा अपने लिए शुभ चिन्तन ही कीजिए। कल्पना को कभी गुमराह नही होने दीजिए।

माता—

आते ही उपकार याद है माता तेरा।
हो जाता मन मुग्ध, भक्ति भावो का प्रेरा।
तू पूजा के योग्य, कीर्ति तेरी हम गावे।
जी होता है, तुझे उठाकर शीश चढावें।

ईश्वरोपासना

सब मिल के आज जय कहो श्री वीर प्रभू की ।
मस्तक झुका कर जय कहो श्री वीर प्रभू की ॥१॥

विघ्नो का नाश होता है लेने से नाम के ।
माला सदा जपते रहो श्री वीर प्रभू की ॥२॥

ज्ञानी बनो दानी बनो बलवान भी बनो ।
अकलक सम बनकर करो जय वीर प्रभू की ॥३॥

होकर स्वतंत्र धर्म की रक्षा सदा करो ।
निर्भय बनो और जय करो श्री वीर प्रभू की ॥४॥

तुझको भी अगर मोक्ष की इच्छा हुई ए 'दास' ।
उस वाणी पर श्रद्धा करो श्री वीर प्रभू की ॥५॥

प्रार्थना

ऐ वीतराग स्वामी, मैं हू गुलाम[1] तेरा ।
आठो पहर जबा पै रहता है नाम तेरा ॥१॥

रहता है मुझको हर सुबह शाम तेरा ।
जपता हू तेरी माला लेता हू नाम तेरा ॥२॥

हर गुल[2] मे देखता हू जलवानुमा[3] मै तुझको ।
बुलबुल की है जबा पै शीरी[4] कलाम तेरा ॥३॥

यह बात मुझको हासिल तहरीर से हुई है ।
जिसमे दया भरी है वो है कलाम तेरा ॥४॥

कोई है तुझ पै माइल[5] कोई है तुझ पै मफ्तू[6] ।
शैदाई[7] हो रहा है हर खासो आम तेरा ॥५॥

दिल आइना बनाया जिसने खुदी मिटा कर ।
वो देखता है दिल मे दर्शन मुदाम[8] तेरा ॥६॥

है 'दास' तुझ पै माइल कल्याणकारी भगवन् ।
जादू भरा सुना है जब से कलाम तेरा ॥७॥

---

१ सेवक २ फूल ३ चमकता हुआ ४ ठण्डा ५-६ मिटा हुआ ७ प्रेमी ८ हमेशा ।

स्तुति

ऐ वीतराग स्वामी बेशक तू लामका है ।
लेकिन हमारे दिल के अन्दर तेरा निशा है ॥१॥

ये है जमीन किसकी किसका यह आस्मा है ।
तू है जहा का मालिक तेरा ही यह जहा है ॥२॥

सहरा[1] मे है चमन मे गुलशन[2] मे है खिजा[3] मे ।
ऐ वीतराग स्वामी मस्कन[4] तेरा कहा है ॥३॥

आखो मे है कि दिल मे या है मेरी नजर मे ।
मैं क्या बताऊ तुमको तेरा निशा कहा है ॥४॥

हर शै[5] मे तेरे जलवे ऐसे बसे हुए है ।
हम देखते हैं तुमको नजरो से गो निहा[6] है ॥५॥

ऐ दीनबन्धु भगवन हामी है तू दया का ।
दुनियां मे जब सुनहरी सिक्का तेरा रवा है ॥६॥

ऐ 'दास' क्या बताऊ जिनराज का मै तुल्वा ।
वोह अपना शहशाह है वो अपना हुक्मरा है ॥७॥

* * * *

भगवान् महावीर

विषम दु.ख की ज्वालाओ से जला हुआ था जब ससार ।
दानव बन, मानव था करता अबलाओ पर अत्याचार ॥
शूद्र-जनो का सुन पडता था ससति तल मे हाहाकार ।
धर्म नाम पर होता था नित पशुओ का भीपण सहार ॥

प्रकृति प्रकम्पित होकर अपने गिन-गिन अश्रु बहाती थी ।
मानवता रोती थी केवल दानवता हँस पाती थी ॥
कर्मकाण्ड का जाल बिछाकर दम्भी मौज उडाते थे ।
नीति न्याय गला घोटकर न्यायी पीसे जाते थे ॥

---

१ जगल २ बाग ३ पतझड़ ४ मकान ५ वस्तु ६ छुपा हुआ ।

जातिवाद ने छीन लिये थे शूद्र-जनों के सब अधिकार।
मानुषता से वंचित मानव फिरता था बस मनुजाकार॥
उसी समय इस पृथ्वीतल पर तुमने लिया पुण्य अवतार।
राजपाट तज पुनः जगत का करने लगे सतत् उद्धार॥

ललनायें तेरे चरणों में तेरे स्वागत पुष्प चढ़ाती थीं।
उत्सुकता से पावन-पथ में बढ़कर पुण्य कमाती थीं॥
शूद्रम्लेच्छ सब ही से तुमने मातृ भाव दरसाया था।
अन्यायों की होली करके नव-जीवन सरसाया था॥

सिंह-गर्जना सुनकर तेरी हुए पराजित अत्याचार।
मानुषता सिखलाई तूने है मानवता के शृङ्गार॥
कोरी कर्म-काण्डता विघटी, हुआ मूक पशु-बलि संहार।
फूले थे जो अन्यायों से पछताते अब बारम्बार॥

अनेकान्त की अद्भुत शैली सब जग को दिखलाई थी।
धर्म-समन्वय करके सब की मौलिकता दिखलाई थी॥
सम्प्रदाय के द्वन्द्व भगाकर निज पर भेद मिटाया था।
आध्यात्मिकता सिखा जगत को आनन्द पाठ पढ़ाया था॥

जनमत की परवाह न करके जगहित की दिखलाई राह।
हुआ विरोध तुम्हारा लेकिन घटा न उससे कुछ उत्साह॥
अन्त विजय-लक्ष्मी ने डारी कण्ठ तुम्हारे वर-वरमाल।
'जिन' कहलाये, शत्रु नशाये, गावें अब तक सब गुण माल॥

दुखियों को गोदी में लेकर तुम्हीं खिलाने वाले थे।
प्यासों को सुधाम्बु निज कर से तुम्हीं पिलाने वाले थे॥
मुर्दों में भरकर नव जीवन, तुम्हीं जिलाने वाले थे।
अन्यायों की पकड़ जड़ों को, तुम्हीं हिलाने वाले थे॥

महावीर थे वर्धमान तुम, सन्मति-नायक जगदाधार।
सत्पथ दर्शक विश्व प्रेममय दया-अहिंसा के अवतार॥
प्रमुदित होकर मुझे सिखाओ सेवा पर होना बलिदान।
मिट जाऊँ पर मिटे न मेरा सेवामय उत्सर्ग महान॥

प्रार्थना

महावीर स्वामी तेरा आसरा है।
कि गुमकरदा[1] मंजिल का तू रहनुमा[2] है ॥१॥

तू है केवल ज्ञानी तु ही जानता है।
मुकद्दर मे जो कुछ कि लिक्खा हुआ है ॥२॥

तू मालिक है अपना तू आका है अपना।
वसीला तेरा है सहारा तेरा है ॥३॥

किनारे से हमको लगादे ए स्वामी।
तू कश्तिए उम्मीद का नाखुदा[3] है ॥४॥

गरज द्वेष से है न है राग से कुछ।
तेरा शीशए दिल खुदी से सफा है ॥५॥

मुजस्सिम है तू शाने वहदत का पुतला।
तेरा हुस्न साचे मे गोया ढला है ॥६॥

न होगी कभी भूल कर जीव हिंसा।
दया का सबक हमको तूने दिया है ॥७॥

करम कर तू मुझ पै मैं हू 'दास' तेरा।
यह दस्तबस्ता मेरी इल्तजा है ॥८॥

हृदय की तान

हृदय मे गूंजे ऐसी तान।

न्याय मार्ग से नही डरें हमे, अनुत्साह को नही धरें हम,
प्राणी मात्र से प्रेम करें हम, करें देश उत्थान,
हृदय मे गूंजे ऐसी तान।

दीनो के सब दुःख दूर हो, कार्य क्षेत्र मे सुचूर हो,
अन्यायी के लिए क्रूर हो, रक्खें अपनी तान;
हृदय मे गूंजे ऐसी तान।

---
१ भूला हुआ २ बताने वाला ३ मल्लाह

कायर वचन न मुख से बोले, ज्ञान सुधा रस घट-घट घोले।
सत्य तुला मे सब कुछ तोलें, जब तक तन में प्रान।
हृदय मे गूँजे ऐसी तान।

निर्बल कही न समझे जावे, जग मे कभी न दीन कहावे,
विघ्न करोडो सिर पर आवे, झेले सब शुभ जान।
हृदय मे गूँजे ऐसी तान।

—.०.—

क्यो कर हो कल्यान

मुझे दो ऐसा वर भगवान ॥टेक॥

सुख-दुख मे ना धर्म को भूलू और न घबराऊ।
जुल्मो-सितम चाहे जितने हो, कभी न भय खाऊ॥
भले ही तन से निकले जान।

मेरे तन से दुश्मन तक का, कभी न हो अपकार।
बालक वृद्ध युवा सबका ही, पूर्ण करू सत्कार॥
इसी मे समझूं अपनी शान।

देश के हित मैं मरना सीखूं, देश के हित जीना।
तीरो तुफग भी इसपै बरसै, अडादऊ सीना॥
देश का सह न सकूं अपमान।

चाहे जान भले ही जावे, छूटे कभी न धर्म।
देश-जाति की सेवा करना, समझूं अपना कर्म॥
यही है वीरो की पहिचान।

भारत मे से कलह ईर्षा, फूट का निकले बीज।
इसने भारत गारत करके, बना दिया है नीच॥
गु जा दू मधुर प्रेम की तान।

यह नरभव कही व्यर्थ न जावे, सोच-समझ ए 'दास'।
मोक्ष मिलन की इच्छा है तो कर्मो का कर नाश॥
तभी होगा तेरा कल्याण।

फर्मा दिया वीर जिनेश्वर ने

जिन धर्म का डंका आलम मे बजवा दिया वीर जिनेश्वर ने।
सुख-शांति से रहना दुनिया को सिखला दिया वीर जिनेश्वर ने ॥१॥

अपना गौरव अपना जल्वा दिखला दिया वीर जिनेश्वर ने।
हा मृग केहरि को एक जगह बिठला दिया वीर जिनेश्वर ने ॥२॥

यज्ञो मे गूगे मूक पशू जब लाखो मारे जाते थे।
हिंसा से बढकर पाप नही फर्मा दिया वीर जिनेश्वर ने ॥३॥

जब जीव हुए थे धर्मभ्रष्ट तब पापो की बन आई थी।
चु गल से इनके जीवो को छुड़वा दिया वीर जिनेश्वर ने ॥४॥

मिथ्यात्व का खण्डन कर डाला अभिमान का मर्दन कर डाला।
गौतम जैसे गणधर को परचा लिया वीर जिनेश्वर ने ॥५॥

हृदय मे जिनके राग-द्वेष की अग्नि सदा ही जलती थी।
जग तजो द्वेष तब मोक्ष मिले फर्मा दिया वीर जिनेश्वर ने ॥६॥

ऐ 'दास' हकीकत दुनिया की दम भर में हुई सब हमको अया।
जो राज था आखों-आखो मे समझा दिया वीर जिनेश्वर ने ॥७॥

—o—

स्वार्थ

खिल-खिल कलियाँ मन को हरती, मन्द-मन्द मुसकाती है।
अपनी सुन्दर छटा दिखा कर, भौरो को ललचाती है ॥
देख ऊपरी सुन्दरता को, भौरे नही ललचते है।
मधु पाकर ही मधुप मनोहर, कलियो को आ छलते है ॥

कैसा सुन्दर मधुर स्वार्थ है, मीठा रस इसमे रहता।
स्वार्थ हेतु कट जाय शीश भी, तो भी नर इसको गहता ॥
प्यारे भाई ! स्वार्थ-ग्रस्त नर, सधिवाद के योग्य नहीं।
दुख-ही-दुख है स्वार्थ समर में, सुख की मात्रा कही नही ॥

हमारी हस्ती

अवस[1] अपनी हस्ती पै फूला हुआ है।
जिएगा हमेशा न कोई जिया है ॥१॥

है दो सांस पर जिन्दगानी बशर[2] की।
कि एक आ रहा दूसरा जारहा है ॥२॥

किए जा किए जा भलाई किए जा।
कि रुतबा भलाई का सबसे बड़ा है ॥३॥

तेरे कर्म ही तुझको कर देंगे रुस्वा[3]।
मगन अपने दिल में तू क्या हो रहा है ॥४॥

न मालूम कब कूच हो जाए तेरा।
गनीमत समझ सास जो आ रहा है ॥५॥

न दुनियाए दूं[4] में कभी दिल लगाना।
कि इसकी मोहब्बत नवेदे[5] कजा[6] है ॥६॥

फना[7] हो न, जिनको मिले वो मसर्रत[8]।
यही दिल का मतलब यही मुद्दआ है ॥७॥

महावीर भगवान से दिल लगाओ।
कि पापों का अपना यही खूं बहा है[9] ॥८॥

मिटाये से ऐ 'दास' क्योंकर मिटे वो।
मुकद्दर में अपने जो लिक्खा हुआ है ॥९॥

× × × ×

जैन-धर्म सर्वथा स्वतन्त्र है। मेरा विश्वास है कि वह किसी का अनुकरण नहीं है। और इसलिए प्राचीन भारतवर्ष के तत्व ज्ञान का, धर्म पद्धति का अध्ययन करने वालों के लिए वह बड़े महत्व की वस्तु है।

—डा० हर्मन जैकोबी

---

१ व्यर्थ २ इन्सान। ३ बदनाम ४ कमीनी ५ पैगाम ६ मौत ७ मिटना ८ खुशी ९ प्रायश्चित

उपदेशामृत

कर्म तू जैसा करेगा वैसा फल पाएगा तू।
साथ अपने कुछ न लाया है न ले जाएगा तू ॥१॥

जब मिटाकर अपनी हस्ती सुर्मा बन जाएगा तू।
अहले आलम की निगाहो मे समा जाएगा तू ॥२॥

बुख्ल[1] सेकारू[2] शिफत[3] क्या खाक फल पाएगा तू।
साथ दौलत के जमी मे दफन[4] हो जाएगा तू ॥३॥

इक तेरे ऐमाल[5] ही जायेंगे तेरे साथ-साथ।
और क्या इसके सिवा दुनिया से ले जाएगा तू ॥४॥

चार दिन की जिन्दगी पर मुश्ते खाक[6] इतना गरूर।
नक्शे बातिल[7] की तरह दुनिया से मिट जाएगा तू ॥५॥

आखिरत की लाज गर चाहे तो नेकी कर सदा।
मालोदौलत सब यही पर छोड कर जाएगा तू ॥६॥

ये जो है अहबाब[8] तेरे सब बनी के यार है।
दारे फानी[9] से अकेला ही फकत जाएगा तू ॥७॥

जैसी करनी वैसी भरनी यह मसल मशहूर है।
काम गर अच्छा करेगा अच्छा फल पाएगा तू ॥८॥

दौलतो हशमत मे हरगिज 'दास' मत कीजो घमंड।
आलमे फानी से खाली हाथ ही जाएगा तू ॥९॥

०००

---

१ कंजूस २ खजाना ३ तरह ४ गडना ५ कर्म ६ मुट्ठी भर ७ मिट्टी के पुतले, बुलबुले
८ दोस्त ९ फना होने वाली दुनिया।

साज़े-हस्ती

हस आया है फकत दो-चार दाने के लिए।
बागे आलम मे हवा दो दिन की खाने के लिए ॥१॥

है श्री जिनराज की बानी सुनाने के लिए।
याद कर लो शौक से तुम इसको गाने के लिए ॥२॥

जैनियो के दिल मे होगा जब कही पैदा सरूर[१]।
साजेहस्ती[२] चाहिए कौमी तराने[३] के लिए ॥३॥

दूर हो जिससे स्याहबख्ती[४] हमारी कौम की।
हाथ मे हो ज्ञान की मशअल[५] जलाने के लिए ॥४॥

राजनीति का सबक भी सीख लो ऐ जैनियो।
जग में अपना कदम आगे बढाने के लिए ॥५॥

आए है क्या इसलिए दुनिया मे हम ऐ दोस्तो।
ख्वार होने ठोकरें गैरो की खाने के लिए ॥६॥

जीव हो जाएगा कालिब[६] से जुदा जब देखना।
लाश ही रह जाएगी बाकी जलाने के लिए ॥७॥

न्यामते दुनिया[७] खिलाते थे जो औरो को कभी।
दर-बदर फिरते है अब वह दाने-दाने के लिए ॥८॥

चादरे गुल[८] पै जिन्हे मुश्किल से कल आती थी नीद।
ढूढते है ईट वो तकिया लगाने के लिए ॥९॥

मिस्ले महमा 'दास' इस दुनिया मे रहना चाहिए।
तू जो आया है यहा आया है जाने के लिए ॥१०॥

---

१ नशा २ दिल का साज ३ जातिय ज्ञान ४ बदनसीबी ५ मशाल ६ शरीर ७ दुनिया. अच्छी वस्तु ८ फूलो की सेज।

जिगर की आग

तरक्की[1] धर्म की और देश की रोने रुलाने से।
नही बुझती जिगर की आग दो आसू वहाने से ॥१॥

न लेते थे जो दम भर चैन औरो को मिटाने से।
उन्हे भी एक दिन लगना पडा अपने ठिकाने से ॥२॥

निशाँ[2] तक भी नही मिलता जहा मे आज तक उनका।
जिन्हे आनन्द मिलता था जफा ओ जौर ढाने से ॥३॥

दुखे दिल से जो निकली आह तुझको फूक डालेगी।
सितमगर[3] बाज आ[4] मजलूम[5] ओ वेकस के सताने से ॥४॥

जो खुद ही गर्दिशे तकदीर[6] से वर्वाद फिरते है।
भला क्या फैज[7] पाएगा कोई उनको सताने से ॥५॥

कठिन है धर्म की मजिल[8] मगर हिम्मत न हारो तुम।
यू ही चलते रहे तो लग ही जाओगे ठिकाने से ॥६॥

बसी है जिनके रग-रग मे मोहव्वत मुल्कोमिल्लत की।
नही वोह चूकते ऐ 'दास' अपना सर कटाने से ॥७॥

राग मालकोप

जिया जग धोके की टाटी ॥ टेक ॥
झूठा उद्यम लोग करत है जिसमे निश दिन घाटी।
जान बूझ कर अडे बने हो आँखिन बाधी पाटी।
निकल जायेंगे प्राण छिनक मे पडेगी माटी।
'दौलतराम' समझ नर अपने दिल की खोल कपाटी।

---

१ उन्नति २ चिह्न ३ पाप करने वाले ४ मान जा ५ निर्वल ६ किस्मत का फेर ७ भलाई ८ राह (मार्ग)।

प्यारा है वतन अपना

जलीलो ख्वार होकर भी न बदला गर चलन अपना।
तो खो बैठेंगे हाथो से किसी दिन हम वतन अपना ॥१॥

फना हो जाएगे, मिट जाएँगे इसको बचाएँगे।
कि हमको स्वर्ग से बढकर प्यारा है वतन अपना ॥२॥

मिटा जिस रोज भारत, कुल जमाने मे अधेरा है।
कि सारे विश्व की शोभा बढाता है वतन अपना ॥३॥

न पहना आज तक हमने विदेशी कोई भी कपडा।
तमन्ना है कि बादेमर्ग[1] देशी हो कफन अपना ॥४॥

उधर बेदाद[2] गैरो की, इधर आपस के झगडे है।
विधाता दूर भी होगा कभी रजोमहन[3] अपना ॥५॥

बनाया आदमी जिनको सिखाया बोलना जिनको।
हमारे सामने ही खोलते है वो दहन[4] अपना ॥५॥

मगर अब भी खबर इसकी न ली ऐ 'दास' यारो ने।
खिजा[5] की नज्र हो जाएगा इकदिन यह चमन अपना ॥६॥

साफ प्रकट है कि भारतवर्ष का अध पतन जैनधर्म के अहिंसा सिद्धान्त के कारण नहीं हुआ था, बल्कि जब तक भारतवर्ष में जैनधर्म की प्रधानता रही थी, तब तक उसका इतिहास स्वर्णाक्षरो में लिखे जाने योग्य है और भारतवर्ष के ह्रास का मुख्य कारण आपसी प्रतिस्पर्धामय अनैक्यता है जिसकी नीव शकराचार्य के जमाने मे डाली गई थी।

मि० रेवरेन्ड जे० स्टीवेन्सन

---

१ मरने के बाद २ जुल्म ३ दुख, तकलीफ ४ मुँह ५ पतझड।

हिन्दोस्तां हमारा

क्या पूछते हो हमसे नामोनिशा[1] हमारा ?
मालिक है हम जमी के है आस्मा हमारा ॥१॥

भारत पै जान देगा इक इक जवा हमारा ।
ऐ चर्ख[2] ले रहा है क्या इम्तहां हमारा ? ॥२॥

लडते है हक[3] की खातिर हकहै हमारा हामी[4] ।
हम पासदारे हक है हक पास्वा हमारा ॥३॥

दुश्मन की सारी शेखी अब खाक मे मिलादो ।
देखें तो क्या करेगा दौरे जमा[5] हमारा ॥४॥

क्या जिक्र मालो जर का तन और मन से अपने ।
बहरे वतन[6] है हाजिर खुरदोकला[7] हमारा ॥५॥

बागे जहा मे खिलकर दिखलाऐ रग क्योकर ।
दुश्मन बना हुआ है खुद बागवा[8] हमारा ॥६॥

ए 'दास' हो न जाए बरबाद अपनी मेहनत ।
सय्याद की नजर मे है आशिया हमारा ॥७॥

विद्या जीवन की दिशा है, जिसे पाकर मनुष्य अपने इष्ट स्थान पर नही पहुँच पाता । चरित्र जीवन की गति है । सही दिशा मिल जाने पर भी गति-हीन व्यक्ति इष्ट स्थान पर नही पहुँच पाता । सही दिशा और सही गति दोनो मिलें, तब काम बनता है ।

सेवा का सबसे पहला कदम अपनी जीवन-शुद्धि है । यह आत्म-सेवा है, जिसके बिना जन-सेवा बन नही सकती ।

---

१ चिन्ह २ आसमान ३ न्याय, सच्चाई ४ तरफदार ५ ससार-चक्र ६ देश के खातिर ७ छोटे-बडे ८ बाग का माली ९ बुलबुल का पकड़ने वाला ।

भारत-दुर्दशा

आखो से देखते हो क्या दुर्दशा[1] वतन की ।
कुछ तो खबर लो अपने उजडे हुए चमन की ॥१॥

फाकाकशी[2] से लाखो बे मौत मर रहे है ।
बिगडी हुई है हालत अब किस कदर वतन की ॥२॥

"अकलक" "वीर" जैसे पैदा हुए यही पर ।
यू स्वर्ग से है बढकर भूमी मेरे वतन की ॥३॥

तीरो तुफग[3] का अब हरगिज न गम करेंगे ।
रक्खेंगे जान देकर हम आबरू[4] वतन की ॥४॥

सबसे बडा यही है फर्ज अपनी जिन्दगी का ।
हमले से दुश्मनो के रक्षा करें वतन की ॥५॥

तेरी चिता पै मेला हर साल ही लगेगा ।
ऐ 'दास' जान देकर शोभा बढा वतन की ॥६॥

वीर प्रतिज्ञा

हम अपनी जिन्दगानी धर्म की खातिर मिटा देंगे ।
अगर आया कोई मौका ये जलवा भी दिखा देंगे ॥१॥

जो है सरशार दौलत मे, जो है मखमूर हशमत मे ।
यही अशखाश इक दिन कुछ न कुछ करके दिखा देंगे ॥२॥

हमारे नौजवां जैनी नही हटने के पीछे अब ।
बनाकर सगठन अपना कदम आगे बढा देंगे ॥३॥

रहा गर सगठन अपना, रहा गर दम मे दम अपना ।
किसी दिन देखना कलियुग मे हम सतयुग दिखा देंगे ॥२॥

अगर वो गालिया भी हमको देगा तो भी सुन लेंगे ।
दिले दुश्मन पै यूं तेगे करम अपनी चला देंगे ॥५॥

समझ रक्खा है क्या ऐ 'दास' अपने नाल-ए-दिल को ।
जमी का जिक्र ही क्या आसमां तक को हिला देंगे ॥६॥

---

१ बुरी हालत २ भूखे मरना ३ तमचा ४ इज्जत ।

श्री वीर की अमली जयन्ती

श्री वीर की जयन्ती अमली मनानी होगी ।
तकलीद[1] उनकी हमको करके बतानी होगी ॥ १ ॥

एकान्तभ्रम तअस्सुब[2] जड से उखाड फेंके ।
सत्यार्थियो की हरजा[3] सगति बनानी होगी ॥ २ ॥

फिर्कों की बन्दिशो[4] मे बरबाद हो चुके है ।
मत-पथ की अटक हठ खुद ही हटानी होगी ॥ ३ ॥

मठ मन्दिरो की बढ़ती मूढो की वेष पूजा ।
इन रूढियो मे फँसती जनता बचानी होगी ॥ ४ ॥

सिद्धान्त-तत्त्व-निर्णय गुण ठाण का चढ़ाना ।
उपयोग शक्ति अपनी इनमें लगानी होगी ॥ ५ ॥

सब जीव मोक्ष सुख के हकदार है बराबर ।
यह साम्यवाद-शिक्षा पढनी-पढानी होगी ॥ ६ ॥

छीने न प्राण-सत्ता कोई प्रमाद-वश से ।
जीवो की, यह व्यवस्था हमको जमानी होगी ॥ ७ ॥

परतंत्र बधनो से सब मुक्त हो रहेंगे ।
भारत-वसुन्धरा की सेवा बजानी होगी ॥ ८ ॥

है वीर-धर्म-शासन पुण्यार्थ क्रान्तिकारी ।
घर-घर में ज्योति 'सेठी' इसकी जगानी होगी । ९ ॥

विद्या का फल मस्तिष्क-विकार है, किन्तु है प्राथमिक । उसका चरम फल आत्म-विकास है। मस्तिष्क-विकास चरित्र-विकास के मध्य से ही आत्म-विकास तक पहुँच जाता है, इसलिए चरित्र-विकास दोनो के बीच की कड़ी है ।

---

१ अनुकूल प्रवृत्ति २ पक्षपात ३ जगह-जगह ४ जाति उपजातियो के बन्धनो में ।

समाज-सम्बोधन

दुर्भाग्य जैन समाज, तेरा, क्या दशा यह हो गई ।
कुछ भी नही अवशेष, गुण-गरिमा सभी तो खो गई ।।
शिक्षा उठी, दीक्षा उठी, विद्याभिरुचि जाती रही ।
अज्ञान दुर्व्यसनादि से मरणोन्मुखी काया हुई ।।

वह सत्यता, समुदारता तुझमे नजर पड़ती नही ।
दृढता नही, क्षमता नही, कृतविज्ञता कुछ भी नही ।।
सब धर्मनिष्ठा उठ गई, कुछ स्वाभिमान रहा नही ।
भुजबल नही, तप बल नही, पौरुप नही, साहस नही ।।

क्या पूर्वजो का रक्त, अब तेरी नसो में है कही ?
सब लुप्त होता देख गौरव जोश जो खाता नही ।
ठडा हुआ उत्साह सारा, आत्मबल जाता रहा ।
उत्थान की चर्चा नही, अब पतन ही भाता रहा ।।

पूर्वज हमारे कौन थे ? वे कृत्य क्या-क्या कर गये ?
किन-किन उपायो से कठिन भव-सिन्धु को भी तर गये ?
रखते थे कितना प्रेम वे निज धर्म-देश-समाज से ?
परहित मे क्यो सलग्न थे, मतलब न था कुछ स्वार्थ से ?

क्या तत्व खोजा था उन्होने आत्म जीवन के लिये ?
किस मार्ग पर चलते थे वे अपनी समुन्नति के लिये ?
इत्यादि बातो का नही तव व्यक्तियो को ध्यान है ।
वे मोह-निद्रा मे पड़े, उनको न अपना ज्ञान है ।।

सर्वस्व यो खोकर हुआ तू दीन, हीन, अनाथ है ।
कैसा पतन तेरा हुआ, तू रूढियो का दास है ।।
ये प्राणहारि-पिशाचिनी, क्यो जाल मे इनके फँसा ।
ले पिण्ड तू इनसे छुड़ा, यदि चाहता अब भी जिया ।।

जिस आत्मवल को तू भुला बैठा उसे रख ज्ञान में ।
क्या शक्तिशाली ऐक्य है, यह भी सदा रख ध्यान मे ॥
निज पूर्वजो का स्मरण कर, कर्तव्य पर आरूढ हो ।
बन स्वावलम्बी गुण-ग्राहक कष्ट मे न अधीर न हो ॥

सद्दृष्टि-ज्ञान-चरित्र का सुप्रचार हो जग मे सदा ।
यह धर्म है, उद्देश है, इससे न विचलित हो कदा ॥
'युगवीर' बन यदि स्वपरहित मे लीन तू हो जायगा ।
तो याद रख, सब दु ख-सकट शीघ्र ही मिट जायगा ॥

साधु-विवेक

असाधु

वस्त्र रँगाते, मन न रँगाते, कपट-जाल नित रचते है ।
हाथ ! सुमरनी पेट कतरनी, परधन-वनिता तकते है ॥
आपा पर की खबर नही, परमार्थिक बातें करते है ।
ऐसे ठगिया साधु जगत की, गली-गली मे फिरते है ॥

साधु

राग, द्वेष जिनके नहि मन मे, प्राय: विपिन विचरते है ।
क्रोध, मान, मायादिक तज कर, पच महाव्रत धरते हैं ॥
ज्ञान-ध्यान मे लीन चित्त, विषयो मे नही भटकते है ।
वे है साधु, पुनीत, हितैषी, तारक जो खुद तरते है ॥

वास्कोडिगामा द्वारा किये गये उल्लेखो से यह बात पूर्ण रूप से विदित हो जाती है कि, मालाबार प्रान्त के समुद्री किनारे पर उस समय जो वस्ती थी वह न कभी हिंसा करती थी, इतना ही नही किन्तु समुद्र के किनारे पर रहने पर भी माम मच्छी आदि के आहार को निषिद्ध ही मानती थी । इस वस्तु स्थिति से अनुमान होता है कि वह प्रजा जैनधर्मी ही होनी चाहिए, जिसका प्रभाव तमाम प्रजा पर पूर्ण रूप से पटा था । इसके उपरात जैनधर्म के सम्बन्ध मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी के समय के अनेक उल्लेख मि० कोल ब्रुक की डायरी मे पाये जाते है ।

जैन सम्बोधन

जनियो ! किस धुन में हो तुम क्या खबर कुछ भी नही ।
हो रहा ससार मे क्या, ध्यान कुछ इस पर नही !
म्लेच्छ और अनार्य जिनको, तुम बताते थे कभी;
देख लो किस रग मे हैं, आज वे मानव सभी ॥१॥

और अपनी भी अवस्था का मिलान करो जरा ।
पूर्व थी वह क्या ? हुई अब क्या ? विचार करो जरा ॥
है कहाँ वह ज्ञान-गौरव, राज्य-वैभव आपका ?
वह कहाँ वह ऋद्ध्यलकृत तप, विनाशक पाप का ?२ ॥

वृष अहिंसा आपका वह, उठ गया किस लोक में ?
प्रेम पावन आपका सब, जा बसा किस थोक मे ?
है कहाँ वह सत्यता, मृदुता, सरलता आपकी ?
वह दयामय दृष्टि और परार्थपरता सात्विकी ?३॥

पूर्वजो के धैर्य-शौर्योदार्य-गुण, तुम मे कहाँ ?
है कहाँ वह वीरता, निर्भीकता, साहस महा ?
बाहुबल को क्या हुआ ? रणरग-कौशल है कहाँ ?
हो कहा स्वाधीनता, दौर्बल्य शासन हो जहाँ ?४॥

वे विमान कहाँ गये ? कुछ याद है उनकी कथा ?
बैठ जिनमे पूर्वजो को, गगन पथ भी सुगम था ?
है कहाँ निर्वाह प्रण का ? और वह दृढता कहाँ ?
शीलता जाती रही, दु.शीलता फैली यहाँ ?५॥

उठ गई सब तत्त्व चर्चा, क्या प्रकृति बदली सभी !
स्वप्न भी, निज अभ्युदय का, जो नही आता कभी !
खो गया गुण-ग्राम सारा, धर्मधन सब लुट गया !
आँख तो खोलो जरा—देखो सवेरा हो गया ॥६॥

धर्म-निष्ठर पर बिराजी, रूढियाँ आकर यहाँ,
धर्म ही के वेष में, जो कर रही शासन महा ।
थी बनाई तुम्ही ने ये, निज सुभीते के लिए,
बन गये पर अब तुम्ही, इनकी गुलामी के लिए ॥७॥

देखिये, मैदाने उन्नति में कुलांचे भर रहे,
कौन हैं, निज तेज से विस्मित सबो को कर रहे?
नव नवाविष्कार प्रतिदिन, कौन कर दिखला रहे?
देव दुष्कर कार्य विद्युत-शक्ति से करवा रहे?८॥

हो रहा गुणगान किनके, यह कला-कौशल्य का?
बज रहा है दुन्दुभी, विज्ञान-साहस शौर्य का?
कौन है ये बन रहे, विद्या-विशारद आजकल?
नीतिविद, सतकर्म शिक्षक, पथ-प्रदर्शक आजकल ?९॥

सोचिये, ये है वही, कहते जिन्हे तुम नीच थे,
धर्मशून्य असभ्य कह कर आप बनते ऊँच थे।
सद्विचाराचार के जो, पात्र भी न गिने गये,
नहा डाला उसी दम यदि, कभी इनसे छू गये ॥१०॥

अनवरत उद्योग से औ, आत्मबल विस्तार से,
अभ्युदय इनका हुआ है, प्रबल एक्य विचार से।
स्वावलम्बन से इन्हे जो, सफलता अनुपम मिली,
शोक! उसको देख करके, सीख तुमने कुछ न ली ॥११॥

आत्म-बल गौरव गवाया, भूल शिथिलाचार मे,
फँस गये हो बेतरह तुम, जाति-भेद-विचार में!
साथ ही अपरीतियो का जाल है भारी पडा;
हो रहा है कर्मबन्धन से भी यह बन्धन कड़ा ॥१२॥

तोड़ यह बन्धन सकल, स्वातन्त्र्यबल दिखलाइये;
लुप्त गौरव जो हुआ, उसको पुन. प्रकटाइये।
पूर्वजो की कीर्ति को बट्टा लगाना क्या भला?
सच तो यो है, डूब मरना ऐसे जीवन से भला ॥१३॥

जातिया, अपनी समुन्नति-हेतु सब चचल हुई;
पर न आया जोश तुम मे, क्या रगें ठिठरा गईं?
पुरुष हो, पुरुषार्थ करना, क्या तुम्हे आता नही?
पुरुष-मन पुरुषार्थ से, हरगिज़ न घबराता कही ॥१४॥

जो न आता हो तुम्हे वह, दूसरो से सीख लो ;
अनुकरण कहते किसे, जापानियों से सीख लो।
देखकर इतिहास जग के, कुछ करो शिक्षा ग्रहण,
हो न जिससे व्यर्थ ही ससार मे जीवन-मरण ॥१५॥

छोड दो सकीर्णता, समुदारता धारण करो,
पूर्वजो का स्मरण कर, कर्तव्य का पालन करो।
आत्मवल पर जैन वीरो! हो खड़े बढ़ते रहो;
हो न ले उद्धार जब तक, 'युग प्रताप' बने रहो ॥१६॥

प्रार्थना

हृदय हो प्रभु, ऐसा बलवान।

विपदाएँ घनघोर घटा सी, उमडें चहुँ दिशि आन।
पर्वत-ऊपर-पतित विन्दु-सी, झेलूँ मन सुख मान ॥१॥

असफल होकर सहस्र बार भी, मन को करूँ न म्लान।
लक्ष गुणित उत्साह धार कर, करूँ कार्य प्रण ठान ॥२॥

पूर्ण आत्म कर्तव्य करूँ या, खुद होऊँ बलिदान।
सन्मुख ज्वलित अग्नि भी लखकर, हटूँ न धका ठान ॥३॥

करो स्तवन परिहास करो या, यह ससार अजान।
सत्य मार्ग को इच न छोडूँ, भय नही लाऊँ ध्यान ॥४॥

विकसित आत्म स्वरूप करूँ निज, बल का अतुल निधान।
तनवल धनवल तृणवत समझू, धरूँ नही अभिमान ॥५॥

❀ ❀ ❀

जो जितना अधिक नियन्त्रणहीन होता है, वह उतना ही अधिक अपने आस-पास मर्यादा का जाल बुनता है। हमारा घर साफ-सुथरा होगा तो पडौसी को उससे दुर्गन्ध नही मिलेगी।

हम अहिंसक रहेंगे तो पडौसी को हमारी ओर से क्लेश नही होगा।

दूसरो को कष्ट न हो इसलिए हम अहिंसक रहें, अहिंसा का यह सही मार्ग नही है।

हमारे मन मे किसी को कष्ट देने की भावना ही न हो।

मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ अहिंसा की चार भावनायें हैं।

हृदयोद्गार

कब आयगा वह दिन कि बनू साधु विहारी ।।टेक।।

दुनिया मे कोई चीज मुझे थिर नही पाती,
और आयु मेरी यो ही तो है बीतती जाती।
मस्तक पै खडी मौत, वह सब ही को है आती,
राजा हो, चाहे राणा हो, हो रक भिखारी ।।१।। कब०

सपत्ति है दुनिया की वह दुनिया मे रहेगी,
काया न चले साथ, वह पावक मे दहेगी।
इक ईट भी फिर हाथ से हर्गिज न उठेगी,
बगला हो चाहे कोठी हो, हो महल अटारी ।।२।। कब०

बैठा है कोई मस्त ही, मसनद को लगाये,
मागे है कोई भीख फटा वस्त्र बिछाये।
अधा है कोई, कोई, बधिर हाथ कटाये,
व्यसनी है कोई मस्त, कोई भक्त पुजारी ।।३।। कब०

खेले है कई खेल, धरे रूप घनेरे;
स्थावर मे त्रसो मे भी किये जाय न सेरे।
होते ही रहे है यो सदा शाम सवेरे,
चक्कर मे घुमाता है सदा कर्म मदारी ।।४।। कब०

सब ही से मैं रक्खूंगा सदा दिल की सफाई,
हिन्दू हो, मुसलमान हो, हो जैन ईसाई।
मिल-मिल के गले बाँटेगे हम प्रीति मिठाई,
आपस मे चलेगी न कभी द्वेष-कटारी ।।५।। कब०

सर्वस्व लगाके मै करूं देश की सेवा,
घर-घर पै मै जा-जा के रखूं ज्ञान का मेला।
दुखो का सभी जीवो के हो जायगा खेवा,
भारत मे न देखूंगा कोई मूर्ख-अनारी ।।६।। कब०

जीवो को प्रमादो से कभी मै न सताऊ,
करनी के विषय देव है, अब मै न लुभाऊं।
ज्ञानी हू सदा ज्ञान की मैं ज्योति जगाऊँ,
समता मे रहूगा मैं सदा शुद्ध-विचारी ।।७।। कब०

❀ ❀ ❀

सफल जन्म

मत झिझको, मत दहलाओ, यदि बनना महामना है ।
जो नही किया वह 'पर' है, कर लिया वही 'अपना' है ॥
दो दिन का जीवन-मेला, फिर खडहर-सी नीरवता—
यश-अपयश बस, दो ही है, बाकी सारा सपना है ॥

दो पुण्य-पाप रेखाये, दोनो ही जग की दासी ।
है एक मृत्यु सी घातक, दूसरी सुहृद् माता-सी ॥
जो ग्रहण पुण्य को करता, मणिमाला उसके पडती ।
अपनाता जो पापो को, उसकी गर्दन मे फाँसी ॥

इस शब्द कोष मे केवल,—है 'आज' न मिलना 'कल' है ।
'कल' पर जो रहता है वह, निरुपाय और निर्बल है ॥
वह पराक्रमी-मानव है, जो 'कल' को 'आज' बनाकर—
क्षणभगुर विश्व-सदन मे, करता निज जन्म सफल है ।

✿ ✿ ✿

वीर निर्वाण

फिर सरसता जग उठी है प्राण में सचरित होकर ।
मानसर मे भर रहा है कौन यह जीवन निरन्तर ?

फिर नया सा हो रहा है रोम-रोम प्रदीप्त प्रमुदित ।
बज उठेगी उल्लसित हो आज हृत्तत्री कदाचित ॥

लग रहा है और कुछ ही—आज मुझको दिव्य जीवन ।
आज मानो लहलहाया—हो शतोमुख विश्व-उपवन ॥

प्राण के प्रत्येक कण में—आप्त-व्याप्त नवीनता है ।
मग्न हो, जयकेतु बन, फहरा रही स्वाधीनता है ॥

हाँ, इसलिये आनन्द है सर्वत्र खग-नर-देव-घर ।
आज पाया है महाप्रभु—'वीर' ने निर्वाण गुरुतर ॥

आवश्यक हिंसा को अहिंसा मानना चिन्तन का दोष है । हिंसा आखिर हिंसा है । यह दूसरी बात है कि आवश्यक हिंसा से बचना कठिन है । गृहस्थी सकल्पी हिंसा का त्यागी होता है ।

आत्म-तोष का एकमात्र मार्ग आत्म-सयम है । दोनो का परस्पर अटूट सम्बन्ध है । प्राणी सयम और इन्द्रिय सयम दो प्रकार का है ।

नवयुवकों से नम्र निवेदन

कौम की खातिर खुशी से सर कटाना चाहिये।
मर्दे मैदा बनके दुनिया को दिखाना चाहिये॥ १॥

अपने रुख से परद-ए गफलत उठाना चाहिये।
तालिबानेदीद[1] को जलवा दिखाना चाहिये॥ २॥

राग से मतलब न जिसको वास्ता हो देश से।
उसके आगे हमको अपना सर झुकाना चाहिये॥ ३॥

इक दया ही धर्म है ले जायगा जो मोक्ष मे।
जैन का यह फलसफा[2] सबको सिखाना चाहिये॥ ४॥

धर्म से अपने पतित जो हो चुका हो दोस्तो !
फिर नये सर से उसे जैनी बनाना चाहिये॥ ५॥

खाकसारी[3] की दलील इससे कोई बढकर नही।
कीनओ[4] बुगजो[5] हसद[6] दिल से मिटाना चाहिये॥ ६॥

देखते हैं आजकल गैरो को हम सीनासिपर।
ऐ जैनियो मैदान में तुमको भी आना चाहिएँ॥ ७॥

जा रहे है अपने भाई गैर की आगोश[7] में।
धर्म की जा है, उन्हें अपना बनाना चाहिये॥ ८॥

काटती है 'दास' क्योकर पाप के बन्धन को वे।
जैन की तलवार का जौहर दिखाना चाहिये॥ ९॥

आत्मा का पतन न हो इसलिए हिंसा न करें, यह है अहिंसा का सही मार्ग ! कष्ट का बचाव तो स्वयं हो जाता है।

---

१. देखने के इच्छुक २. धर्म, तालीम ३. नम्रता ४-५-६ दूसरे से जलना ७ गोद।

करो कुछ काम दुनिया में

अहिंसा धर्म का हर घर मे गर प्रचार हो जाए।
तो प्यारा स्वर्ग से बढकर यही ससार हो जाए ।। १ ।।

करो वो काम दुनिया मे कि पर-उपकार हो जाए।
तुम्हारे साथ औरो का भी वेडा पार हो जाए ।। २ ।।

जो प्यासा है लहू का, क्यो न वोह गमख्वार हो जाए।
रवा दुनिया मे पर-उपकार की जब धार हो जाए ।। ३ ।।

न जख्मी हो कोई उससे न वोह तलवार हो जाए।
मगर फिर भी जो निकले मुँह से दिल के पार हो जाए ।।४।।

अहिंसा धर्म की रगीनियो[1] में बूए उल्फत है।
ये वो मय[2] है पिए जो उम्र भर सरशार[3] हो जाए ।।५।।

अगर औरो के दर्दोगम को अपना दर्दोगम समझें।
अहिंसा धर्म की नय्या भँवर से पार हो जाए ।। ६ ।।

रहू ऐ 'दास' माथे पर न फिर टीका गुलामी का।
अगर भारत हमारा नीद से वेदार[4] हो जाए ।। ७ ।।

धर्म एक प्रवाह है। सम्प्रदाय उसका बाँध है। बाँध का पानी सिंचाई और अन्य कार्यों के लिए उपयोगी होता है। वैसे ही सम्प्रदाय से धर्म सर्वत्र प्रवाहित होता है। इसके विपरीत सम्प्रदायो मे कट्टरता, सकीर्णता आ जावे, तो यह केवल स्वार्थ-सिद्धि का अग बनकर कल्याण के स्थान पर हानिकारक और आपसी सघर्ष पैदा करने वाला हो जाता है।

शोषण का द्वार खुला रखकर दान करने वाले की अपेक्षा अदानी बहुत श्रेष्ठ है, चाहे वह एक कौडी भी न दे।

मनुष्य अपनी गलती को नही देखता, दूसरे की गलती को देखने के लिए सहस्राक्ष बन जाता है। अपनी गलती देखने के लिए जो आँखें है, उनको भी मूद लेता है।

---

१ खूबिया २ शराब ३ बेहोशी ४ जागना।

धनिक सम्बोधन

भारत के धनिको ! किस धुन मे, पडे हुए हो तुम वेकार ?
अपने हित की खबर नही, या नही समझते जग व्यवहार ?
अन्धकार कितना स्वदेश में, छाया देखो आँख उघार।
बिल बिलाट करते हैं कितने, सहते निश दिन कष्ट अपार ।।

कितने वस्त्रहीन फिरते है, क्षुत्पीडित है कितने हाय !
धर्म-कर्म सब बेच दिया है, कितनो ने होकर असहाय !!
जो भारत था गुरु देशो का, महामान्य, सत्कर्म प्रधान।
गौरवहीन हुआ वह, बन कर पराधीन, सहता अपमान ।।

क्या यह दशा देख भारत की, तुम्हे न आता सोच-विचार।
देखा करो इसी विधि क्या तुम, पडे-पडे दुख-पारावार ।।
धनिक हुए जिसके धन से क्या, योग्य न पूछो उसकी बात !
गोद पले जिसकी क्या उस पर, देखोगे होते उत्पात !!

भारतवर्ष तुम्हारा, तुम हो भारत के सत्पुत्र उदार।
फिर क्यो देश-विपत्ति न हरते, करते इसका बेडा पार ।।
पश्चिम के धनिको को देखो, करते है वे क्या दिन-रात।
और करो जापान देश के, धनिको पर कुछ दृष्टिनिपात ।।

लेकर उनसे सबक स्वधन का, करो देश उन्नति-हित त्याग।
दो प्रोत्साहन उन्हे जिन्हे है, देशोन्नति से कुछ अनुराग ।।
शिल्पकला विज्ञान सीखने, युवको को भेजो परदेश।
कला-सुशिक्षालय खुलवाकर, मेटो सब जनता के क्लेश ।।

कार्य-कुशल विद्वानो से रख प्रेम, समझ उनका व्यवहार।
उनके द्वारा करो देश मे, बहु उपयोगी कार्य प्रसार ।।
भारत हित सस्थायें खोलो, ग्राम-ग्राम मे कर सुविचार।
करो सुलभ साधन वे जिनसे, उन्नत हो अपना व्यापार ।।

चक्कर मे विलासप्रियता के, फँस मत भूलो अपना देश।
प्रचुर विदेशी व्यवहारो से, करो न अपना देश विदेश ।।
लोक दिखावे के कामो मे, होने दो नहिं शक्ति-विनाश।
व्यर्थ व्ययो को छोड, लगो तुम, भारत का करने सुविकाश ।।

वैर-विरोध, पक्षपातादिक, ईर्षा, घृणा सकल दुष्कार।
रह न सकें भारत मे ऐसा, यत्न करो तुम बन समुदार।
शिक्षा का विस्तार करो यो, रहे न अनपढ कोई शेष ।।
सब पढलिख कर चतुर बनें औ, समझे हित-अनहित सविशेष ।।

करें देश उत्थान सभी मिल, फिर स्वराज्य मिलना क्यो दूर ?
पैदा हो 'युगवीर' देश मे, तब क्यो रहे दशा दुख-पूर ।।
प्रबल उठे उन्नति-तरग तव, देखें सब भारत-उत्कर्ष।
धुल जावे सब दोष कालिमा, सुखपूर्वक दिन कटें सहर्ष ।।

❀ ❀ ❀

धर्म-स्थिति निवेदन

कहाँ वह जैनधर्म भगवान !

जाने जग को सत्य सुझायो, टालि अटल अज्ञान।
वस्तु-तत्व पै कियो प्रतिष्ठित, अनुपम निज विज्ञान ।। कहाँ० ।।

साम्यवाद को प्रकृत प्रचारक, परम अहिंसावान ।
नीच ऊँच निरधनी-धनी पै, जाकी दृष्टि समान ।। कहाँ० ।।

देवतुल्य चाण्डाल वतायो, जो है समकित वान ।
शूद्र, म्लेच्छ, पशुहू ने पायो, समवशरण में स्थान ।। कहाँ० ।।

सती-दाह, गिरिपात, जीव बलि, माशासन मद-पान ।
देव मूढता आदि मेटि सब, कियो जगत कल्यान ।। कहाँ० ।।

कट्टर वैरी हू पै जाकी—क्षमा, दयामय वान ।
हठ तजि, कियो अनेक मतन को, सामजस्य-विधान ।। कहाँ० ।।

अब तो रूप भयो कछु औरहि, सकहिं न हम पहिचान ।
समता-सत्य-प्रेम ने इक सग, यातें कियो पयान ।। कहाँ० ।।

❀ ❀ ❀ ❀
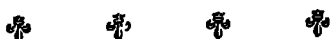
जीवन सरस भी है, नीरस भी है। सुख भी है, दुख भी है। सुख कुछ भी है, कुछ भी नही है। नीरस को सरस, दुख को सुख, कुछ भी नही को सब बनाने वाला कलाकार है।

पदार्थ प्राप्ति पर जो आनन्द मिलता है, वह तो क्षणिक होता है।···किन्तु वस्तु-निरपेक्ष आनन्द ही स्थायी होता है।

उपदेशिक ढाला

(देशी—जब वक्त पड़ा तब कोई नहीं)

अब मोह नीद से उठ चेतन, क्यू भूल रहा जोबन धन मे।
तेरे सुख के साथी मात-पिता, सुत-बाधव सोच जरा मन मे॥

नर जन्म अमूल्य मिला तुझको, क्यो सोय रहा सुख चैनन में।
कर ले अब तो सत्सग जरा, समझाय रहे गुरु सैनन मे॥१॥

तेरा कुटुम्ब कबीला स्वारथ का, विन स्वारथ देत दगा खिन में।
यह चाँदनी चेतन दो दिन की, विन काम लुभाय रहा किन में॥२॥

दिन खेल-कूद मे खोय दिया, नही धर्म किया बालापन में।
प्रभु का गुन गान किया न कभी, विषया वश हो भर जोबन मे॥३॥

हय हाथी ऊपर केल करा, रग-रेल करा चढ स्यदन मे।
चरचा तन केशर चन्दन मे, नही चित्त दिया गुरु वन्दन मे॥४॥

अब वृद्ध भया कच श्वेत भया, कफ वाय ने घेर लिया छिन में।
तेरी डगमग नाडी डोल रही, मनु कम्पन वाय हुआ तन मे॥५॥

गये रावण विक्रम भोज वली, प्रजली मनु होरी फागन मे।
उस मौज का खोज रहा न रती, नर तू भूली किस वागन मे॥६॥

दया धर्म का सग्रह तू कर ले, धर ले गुरु शिक्षा कानन मे।
कहा सोहन उत्तम धर्म यही, जिन आगम वेद पुरानन मे॥७॥

ॐ ॐ ॐ

लोग सयम को निषेधात्मक मानते है, पर वह जीवन का सर्वोपरि क्रियात्मक पक्ष है।

जिसकी चाह नही है, उसकी राह सामने है और जिसकी चाह है, उसकी राह नही है। आज का मनुष्य विपर्यय की दुनिया मे जी रहा है। चाह सुख की है, कार्य दु.ख के हो रहे है।

सुख का हेतु अभाव भी नही है और अति भाव भी नही है। सुख का हेतु स्वभाव है।

नीच और अछूत

नाली के मैले पानी से मै बोला हहराय,
हौले वह रे नीच कही तू मुझ पर उचट न जाय।

'भला महाशय' कह पानी ने भरी एक मुसकान,
बहता चला गया गाता सा एक मनोहर गान ॥ ॥

एक दिवस मैं गया नहाने किसी नदी के तीर,
ज्योही जल अञ्जलि मे लेकर मलने लगा शरीर।

त्योही जल बोला मे ही हू उस नाली का नीर;
लज्जित हुआ, काठ मारा सा मेरा सकल शरीर ॥ २ ॥

बैंगुअन तोडी मुँह मे डाली वह बोली मुसकाय,
ओह महाशय ! बढी हुई मै नाली का जल पाय।

फिर क्यो मुझ अछूत को मुँह मे देते, हो महाराज !
सुन कर उसके बोल हुई हा ! मुझको भारी लाज ॥ ३ ॥

खाने को बैठा भोजन मे ज्योही डाला हाथ;
त्योही भोजन बोल उठा चट विकट हँसी के साथ।

नाली का जल हम सबने किया एक दिन पान,
अतः नीच हम सभी हुए फिर क्यो खाते श्रीमान ॥ ४ ॥

एक दिवस नभ में अभ्रो की देखी खूब जमात;
जिससे फडक उठा हर्षित हो मेरा सारा गात।

मै यो गाने लगा कि आओ अहो ! सुहृद घन वृन्द।
बरसो, शस्य बढाओ, जिससे हो हमको आनन्द ॥ ५ ॥

वे बोले, हे बन्धु, सभी हम है अछूत औ नीच;
क्योकि पनाली के जल-कण भी है हम सबके बीच।

कही अछूतो मे ही जाकर बरसेंगे जी खोल,
उनके शस्य बढेंगे, होगा उनको हर्ष अतोल ॥ ६ ॥

मै बोला, मै भूला था, तब नही मुझे था ज्ञान;
नीच-ऊंच भाई-भाई है भारत की सन्तान।

होगा दोनो बिना न दोनो का कुछ भी विस्तार,
अब न करूंगा उनसे कोई कभी बुरा व्यवहार ॥ ७ ॥

वे बोले यह सुमति आपकी करे हिन्द का त्राण,
उनके हिन्दू रहने मे है भारत का कल्याण।

उनका अब न निरादर करना, बनना भ्रात, उदार,
भेदभाव मत रखना उनसे करना मन से प्यार ॥ ८ ॥

क्रान्ति-पथे

तोडो मृदुल वल्लकी के ये सिसक-सिसक रोते से तार,
दूर करो सगीत कुञ्ज से कृत्रिम फूलो का शृगार।

भूलो कोमल, स्फीत-स्नेह-स्वर भूलो क्रीडा का व्यापार,
हृदय-पटल से आज मिटा दो स्मृतियो का अभिनय आगार।

भैरव शखनाद की गूज फिर-फिर वीरोचित ललकार,
मुरझाए हृदयो मे फिर से उठे गगन भेदी हुकार।

धधक उठे अन्तस्तल मे फिर क्रान्ति गीतिका की झकार—
विह्वल, विकल, विवश पागल हो नाच उठे उन्मद ससार।

दीप्त हो उठे उरस्थली मे आशा की ज्वाला साकार,
नस-नस में उद्दण्ड हो उठे नवयौवन रस का सचार।

तोडो वाद्य, छोड दो गायन, तज दो सकरुण हाहाकार,
आगे है अब युद्ध-क्षेत्र-फिर, उसके आगे—कारागार।

× × × ×

व्रती समाज की कल्पना जितनी दुरूह है, उतनी सी सुखद है। व्रत लेने वाला कोरा व्रत ही नही लेता, पहले वह विवेक को जगाता है। श्रद्धा और सकल्प को दृढ करता है। कठिनाइया झेलने की क्षमता पैदा करता है। प्रवाह के प्रतिकूल चलने का साहस लाता है; फिर वह व्रत लेता है।

चेतावनी

चेत चतुर नर कहै तनै सतगुरु, किस विधि तू ललचाना है ।
तन धन यौवन सर्व कुटुम्बी, एक दिवस तज जाना है । चे० ॥१॥

मोह माया को बडो जाल है, जिसमे तू लोभाना है ।
काल आहेरी चोट आकरी, ताक रह्यो नीशाना है । चे० ॥२॥

काल अनादि रो तू ही रे भटक्यो, तो पिण अन्त न आना है ।
चार दिना की देख चादनी, जिसमे तू लोभाना है । चे० ॥३॥

पूर्व भवरा पुण्य योग थी, नरकी देही पाना है ।
मास सवा नौ रहा गर्भ मे, उन्धै मुख झूलाना है । चे० ॥४॥

मल-मूत्र की अशुचि कोथली, माहे साकड दीना है ।
रुधिर शुक्रनो आहार अपवित्र, प्रथम पड़े तैं लीना है । चे० ॥५॥

ऊट क्रोड सुई सार की, ताती कर चोभाना है ।
तिण सू अष्ट गुणी वेदना गर्भ में, देख्या दुःख असमाना है । चे० ॥६॥

बालपणो थे खेल गँवायो, यौवन मे गर्वाना है ।
अष्ट प्रहर कीधो मद मस्ती, खोटी लाग लगाना है । चे० ॥७॥

रगी चगी राखत देही, टेढी चाल चलाना है ।
आठ प्रहर कीधो घर धन्धो, लग रहा आर्त्तध्याना है । चे० ॥८॥

मात-पिता-सुत बहिन-भाणजी, तिरिया सू दिल लीना है ।
वे नही तेरे तू नही उनका, स्वार्थ लगी सगीना है । चे० ॥९॥

अर्थ अनर्थ करी धन मेल्यो, घणा सू बैर बँधाना है ।
लक्ष्मी तो तेरे लारै न चलसी, यहां की यहा रह जाना है । चे० ॥१०॥

ऊचा-ऊंचा महल चिणाया, करै घना कारखाना है ।
घडी एक राखत नहि घर में, चालत जाय मशाना है । चे० ॥११॥

धर्म सेती द्वेष न धरना, परभव सेती डरना है ।
चित्त आपनो देख मुसाफिर, करनी सेती तरना है । चे० ॥१२॥

छिन-छिन में तेरी आयु घटत है, अञ्जली जैसे झरना है ।
कोडो यत्न करे बहुतेरा, तो पिण एक दिन मरना है । चे० ॥१३॥

जैन धर्म की प्राचीनता

इस धर्म की प्राचीनता के चिह्न मिलते जा रहे।
उपलब्ध मथुरा-स्तूप और उदय-गिरी बतला रहे॥

प्राचीनता इसकी जगत भर कर रहा स्वीकार है।
इस धर्म का ही इस दिशा मे गत ऋणी ससार है॥१॥

हाँ जब न पृथ्वी पर कही भी बौद्ध-वैदिक धर्म थे।
कल्याण-प्रद सर्वज्ञ तब इस धर्म के शुभ कर्म थे॥

जितने पुराने जैन मन्दिर आज मिलते है यहाँ।
उतने पुराने बोलिये अन्यत्र मिलते है कहाँ॥२॥

था राष्ट्र-धर्म कभी यही सिद्धान्त अति अभिराम थे।
बलवान थे, वरदान थे, गुणधाम थे, शिवधाम थे॥

इस धर्म का ही मुख्यत ध्रुव केन्द्र भारतवर्ष था।
यह ज्ञान में विज्ञान में सबमे प्रथम उत्कर्ष था॥३॥

चमका न धर्मादित्य केवल सर्व हिन्दुस्तान मे।
फैली प्रभा दूरस्थ इसकी एशिया यूनान मे॥

कार्थेज-अफ्रीका तथा मिश्रादि रोम फिनीशिया।
जाकर वहाँ तक भी सदैव निवास जैनो ने किया॥४॥

जग के पुरातन वेद भी अस्तित्व इसका मानते।
इतिहासवेत्ता धर्म की प्राचीनता को जानते॥

जो बौद्धमत से जैनियो की मानते उत्पत्ति को।
निष्पक्ष हो देखे तनिक इतिहास की सम्पत्ति को॥५॥

× × × ×

रत्नत्रय अत्यन्त दुर्लभ वस्तु है। मानवजीवन की सफलता रत्नत्रय के पाने में है।

× × × ×

पहले-पहल बुराई करते घृणा होती है, दूसरी सकोच, तीसरी बाद निःसंकोचता आ जाती है और चौथी बार ये साहस बढ़ जाता हैं।

हम और हमारे पूर्वज़

जैसे हमारे पूज्य थे उनकी न हम में गन्ध है।
रहते हुए सम्बन्ध भी उनसे न अब सम्बन्ध है ॥
वे कौन थे क्या कर गये इसको भुलाया सर्वथा।
आडम्बरो ने आज तो हमको लुभाया सर्वथा ॥१॥

उनकी कथाओं पर कभी विश्वास भी आता नही।
उनका सुखद वह नाम भी अब कान को भाता नही ॥
उनके अलौकिक कार्य को हम आज मिथ्या मानते।
अपने हिताहित को तनिक भी हम नही पहचानते ॥२॥

पूर्वज प्रबल रणवीर थे तो आज हम गृहवीर है।
वे क्षीर थे विख्यात तो हम आज खारे नीर है ॥
जीवन बिताते थे सकल अपना परम पुरुषार्थ मे।
हम भी बिताते आज जीवन को यहाँ पर-स्वार्थ मे ॥३॥

वे चाहते थे लोक में सबका सतत उपकार हो।
हम चाहते है एकदम सबका महासहार हो ॥
उनके सदा इच्छा रही नित दूसरे उन्नत बने।
लिप्सा हमारी है यही नित दूसरे अवनत बने ॥४॥

वे थे जगत के रत्न अनुपम हम न पद की धूल है।
वे फूल थे मकरन्दयुत पर हम न किंशुक फूल है ॥
त्रैलोक्य के वे चन्द्रमा थे पर न हम नक्षत्र है।
पूर्वज हमारे प्रेम से पुजते रहे सर्वत्र है ॥५॥

विचार के अनुरूप ही आचार बनता है अथवा विचार ही स्वय आचार का रूप लेता है।

आचार-शुद्धि की आवश्यकता है, उनके लिए विचार-क्रान्ति चाहिए। उसके लिए सही दिशा मे गति, और गति के लिए जागरण अपेक्षित है।

× × × ×

लाला तनसुखराय जी को ये कविताये और भजन अत्यत प्रिय थे। वे इन कविताओ से प्रकाश ग्रहण करते थे। उन्होने अपने हाथ से लिखकर इन सब कविताओ को बड़े प्रेम से सजोकर रक्खा था।

सद्धर्म सन्देश

मन्दाकिनी दया की जिसने यहाँ बहाई, हिंसा कठोरता की, कीचड़ थी धो बहाई।
समता-सुमित्रता का ऐसा अमृत पिलाया, द्वेषादि रोग भागे, मद का पता न पाया॥

उस ही महान प्रभु के, तुम हो सभी उपासक, उस वीर धीर जिनके सद्धर्म के प्रचारक।
अतएव तुम भी वैसे बनने का ध्यान रक्खो, आदर्श भी उसी का, आँखो के आगे रक्खो॥

सकीर्णता हटाओ, दिल को बड़ा बनाओ, निज कार्य-क्षेत्र की अब, सीमा को कुछ बढाओ।
सब ही को अपना समझो, सबको सुखी बना दो, औरो के हेतु अपने, प्रिय प्राण भी लगा दो॥

ऊँचा उदार पावन, सुख-शाति पूर्ण प्यारा। यह धर्म वृक्ष सबका, निजका नही तुम्हारा॥
रोको न तुम किसी को, छाया मे बैठने दो। कुल जाति कोई भी हो, सताप मेटने दो।

जो चाहता हो अपना, कल्याण मित्र ! करना जगदेक बन्धु जिनकी, पूजा पवित्र करना।
दिल खोल करके उसको, करने दो कोई भी हो, फलते हैं भाव सबके, कुल-जाति कोई भी हो॥

सतुष्टि शाति सच्ची, होती है ऐसी जिससे, ऐहिक-क्षुधा पिपासा, रहती है फिर न जिससे।
वह है प्रसाद प्रभु का, पुस्तक-स्वरूप इसको, सुख चाहते सभी है, चखने दो चाहे जिसको॥

यूरुप अमेरिकादिक, सारे ही देश वाले, अधिकारी इसके सब है, मानव सफेद काले।
अतएव कर सके वे, उपभोग जिस तरह से, यह बाँट दीजिए उन, सबको ही उस तरह से॥

ऐ धर्मरत्न धनिको ! भगवान की अमानत, हो सावधान सुन लो, करना नही खयानत।
दे दो प्रसन्न मन से, यह वक्त आ गया है, इस ओर सब जगत का, अब ध्यान जा रहा है॥

कर्त्तव्य का समय है, निश्चिन्त हो न बैठो, थोथी बडाइयो मे, उन्मत्त हो न ऐंठो।
सद्धर्म का सदेशा, प्रत्येक नारि-नर मे; सर्वस्व भी लगा कर फैला दो विश्व भर मे॥

—: ० :—

प्रार्थना

मुझे है स्वामी उस बल की दरकार।

अड़ी खडी हो अमित अडचने, आड़ी अटल अपार।
तो भी कभी निराश निगोडी, पटक न पावे द्वार॥ मुझे० ॥

सारा ही ससार करे यदि, दुर्व्यवहार-प्रहार।
हटे न तो भी सत्य मार्ग-गत, श्रद्धा किमी प्रकार॥ मुझे० ॥

धन-वैभव की जिस आंधी से, अस्थिर सब संसार।
उससे भी न कभी डिग पावे, मन बन जाय पहार ।। मुझे० ।।

असफलता की चोटो से नहि, दिल मे पडे दरार।
अधिकाधिक उत्साहित होऊं, मानू कमी न हार ।। मुझे०।।

दुख-दरिद्रता-कृत अति श्रम से, तन होवे बेकार।
तो भी कभी निरुद्यम हो नहि, बैठूं जगदाधार ।। मुझे० ।।

जिसके आगे तन बल धन बल, तृणवत तुच्छ असार।
महावीर जिन ! वही मनोबल, महामहिम सुखकार ।। मुझे० ।।

× × × ×

समाज

पाठक अहिंसा धर्म पर स्थित धर्म की भीत है।
करना दया जी मात्र पर यह जैन धर्म पुनीत है ।।
निज की दशा उल्लेख मे यह लेखनी बन कर्कशा।
कैसे लिखे निज की घृणा-मय दु:खप्रद हा दुर्दशा ।।१।।

जैसा अहिंसा धर्म निज वक्तव्य मे रहता यहाँ।
वैसा अहिंसा धर्म हा ! कर्तव्य मे रहता कहाँ ?
जल छानने मे बस समक्ष रक्खा अहिंसा धर्म है।
करते कुठाराघात नर पर हाय ! कैसा कर्म है ।।२।।

श्रीमान् होकर हम अविद्या अन्धता के दास है।
परमार्थ से अति दूर होकर स्वार्थता के पास है ।।
निज पूजते है पीर-पैगम्बर कुगुरु हित जान के।
श्रद्धा हटी निज धर्म से मिथ्यात्व-मग को मान के ।।३।।

उपहास मस्तक का हुआ जिससे न समझे तत्व को।
हटग्राहिता धारण करे छोडा धवल सम्यक्त्व को ।।
होकर कलकी धर्म को हमने कलकित कर दिया।
आदर्श अनुपम में सदा को पाप अकित कर दिया ।।४।।

हम-सी अधम सन्तान से सद्धर्म-दीपक बुझ चला।
श्रावक न होते और कुछ होते तभी होता भला ।।

हत रूढियो को धर्म का रूपक बनाया आज है।
फसकर उसीमे जाति भी अब हो रही मुहताज है ॥५॥

हा ! न्याय-नीति नियम नशाकर घोर हटधर्मी बने।
परिणत किया जिन धर्म को सन्ताप शापो मे सने ॥
सुनते न क्यो कहते यदपि उत्थान की निज वार्ता।
भावी समुन्नति के लिए मन मे न नेक उदारता ॥६॥

सोये बहुत हे बन्धुओ ! अब शीघ्र ही जागो, उठो।
अज्ञान निद्रा मोह कल्मष द्वेष को त्यागो उठो ॥
इससे अधिक कुछ और मुझको आपसे कहना नही।
श्रम से हमारी जाति उन्नति शीघ्र पा सकती सही ॥७॥

पूज्य पिता की जय जय जय

जय जय महाघोष से गू जी, दशो दिशाये विश्व महान।
पुण्य नीद से चकित इन्द्र ने, सुना श्री जिनवर का गान ॥

दिग्गज कँपे और दिग्पालो ने, गुण-गौरव गान किये।
पुण्यवान सर सेठ हुकमचन्द, युग-युग सौ-सौ वर्ष जिये ॥

नेत्रहीन दीपक दिखलावे, जगमग दीपक वाले को।
और पंगु यदि छूना चाहे, रजत ज्योति उजियाले को ॥

नभ के तारे गिन जाने का, पूर्ण हो सके यदि विज्ञान।
तो शायद कोई कर पाये, पूज्य पिताश्री का गुणगान ॥

किन्तु स्वय की लौह लेखनी, पर मेरा अधिकार नही।
नही पूर्ण होगी यश गाथा, मौन रहूँ स्वीकार नही ॥

रोम-रोम पुलकित है मेरा, मेरा मुझे अपना भी भान।
गाजे अपनी हृदय वीन पर, पूज्य पिताश्री का यशगान ॥

त्याग किया जिसने इस जग मे, उसकी कीर्ति ध्वजा फहरी।
राग और वैराग सभी ले, जिनकी जयति ध्वजा लहरी ॥

महिमामय कर्तव्यशील, औदार्य दुन्दुभी वाज रही।
सहनशीलता, गुणग्राहकता गजारूढ हो गाज रही ॥

नीतिकुशल चारित्रवान्, निर्भीक साहसी और विनीत।
उत्साही अभिमान रहित, गम्भीर विवेकी और पुनीत॥

धर्म अर्थ अरु काम मोक्ष, सब एक साथ तुमने साधे।
साम दाम और दण्ड भेद से, जन समूह रक्खा बाँधे॥

पुण्ययोग सब शुभ कर्मों के, तव चरणों पर न्यौछावर।
और विश्व की धवल कीर्ति सब, तुम्हे रिझाये त्याग प्रवर॥

भरत चक्रवर्ती-सा वैभव, पाकर भी तुम अमल धवल।
और उन्ही से पंचम युग में, पङ्क हीन जल भिन्न कमल॥

ओ दीनो के प्राण, पीड़ितों के रक्षक, आधार महान।
जैन जाति के मेरुदण्ड, औ विद्वद्गुण के मित्र प्रधान॥

अन्न, वस्त्र, औषधि, शिक्षा के मुक्तहस्त दानी विद्वान।
धर्म दिवाकर औ कुल भूषण, मूर्तिमान आदर्श महान॥

हम छोटे बालक सब तेरे, श्रीचरणो की छाया में।
निडर और निर्भीक रह रहे, इन्द्रजाल-सी माया मे॥

तव प्रसाद मे हीरा भैया, हीरा सम है ज्योतिर्मान।
और हमारे छोटे भैया, भी उनमे ही कीरतिवान॥

आत्म-ज्योति की जगी दीपिका, कंचन-सी आभा पाकर।
आत्मलीन हो गई आत्मा, प्रेमामृत घन बरसाकर॥

आज प्रार्थना करते हम सब, यह आशीष हमें भी दो।
तेरे पदचिन्हों पर चल दें, हममें इतना बल भर दो॥

प्रभु से इतनी विनय हमारी, ध्येय तुम्हारा प्राप्त तुम्हे।
तुमसी धवल कीर्ति श्री गरिमा, धर्म भाव हो प्राप्त हमे॥

अवनि और अंबर तक छाये, इस गुण यश गाथा की जय।
गगन गुंजा दें हम सब मिलकर पूज्य पिता की जय जय जय॥

* * * *

धर्म जो कि पुस्तको, मन्दिरो और मठो मे बन्द है, उसे जीवन मे लाना होगा। बिना जीवन मे उतारे केवल आस्तिकवाद की दुहाई देने मात्र से क्या होने वाला है।

महापुरुष

जो विपत्ति मे धैर्य क्षमा रखते ऊँचे वन।
जगत्प्रलोभन देख नही होते चचल मन ।।
सभा भूमि में वचन कुशल है गौरवशाली।
युद्ध-भूमि में दिखलाते वीरता निराली ।।

सदाचार सन्याय पर मरने को तैयार है।
महापुरुष वे ही यहां ईश्वर के अवतार है ।।

सम्पति आई हर्ष नही पर आया मन मे।
आई अगर विपत्ति क्षीणता नही वदन में ।।
सत्तू पावें कभी-कभी या मोदक पावे।
पर घबरावें नही, नही मन मे इतरावे ।।

ऐसी जिनकी रीति है पुरुष सदा वे धन्य है।
उन समान सौभाग्य तो कभी न पाते अन्य है ।।

स्वदेश सन्देश

महावीर के अनुयायी प्रिय पुत्र हमारे—श्वेताम्बर, ढूंढिया, दिगम्बर-पथी सारे।
उठो सवेरा हो गया, दो निद्रा को त्याग, कुक्कु बाँग लगा चुका, लगा बोलने काग।
अँधेरा गत हुआ ।।

उदयाचल पर बाल-सूर्य की लाली छाई; उषा सुन्दरी अहो, जगाने तुमको आई।
मन्द-मन्द बहने लगा, प्रात मलय-समीर,सभी जातियाँ है खडी, उन्नति-नद के तीर।
लगाने डुबकियाँ ।।

उठो उठो इस तरह कहाँ तक पडे रहोगे, कुटिल काल की कडी धमकियाँ अरे! सहोगे।
मेरे प्यारो! सिंह से, बनो न कायर स्यार, तन्द्रामय-जीवन बिता, बनो न भारत भार।
शीघ्र शय्या तजो ।।

मत इसकी परवाह करो क्या कौन कहेगा, तथा सहायक कौन, हमारे सग रहेगा।
क्या चिंता तुम हो वही, जिसकी शक्ति अनत, जिसका आदि मिला नही, और न होगा अत।
अटल सिद्धान्त है ।।

यद्यपि कुछ कुछ लोग, मार्ग रोकेंगे आकर किन्तु शीघ्र ही भाग जायेंगे धक्के खाकर।
यदपि मिलेंगे मार्ग मे, तुमको कितने शूल, पग रखते बन जायेंगे वे सबके सब फूल।
यही आश्चर्य है ॥

युद्ध स्वार्थ अथवा असत्य से करना होगा, जीने ही के लिए, तुम्हे अब मरना होगा।
तब न मरे अब ही मरे, मरना निस्सन्देह, अब न मरे सब कुछ रहे, रहे न केवल देह।
देह ममता तजो ॥

सुनो-सुनो ! जो आज, कही साहस तुम हारे, डूबोगे यो, नही लगोगे कभी किनारे।
तन-मन-धन से देश हित, करो प्रमाद विसार; सबके सग मिलकर सहो, भूख-प्यास या मार।
पुनः आनन्द भी ॥

पिछड गये हो बहुत, लड रहे हो आपस मे, पकड़-पकड रूढियाँ, घोलते हो विप रस में।
ऐसा ही करते रहो, तो विनाश है पास, बस भविष्य मे देयगा, तव-परिचय इतिहास।
एक मृत जाति कह ॥

—:०—

लेखनी

हे लेखनी निर्भीक लिख दे कौम की असली दशा।
प्रत्येक मानव रूढ़ियो के जाल मे कैसा फँसा ?
करनी पडेगी बन्धु कृत्यों की तुझे आलोचना।
प्रियवर हमारे क्या कहेगे यह न मन मे सोचना ॥१॥

प्रिय सत्य लिखने में तुझे परमेश पति का भय नही।
ध्रुव सत्य से डरकर कभी होती जगत में जय नही ॥
लज्जा-विवश यदि दोप हम कहते नही तो भूल है।
भीषण तनिक-सी भूल वह सर्वत्र अवनति मूल है ॥२॥

जब तक न दोपो की कड़ी आलोचना की जायगी।
तब तक न यह नर जाति अपना पथ-प्रदर्शक पायगी ॥
कर्तव्य वश करना पडे जो कार्य इस समार मे।
वह कार्य कर आधार प्रभु कर्तव्य पारावार मे ॥३॥

समाज सम्बोधन

?, जैन कौम अपना तू सगठन बनाकर।
अब सुर्खरू भी होजा बदनाम हो हुआ कर॥ १॥

जुल्मोसितम के बदले लाजिम है ये दया कर।
हो रोग दूर जिससे ऐसी कोई दवा कर॥ २॥

दिल से खुदी मिटाकर दिल आइना बनाकर।
किस्मत हमें दिखा दे बिगड़ी हुई बनाकर॥ ३॥

जब हम कहेंगे तुमको तुम वीर के भगत हो।
इस कौम का दिखा दो इक सगठन बना कर॥ ४॥

पीछे हटो न हरगिज कुरबान जान कर दो।
मैदाने मार्फत मे रक्खो कदम जमा कर॥ ५॥

क्या देखते हो आओ उठो कमर को कसके।
खिदमत करो वतन की अब खूब मन लगाकर॥ ६॥

लुत्फोकरम के बदले जुल्मोसितम न करना।
क्या खाक पाओगे सुख औरो का दिल दुखा कर॥ ७॥

ऐ 'दास' आरजू है घर-घर मे हो उजाला।
कर दो जहां मे रोशन मन का दिया जला कर॥ ८॥

× × × ×

हृदयोद्बोधन

हृदय तू मेरा कहना मान।

सबसे बन्धुभाव रख मन मे, तज अनुचित अभिमान।
नीच न समझ किसी नर को तू, नीच कर्म जिय जान॥१॥

भाव-भेष-भाषा-भोजन हो भाइयन के सामान।
इनको एक विवेक युक्त कर, हो तेरा उत्थान॥२॥

क्या जीना जो निज हित जीना, शूकर-स्वान-समान।
कर पावे यदि देश हेतु कछु, तो तू है धीमान॥३॥

आपस की फूट

इस दर्जा तेरी हालत ऐ कौम गिर रही है।
कागज की नाव गोया पानी पै तिर रही है॥
तकदीर आज तेरी क्यो तुझसे फिर रही है।
सुख-शान्ती के बदले आफत मे घिर रही है॥

तेरे ही दम कदम से थी रोशनी जहाँ में।
तू क्या थी कह सके ये ताकत नही जबा में॥ १॥

ऐसा भी एक दिन था तू लाखो पै थी भारी।
अफसोस आज खुद ही तू बन गई भिखारी॥
सीने पै तेरे हरदम चलती है गम की आरी।
लुत्फों अदा के बदले सीखी सितम शआरी॥

हाथो से खुद तू अपने बरबाद हो रही है।
सेजो को छोडकर तू काटो पै सो रही है॥ २॥

आपस की फूट तुझको बरबाद कर रही है।
मैदान जीतकर तू खुद आप हर रही है॥
ससार की हवस में नाहक तू मर रही है।
जुर्मो गुनाह की गठरी क्यो सर पै धर रही है॥

गफलत का परदा अपनी आखो से अब उठा दे।
शाने कुहन का जलवा इक बार फिर दिखा दे॥ ३॥

औरो की तरह तू भी दुनिया में नाम करले।
जो काम कल है करना, वोह आज काम करले॥
मरना पडेगा आखिर गो इन्तजाम करले।
भक्ति दिखा के अपनी मालिक को राम करले॥

गफलत की नीद मे क्यो मदहोश हो रही है।
काटे तू अपनी राह मे खुद आप बो रही है॥ ४॥

खोल आँख देख गाफिल दुनियाँ की क्या है हालत ?
हर कौम की तमन्ना हासिल हो जाहो[1] हशमत[2]॥
हर शख्श के लबो पर जिक्रे हुसूलेरफअत[3]।
तुझको मगर नही है पर्वाए नंगोजिल्लत[4]॥

ऐ कौम होश मे आ कुछ नाम कर जहा में।
जो काम मोक्ष के हो, वोह काम कर जहा में॥ ५॥

---

१. रुत्बा २. शान ३. बुलन्दी का हासिल करना ४. बदनामी।

हुनर अपने दिखाओ तुम

अजीजो[1] कीनओ[2] बुगजो[2] हसद[2] दिल से मिटाओ तुम।
खुशी से कौम की खातिर लहू अपना बहाओ तुम ॥ १ ॥

जो भूखे मर रहे है कुछ इन्हें खाना खिलाओ तुम।
मुईने बेकसा[3] होकर न इतना जुल्म ढाओ तुम ॥ २ ॥

करो कुछ दीन की भी फिक्र ऐ दौलत के मतवालो।
न पीकर बाद-ए पिन्दा[4] कि खुद को भूल जाओ तुम ॥ ३ ॥

सखी, जय्याज, दानी, रहमदिल हो नेक खसलत हो।
जो रखते हो हुनर मैदान मे आकर दिखाओ तुम ॥ ४ ॥

जरा तो रहम खाओ बेकसो की आहो जारी पर।
खुदा के वास्ते जुल्मोसितम इतने न ढाओ तुम ॥ ५ ॥

तसाहुल[5] से तुम्हारे हो गये बेधर्म जो लाखो।
करो तदबीर कुछ ऐसी उन्हे अपना बनाओ तुम ॥ ६ ॥

तुम्हारे दिल मे गर हुब्बे वतन का जोश बाकी है।
बनाकर संगठन अपना हमे भी तो दिखाओ तुम ॥ ७ ॥

मसल मशहूर है ऐ दास 'दास' यह सारे जमाने मे।
दुबारा फिर गिनो गर गिनते-गिनते भूल जाओ तुम ॥ ८ ॥

इस धर्म को बचा दो

ऐ जैन नौजवानो काहिलपना हटा दो,
चढ़ो कमर को कसके आगे कदम बढ़ा दो ॥ १ ॥

निकलक की तरह तुम मजहब पै सीखो मरना,
गैरो के आक्रमण[6] से इस धर्म को बचा दो ॥ २ ॥

ऐ सेठ साहूकारो ऊँची दुकान वालो,
परचार धर्म का हो कुछ धन को भी लुटा दो ॥३॥

तुम सगठन बनाओ छोडो निफाक[7] अपना,
हम एक हो गए है औरो को यह दिखा दो ॥ ४ ॥

---

१. प्यारो २. दूसरो से द्वेष-भाव ३. गरीबो के मददगार ४. गफलत की शराब ५. लापरवाही। ६ हमला ७ फूट।

सन्तान वीर होकर नामर्द बन रहे हो,
होते हैं वीर कैसे आलम को यह दिखा दो ॥ ५ ॥

मशगूल[1] ऐश[2] में हो टुक ध्यान दो इधर भी,
भूखे जो मर रहे है खाना इन्हे खिला दो ॥ ६ ॥

बिगडे हुए तुम्हारे सब काम ठीक होगे,
हाँ धर्म पर तुम अपना तन-मन ये सब मिटा दो ॥ ७ ॥

मुस्लिम जो हो रहे है प्यारे तुम्हारे भाई,
फिर फिक्र अपना करना पहले इन्हे बचा दो ॥ ८ ॥

यह फर्ज है तुम्हारा यह धर्म है तुम्हारा,
सबको सबक दया का ऐ जैनियो सिखा दो ॥ ९ ॥

ऐ वीर ! 'दास' की अब अन्तिम विनय यही है,
तुम बेकसो की सेवा करना मुझे सिखादो ॥ १० ॥

❦ ❦ ❦ ❦
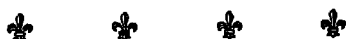
अधिकार

जल जाये प्राणो की ममता, मिट जाये जग का अनुराग ।
ओ गायक ! गा ऐसा गायन, धधक उठे जो ऐसी आग ॥

कम्पित मन दृढता को पाए—जाए सुप्त हृदय भी जाग ।
उस स्वराग मे लय हो, करदू—मैं अपने प्राणो का त्याग ॥

मर जाए कायरता मन की—नाहरता पाए सन्मान ।
मानवता उत्सुक मन होकर—निर्मित करे भविष्य महान ॥

विकसित हो अभिलाषाएँ भी—और अलौकिक सुखप्रद-ज्ञान ।
छेड़-छेड़ ! बस मेरे गायक वही सुरीली मोहक तान ॥

क्षेम रहे, या प्रलय मचे, या—विश्व कर उठे हाहाकार ।
पर स्वतत्र बन जाने का हो—मन में मेरे भव्य-विचार ॥

वाणी, आकृति, और क्रिया से—हो बस, प्रगट यही उद्‌गार ।
नही चाहिये मुझे पराया—मिल जाये मेरा अधिकार ॥

---

१. मस्त २. ऐशो-आराम ।

वन्दे वीरम्

पुण्य दिवस है आज वीर प्रभु ने अवतार लिया था ।
दुख-विश्व के साथ एक गुरुतर उपकार किया था ।।

कठिन कार्य नेतृत्व-लोकहित को स्वीकार किया था ।
मन्त्र अहिंसा का जगती को करुणाधार दिया था ।।

है जिसके नेतृत्व काल की अब तक हम पर छाया ।
'हम उनके' यह कहने भर का गौरव हमने पाया ।।

यदि हम उनके पथ पर चलते तो मिट जाती माया ।
रहता नही कभी भी यह मन सुख के हित ललचाया ।।

वह विभूति ! जिनका दर्शन है सबको मगलकारी ।
जिनकी शान्ति-मुखाकृति से तर जाते पापाचारी ।।

नाम मात्र जिनका अ-व्यर्थ कहलाता सकटहारी ।
अभय लोक का वासी बनता वीर-नाम व्यापारी ।।

वन्दनीय वह अखिल विश्व के माया-मोह विजेता ।
सर्व शक्ति-शाली परमेश्वर ! जग के अनुपम नेता ।।

सीमा-हीन ज्ञान के बल पर, है अणु-अणु के वेत्ता ।
गाते जिनकी सतत् महत्ता मुनि सुर-गण अधिनेता ।।

हृदय उन्ही के चिन्तन मे अब भक्ति युक्त होकर हम ।
बदल वासना-पूर्ण विश्व का यह मिथ्या कार्य-क्रम ।।

तभी वेदना-वह्नि स्वत ही, हो जावेगी उपशम ।
अत प्रेम से कहो निरन्तर सुख-कर वन्दे वीरम् ।

❦ ❦ ❦ ❦

छोटे भिखारियो के लिए तो सरकार भिखारी-बिल बना देगी, पर मै पूछना हूँ कि इन बडे भिखारियो का सरकार क्या करेगी ? जब चुनाव आते है, तब ये बडे भिखारी घर-घर डोलते है—"लाओ वोट और लो नोट !"

✶ ★ ✶ ✶

मै चाहता हूँ, प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे के सद्विचारो का समादर करे । समस्त धर्मो के प्रति सहिष्णुता रखे । उदार बनेंगे तो पाएँगे, सकुचित बनेंगे तो खोयेंगे ।

अतीत-स्मृति

इन सूखे हाडो के भीतर भरी धधकती-ज्वाला ।
जिसे शान्त करने समर्थ है नही असित घनमाला ।।
इस भग्नावशेप की रज में समुत्थान की आशा—
रखती है अस्तित्व, किन्तु है नही देखने वाला ।।

माना, आज हुए है कायर त्याग पूर्वजों की कृति ।
स्वर्ग अतीत, कला-कौशल, बल, हुआ सभी कुछ विस्मृति।
पर फिर भी अवशिष्ट भाग मे भी इच्छित जीवन है—
वह क्या ? यही कि मन मे खेले नित अतीत की स्मृति ।।

पतन मार्ग से विमुख, सुपथ मे अग्रणीयता देकर ।
मानवीयता के सुपात्र मे अमर-अमिय-रस को भर ।।
कर सकती नूतन-उमगमय ज्योति-राशि आलोकित—
भूल न जाएँ यदि हम अपने पूर्वगुणी-जन का स्वर ।।

वह थे, हाँ ! सन्तान उन्ही की हम भी आज कहाते ।
पर कितना चरणानुसरण कर कीर्तिराशि अपनाते ।
'कुछ भी नही !' इसी उत्तर मे केन्द्रित सारी चेष्टा—
काश ! याद भी रख सकते तो इतना नही लजाते ।।

घर के धन्ना सेठ

है वीर वही कुछ दुनिया मे, जो देश के हित मर जाते है ।
रहते है हमेशा वोह जिन्दा, जो धर्म पै जान गँवाते है ।। १ ।।

कुढता है कोई तो कुढने दो, जलता है अगर तो जलने दो ।
जो भाई हमारे गाफिल हैं, सोते से हम उनको जगाते है ।। २ ।।

वो घर के धन्ना सेठ सही, बलवान सही, धनवान सही ।
लेकिन ये बताए तो कोई कुछ कौम के भी काम आते है ।। ३ ।।

अपनो से मोहब्बत रखते हैं गैरो से नही कुछ वैर हमे ।
मिल जुल के रहो ससार मे तुम पैगाम ये सबको सुनाते है ।। ४ ।।

ऐ 'दास' न कर गम कुछ इसका, जलने से न गैरो के घबरा ।
हम अपने बिछुडे भटको को सीने से अपने लगाते है ।। ५ ।।

तेरी आयु में कमती पड़े रोज पल छिन की

तेरी आयु मे कमती पडे, रोज पल छिन की, रोज पल छिन की।
करना सो करले आज खबर नही कल की ।।

तू न गर्भ मास मे निश दिन कष्ट सहे था ।
ऊपर को पैर नीचे तेरा शीश रहे था ।।
तेरे आस-पास मल और मूत्र वहे था ।
पडा घोर नरक मे तू राम ही राम कहे था ।।
मै सदा करूगा भजन विपत कर हल की ।
तेरी आयु मे कमती पडे रोज पल छिन की ।।

फिर धरती मे आये छूटा उस दुख से।
घुट्टी और दूधी लगा पीवने मुख से ।।
सठ मोहे नीद मे भूल फूल गया सुख मे।
नीति विमुख हुए कर रहा राम के दुख से ।।
हुई खेल-कूद मे वाल अवस्था हलकी।
तेरी आयु मे कमती पडे रोज पल छिन की ।।

फिर तरुन अवस्या हुई, वीरेतन जागी ।
और मोह मे अधा हुआ नार अनुरागी ।।
नही धोये दिल के दाग वना ना वेदागी।
सब कौल वैन गया भूल हुए नर भागी ।।
तेने रतन जवानी खोई वरावर खल की।
तेरी आयु में कमती पडे रोज पल छिन की ।।

फिर तरुन अवस्या गई वुढापा आया ।
सब इन्द्री निर्बल हुई नुकड गई काया।
फिर सुत दारा मजा वाहिर विछवाया ।।
कहे शीशराम मल मल के हाथ पछताया।
जव मरन लगा तव सुमरनी छलकी ।
तेरी आयु मे कमती पडे रोज पल छिन की ।।

* * * *

महगांव आन्दोलन

श्री श्यामलाल पांडवीय
मुरार, ग्वालियर

जिस महगाव काड ने सारे जैन समाज को झकझोर दिया था और जिसके विरोध मे सारे समाज ने अपने भेदभाव भूलकर सगठित होने का परिचय दिया था, वह महगाव काड क्या है और उसमें स्वर्गीय लाला तनसुखराय का कितना और क्या योगदान रहा है ? उसकी जानकारी दिये अपने बिना उनका स्मृति ग्रथ अधूरा ही रहेगा यह घटना सन् १९३५ की है।

पुराने ग्वालियर राज्य मे महगाव एक छोटा सा नगर है, वहा पर थोड़े से घर जैनियो के है और एक जैन मन्दिर है। वहा पर कुछ सम्प्रदायवादी हिन्दू तथा जैन धर्मद्वेषियो को जैन मन्दिर का होना बहुत खटकता था। अतः वे सदा धार्मिक विद्वेष के कारण उनके धर्म-पालन में सदा अडचनें डालते रहते थे। उनका विरोध करके हर प्रकार से उनको तग किया जाता था। सन् १९३५ मे यहा पर तहसील का मुकाम होने के कारण कुछ सम्प्रदायवादी अधिकारियो द्वारा उनको समर्थन मिल जाने के कारण उनके जैनविद्वेष को और बल मिलने लगा। स्वर्गीय महाराज माधवराव की जयन्ती राज्य भर मे मनाई जाती थी। जैनियो से हमेशा सबसे अधिक चन्दा लिया जाता था, जिसको वे दे दिया करते थे और कभी उनको इसकी कोई शिकायत नहीं रही। इस हालत मे भी जबकि उनसे सख्ती से ज्यादा चन्दा वसूल कर लिया जाता था ।

सन् १९३५ की माधव जयन्ती पर जो २ नवम्बर को होनी थी, इस अवसर पर किये जाने वाले रडी के नाच के लिए जैनियो ने चन्दा देने से इन्कार कर दिया। इस पर साम्प्रदायिक अधिकारी भी कूद गये। जैनधर्म द्वेषियो ने जो पहले से धर्मद्वेष रखते थे, अधिकारियो को उकसाने और भडकाने लगे। सयोग से तहसीलदार और जुडीशियल आफिसर उस दिन महगाव नही थे। नायब तहसीलदार इचार्ज था। नायब तहसीलदार और थानेदार ने माधव जयन्ती मनाने के लिये स्वर्गीय महाराजा का चित्र बैठाकर निकालने के लिये मन्दिर का विमान, समोशरण और सिंहासन जिसका उपयोग केवल जिनेन्द्र भगवान के लिये ही किया जाता है उन सबको मागा। जैनियो ने अपने धार्मिक विश्वास के अनुसार कि भगवान की ये वस्तुये किसी व्यक्तिगत उपयोग के लिये नही लाई जा सकती, देने से अपनी असमर्थता प्रकट की। इस पर जैनियो को बहुत बुरा-भला कहा और बुरी-बुरी गालिया दी। यह भी धमकी दी कि देख लेंगे तुम्हारे मन्दिर और समाज को, उसकी जरूरत ही नही रखेंगे। उस साल माधव जयन्ती का जुलूस सदा की भाँति जैनियो के चबूतरे पर भी नही ठहरा। जैनी लोग, जब चबूतरे पर जब जुलूस ठहरता था तो स्वर्गीय महाराजा के चित्र की आरती तथा इत्रपान किया करते थे। इस घटना पर जैनो का जो अपमान किया गया था उस समय यह किसी ने नही सोचा था कि जैन मन्दिर (धर्मस्थान) को भी अपमानित और भ्रष्ट किया जायगा।

जयन्ती उत्सव के दूसरे दिन (३ नवम्बर १९३५) की रात को किसी समय जैन मदिर मे घुसकर सबकी सब २७ मूर्तिया वहा से उठा ली गई जिनमे कई मूर्तिया वजन मे बहुत भारी थी। जैन शास्त्र जलाये गये और मन्दिर के भीतर पाखाना-पेशाब करके धर्मस्थान को अपवित्र किया गया। कीमती माल चादी की छडिया आदि कोई नही उठाई, सब पड़ा छोड गये। कीमती कपडे न ले गये और न जलाये गये। जलाये तो केवल धर्मग्रथ ही जलाये। यह सब सुनियोजित धर्म का अपमान और धर्मस्थान भ्रष्ट करने का षडयन्त्र था जिसकी पुष्टि इससे भी होती है कि बिल्कुल तडके ही उन धर्मद्वेषियो ने जैनियो को आकर यह तानाजनी करना शुरू कर दिया कि जाओ मन्दिर को जाकर देखो, क्या हो गया। इस प्रकार हसी उडाना शुरू कर दिया। जैनी कुछ समझ नही पाये। पर जब मन्दिर को सवेरे पूजा-दर्शन को खोला तो यह दृश्य देकर स्तब्ध रह गए और तब धर्मद्वेषियो द्वारा किए गये उपहास और कही गई बातो का अर्थ समझ मे आया।

सब से पहले इटावा के जैनो को महगाव के जैनियो ने खबर दी और उन्होने जैन महासभा को न्याय प्राप्त करने एव सहायता के लिये लिखा। इसके बाद महगाव के जैन पचो ने ग्वालियर दिगम्बर जैन ऐसोसियेशन को अपना यह मामला बतलाकर सहायता मागी। ग्वालियर दिगम्बर जैन ऐसोसियेशन ने राज्य के उच्च अधिकारियो से मिलकर मूर्तियो के सुराग के लिये सी० आई० डी० की नियुक्ति कराई। महगाव पुलिस के सब-इन्सपेक्टर का तबादला कराया। दरबार कौंसिल मे पूरा विवरण देने वाला एक मेमोरेन्डम भेजकर न्याय की माग की। सर्वसाधारण की जानकारी के लिये पूरा विवरण प्रकाशित किया गया। मूर्तियो की बरामदगी तथा मुलजिमो की गिरफ्तारी के लिये २०० रुपये का इनाम सरकारी गजट मे निकलवाया गया। नियुक्ति सी० आई० डी० द्वारा प्रयत्न कराकर मूर्तिया बरामद कराई गई जिनमे दो पीतल की छोटी मूर्तियो को छोडकर शेष २५ मूर्तिया ३०० रुपये मल्लाहो देकर बरामद हुई। ऐसोसियेशन के तत्कालीन उत्साही मन्त्री श्री श्यामलाल पाडवीय ने मौके पर पहुँचकर जैनो को धीरज बधाया। कितनी ही बार जा जाकर अपने समक्ष साक्षिया कराई, सबूत इकट्ठा किया। पाडवीयजी को जहर देने का असफल प्रयत्न किया गया जिससे वे रास्ते से दूर कर दिये जायें। यह सब प्रयत्न करने पर भी कुछ हो नही पा रहा था और राज्य के भय से बड़े-बडे श्रीमान इसकी सहायता करने मे राज्य विरोध का खतरा लेना नही चाहते थे। इधर ग्वालियर राज्य इसको साधारण चोरी का रूप देकर इसको समाप्त कर देना चाहता था। यही नही उस चोरी मे एक जैनी को भी शामिल किया गया और मारपीट करके उससे व उसकी स्त्री से इकबाल भी करा लिया गया। स्थिति जटिल बनती जा रही थी। पुलिस ने प्रतिवाद करके यह आरोप भी लगाया कि यह एक राज्य-विरोधी व्यक्ति का धार्मिक अपमान का रग देकर राज्य को बदनाम करने का प्रयत्न है। यह इशारा दि० जैन एसोसियेशन ग्वालियर के मन्त्री के प्रति था।

श्री श्यामलाल पाण्डवीय ने इस काण्ड को दिगम्बर जैन परिषद के दिल्ली अधिवेशन के अवसर पर दिल्ली जाकर परिषद के सामने रखा। वहा भी ठण्डे रूप मे ही लिया जाने लगा पर स्वर्गीय बाबू तनसुखराय जैन का अन्तरमानस धर्म के इस अपमान से विकल हो उठा और

ध्यान के साथ पास किया और उन भाइयों के वास्तविक अधिकार को देने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया। १९३८ में हस्तिनापुर में जो परिषद का अधिवेशन हुआ और उसमें दस्सा पूजन अधिकार प्रस्ताव रक्खा गया तो कितनी उथल-पुथल हुई। उसका संक्षिप्त विवरण प्रकट करते हैं जिससे भावी कार्यकर्ता समझें कि श्रेष्ठ सुधारकों को कितनी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

श्री हस्तिनापुर क्षेत्र पर अखिल भारतवर्षीय दि० जैन परिषद की ओर से कान्फ्रेंस ४ तारीख से आरम्भ हुई। इस साल विशेषतौर से जनता कान्फ्रेंस के कारण पिछले साल से दुगुनी आई थी। वीर-सेवक संघ रोहतक, प्रेममण्डल गोहाना, सेवा संघ छपरौली, जैन स्कूल बड़ौत, जैन सेवकमण्डल बड़ौत, जैन कालिज एसोसियेशन मेरठ, जैन यगमैन्स एसोसियेशन शिमला व न्यू देहली आदि वालिंटियर कोरों के २०० स्वयंसेवकों के अतिरिक्त और बहुत सी कोरें आई थीं। कान्फ्रेंस में हर रोज ३ हजार से लगाकर ४ हजार तक जनता रहती थी।

चार तारीख को परिषद् की कान्फ्रेंस नियमित रूप से प्रारम्भ हुई। प्रातः ही कई सौ आदमियों की उपस्थिति में प्रभात फेरी हुई। दोपहर को एक बजे बा० उलफतराय जी इन्जीनियर मेरठ के हाथों झण्डा फहराया गया और उन्हीं के सभापतित्व में कान्फ्रेंस आरम्भ हुई जिसमें पण्डित शीलचन्द जी न्यायतीर्थ के मंगलाचरण पश्चात् बा० उग्रसेनजी हैडमास्टर ने स्वागत तथा कान्फ्रेंस का उद्देश्य बताया। जैन अनाथ आश्रम छपरौली और बड़ौत आदि की भजनमण्डलियों के भजनों के पश्चात् कान्फ्रेंस के मन्त्री मास्टर उग्रसेनजी ने परिषद् परीक्षा बोर्ड के आए हुए सन्देश पढ़कर सुनाये। उसके बाद भाई कौशलप्रसाद जी देहली ने परिषद् की नीति तथा अब तक की सेवाओं पर और आगे के प्रोग्राम पर प्रकाश डाला। बाद में पण्डित शीलचन्दजी ने जैन धर्म की उदारता और जैन जाति की संकीर्णता पर सामयिक भाषण दिया। मास्टर उग्रसेनजी की कुछ सामयिक अपील तथा भजनों के उपरान्त शाम को ४॥ बजे सभा समाप्त हुई।

पश्चात् रात को सात बजे से फिर कान्फ्रेंस की दूसरी बैठक मनोनीत सभापति (जो समय पर आ नहीं सके थे) बा० रतनलालजी एम० एल० सी० बिजनौर के सभापतित्व में आरम्भ हुई। मास्टर शिवरामसिंह जी के भजन और पण्डित शीलचन्दजी के मंगलाचरण के पश्चात् बा० रतनलालजी का सभापति की हैसियत से व्याख्यान हुआ। पश्चात् श्रीमती लेखवतीजी का परिषद् के अधिक से अधिक सदस्य बनने तथा शाखायें स्थापित करने का प्रस्ताव पेश हुआ और उस पर व्याख्यान हुआ। उसके बाद स्वामी कर्मानन्दजी ने प्रस्ताव के समर्थन में एक व्याख्यान दिया इसके बाद श्री मन्नूलालजी जौहरी की कविता हुई और आज की कार्यवाही समाप्त हुई।

ता० ५ को फिर प्रभात फेरी हुई और दोपहर को १२॥ बजे से मास्टर शिवरामसिंह जी रोहतक के भजनों तथा प० शीलचन्दजी न्यायतीर्थ खतौली के मंगलाचरण के साथ कान्फ्रेंस की कार्यवाही आरम्भ हुई। श्री अयोध्याप्रसाद गोयलीय ने दस्सा पूजाधिकार वाला प्रस्ताव ओजस्वी भाषण के बाद पेश किया। अखिल भारतवर्षीय दि० जैन परिषद् ने अपने खण्डवा अधिवेशन में दस्सा पूजाधिकार का जो प्रस्ताव पास किया है उसे यह हस्तिनापुर क्षेत्र की जैन कान्फ्रेंस सम्मानित और आदर की दृष्टि से देखती हुई सहारनपुर मोहल्ला चौधरान, बड़ौत, कान्धला, गोहाना, धामपुर, नजीमाबाद, सिकन्दरपुर कला, शामली, अलीगंज, बड़ागांव, पानीपत, बिजनौर

सोनीपत, गगेरु, मल्हीपुर, शाहदरा, देहली करौलबाग, रोहतक, बुलन्दशहर, करनाल झज्झर, गढ़ीपुख्ता, सिकन्दरपुर, बडसू, रमाला आदि की जैन पचायतो की भी सराहना की गई जिन्होने अपने यहां दस्से भाइयो को पूजा-प्रक्षाल का अधिकार देने की उदारता दिखलाई है । साथ ही अन्य स्थानो की जैन पचायतो के लिए निश्चय करती है कि वे भी अपने यहा के दस्सा भाइयो को पूजा-प्रक्षाल करने के लिये उत्साहित करके जैन धर्म के प्राचीन आदर्श को उपस्थित करे । प्रस्ताव पेश होते समय पडाल मे तकरीबन ४ हजार आदमी मौजूद थे । स्थितिपालक दल के कई विद्वान भी स्टेज पर बैठे हुए थे । परन्तु प्रस्ताव ऐसे शब्दो तथा ऐसी सामाजिक स्थिति का बखान करते हुए पेश किया गया कि कोई भी उसके विरोध मे नही बोल सका और जनता तकरीबन डेढ घन्टे तक मन्त्र-मुग्ध की नाई सुनती रहती । इसके पश्चात् प्रस्ताव का समर्थन करने के लिये जब बा० बलवीरचन्द जी एडवोकेट मुजफ्फरनगर खडे हुए तो ३० या ३५ आदमियो ने जो कि कान्फ्रेस मे केवल दगा ही करने आये थे, हल्ला मचाया और उनके साथ स्थितिपालक विद्वान भी उठकर चले गये ।

पश्चात् बा० लालचन्दजी एडवोकेट आदि के पुरजोर समर्थनो के बाद केवल २० के विरोध से प्रस्ताव पास हुआ । पश्चात् झण्डा गीत होकर सारे बाजार मे श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलीय के नेतृत्व मे भजन गाता हुआ जुलूस सारे मेले मे घूमा । रात को फिर कान्फ्रेस की बैठक हुई । भजनो और पडित शीलचन्द के मगलाचरण और स्वामी कर्मानन्दजी के भाषण के पश्चात् श्री गोयलीयजी का जैन जाति के महान् पुरुषो के जीवन पर सामायिक और जोशीला व्याख्यान हुआ, बाद को कौशलप्रसादजी जैन ने वीर के लिये अपील की और सभा समाप्त हुई ।

चार तारीख को परिषद् की कान्फ्रेस नियमित रूप से प्रारम्भ हुई । प्रात ही कई सौ आदमियो की उपस्थिति से प्रभात कान्फ्रेस शुरू हुई । सबसे पहिले भजन और मगलाचरण के बाद प० ताराचन्दजी न्यायतीर्थ का व्याख्यान हुआ । पश्चात् मास्टर उग्रसेनजी तथा सभापति जी आदि के बाद कान्फ्रेस समाप्त की गई ।

कमनीय कामना

पापाचार न एक भी जग मे, होवे कही भी कभी,
बूढे, बाल, युवा, तथा युवति हो, धार्मिक—प्रेमी सभी ।
पृथ्वी का हर एक मर्त्य पशु से, साक्षात् बने देवता,
पावे पामर पापमूर्ति जगती, स्वर्लोक से श्रेष्ठता ।

* * * *

मुझे तो अणुबम और उद्जनबम जितने प्रलयकारी नही लगते, उतनी प्रलयकारी लगती है—चरित्रहीनता, विचारो की सकीर्णता । बम तो उन अपवित्र विचारो का फलितार्थ-माप है ।

दूध-घी मिलावट कान्फ्रेंस

स्वास्थ्य के लिए शुद्ध खानपान की आवश्यकता है। पर जिस देश मे घी-दूध की नदियाँ बहती थी आज वहाँ के निवासियो को शुद्ध वस्तु का मिलना दुर्लभ हो गया है। लालाजी ने इस बात का अनुभव किया और २१-२२ फरवरी १६४१ को दिल्ली मे श्री सेठ शान्तिदासजी आसकरण, मेम्बर कौसिल आफ स्टेट की अध्यक्षता मे दूध-घी मिलावट कान्फ्रेंस की जिसका सक्षिप्त विवरण आपके सामने प्रस्तुत करते है। इससे आप भली प्रकार समझ सकेंगे कि इस कान्फ्रेंस का कितना प्रभावशाली असर हुआ।

भारतवर्ष कृषिप्रधान देश है। यहा की ६० प्रतिशत जनता गावो मे रहती है और पशुपालन यहा का मुख्य व्यवसाय है। एक समय था जब भारत मे पशुपालन धर्म समझा जाता था और एक ही गृहस्थ लाखो की सख्या मे पशु रखता था। यहा दूध-घी की नदिया बहती थीं। प्रत्येक गृहस्थ चाहे वह अमीर है चाहे गरीब, पर्याप्त मात्रा मे दूध, घी और अन्न से परिपूर्ण रहता था। कृषि से बहुत अन्न उत्पन्न होता था और पशुओ की अधिकता के कारण दूध-घी बहुत होता था। यहा के नर-नारी दूध-घी के सेवन मे बलवान और बुद्धिमान होते थे। देश मे हनुमान, भीम, महाराणा प्रताप और शिवाजी जैसे पराक्रमी और बलवान हुए है, जिन्होंने अपने वश मे हाथियो तक को पछाड़ दिया था।

पहले की बात जाने दीजिये, अब भी जब तक हमे शुद्ध दूध और घी मिलता रहा हमारे देश मे राममूर्ति जैसे बलवान हुए है। क्या यह सच नही है कि गत १६१४ के महायुद्ध मे ताकत मे भारत की फौजें दुनिया की सारी फौजो से बढ-चढकर थी। यह सब यहा के दूध-घी का ही प्रभाव था। हम देखते है कि हम नवयुवको से हमारे बूढे अब भी अधिक बलवान हैं। हम दिन-दिन क्यो कमजोर होते जा रहे है? हमने बूढो को कहते सुना है कि जब हम जवान थे ५० और ६० मील पैदल चल सकते थे। किन्तु खेद है कि आज ऐसा नवयुवक शायद ही कोई हो।

आज भारत के चारो ओर भयानक युद्ध हो रहा है। एक देश दूसरे देश को निगले जा रहा है। जो अधिक शक्तिशाली है उसी का आज जीवन समझा जा रहा है। और इस भयानक युद्ध की लपटें किसी भी समय भारत मे आ सकती है। हमे आततायियों का चारो ओर से भय है। तब क्या हमे निर्बल होकर, दूसरो के पाँवो नीचे दबकर, कुत्ते की मौत मर जाना शोभा देगा? क्या आपने कभी सोचा कि आज हमारे देश के नवयुवकों का स्वास्थ्य क्यो दिन-दिन खराब होता जा रहा है? क्यो नित्य नई बीमारिया पैदा हो रही है और निर्बल होने के कारण क्यो हमे चारो ओर से सताया जा रहा है? इसका केवल एक कारण है कि हमे शुद्ध दूध और घी खाने को नही मिलता। जहा दूसरे देशो मे युवको के स्वास्थ्य का इतना ध्यान रखा जाता है वहा हमारे देश मे दुर्भाग्यवश नवयुवको के स्वास्थ्य को खराब करने वाली नई-नई चीजें

का प्रचार बढ रहा है। आज हमे अधिक से अधिक मूल्य पर भी शुद्ध दूध और घी मिलना असम्भव सा हो गया है।

दूध मे पाऊडर और घी मे वनस्पति तेल की मिलावट से आज शुद्ध दूध व घी नही मिल रहा है। पहले तो यह पाऊडर और वनस्पति तेल विदेशो से आता था किन्तु दुर्भाग्यवश आज वनस्पति तेल की भारत मे भी कई मिलें बन गई हैं, जिससे घी के व्यापारी और दलाल शुद्ध घी मे वनस्पति तेल (जो जमाने या अन्य प्रयोगो से घी जैसा बन जाता है) आसानी से मिला सकते है।

वनस्पति घी के सस्ता होने के कारण उसे शुद्ध घी मे मिला कर वेचने से व्यापारियो को बहुत अधिक लाभ होता है। डाक्टरो के कथन के अनुसार वनस्पति घी असली घी का कभी स्थान नही ले सकता। वनस्पति घी धीरे-धीरे मनुष्य में भयानक रोगो को उत्पन्न कर देता है। वनस्पति घी की शुद्ध घी मे मिलावट के कारण जनता अब वनस्पति घी को ही अधिक खरीदने लग गई है, क्योकि जनता को शुद्ध घी कह कर मिलावटी घी बहुत अधिक मूल्य में दिया जाता है। इससे उनके स्वास्थ पर बहुत बुरा असर पड रहा है। यदि वनस्पति घी का इसी प्रकार प्रचार बढता रहा तो पशुओ की कोई आवश्यकता नही रह जायगी और भारत से पशु-धन नष्ट हो जायेगे। दूध-घी-माखन मे मिलावट के कारण हालत बहुत बुरी हो गई है। इस अवस्था को देखते हुए देहली मे अ० भा० दूध-घी-माखन मिलावट निषेध कान्फ्रेस २१, २२ फरवरी को करने का आयोजन किया गया है। इस आन्दोलन से सब बडे-बडे नेताओ और महात्मा गाधीजी की भी सहानुभूति है। इस कान्फ्रेस मे देश के बडे-बडे नेताओ के पधारने की आशा है।

अ० भा० दूध-घी-मक्खन मिलावट निषेध सम्मेलन

अध्यक्ष

श्री सेठ शांतिदास आशकरणजी

श्री सेठ शान्तिदासजी आशकरण, मेम्बर कौंसिल आफ स्टेट बम्बई के सभापतित्व में बडी सफलतापूर्वक हो गया। सभापति जी ने अपना व्याख्यान अग्रेजी मे दिया था जिसका सार निम्न प्रकार है —

सभ्य गृहस्थो !

मै अपना वक्तव्य अग्रेजी मे पढ़ना चाहता था किन्तु स्वागतकारिणी की सूचना और जनता की सहूलियत के लिये मै अपने कुछ भाव हिन्दी में भी आपके सन्मुख रख रहा हूँ।

मेरी भाषा गुजराती है, अत हिन्दी पढ़ने मे कोई त्रुटि हो तो क्षमा करे।

आज के सम्मेलन का अध्यक्ष होने का मान आपने मुझको दिया इसके लिये मैं आपका आभार मानता हू । आपके सहकार से यह कार्य सफल होगा, ऐसा मेरा विश्वास है ।

मेरा आज के प्रश्न के बारे मे वक्तव्य अंग्रेजी मे आपके सामने पेश हो चुका है । इससे आपको मालूम होगा कि यह प्रश्न सारे भारतवर्ष की शारीरिक और आर्थिक उन्नति के लिये कितने महत्व का है । आज अपने देश मे पूरे दाम देते हुए भी शुद्ध दूध-घी इत्यादि मिलना कठिन हो गया है और मिलावट के द्वारा धोखेबाजी चल गई है । इसका मूल कारण यही है कि अपने देश मे शुद्ध दूध-घी की उत्पत्ति कम है और माग अधिक है । उत्पत्ति कम होने का कारण दूध-घी देने वाले पशुओ की सख्या कम और नस्ल खराब होना है । सख्या कम होने के कई कारणो मे देश के अच्छे दूध देने वाले पशुओं का नाश मुख्य कारण है । यदि दूध देने वाले पशुओं की हत्या बन्द की जाय और उनकी नस्ल उत्तरोत्तर अधिक दूध देने वाली होने लगे तब देश की शुद्ध दूध-घी की आवश्यकता पूरी हो सकती है । और फिर मिलावट स्वय ही रुक जायगी । आज देश की यह हालत है कि दूध-घी जैसी पोषक खुराक न मिलने से जनता का स्वास्थ्य बिगडता जा रहा है । देश को जिस समय आत्मरक्षा के लिये स्वस्थ नवयुवको की आवश्यकता है उस समय दूध-घी आदि पोषक खुराक की अपूर्णता से जनता निर्बल हो रही है । इस बात को सरकार और जनता को सोचना चाहिये और इसका इलाज करना चाहिये ।

देश मे वनस्पति घी और स्कीम मिल्क पाउडर इत्यादि चीजों की मिलावट से शुद्ध दूध-घी का मिलना मुश्किल हो रहा है । इतना ही नही, गावो में किसानो और पशुओ की दयनीय दशा होती जा रही है । शुद्ध घी के व्यापार के कम होने के कारण गाव वालों को लस्सी तक, जो उनकी दैनिक खुराक थी, मिलना कठिन हो गया है । यदि ऐसी परिस्थिति रही तो जनता की शारीरिक और आर्थिक स्थिति बहुत खराब हो जायगी और कृषि को बहुत नुकसान होगा । वनस्पति घी इत्यादि के उद्योग करने वाले सज्जन भी दूध-घी के इस प्रकार के अप्रमाणिक व्यापार को नही चाहते । शुद्ध वनस्पति घी बनाने वालों को चाहिये कि वह इस सम्मेलन के उद्देश्य की पूर्ति के लिये सम्मेलन का पूरा साथ दे । वनस्पति घी समझकर ही लोग लेवें, इसमे बाधा डालने का सम्मेलन का उद्देश्य नही है, लेकिन शुद्ध घी मे वनस्पति घी इत्यादि की मिलावट को रोकना प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है ।

पजाब सरकार ने इस विषय मे जो वनस्पति घी मे रग डालने का कानून बनाया है वह अभिनन्दनीय है । इसी ढग पर जिस-जिस प्रान्त मे वनस्पति घी बनता हो वहा बिना कानून भी वहा की वनस्पति घी की मिलो के मालिक वनस्पति घी को इस प्रकार बना दें जिससे साधारण जनता शुद्ध घी और वनस्पति घी को पहिचान सके और जिससे वनस्पति घी का शुद्ध घी में मिलना असम्भव हो जावे, तब ही उनके लिये वह शोभा का स्थान होगा ।

हमारे स्वास्थ्य का नाश

ऋषि-मुनियों का भारत आज घी-दूध के लिये तरस रहा है और उसके एवज मे मक्खन निकला हुआ दूध तथा वनस्पति घी खाने को बाध्य हो रहा है । यह सब कलयुग का चमत्कार ही

समझना चाहिये, अन्यथा जिस भारत मे घी-दूध की नदियां बहती थी उसी भारत मे यह अनहोनी क्योंकर होती ?

जिस वस्तु मे स्वास्थ्य का इतना गहरा सम्पर्क है, जब वही शुद्ध नहीं मिल पाती, तब स्वास्थ्य के लिए नित नई योजनाएँ बनाना और देश का करोड़ो रुपया व्यय करना बेकार है। वृक्ष की जड़ को ही जब दीमक खाए जा रही हो तब फूल-पत्तियो की रक्षा के लिए उपाय सोचना कुछ बुद्धिमत्ता नही ।

हम अपने बच्चो को दूध समझ कर पिला रहे है, मगर मक्खन निकला हुआ। घी समझ कर हम वनस्पति तेल खा रहे हैं। गोया दही के बदले कपास खाई जा रही है।

क्या विशेषज्ञो और डाक्टरो ने यह निर्णय दे दिया है कि वनस्पति तेल और मक्खन निकला हुआ दूध असल जैसे ही लाभदायक है, यदि ऐसा है तो गवर्नमैंट को यह घोषणा कर देनी चाहिए ताकि जनता इतनी सस्ती चीज बहुमूल्य देकर न खरीदे और बेचारे गरीब व्यर्थ की परेशानी में न पड़े और यदि यह पदार्थ उतने उपयोगी नही है तो असल और नकल मे पहचान हो सके, सरकार को ऐसा प्रबन्ध कर देना चाहिए।

अफीम-गांजा-चरस शराब पर सरकार की ओर से प्रतिबन्ध है, लायसेन्स है जिसे समूची जनता कभी उपयोग मे नहीं लाना चाहती। पर जो समूची जनता के गले मे जाने अनजाने उतारे जा रहे है ऐसे अहितकर पदार्थो पर कोई लायसेन्स या प्रतिबन्ध नही। उन्हे दिन दहाड़े असली मे मिलाकर या उसका रूप देकर हमारे गले मे उतारा जा रहा है। और हमारी सरकार का ध्यान इस ओर तनिक भी नही है।

वनस्पति घी और मक्खन निकले हुए दूध के प्रचार से शुद्ध बेचने वाले मिलावट करने को बाध्य हो गए है। जब मार्कीट मे खरीदार को दुकानदार पर विश्वास न रहा तब दुकानदार असली वस्तु बेचकर कम्पटीशन मे कैसे खड़ा रह सकता है। इसका परिणाम यह हो रहा है कि मार्कीट मे शुद्ध बेचने वाले को खरीदार नही मिलते और खरीदार को असली माल नही मिलता। इन नकली पदार्थों ने ग्राहक को अविश्वासी और दुकानदार को बेईमान बना दिया है।

हम तो कहते है कि वनस्पति तेल और मक्खन निकला हुआ दूध बेचना सर्वथा बन्द कर दिया जाय पर दुर्भाग्य से ऐसा न हो सके तो इनमे भिन्नता अवश्य कर दी जाय। जो इन्हे उपयोग मे लाना चाहे वे इन्हे उपयोग मे लाएँ। पर जो असली खरीदना चाहे उन्हे पूरी कीमत देने पर भी यह वस्तुएँ न भेड़ दी जाए इसका समुचित प्रबन्ध होना चाहिये।

लोगो मे जितना भाव उपासना का है, उतना आचरण-शुद्धि का नहीं। पर आचरण शुद्धि के बिना उपासना का महत्व कितना होगा ?

कुशल व्यवसायी

तिलक बीमा कम्पनी की अपूर्व सफलता

लाला तनसुखराय जैन एक प्रसिद्ध समाजसेवी और देशभक्त कार्यकर्ता ही न थे, बल्कि कुशल व्यवसायी भी थे। यूरोप मे वैज्ञानिक ढग से व्यवसाय का भी सचालन किया गया। नए-नए व्यापार के साधनो को अपनाया गया। फलस्वरूप व्यवसाय का क्षेत्र अधिक व्यापक हुआ और समृद्धि का विशेष सूत्रपात हुआ। आधुनिक व्यापारो मे बीमा व्यवसाय भी ऐसा ही एक महत्वपूर्ण व्यवसाय है। सहयोग और वृद्धावस्था में एकमात्र सहारा देने के लिए यह एक उत्तम सूझ है। भारतवर्ष मे जब इसका प्रारभ हुआ तब इतनी विशेष रुचि जनता मे नही थी परन्तु अब प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति इसके महत्व को समझता है। और अपना बीमा कराना आवश्यक समझता है।

इस व्यवसाय में आने वाले व्यक्ति मे अनेक गुणो की ऐसी आवश्यकता है जो अपने प्रभाव, वाणी और धैर्य के बल पर व्यक्ति का मन मोह ले और बरबस उसे अपनी ओर आकर्षित करने के लिए बाध्य कर दे। ला० तनसुखराय जी कर्मठ थे। वाणी के धनी थे। और अनवरत कार्य मे तब तक लगे रहते थे जब तक सफलता न मिल जाए। वे स्वाभिमानी व्यक्ति थे। परा-पेक्षी और दूसरो का सहारा लेने वाले नही थे। स्वावलम्बी, साहसी और कर्तव्यनिष्ठ थे। उन्होने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत होकर स्वनाम धन्य महामनीषी लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की पुण्य स्मृति मे 'तिलक बीमा कम्पनी' की स्थापना की। उन्होने सस्था का कार्य इस प्रकार बुद्धि-मानी, विवेकशीलता और सहयोग से प्रारम्भ किया कि थोड़े ही समय मे सस्था की आशातीत उन्नति हुई। इससे मूलधन बढ गया। उसकी प्रतिष्ठा चौगुनी हो गयी। सभी प्रमुख व्यवसायी पुरुषो का ध्यान इसकी ओर आकर्षित हो गया। इस सस्था को उन्नत बनाने का श्रेय लालाजी को और उनके कर्तव्यपरायण सहयोगियो को ही है। सस्था की एक वर्ष की प्रगति का दिग्दर्शन करना आवश्यक है जिससे विदित होता है कि लालाजी कितने सूझ-बूझ और कर्मवीर, साहसी पुरुष थे।

तिलक बीमा कम्पनी के लिये लोकमत क्या कहता है

तिलक बीमा कम्पनी भारत की प्रसिद्ध प्रगतिशील राष्ट्रीय कम्पनी है। उसकी प्रथम वार्षिक रिपोर्ट हमे समालोचनार्थ प्राप्त हुई है। उसके देखने से प्रकट होता है कि उक्त कपनी १० लाख के मूलधन से स्थापित हुई है। ३० जून सन् ३८ को इसका प्रथम वर्ष बडी सफलत-पूर्वक पूर्ण हुआ है।

यह कम्पनी एक उच्च आदर्श और लोकहित के सन्देश को लेकर कार्य-क्षेत्र मे उतरी है, उसका मूल उद्देश्य भारत की आर्थिक स्थिति को वैज्ञानिक ढग से उन्नत करना तथा भारत की बढती हुई बेकारी को दूर करना है।

[हमे लिखते हुए हर्ष होता है कि हमारे जैन समाज के उत्साही कार्यकर्ता लाला तनसुखरायजी जैन ने गत-वर्ष १० लाख के मूलधन से तिलक बीमा कम्पनी लिमिटेड की स्थापना की थी और वह प्रगतिशील कम्पनी आशातीत उन्नति करती हुई देश के और समाज के लिए अत्यन्त उपयोगी बन रही है। हमारी अभिलाषा है, जैन समाज के प्रत्येक व्यक्ति का इसको सहयोग प्राप्त हो ताकि और भी इसी तरह की उद्योगशील कम्पनिया खुलकर समाज की बेकारी दूर करने मे समर्थ हो सके। यहा हम कुछ कम्पनी के सम्बन्ध मे अन्य सहयोगियो की सम्मति देते है जिससे प्रगट होगा कि अपनी यह कम्पनी कितनी तेजी से उन्नति करती हुई जनता की विश्वासभाजन बन गई है।

—सम्पादक जैनमित्र]

"भारत की प्रसिद्ध प्रगतिशील राष्ट्रीय तिलक बीमा कम्पनी की प्रथम वार्षिक रिपोर्ट हमे समालोचनार्थ प्राप्त हुई है। यह कम्पनी भारत-विभूति लोकमान्य तिलक की पवित्र स्मृति मे १० लाख के मूलधन से स्थापित हुई है। ३० जून सन् ३८ को इसका प्रथम वर्ष सफलताओं को लेकर पूर्ण हुआ है। यो तो भारत मे और भी देशी-विदेशीय बीमा कम्पनिया कार्य कर रही है, किन्तु तिलक बीमा कम्पनी कुछ उच्च आदर्श और लोकहित के कार्य को लेकर इस क्षेत्र में उतरी है। उसका मूल उद्देश्य भारत की आर्थिक स्थिति को वैज्ञानिक ढग मे उन्नत करना तथा भारत की बढती हुई बेकारी को दूर करना है।'

—नवभारत (नागपुर)

"तिलक बीमा कम्पनी अपने प्रथम वर्ष मे ही पचासो पुरानी कम्पनियो को पीछे छोड़ कर पूरी कामयाबी के साथ आगे आयी है। प्रारम्भ से ही कम्पनी को भारत के प्रतिष्ठित धन-कुबेरो, व्यापारियो और बीमा-विशेषज्ञों का सहयोग प्राप्त रहा है। यही कारण है कि उक्त कम्पनी इस एक वर्ष मे ४०२४०० के शेअर्स बेच चुकी है। कहा जाता है कि वह बहुत शीघ्र शेअर्स की बिक्री बन्द कर देगी।"

—सचित्र दरबार (देहली)

"यह भारत की एक उदीयमान राष्ट्रीय बीमा कम्पनी है। इसने अपने पहले ही वर्ष में ११ लाख ४३ हजार का बिजनिस प्राप्त करके आश्चर्यजनक उन्नति की है। इतने अल्प समय मे इतनी सफलता प्राप्त करने का सारा श्रेय हमारे एक जैन बन्धु को है, इसका हमे गर्व है। देहली के बाबू तनसुखरायजी जैन जो इसके मैनेजिंग डायरेक्टर है, बडे ही परिश्रमी और उत्साही हैं। आप इस कम्पनी को भारत की एक आदर्श बीमा कम्पनी बनाने की चेष्टा कर रहे है। आप को सफलता प्राप्त हो यही भावना है।"

—वीर सन्देश (आगरा)

"तिलक बीमा कम्पनी ने निहायत कम अखराजात पर यह सब काम किया है। कम्पनी के डायरेक्टरो मे बेहतरीन कारोबारी असहाब शामिल है। हमे उम्मीद है कि कम्पनी

बहुत जल्द तरक्की करेगी।"

—मिलाप उर्दू (लाहौर)

"....'यह लाला तनसुखराय जैन मैनेजिंग डायरेक्टर कम्पनी की मजकूर कोशिशो और काबलियत का नतीजा है कि कम्पनी को पहले ही साल मे ४० हजार रु० प्रीमियम की आमदनी हुई है।

—वीर इण्डिया उर्दू (देहली)

"....'कम्पनी के हिस्से हिन्दुस्तान भर मे हर तबके के लोगो मे फरोख्त हुए है, जिससे इसकी हरदिलअजीजी और सरगर्मी का इजहार होता है।"

—तेज उर्दू (देहली)

"..........यह बात काबिले फख्र है कि कम्पनी को ११ लाख ४३ हजार रुपये का बिजनिस मौसूल हुआ है। मैनेजिंग एजेंट्स ने अपना तमाम कमीशन (जिसके वह मुहायदे की रूह से हकदार थे) कम्पनी को छोड दिया है।"

—प्रताप उर्दू (लाहौर)

"वह वक्त दूर नही जबकि स्वर्गीय भगवान तिलक के आशीर्वाद से कम्पनी हिन्दुस्तान की बेहतरीन इन्शोरेन्स कम्पनियो मे शुमार होगी।"

—वतन उर्दू (देहली)

वीर सेवा मंदिर

साहित्य अनुसधान की एक आदर्श सस्था

वीर सेवा मन्दिर समाज की एक जीवित सस्था है। इसके द्वारा साहित्य निर्माण अनुसधान और प्राचीन साहित्य को नवीन ढग से सम्पादन करना इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय कार्य हुआ है। इसी सस्था की ओर से वीर शासन दिवस मनाना प्रारम्भ हुआ। १३ जौलाई १९३८ को वीर शासन जयन्ती उत्सव पर जो लालाजी ने भाषण दिया वह उत्साह और जोश से परिपूर्ण है। आपने जिन कार्यों की ओर समाज का ध्यान आकर्षित किया आज भी वे कार्य उतने ही महत्वपूर्ण है जितने पहले थे।

आत्मीय बन्धुओ और बहनो!

मैं सिपाही हूँ और सिपाही ही बना रहना चाहता हूँ। मै बोलना बहुत कम जानता हूँ, फिर भी मुझे बोलना पड रहा है, मानो बन्दूक से ग्रामोफोन का काम लिया जा रहा है। मेरी इच्छा है कि जब आपने मुझे इस पद पर प्रतिष्ठित किया है, तब अपना सेवक समझकर मुझसे कुछ सेवा भी लीजिये। मैं यह जानता हूँ कि मेरे पास पैसा और विद्वत्ता नही है, मगर साहस,

उत्साह, आत्म-विश्वास और कार्य-शक्ति की मेरे पास कमी नहीं है। जो सेवा आप मेरे सुपुर्द करेंगे उसे बजा लाने मे मैं अपना गौरव समझूंगा।

जिस रोज वीर-प्रभु ने सतप्त ससार मे उपदेशामृत की वर्षा की थी। आज उसी मुबारिक दिन पर इकट्ठे होकर हमे विचार-परामर्श करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, ससार के कल्याण के लिये वीर-प्रभु ने जो दिव्य उपदेश दिया था, उसका प्रसार साहित्य, उपदेशो और रात्रि-पाठशालाओ द्वारा किया जा सकता है।

१—साहित्य देश और समाज के पीठ की रीढ की हड्डी है। जिस समाज का साहित्य जितना अधिक विकसित, अनुपम और विशाल होगा, वह समाज भी उतना ही उन्नत होगा। हमारे पूर्व आचार्यो और विद्वानो ने साहित्य-निर्माण मे काफी सफलता प्राप्त की है। हमारे भण्डारो मे मोतियो से तोले जाने योग्य ग्रथ भरे पडे हैं। हमे अब इस नये युग मे नवीन ढग से अपने साहित्य को प्रकाश मे लाने की आवश्यकता है। प्रत्येक भाषा मे आधुनिक लेखन और प्रकाशन कला से परिपूर्ण साधारण से लेकर उच्च-कोटि के विद्वानो तक उनकी बुद्धि और विषय के अनुसार हमारा साहित्य पहुँचना चाहिये। अर्थात् जो पत्र-पत्रिकाओ को चाव से पढ़ते है उनके लिये हमे साहित्यिक-पत्र प्रकाशित करने चाहिये। और जो साधारण पढे-लिखे हैं उनके लिये छोटे-छोटे सरल भाषा मे ट्रैक्ट छपाने चाहिये। और जो अध्ययनशील विद्वान् है, उनके योग्य खोज और मननपूर्वक लिखे हुए ग्रथो का प्रबन्ध करना चाहिये।

यद्यपि इसके लिये हमारे समाज की कई महान् आत्मायें और सस्थाये प्रयत्नशील है किन्तु उचित प्रोत्साहन, सहयोग और सामूहिक शक्ति के अभाव के कारण जसा चाहिये वैसा कार्य नही हो रहा है। वीर-सेवा-मन्दिर का भी इसीलिये जन्म हुआ है, और हर्ष है कि समाज के प्रसिद्ध विद्वान् प० जुगलकिशोरजी ने इसके लिये अपना तन, मन, धन सब कुछ समर्पित कर दिया है। यदि समाज इस सस्था को अपना सहयोग पूर्णरूपेण प्रदान करे, तो यह साहित्य-निर्माण की बेजोड़ सस्था बन सकती है।

२—जैन धर्म के प्रसार के लिये साहित्य के अलावा ऐसे विद्वानो की भी आवश्यकता है, जो भिन्न-भिन्न धर्मो का तुलनात्मक अध्ययन किये हुए हो और जो राज्य सभाओं और सार्वजनिक जल्सो मे जैनधर्म के प्रति जनता मे श्रद्धा एव आदर बढा सकें और जैन धर्म पर किये गये आक्षेपो का उत्तर दे सके। साथ ही जैनधर्म के प्रति फैलाये गये भ्रमो को दूर कर सके। ऐसे विद्वान् हमारे वर्तमान विद्यालयो से नही मिल सकते। इसके लिये हमे पृथक् प्रबन्ध करना होगा और मै देख रहा हूँ कि वीर-सेवा-मन्दिर इस ओर प्रयत्नशील है।

३—जैनेतरो मे जैनधर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न कराने का तीसरा तरीका यह है कि गाव-गाव मे रात्रि-पाठशालायें खोली जाएँ और उनमे इस प्रकार के शिक्षक रखे जायें, जिनके हृदय जैनधर्म के प्रचार के लिये बेचैन हो।

मैंने आपके सामने कोई नवीन बात नही कही है। जैनधर्म के प्रचार के लिये ऐसे कितने ही कार्य हमारे पूर्वजो ने किये हैं और वर्तमान मे कर रहे है। असगठित और अव्यवस्थित ढग

के कारण हम उचित सफलता प्राप्त नही कर सके है। यदि सामूहिक शक्ति के बल पर व्यवस्थित रूप से उक्त कार्य करे तो निश्चय ही जैनधर्म का दिन दुगना रात चौगुना प्रचार हो सकता है।

यह जमाना व्याख्यानो का नही है कुछ कर गुजरने का है, इसलिये मै चन्द शब्दो मे अपने मनोभाव आपके सामने रख कर बैठ रहा हूँ। अब आप यह निर्णय कीजिये कि जैनधर्म की उन्नति के लिये कौन-कौन सी बाते आवश्यक है। केवल निर्णय ही न कीजिये बल्कि उसे अमली जामा पहनाने की भी योजना बनाइये और उसमे जो सेवा आप मेरे योग्य समझे मुझे दीजिये और जो कार्य आप कर सके उसकी जिम्मेदारी आप भी सहर्ष लीजिये, मेरा यही आप से अनुरोध है।

लालाजी का परोपकारी कार्य उद्योगशाला

ब्र० सीतलप्रसादजी

ता० ८ को देहली मे आकर तिलक इश्योरेन्स कम्पनी नई देहली मे लाला तनसुखरायजी के पास ठहरे। लाला जौहरीमलजी व पन्नालालजी मिले। दोनो बडे मिलनसार सज्जन है। लाला तनसुखरायजी की तरफ से भोजन व निवासस्थान पाते हुए १० छात्र उद्योग-धन्धा सीखते हैं, उनके नामादि इस प्रकार है—

१—कस्तूरचन्द परवार—दमोह (२०) हिन्दी मिडिल पास—कॉमर्शियल प्रेस मे कम्पोजिग कार्य सीखते है।

२—लक्ष्मीचन्द परवार—बीना (२०) विशारद प० ख०—उद्योगशाला मे टेलरिंग कार्य सीखते है।

३—स्वरूपचन्द जैन परवार—खुरई (१८) प्रवेशिका तृ०—टेलरिंग।
४—फूलचन्द कठनेरा—सिरोज (१८) हिन्दी इग्लिश छठी—टेलरिंग।
५—फूलचन्द ए० परवार—लागौन (१६) शास्त्री प्र० ख०—टेलरिंग।
६—छोटेलाल गोलापूर्व—दमोह (२०) विशारद द्वि० —टेलरिंग।
७—कामताप्रसाद परवार—दमोह (२२) शास्त्री प्र० ख०—टेलरिंग।
८—बाबूराव जैन परवार—मु गावली (१६) मैट्रिक—टाइपराइटिग शॉर्ट राइटिग।
९—गुट्टूलाल परवार भोपाल (१७) हिन्दी पाचवी—घडीसाजी।
१०—उदयचन्द परवार—खिमलासा (२०) विशारद तृ०, आयुर्वेदाध्ययन।

इन छात्रो को एकत्र कर रात्रि को धर्मोपदेश दिया व यह सूचना दी कि इन सब छात्रो को नियम से किसी धर्मशास्त्र मे वार्षिक परीक्षा देनी चाहिए व आठवे दिन सभा करके भाषण देना सीखना चाहिए। लालाजी का यह परोपकार सराहनीय है। बा० अयोध्याप्रसादजी गोयलीय ने प्रेरणा की कि वे साप्ताहिक सभा व धार्मिक परीक्षा का नियम करावे। परिषद का दफ्तर देखा। अभी तक करीब ५००० सभासद हुए है तो भी फीस की रकम ३५०) के करीब आई है। उद्योगशाला का कार्य प्रशसनीय है।

राजस्थानी भाइयों की अपूर्व सेवा

सम्पादक विश्वमित्र

आप जैन समाज तथा वैश्य परस्पर सहायक सभा के सुविख्यात नेता है। कलकत्ता तथा रगून आदि से मारवाड़ तथा राजपूताना की ओर जाने वाले यात्रियो की सेवा में बहुत प्रयत्नशील है। इस बारे मे आप रेलवे के उच्च अधिकारियो से भी मिल चुके है जिसके फल-स्वरूप यात्रियो के लिए बहुत सी सुविधाएँ प्राप्त हो गई हैं। रेलवे के स्थानीय अधिकारी श्री मदन-लालजी, स्टेशन मास्टर, श्री गौरीरामजी गार्ड, तथा श्री मगलसैन जी, टी. ऐन. ऐल रिवाड़ी ने, जो सहायता तथा सेवाएँ प्रदान की है, वे प्रशसनीय है। बीकानेर राज्य ने भी यात्रियो की सुविधार्थ अपने यहा से श्री विरधीचन्दजी नाजिम, श्री शिवकृष्णजी पेशकार, श्री जगन्नाथ जी गिरदावर, तथा श्री सूरजमल जी सैकेटरी सरदारशहर को यहाँ भेजा हुआ है, जिनके सहयोग से यात्रियो को बड़ा लाभ हो रहा है। लाला तनसुखराय जैन, डाक्टर हरस्वरूप जी, मा० लक्ष्मी-नारायणजी, श्री महावीरप्रसादजी जैन, आई ए आदि उत्साही कार्य-कर्त्ताओ के साथ तथा तिलक बीमा कम्पनी के स्टाफ के साथ प्रतिदिन स्टेशन पर अपना बहुत सा समय देकर यात्रियो की सब प्रकार की सुविधाओ का पूरा-पूरा ध्यान रख रहे हैं।

कलकत्ता व रगून आदि से जो लोग युद्ध के भय से आ रहे है, उनमे से अधिकतर लोग राजपूताना तथा मारवाड की ओर जा रहे हैं, इसी कारण बीकानेर राज्य अपने यहा आने वाले यात्रियो की सुविधाओ के लिए बहुत प्रयत्नशील है। ता० २७ दिसम्बर की शाम को बीकानेर के प्रधान मत्री राजा मानधातासिंह जी स्वय देहली स्टेशन पर पधारे और वहा पर यात्रियो की सेवा में तत्पर लाला तनसुखराय जैन, सेठ वेनीप्रसाद जी, मास्टर लक्ष्मीनारायण, डाक्टर हरस्वरूप आदि उत्साही कार्यकर्त्ताओ से भेट की और बड़ी देर तक समस्त प्रबन्ध का निरीक्षण तथा वार्ता-लाप करते रहे। यहां के कार्य की बहुत प्रशसा की। उन्होने यह भी पूर्ण विश्वास दिलाया कि बीकानेर राज्य समस्त यात्रियो की सुविधाओ का पूरा ध्यान रख रहा है। इन यात्रियो के किसी भी सामान पर कोई नवीन या अधिक चु गी नही लगाई गई है। जिन ग्रामो मे वे लोग ठहर रहे है, वहाँ पर रक्षार्थ सैनिको का विशेष प्रबन्ध कर दिया गया है, ताकि लूट-मार आदि की सभावना न रहे।

प्रधान मत्री महोदय ने यह भी बताया कि आगे का दौरा समाप्त करके वह २ जनवरी को फिर देहली पधारेंगे। यदि बीच मे यात्रियो की किसी ऐसी कठिनाइयो का पता चले, जिनको राज्य दूर सके तो वह उस समय उन्हे बता दी जाय। उन्हे दूर करने का पूरा प्रयत्न करेंगे।

× × × ×

श्रद्धा और तर्क, जीवन के दो पहलू हैं। जीवन मे दोनों की अपेक्षा है। व्यावहारिक जीवन मे भी न केवल श्रद्धा काम देती है और न केवल तर्क। दोनो का समन्वित रूप ही जीवन को समुन्नत बनाने में सहायक होता है। अत तर्क के साथ श्रद्धा की भूमिका होनी चाहिए और श्रद्धा भी तर्क की कसौटी पर कसी होनी चाहिए।

अग्रसेन जयन्ती महोत्सव

रायजादा गूजरमलजी मोदी

लालाजी की सेवा की प्रवृत्ति जैन समाज तक ही सीमित नही रही, उन्होने विभिन्न क्षेत्रो मे प्रवेश करके अपनी आत्मिक भावना को अधिक उज्ज्वल बनाया। १९४१ मे देहली मे महाराजा अग्रसैन जयन्ती का सफल आयोजन करके एक ऐसा श्लाघनीय कार्य किया जिसकी याद सदैव बनी रहेगी। देहली के वैश्य भाई जयती के अवसर पर जलूस निकालने मे हिचकिचाते थे। परतु आपने साहस और आत्म-विश्वास से काम लेकर जलूस की आयोजना की जिसके फलस्वरूप ऐसा जुलूस निकला जो देहली के वैश्य भाइयो के इतिहास में अद्वितीय मिसाल रहेगी। आपने अग्रसैन जयन्ती मे पास हुए प्रस्तावो को कार्य-रूप मे परिणत किया और अगरोहे मे खुदाई कर जो सामग्री प्राप्त की वह अग्रवाल जाति के इतिहास के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

दीवान हाल मे श्री महाराज अग्रसेन का जयन्ती समारोह उत्तर भारत के प्रसिद्ध मिल-मालिक रायजादा सेठ गूजरमल जी मोदी (बेगमाबाद) के सभापतित्व मे अग्रवाल वैश्य समाज के जातीय उत्सव के रूप मे मनाया गया। सभा की कार्यवाही सभापतिजी के स्वागत तथा मगलगान से प्रारम्भ हुई। हाल खचाखच भरा हुआ था। देवियाँ भी एक अच्छी सख्या मे उपस्थित थी।

प्राय आधा दर्जन देहली की वैश्य सस्थाओ द्वारा सभापतिजी को मानपत्र दिए गए, जिनका उत्तर देते हुए सभापतिजी ने अग्रवाल जाति की वर्तमान अवस्था का दिग्दर्शन कराते हुए एक सुन्दर भाषण दिया। प० रामचन्द्रजी देहलवी ने सार्वभौमिक उद्देश्यो और अग्रवाल जाति से उनके सम्बन्ध की चर्चा करते हुए बहुत ही सुन्दर और महत्वपूर्ण भाषण दिया।

अग्रवाल-कुल-प्रवर्तक महाराज अग्रसेनजी के जीवन के इतिहास की आवश्यकता को बतलाते हुए श्री तनसुखरायजी जैन ने कहा कि अगरोहा श्री अग्रसेनजी महाराज के विशाल राज्य की राजधानी थी। प्रत्येक प्राणी उनके राज्य मे सुखी था। अगरोहा उस समय स्वर्गस्थान समझा जाता था। उस समय आपस मे इतना प्रेम था कि कोई भाई अपने आपको गरीब नही समझता था। हरियाना प्रात मे दूध की नदियाँ बहती थी। किसी समाज या देश का इतिहास उसकी पीठ की रीढ की हड्डी है। जिस समाज का साहित्य अधिक विकसित और विशाल होगा, वह समाज उतना ही उन्नत होगा। किन्तु अग्रवाल-कुल-प्रवर्तक महाराज अग्रसेनजी के जीवन का इस समय तक कोई पूर्ण इतिहास नही बन सका है। इसका मुख्य कारण यह है कि अगरोहे के खण्डहरो मे जो सामग्री भरी पडी है, उसकी अभी तक छानबीन नही हुई है। जिस जाति के शूरवीरो का इतिहास प्रकाश मे नही आता, उस जाति के नवयुवक शूरवीर नही हो सकते। जो लोग यह कहते हैं कि अग्रवाल बनिये है, कायर है, इनका तो पेशा सिर्फ दुकानदारी है, वह बहादुर नही हो सकते, उनको बताने के लिए आवश्यक है कि श्री अग्रसेनजी महाराज की एक सपूर्ण जीवनी प्रकाशित हो, ताकि उस जीवनी के पढ़ने से हमारे नौजवानो के खून मे जोश आए और

दिल मे इच्छा हो कि हम भी शूरवीर बने। श्री अग्रसेनजी महाराज की जीवनी प्रकाश में लाने के लिए सबसे पहले हमे अगरोहे की खुदाई का कार्य अपने हाथो मे लेना चाहिए। वहां की खुदाई से हमे उनकी जीवनी के लिए बहुत कुछ मसाला मिल सकता है। इसके लिए उत्साही कार्यकर्त्ताओ की जरूरत है, जो इस कार्य को पूरा करने की प्रतिज्ञा लें। जब इतिहास पूर्ण हो जावे तब उसके सस्ते सस्करण छपवाये जावे, जिसमे प्रत्येक भाई उनके जीवन का हाल पढ सके। जो अग्रवाल जाति मे विद्वान है, उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे इस कार्य को सफल बनावें। दानी महानुभावों को चाहिए कि वह इस कार्य के लिए दिल खोलकर दान दें। मुझे आशा है कि बहुत शीघ्र ही कार्य प्रारभ हो जाएगा और प्रत्येक अग्रवाल भाई इसमे सहयोग देगा।

उत्सव की शान मे चार चाँद लगाने वाले श्री जगन्नाथजी गुप्त के व्यायाम के खेलों को और विशेषकर छाती पर पत्थर तुडवाने को उपस्थित लोगो ने बहुत सराहा।

सभा मे चार महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से पास हुए, जिनका तात्पर्य निम्न है —

१—देहली नगर मे एक विशाल वैश्य भवन की स्थापना हो, जिसमें वैश्य बालको को औद्योगिक शिक्षा देने, शारीरिक उन्नति करने तथा वैश्य भाइयो के ठहरने का उत्तम प्रबन्ध होगा। इसके अतिरिक्त इस भवन के निर्माण का मुख्य उद्देश्य अग्रवाल जाति की आवाज को अपने प्लेट-फार्म द्वारा फैलाना होगा।

२—अगरोहा का, जो अग्रवाल जाति का कीर्तिनगर था, पुनर्निर्माण करना। वहाँ महाराज अग्रसेन का एक स्मारक बनवाना तथा अग्रवाल बस्ती को बसाना है।

३—भारत सरकार से यह प्रार्थना की गई कि वह महाराज अग्रसेन के जन्म दिवस की प्रमाणित छुट्टी घोषित करे।

४—भारत सरकार से यह भी प्रार्थना की गई है कि वह वैश्य समाज के युवकों को फौज व पुलिस आदि मे उचित स्थान दे।

सभा मे भवन निर्माण के लिए जो अपील की गई, उसका बडा सुन्दर प्रभाव पडा तथा एक अच्छी राशि मे रुपया देने व भवन के कमरे आदि बनवाने के वायदे हुए। सभा रात्रि के ११ बजे समाप्त हुई।

रायजादा सेठ गूजरमलजी मोदी को देहली के प्रमुख वैश्य नागरिको की ओर से एक प्रीतिभोज भी दिया गया, जिसने नगर के गण मान्य व्यक्ति उपस्थित थे। सभा मे लाला विघ्न-स्वरूप कोल मर्चेण्ट, प० मक्खनलाल जैन, लाला आनन्दप्रिय, बैरिस्टर श्रीरामजी आदि के भाषण हुए।

★ ★ ★

युवको! तुम पुन धधक उठो, जो तुम्हारे उन्नति मार्ग मे निरोधक होगा वही जलेगा, कारण कि तुम मन्द कोयले की भाँति हो और समय पर खूब भभक सकते हो।

बच्चो! तुम अब विलासिता का त्याग करके कुर्बानी करना सीखो और अपना सर्वस्व समाज के उत्थान मे लगा दो। तुम्हारे दस बेटे हो वे फले-फूलें और समाज के काम आवें।

सभापति का भाषण

जातीय संगठन के लिए अपील

रायजादा श्री गूजरमलजी मोदी ने सभापति पद के भापण देते हुए कहा—अग्रवाल जाति के इतिहास पर अभी तक बहुत कम साहित्य लिखा गया है और जिन सज्जनो ने इस सबध मे अनुसधान किया भी है, खेद है उन लोगो को भी हमारी ओर से कोई सहायता नही दी गई। अखिल भारतीय मारवाडी अग्रवाल जातीय कोष वम्बई ने अग्रवाल जाति के सबध मे सक्षिप्त रूप में कुछ पुस्तकें प्रकाशित की है। प्रत्येक जाति के लिए यह आवश्यक है कि यदि वह जीवित रहना चाहती है तो अपने पूर्वजो के कार्यों को सुने-सुनावे, जिससे उनकी आगामी सन्तान मे जोश पैदा हो और आपस मे जातीय सम्बन्ध अधिक दृढ हो, क्योकि हर जाति को दृढ बनाने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपनी जाति मे एक लहर पैदा करे कि वह सब एक ही कुल की सतान है और एक ही रक्त से उनकी उत्पत्ति है। इसी उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए हम सब लोग यहाँ इकट्ठे हुए हैं, ताकि हमे फिर याद आ जाय कि हम सब एक ही कुल की सन्तान है और हम सब लोगो की उन्नति का रहस्य आपस मे प्रेम रखने पर निर्भर है।

जातीय सगठन

समय के परिवर्तन से हमारा यह परिवार सैकडो मत-मतान्तरो मे विभाजित हो गया है और आज आपस मे उन भेदो से कोई अपने आपको सनातनी, समाजी और कोई जैनी कहता है। विचार कुछ हो, लेकिन यह बात तो मानी हुई है कि हम सब एक ही रक्त से सम्बन्धित है। इस कुल के सुपुत्र देश के प्रत्येक कोने-कोने मे आकर आबाद हुए, फिर इनमे इतनी भूल बढी कि एक सूबे के रहने वाले भाई दूसरे सूबे के रहने वाले भाई से अपने को अलग समझने लगे और आज यह दशा है कि मारवाड मे बसने वाले अग्रवाल भाई अपने आपको मारवाडी और पजाब मे बसने वाले भाई अपने आपको पजाबी कहने लगे।

श्री अग्रसेन जी महाराज के चरण कमलों में श्रद्धा के फूल

स्वागताध्यक्ष श्री तनसुखराय जैन

आज परमपितामह श्रद्धेय महाराजाधिराज श्री अग्रसैन जी महाराज का जयन्ती दिवस है। उस महापुरुप के पराक्रम और प्रताप से अग्रवाल जाति की धाक सारे देश पर जमी हुई थी। अगरोहा श्री अग्रसैन जी महाराज के विशाल राज्य की राजधानी थी। उनके राज्य में प्रत्येक प्राणीमात्र सुखी था। अगरोहा उन दिनो स्वर्ग समझा जाता था। प्रत्येक अग्रवाल उच्च आदर्श रखता था। उनके आचार-विचार बहुत शुद्ध थे। उन पर निम्न श्लोक चरितार्थ होता था —

महाजनो येन गत स पन्था

अर्थात् महाजन जिस मार्ग से जाते है वही मार्ग ठीक है। उन्हे सब अपना पथप्रदर्शक समझते थे। पशुपालन, कृषि, लेन-देन और व्यापार—यह चार उनके धन्धे थे। पशुपालन और कृषि इन दोनो धन्धो की तो बागडोर इन अग्रवालो के ही हाथ मे थी। उन दिनो चान्दी और सोने की बजाय पशुधन सबसे उत्तम माना जाता था। एक-एक महाजन के पास ५०-५० हज़ार, ६०-६० हज़ार गायें-भैंसे आदि दूध देने वाले पशु होते थे। वह लाखो बीघे ज़मीन के स्वामी होते थे। विशेषतया हमारा हरियाना प्रात तो दूध और घी के लिये देश भर मे विख्यात था। इस प्रान्त मे दूध की नदिया बहती थी।

उस समय मे आपस मे इतना प्रेम था कि कोई भाई अपने आपको गरीब नही समझता था। इतना भ्रातृभाव था कि यदि कोई भाई नुकसान मे तथा किसी आपत्ति मे आ जाता था और वह अगरोहे मे आ गया है तो प्रत्येक अग्रवाल उसको एक ईट और एक रुपया देकर अपने समान बना लेते थे। आपस मे बहुत सहानुभूति थी। देवियो का बडा मान था और यदि कोई भाई किसी के द्वार पर अपनी लडकी का रिश्ता लेकर चला गया है तो लडके वाला भाई उसको अपना गौरव समझता था और सौभाग्य समझता था कि लक्ष्मी आ गई और पल्ला पसार कर कन्या का रिश्ता स्वीकार लेता था।

इस समय हमारी जाति की दशा बड़ी शोचनीय है। अग्रवालो के सामने अब जीवन-मरण का प्रश्न उपस्थित हो गया है। हमारे भाइयो का पशुपालन और कृषि से ध्यान जाता रहा। लेन-देन और वाणिज्य भी एक प्रकार से सरकार के नए कानूनो के कारण नष्ट हो गया है। अब तो हमे सगठित होकर अपनी इस शोचनीय दशा पर विचार करना ही होगा कि हम किस प्रकार जीवित रह सकते है?

अग्रवाल समाज मे शिक्षा की बहुत हो कमी है। बीसवी शताब्दी शिक्षा और सभ्यता का युग कहलाता है लेकिन हमारे अग्रवाल समाज मे अब भी शिक्षा का बहुत कम प्रचार है। आश्चर्य की बात है कि देश मे अब शिक्षा प्रदान करने वाली जितनी सस्थाए है वे अधिकतर हमारे ही जाति भाइयो के रुपयो से चलती है तो भी हम लोगो के बालको और नवयुवको की भारी सख्या शिक्षणालयो से पूरा लाभ नही उठाती। प्रत्येक देश और जाति की उन्नति शिक्षा पर ही निर्भर है। हमारी शिक्षा का आदर्श यही होना चाहिये कि हमारे नवयुवको का जीवन सादा और उनके विचार उच्च हो। अपने देश, अपने धर्म और अपनी जाति के लिए उनको अपने कर्त्तव्य का ज्ञान हो। शिक्षा के अभाव के कारण हमारे घरो तथा हमारी जाति मे तरह-तरह की कुरीतिया फैली हुई है जो दिन पर दिन हमारे पतन का कारण बन रही है।

आज हमारी जाति के नवयुवको के सामने रोटी और कपडे का सवाल है। दूसरी जातिया हमारी जाति को धनाढ्य समझते हुए हम पर ईर्ष्या करती है। किन्तु हमारे नवयुवको के अन्दर बेरोज़गारी निरन्तर बढती जा रही है। बहुत से अग्रवाल परिवार जिनके रात-दिन सदाव्रत चलते थे, जो सैंकडो गरीबो को गर्मी सर्दी से बचने के लिये कपडा दिया करते थे उन

परिवारो के नवयुवक नौकरी की तलाश मे दर-दर भटकते फिरते है। ऐसे भी कई उदाहरण मिलते है कि हमारी जाति के नवयुवक पेट की ज्वाला के वशीभूत होकर विधर्मी तक बन गए। क्या ऐसी अवस्था को देखकर आज के पुण्य दिवस पर हमारा कोई कर्तव्य नही है ? भारतवर्ष के व्यापार और कारखाने आदि का बहुत बडा भाग हमारे अग्रवालो के हाथ मे है। यदि यह धनी वर्ग थोडा सा भाग देकर अपनी जाति के बच्चो को अपना ले तो कोई कारण समझ मे नही आता कि हमारे नवयुवक भी पारसी जाति के युवको से किसी तरह भी कम रहे। हमे पारसी जाति से इसका सबक लेना चाहिये। पारसियो ने अपनी जाति को इतना सगठित कर लिया है और वह अपने नवयुवको की ओर इतना ध्यान देते है कि प्रत्येक पारसी की औसत मासिक आय १०० रु० बताई जाती है और उनमे कोई भी नवयुवक बेरोजगार नजर नही आता है।

जिला हिसार की तहसील फतेहाबाद एक ग्राम के रूप मे है और इसी स्थान पर उन्होंने अपना शेष जीवन व्यतीत किया। इसी स्थान से हम लोगो का विकास आरम्भ हुआ। महाराज अग्रसैन की १८ रानिया थी। उनका पहला विवाह मगध नरेश महाराज कुमुद की पुत्री माधवी से हुआ, दूसरा विवाह चम्पावती के राजा धनपाल की कन्या धनपाला से हुआ, तीसरा विवाह परमार के राजा सुन्दरसेन की कन्या सुन्दरावती से हुआ तथा शेष रानियां महाराज कोलापुर की सुपुत्रिया थी। इन १८ महारानियो से १८ पुत्र उत्पन्न हुए, जिनके अलग-अलग गुरु थे। इन राजकुमारो की जो सन्तान हुई उनके गोत्र उन्ही राजकुमारो के गुरुओ के नाम से प्रचलित हुए। यह सब कुछ बतलाने मे मेरा उद्देश्य यह है कि हम शेष सब बातो को ध्यान मे न लाते हुए कि हमे किस धर्म मे विश्वास है तथा किस जगह के रहने वाले है, केवल यह ध्यान मे रक्खें कि हम तमाम अग्रवाल एक ही परिवार के है और आपस मे एक-दूसरे को भाई-भाई समझे।

वैश्य भवन

मुझे यह बडे खेद के साथ कहना पड़ता है कि देहली जैसे स्थान मे जो कि सब जातियो की कार्यवाहियो का केन्द्र है, हमारा कोई स्थायी प्रबन्ध नही, जहा हम आपस मे इकट्ठे होकर प्रेम-भाव बढा सकें और हमारे बच्चे व्यायाम कर सकें तथा आपस मे सगठित हो सके, जिससे जाति मे इतनी शक्ति उत्पन्न हो जावे कि ससार की कोई भी जाति हमे दबा न सके। क्या ही अच्छा हो कि आप लोग इस प्रकार का कोई भवन निर्माण कर सकें, जिसमें व्यायाम, दगल, लाठी और गतका आदि सिखलाने का प्रबन्ध हो जाए। यदि देहली वाले भाई इस प्रकार का कोई शुभसकल्प करेंगे तो मैं विश्वास दिलाता हूँ कि बाहर रहने वाले भाई भी इस शुभ कार्य मे अवश्य हाथ बढावेंगे।

आजकल वैसे तो बेकारी चारो ओर ही फैल रही है, परन्तु वैश्य जाति विशेषकर इसका शिकार हो रही है, क्योकि वैश्य जाति के बच्चो मे दुर्भाग्य से यह सन्देह उत्पन्न कर दिया गया है कि वे कोई कार्य, जिसमे शारीरिक बल की आवश्यकता हो, नही कर सकते। यही कारण है कि हमारे बच्चे अभी तक उद्योग-धन्धो, मेकेनिकल लाइन तथा फौज व पुलिस मे कोई भाग नही ले रहे है। मेरे विचार मे वे कभी भी इतने कमजोर नही है, जैसा कि ख्याल किया जाता

दानवीर सर सेठ श्री हुकमचंदजी सा० इन्दौर की अध्यक्षता मे भाषण देते हुए

श्री अग्रसेन जयन्ती के अवसर पर स्वागत भाषण करते हुए

लालाजी के घनिष्ठमित्र श्री कुंवरसैनजी के सम्मान के अवसर पर
माननीय श्री गोविन्दवल्लभ पंत गृहमंत्री द्वारा सत्कार
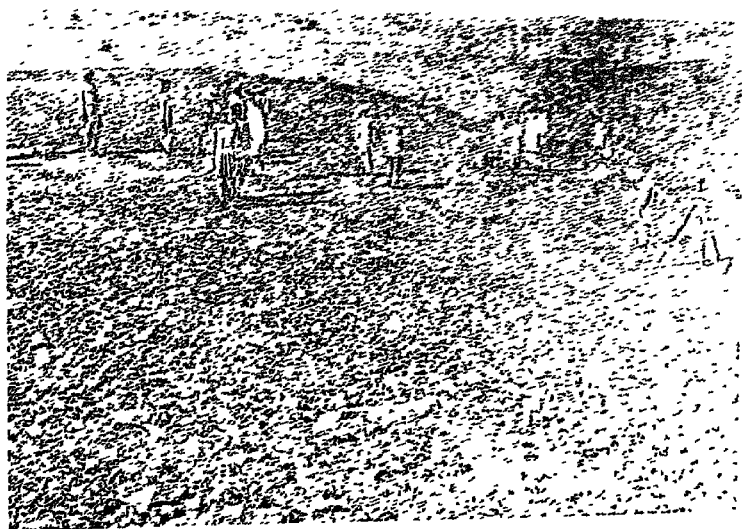
अगरोहा की खुदाई करवाते समय

है। यदि वे इन सब कार्यों में भाग लेना आरम्भ कर दे, तो मुझे पूरा विश्वास है कि वे सब अन्य जातियो से बाजी ले जा सकते है।

आजकल जो जाति उन्नति करना चाहती है, उसके लिए आवश्यक है कि वह शक्तिशाली प्रेस की भी स्थापना करे। हमारा न कोई प्लेटफार्म है और न ही प्रेस ही है। जिन-जिन व्यक्तियो ने प्रेस चलाने का उद्योग भी किया और जातीय उन्नति के लिये प्रचार करना चाहा, उन्हे असफलता ही मिली। आज यदि हमारे किसी जातीय भाई का कोई पत्र' प्रकाशित होता है, तो वह इसलिये जीवित नही रहता कि उन्हे जाति की ओर से कोई विशेष सहायता नही मिलती है। इसलिए हमे आज से यह प्रतिज्ञा कर लेनी चाहिये कि हम अपने जातीय भाइयो के प्रेसो की पूरी-पूरी सहायता करेंगे ताकि हमारे जातीय कष्ट प्रेसो द्वारा दूर करायें जा सकें तथा जाति के छोटे से छोटे कष्ट को प्रत्येक व्यक्ति के कानो तक पहुँचाया जा सके। मुझे यह बतलाने की कोई आवश्यकता नही कि हमारे जिन जातीय भाइयो के हाथ मे कोई भी कार्य है, उनकी सदैव यह इच्छा है कि वे जाति के नवयुवको की हर सम्भव सहायता कर सके। परन्तु इसमे सबसे बडी कठिनाई यह है कि ऐसी कोई सस्था नही कि जिसको वास्तव मे सहायता की आवश्यकता हो और जो सहायता दे सकते है, उनका मिलाप करा सके। मुझे यह जानकर बड़ा हर्ष है कि 'वैश्य सहायक सभा' देहली ने इस कार्य को करने का भार ले रखा है और वह जाति के नवयुवको को रोजगार दिलाने की हर प्रकार से सहायता कर रही है। यही नही वरन् इन्होने जाति के नवयुवको को भिन्न-भिन्न प्रकार के उद्योग-धन्धे सिखलाने का कार्य भी आरम्भ किया हुआ है। मेरा विचार है कि यदि आप सभा की सहायता करेंगे तो यह सभा आपके बच्चो को बहुत कुछ लाभप्रद सिद्ध होगी।

एक आदर्श उपयोगी संस्था

भील आश्रम

राजेन्द्रप्रसाद जैन,
इन्दौर

[लालाजी की सामाजिक कार्यों मे विशेष रुचि थी। जैन समाज के कार्यो मे ही उन्हे उत्साह न था वरन् सेवा का कार्य करने का जब भी उन्हे अवसर मिला वे तत्काल उस कार्य मे प्रवृत्त हुए। गगानगर आदर्श भील उद्योग आश्रम का उद्घाटन उनके हाथो से हुआ और उन्होने इस आश्रम मे विशेष रुचि प्रदर्शित की। इस सस्था का कुछ परिचय दिया जा रहा है।]

भारत के मुख्य विभाग मालवा, राजपूताना तथा गुजरात प्रात के घने वनो मे आधुनिक शहरो से दूर, विन्ध्याचल, अरवली व सतपुडा आदि पर्वतश्रेणियो के मध्य मे करोडो की सख्या मे बसने वाली भील जाति की दयनीय दशा की ओर यदि दृष्टिपात किया जाय, तो कोई भी ऐसा सहृदय व्यक्ति न होगा जो आँसू न बहाये। उक्त जाति भारतवर्ष की सबसे प्राचीन जाति है। यह मानने मे तो किसी को विरोध नही हो सकता। राजनीति, शिक्षा शिल्प, विद्या तथा व्यापार मे, इतिहास मे उक्त जाति का स्थान क्या रहा होगा, यह तो नही कहा जा सकता,

परन्तु, वीरता, धीरता, रणकुशलता, देशप्रेम तथा बात के पक्के होने का प्रमाण आज भी इतिहास के पन्ने-पन्ने से मिल रहा है। कितनी ही बार हमारे राजाओ तथा राणाओ की रक्षा इसी कौम के होनहारो ने अपने प्राण देकर भी की थी। कितनी ही बार स्वदेश-रक्षा के निमित्त इन्ही बहादुरो की तलवारे यवनो से लडी थी, कितनी ही शत्रुओ की आग बरसाने वाली तोपो का मुकाबला इन्ही रणबाकुरे सिपाहियो के तीरो, भालो और सनसनाते हुए बाणो ने किया था तथा कितनी ही बार इन्ही भील सरदारो ने देश के लिए अपने होनहार बच्चो को अर्पण कर दिया था। परन्तु कितने दुःख तथा शर्म की बात है कि हिन्दू धर्म के लिए प्राण देने वाली कौम के अनुयायी ही हिन्दू धर्म के मुख्य तीर्थ गौशाला के सहारक बने। गाय को मार कर अपने पेट की ज्वाला को शान्त करे !! परन्तु इसमे उनका क्या दोष ? वे आज अशिक्षित है तब भी उन्हे सन्तोष है। उनके पास पहनने को कपडा नही, तो भी उन्हें परवाह नही। भगवान् ने उन्हें दुःख सहने की, गर्मी और सर्दी की तकलीफे बर्दाश्त करने की शक्ति दी है। आप उन्हे गुलाम बनाइये, मनचाहा काम उनसे लीजिये, सब कुछ बर्दाश्त करेंगे। वहा उन्हे अन्न न मिले न सही। घास-फूस-जगली कन्द-मूल पर गुजारा करेगे। परन्तु जब वह भी न मिले तो क्या करें ? मजबूर होकर उन्हें सब कुछ करना पडता है। खेती आदि के काम के लिए उनके पास गायें व बैल होते है, वे उन्ही को मार कर उनके मास से अपना उदर पोषण करते है। और इसके सिवाय चारा भी क्या ? जब उनके जानवरो को भी घास मिलना तक कठिन हो जाता है, तब मजबूरन उन्हे ऐसा करना होता है।

आज उन्हे यदि उचित रूप से शिक्षा दी जाए, गोमाता की महत्ता को उन्हे बताया जाए, हिसा तथा चोरी की बुराइयो को उनके सामने रक्खा जाए, धर्म, पुरुषार्थ, उद्योग-धधा, कृषि, व्यापार, परोपकार, सेवा तथा गोभक्ति की शिक्षा पुस्तकीय तथा व्यावहारिक रूप से देकर विश्वप्रेम का पाठ पढाया जाए, तो कोई ऐसी शक्ति नही जो उन्हे सुन्दर नागरिक बनने से रोक सके। आज भील जाति चोरी, हिंसा, डकैती आदि बुराइयो के कारण विश्व मे बदनाम हो रही है। यदि यही बुराइयाँ उनसे दूर कर दी जाये तो वह दिन दूर नही जब वह फिर अपने प्राचीन गौरव की याद कर देश के लिए हर तरह की कुरबानी करने के लिए तैयार रहेंगे। देश के लिए जियेंगे और देश के लिए मरेंगे।

इन्ही विचारो को लेकर आदर्श भील उद्योग आश्रम गगानगर का जन्म नीमखेडा स्टेट के चीफ ठाकुर गगासिहजी द्वारा हुआ था। वैसे इस सस्था की उम्र अभी केवल ४।। मास की है। परन्तु इस थोडे से समय मे ही वह अपने कार्य मे सफल हुई है। उस सफलता को देखकर कहा जा सकता है कि उपरोक्त सस्था को जनता का यदि कुछ भी सहयोग प्राप्त हुआ तो वह भारत की एक आदर्श सस्था प्रमाणित हो सकेगी।

गत २२ मार्च को सस्था का उद्घाटन श्रीमान लाला तनसुखरायजी जैना मैनेजिंग डायरेक्टर तिलक बीमा कम्पनी लिमिटेड न्यू देहली के कर कमलो द्वारा हुआ। और तब से आज तक जो कार्य सस्था ने किया उसका विवरण दिया जाता है।

उद्‌घाटन से इस समय तक लगभग एक सौ विद्यार्थी (भील बालक) आश्रम मे प्रविष्ट हो चुके है और इस समय कितने ही माता-पिता अपने बच्चो को आश्रम मे प्रविष्ट कराने के इच्छुक है। माता-पिताओं का बच्चो को आश्रम मे दाखिल कराने को इच्छुक होना इस बात का द्योतक है कि उनके हृदय मे शिक्षा प्राप्त करने की कितनी उत्कण्ठा है। दूसरी बात यह भी है कि वे लोग अपने घर मे बच्चो को भर पेट भोजन नही दे सकते।

शिक्षा—प्रविष्ट होते समय जो बालक, असभ्य, हिंसक तथा निरुद्यमी थे, वही बालक आज विनम्र, विनयशील, अहिंसक तथा सभ्यता के पुतले बने है। जिन्हे बोलने तक की तमीज नही थी, वही बालक आज मधुर कण्ठ से सुबह शाम भगवान की स्तुति करते तथा कठिन से कठिन हिन्दी व सस्कृत के शब्दो का उच्चारण करते हैं।

कृषि-विभाग के लिए भूमि—गंगासिहजी द्वारा आश्रम को पाच सौ बीघा जमीन भेंट स्वरूप प्रदान की गई थी। उसी के कुछ भाग मे खेती की जायगी और बालको को कृषि की शिक्षा सुन्दर तरीके से देने के साथ-साथ उमसे आश्रम की आर्थिक कठिनाई भी बहुत कुछ हल हो सकेगी।

गोशाला विभाग—आश्रम के ही अन्तर्गत एक गोशाला विभाग भी रक्खा गया है; जिसमें भील बालको को गो-भक्ति की शिक्षा देने के साथ-साथ सुन्दर सुडौल बैल भी तैयार किये जाएँगे।

१ उद्योगशील विभाग में इस समय पेपर इन्डस्ट्री का कार्य बड़ी सफलतापूर्वक चल रहा है। भील बालको द्वारा पेपर, ब्लाटिंग पेपर, राईटिंग पेपर तथा लिफाफे तैयार किये गये है, जो कि शीघ्र ही बाजार मे आ रहे हैं।

२ बास की चिकें, चटाइया आदि बनाने का कार्य भी प्रारम्भ हो गया है।

३ रूई के सुन्दर खिलौने बनाने के लिए एक मद्रासी सज्जन आ गये है अत यह कार्य शीघ्र ही बालको को सिखाना प्रारम्भ कर दिया जायगा।

कुछ कार्य और भी है जो कि इनमे पूर्ण सफलता मिलने पर प्रबन्धकों द्वारा प्रारम्भ किए जावेंगे।

इस समय सस्था स्टेट की न रह कर पूर्ण रूप से सार्वजनिक बन गई है। सदस्यो को आजीवन, सहायक, सरक्षक तथा शुभचिन्तक आदि श्रेणियो मे बाटा गया है। १००१), १०१) तथा ५१) रु० देने वाले सज्जन क्रमश सरक्षक, सहायक तथा शुभचिन्तक कहलाएँगे। अत आशा है कि जनता अधिक से अधिक सख्या मे उक्त सस्था के सदस्य बनकर एक आवश्यक तथा उपयोगी सस्था को अपनाते हुए, धर्म तथा देशोपकार के काम मे भाग लेगी।

❦ ❦ ❦ ❦

विश्व-शान्ति और व्यक्ति की शान्ति, दो वस्तुएँ नही है। अशान्ति का मूल कारण अनियन्त्रित लालसा है। लालसा से सग्रह, सग्रह से शोषण की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है।

आबू टैक्स विरोधी आन्दोलन

श्री विजय कुमारजैन

भारत की अत्यन्त कलापूर्ण और ससार की सर्वश्रेष्ठ स्थापत्य-कला की सुन्दर मूर्तिमान कृतियो मे से आबू के विशाल मनोज्ञ नयनाभिराम दर्शनीय मनोज्ञ मन्दिर हैं। इन अद्वितीय मन्दिरो का निर्माण वीरकेशरी वस्तुपाल और तेजपाल जैसे समर-धुरन्धर मन्त्रिप्रवरो ने कराया। सिरोही राज्य मे यह मन्दिर स्थित है। वहाँ के राजा ने इन मन्दिरो के दर्शनार्थ श्रद्धालु यात्रियो पर टैक्स लगा दिया। यह बडे कलक की बात थी जिसे कोई भी स्वाभिमानी मनुष्य सहन नही कर सकता था। आबू का आन्दोलन कैसे शुरू हुआ और उसमे सफलता कैसे प्राप्त हुई—इस सम्बन्ध मे लालाजी ने लिखा है कि मार्च सन् १९४१ की बात है कि मैं गुरुदेव श्री पूज्य शान्तिविजय महाराज के दर्शनार्थ आबू गया। वहाँ पहुँचने पर जब राज्य की तरफ से मु डका टैक्स माँगा गया तो मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि एक हिन्दू रियासत के मन्दिरो मे पूजा करने और देवदर्शन करने पर टैक्स कैसा ? जबकि यह टैक्स मन्दिर की भलाई अथवा यात्रियो को सुविधा पहुँचाने मे खर्च न होकर राज्य के कोष मे जाता है। उस समय तो मैंने टैक्स देकर दर्शन किए लेकिन मेरे आत्म-सम्मान को इससे भारी ठेस पहुँची। दिल्ली आने पर मैंने इस टैक्स के विरोध में आन्दोलन शुरू किया। चूँकि यह टैक्स हिन्दू मात्र को खल रहा था। मेरी अपील पर चारो तरफ से सहयोग का हाथ बढाया गया। जनवरी १९४२ मे ब्यावर मे एक महती जैन सभा बुलाई गई और उसमे इस टैक्स का विरोध करने के लिए आन्दोलन शुरू करने का निश्चय किया गया। जगह-जगह सभाएँ हुईं। और आन्दोलन जोरो के साथ चल पड़ा। सिरोही राज्य ने इस आन्दोलन को दबाने के लिए राज्य मे रहने वाले जैनियो पर तरह-तरह की सख्तियाँ की। परन्तु इससे आन्दोलन को बल ही मिला। जून सन् ४२ मे एक शिष्ट-मन्डल सिरोही के दीवान से भी मिला परन्तु कोई सन्तोषजनक फल न हुआ। आन्दोलन बराबर चालू रहा लेकिन १९४२ का अगस्त आन्दोलन शुरू होने पर हमारे बहुत से कार्यकर्ता इस इस तरफ झुक गये और बहुतो को जेल जाना पडा। उस समय इस आबू मन्दिर आन्दोलन को स्थगित करना ही उचित समझा गया क्योकि हमको पूर्ण विश्वास था कि देश को आजादी मिलने पर ये छोटे-मोटे टैक्स तो क्या हमारी सब समस्याएँ हल हो जाएँगी।

सौभाग्य से देश की आजादी का सुनहरी दिन आया। हमारी यह माग आबू मन्दिर मु डका टैक्स हटाने की माग भी परिवर्तित समय मे शीघ्र मान ली गई और महारानी साहिबा सिरोही ने उस मु डका टैक्स को सर्वथा हटाने के लिए घोषणा करदी। इस आन्दोलन की सफलता मे समस्त समाचारपत्रो, प्रमुख नेताओ विभिन्न स्थानो की पचायतो और अनेक उदीयमान कार्यकर्ताओ का प्रमुख हाथ है जिन्होने इस आन्दोलन को अपनाकर हमारे कार्य मे पूर्ण सहयोग दिया। समस्त जनता का विशेष आभार है कि जिसने तन-मन-धन से सहायता कर आन्दोलन को सफल बनाया।

इस आन्दोलन का विस्तृत विवरण इस प्रकार है .—

आबू परिचय

राजपूताने की स्वर्ण-भूमि के अंचल मे आबू पर्वत अपनी ऐतिहासिकता, धार्मिकता एव अपने नैसर्गिक सौन्दर्य के कारण गौरवपूर्ण स्थान रखता है। मध्यभारत की भूमि पर इसके शिखर सर्वोच्च माने जाते है। आबू का सर्वोच्च शिखर ५६५० फुट ऊँचा है। कौन ऐसा मानव यात्री है जो आबू के अचल मे पहुँच कर इसकी हरियाली लताकुन्जो, सरोवर, ऊँचे-नीचे मार्गो और लता-पुष्पो से सुगन्धित वातावरण पर मुग्ध होकर कुछ समय के लिए अपने को भूल न जाता हो ! आबू यदि ऋषि-महात्माओ के लिए एकात भूमि है तो विलासप्रिय लोगो के प्रकृतिदत्त मनोरम क्रीडास्थली। दोनो के ही सामने यहा प्रकृति का भव्य एव विराट रूप उपस्थित होता है।

धर्मप्रेमी हिन्दुओ के लिए आबू पर्वत शताब्दियो से पूर्व से ही ऋषियो के तपोवन के रूप मे पुण्य-भूमि रहा है। यहाँ पर हिन्दू धर्म के महान ऋषियो ने अपनी योग साधनाएँ पूर्ण की है। आबू पर्वत की व्युत्पत्ति के साथ हिन्दू धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जब हम धार्मिक ग्रन्थो और पुराणो के पन्ने पलटते है तो स्थान-स्थान पर अर्बुद गिरि (आज का आबू) का उल्लेख मिलता है। आबू की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे पौराणिक उल्लेख इस प्रकार है :—

प्राचीन काल मे ऋषि वशिष्ठजी यहाँ अन्य ऋषियो के साथ आश्रम बनाकर तपस्या करते थे। एक बार वशिष्ठजी की कामधेनु गौ वहा उत्तक ऋषि के खोदे हुए गड्ढे मे गिर गई जिसमें कामधेनु के लिए निकलना असम्भव था। वशिष्ठजी उसे निकालने के प्रयत्न मे थे। लेकिन कामधेनु तो स्वय कामधेनु थी उसने अपने दूध से उस गड्ढे को भर दिया और स्वयं तैर कर बाहर निकल आई। फिर भी इस दुर्घटना से वशिष्ठजी को अत्यन्त दुःख हुआ और उन्होने उस गड्ढे को सदा के लिए भर देने के लिए पर्वतराज हिमाचल से प्रार्थना की। हिमाचल ने वशिष्ठजी की प्रार्थना पर अपने पुत्र नन्दिवर्धन को आज्ञा दी। वशिष्ठजी नन्दिवर्धन को अर्बुद नामक सर्प के द्वारा ले आये और उस गड्ढे मे स्थापित कर दिया जिसमे कामधेनु गिर गई थी। अर्बुद सर्प भी नन्दिवर्धन के नीचे रह गया। इसलिए इस पर्वत का नाम अर्बुद और नन्दिवर्धन दोनो एक साथ-साथ प्रचलित हुए। अर्बुद का अपभ्रंश नाम आबू आज भी प्रचलित है। यह भी कहानी बहुत प्राचीन चली आ रही है कि आबू के नीचे रहने वाला अर्बुद सर्प छः-छः मास मे जब करवट बदलता है तो आबू पर भूकम्प होता है। आजकल भी भूकम्प आबू पर बहुधा होता रहता है। और लोग इसका कारण इसी पुरानी कहानी के आधार पर बतलाते हैं।

नन्दिवर्धन की प्रतिष्ठा के पश्चात् तो उस तपोवन भूमि का धार्मिक महत्व दिन-प्रतिदिन बढता ही गया। आबू पर्वत धार्मिक दृष्टि से भारत की प्रमुख पुण्य भूमियो मे रहा है। और उस काल मे प्रमुख तपस्वियो महात्माओ और सम्राटो को आबू के एकान्त प्राकृतिक सौन्दर्य और निर्जनता मे अपूर्व आत्म-सुख और शान्ति मिली है।

गुरु दत्तात्रेय भगवान ने आबू के सर्वोच्च शिखर गुरु शृ ग को अपने पावन चरणो से पवित्र किया। गुरु शिखर नाम और गुफा मे शिला पर अकित चिह्न आज भी गुरु दत्तात्रय की स्मृतिस्वरूप आबू पर विद्यमान है। प्रतापी पाण्डवो के भी वनवासकाल मे कुछ समय रहने का पता हमे आबू पर्वत पर मिलता है। पाण्डव गुफाएँ और भीम गुफाए आज भी उनके नाम से प्रसिद्ध हैं। राजा नल की गुफा अचानक उस विदर्भ सम्राट की याद दिलाती है जिसने जुए मे राजपाट हार कर सुकुमारी दमयन्ती समेत वन-वन भटकना पडा जिसे चक्रवर्ती सम्राट हरिश्चन्द्र अपनी रानी शैब्या और पुत्र रोहिताश्व के साथ नगे पाव भटकते हुए आबू की शान्तिदायिनी उपत्यकाओ मे शरण लेने से नही चूके। हरिश्चन्द्र गुफा आज भी उनके नाम से आबू पर्वत पर विख्यात है।

नन्दिवर्धन की स्थापना के बाद तो आबू का सौन्दर्य और भी बढ गया। प्राचीनकाल मे कितने ही तपस्वियो ने यहा अपनी तप-साधनाए सफल की। यहा के एकान्त प्राकृतिक सौन्दर्य मे उन्हें अपूर्व आत्मसुख और शान्ति मिलती थी। आज आबू पर जो पुण्य स्मृति-चिह्न पाये जाते हैं उनमे गुरु शिखर पर हमें गुरु दत्तात्रय का आश्रम मिलता है जहाँ उनके चरण चिह्न आज भी विद्यमान हैं। प्रतापी पाण्डवो ने भी आबू पर्वत पर निवास किया, उनकी रमणीय गुफाए आज भी आबू मे देखने योग्य हैं।

राजा नल की गुफामे जुए मे राजपाट हारे हुए उस विदर्भ सम्राट की याद दिलाती है जिसे रानी दमयन्ती समेत वन-वन ठोकरें खानी पडी।

उस आपद्काल मे आबू के अचल मे उन्होने अपनी कुछ दुर्भाग्य भरी रातें बिताई। ब्राह्मण को अपना राजपाट देकर दक्षिणा के चक्कर मे भटकते हुए राजा हरिश्चन्द्र भी दुर्दिनो मे आबू की उपत्यका मे शरण लेने से न चूके।

पौराणिक काल को छोडकर जब हम ऐतिहासिक काल मे आते हैं तो आबू का इतिहास हमे राजपूत नरेशो की वीरता और उनके पराक्रम से रजित दिखाई देता है। शहाबुद्दीन गोरी ने यही आबू की घाटियो मे शिकस्त खाई थी। कितनी ही ऐतिहासिक लडाइयाँ आबू के अचल मे लडी गई थी। उनकी स्मृतियो के अनेको चिह्न हमे आबू मे दिखाई देते है। राजपूताने और मारवाड के समस्त क्षत्रिय राजाओ के लिए आबू आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसमे कोई सन्देह नही कि जहा ऋषियो और तपस्वियो ने आबू की गिरि-कन्दराओ मे अपनी योग-साधनाए सफल की, वहा इन वीर क्षत्रिय नरेशो के लिए आबू ग्रीष्मकाल मे अनोखा शान्ति-निवास रहा है।

❦ ❦ ❦ ❦

तुम पथिक बनकर पथ पर चलो, लेकिन पथ पर कब्जा मत करो! पथ पर चलो पर पथ के नाम पर बडी-बडी अट्टालिकाए और महल खडे मत करो।

ऐतिहासिक काल में आबू

इसमे कोई सन्देह नही कि जहाँ आबू के एकान्त गिरि-कन्दराओ मे तपस्वी ईश्वर-चिन्तन मे लीन रहते होगे, वहाँ इन क्षत्रिय नरेशो की सुन्दरी राजमहिषियाँ आबू के सरोवरो मे लहरो के साथ जल-क्रीडा करती रही होगी, उनके नूपुरो की झकार और वसन्त के गीतो से, आबू के वनपथ और लताकुज सगीतमय हो उठते होगे। उनके केशो और अगो से उठती हुई सुगन्ध से आबू का वसन्त पवन गन्धमय रहता होगा। महारावल समरसिंह, महाराव लु भा, महाराजा तेजसिंह, राणा लाखा और कु भा सरीखे प्रतापी नरेशो की वीर पत्नियाँ यहाँ अहर्निश विहार करती थी। उस समय आबू पर्वत स्वर्गभूमि था और नरेश इसी मे इन्द्र के नन्दनवन की कल्पना करते थे।

लेकिन उस समय इस नन्दनवन तक पहुँचना कितना दुर्गम और साहस का काम था, उसकी कल्पना आज हम नही कर सकते। आबू के पर्वत-शिखरो को दूर से देख लेना आसान था, लेकिन उन तक पहुँचकर वहाँ के नैसर्गिक सौन्दर्य का आनन्द प्राप्त करना दुर्लभ था। तभी तो ऐतिहासिक चिन्हो की खोज मे भटकने वाले प्रसिद्ध ऐतिहासवेत्ता कर्नल टाड ने जब आबू की कठिन चढाइयो और दुर्गमताओ को पार कर आबू की प्रथम झलक पाई, तो लिखा है :—

"It was nearly noon, when I cleared the path of Sitla Mata, and as the bluff head of mount Abu opend upon me, my heart beat with joy, as with the sage of Syracaus I exclaimed, "Eureka"

अर्थात् "मध्याह्न के लगभग जब मैं शीतला माता के घाट से चला, और जब आबू के उच्च शिखर मेरे नेत्रों के सामने दृष्टिगोचर हुए, तो मेरा हृदय प्रसन्नता से नाच उठा और सिराक्युस ऋषि के शब्दो मे मैंने हर्षातिरेक से दुहराया 'यूरेका' (जिसे खोजता था, उसे पा लिया)।"

ऐसे थे आबू के दुर्गम पथ और उनकी बीहडता, जिन्हे पार कर किसी की खुशी का वारापार न रहता था। लेकिन उस व्यक्ति की कहानी आबू के इतिहास से सम्बन्धित एक अमर प्रेम-कथा है, जिसे कर्नल टाड से पहले शायद प्रथम बार आबू पर चढने-उतरने के लिए १२ मार्ग बनाए। सम्भव है उसी के बनाए हुए मार्ग से चढकर कर्नल टाड आबू की उच्चसम भूमि पर पहुँचे होगे। वह व्यक्ति रसियाबालम के नाम से विख्यात तान्त्रिक था और आबू की राजकन्या से प्रेम करता था। उसने चाहा कि राजकन्या के माता-पिता उसके साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दें। लेकिन राजा और रानी किसी प्रकार भी राजकन्या का विवाह रसियाबालम के साथ नही करना चाहते थे। रसियाबालम की निरन्तर प्रेरणाओ और प्रार्थनाओ से आखिर राजा इस शर्त पर राजकन्या का विवाह करने के लिए तैयार हो गए कि वह सूर्यास्त के पश्चात्, प्रात मुर्गा बोलने से पूर्व ही, एक रात मे आबू पर चढने-उतरने के लिए बारह मार्ग बना दे। राजा यह कार्य रसियाबालम की शक्ति से बाहर समझते थे लेकिन रसियाबालम ने राजा की शर्त स्वीकार

करली और सूर्यास्त के पश्चात् अपनी मन्त्र शक्ति के बल से आबू पर्वत पर मार्ग-निर्माण का कार्य आरम्भ कर दिया। लेकिन रानी इस शर्त पर भी अपनी कन्या का विवाह रसियाबालम के साथ करने को तैयार न थी, और वे जानती थी। रसियाबालम समय की अवधि के भीतर अवश्य काम पूरा कर देगा, तब उन्हे लाचार होकर अपनी कन्या का विवाह उसके साथ करना होगा। उधर रसियाबालम ध्यानमग्न होकर अपनी सारी मन्त्र-शक्ति से आबू पर मार्ग-निर्माण का कार्य कर रहा था, यहाँ रानी ने उसे कर्त्तव्य-च्युत करने का निश्चय किया। ज्योही रात्रि का तीसरा पहर समाप्त हुआ और मुर्गे के बोलने का समय निकट आया कि रानी ने अवधि समाप्त होने से पूर्व ही मुर्गा बोलने की आवाज लगा दी। रसियाबालम का कार्य पूर्ण ही होने को था कि मुर्गे की ध्वनि सुनकर एकदम निराशा का धक्का खाकर काम छोड बैठा, और इस प्रकार रानी के छल से अपनी शर्त पूर्ण करने मे असफल हो गया। जब रसियाबालम को इस बात का पता चला कि उसके साथ रानी द्वारा छल किया गया है, तो उसने अपने श्राप से रानी और राजकन्या, दोनो को पत्थर का बना दिया और स्वय विष खाकर वही मर गया। रसियाबालम की जो मूर्ति आबू मे स्थापित है, वह एक हाथ मे विष का प्याला लिए आज भी खडी दिखाई देती है। उसी के बगल मे राजकन्या की पाषाण मूर्ति है। रानी की मूर्ति तोड डाली गई है और उसके स्थान पर पत्थरो का ढेर देखने को मिलता है।

यह है आबू के मार्गो की और उनके निर्माणकर्त्ता की दुखान्त प्रेम-कथा। आज भी आबू पर चढने के लिए बारह मार्ग बतलाए जाते है, कुछ पर आवागमन होता है, कुछ लुप्तप्राय हो गये है। आबू किसी समय ऐसा ही प्रेमोन्मादक स्थान रहा है। आपको आबू पर्वत की भूमि के कण-कण मे ऐतिहासिक और धार्मिक रोमाचकारी कहानियाँ भरी मिलेगी।

आबू के कलासर्जक

लेकिन आबू जहाँ ऐतिहासिक काल के राजा-महाराजाओ के लिए नन्दनवन और क्रीडास्थली रहा है, वहाँ उन्होने आबू मे अपनी धार्मिक भावनाओ को साकार रूप देने के लिए अलौकिक शिल्प और कला की सृष्टि भी की है। उन्होने अपने काल की वैभवशाली शिल्प-कला के अमरचिन्हो के रूप मे मन्दिरो का निर्माण कराकर आबू के आकर्षण मे चार चाँद लगा दिए है। इस प्रकार आबू की यह कलापूर्णता सोने मे सुगन्ध की उपमा को सार्थक करती है। उन पराक्रमी नरेशो की महत्वकाक्षाओ और धार्मिक भावनाओ के प्रतीक, हमे आबू-पर्वत पर मन्दिरो, देवालयो, मूर्तियो, महलो और ध्वसावशेषो मे, शिला-लेखो और ताम्रपात्रो के रूप मे जहाँ-तहा बिखरे मिलते है। हिन्दुओ और जैनो की सम्मिलित कला, धर्म और सस्कृति का यहाँ हमें एक साथ दर्शन होता है। जहाँ जैन महामन्त्री विमलशाह और वस्तुपाल, तेजपाल ने सगमर्मर, शिल्प-कला और धातुकला के उत्कृष्ट उदाहरणो के रूप मे विश्वविख्यात जैनमन्दिर निर्माण कराये, वहाँ हिन्दू सम्राटो मे मेवाड उदयपुर के राणाओ, चन्द्रावती चौहान के वशजो और सिरोही के तत्कालीन शासको ने भी समय-समय पर ऐतिहासिक कला-दर्शक हिन्दू मन्दिर बनवाये। आबू पर्वत पर इन हिन्दू मन्दिरो, देवालयो और धार्मिक तीर्थस्थानो की सख्या सौ के लगभग है, जो जैनियो के स्थानो से तो कई गुणी अधिक है। इन हिन्दू-मन्दिरो की निर्माणकला पर भी हमे

जैनियो के मन्दिरो की शिल्पकला और धातुकला की छाप लगी दिखाई देती है। इस दृष्टि से आबू के हिन्दू-मन्दिरो मे जैसी धातु और पाषाण की विशाल मूर्तियां है, वैसी भारत के शायद ही और किन्ही मन्दिरो मे पाई जाती हो।

प्रमुख हिन्दू मन्दिर

अचलेश्वर महादेवजी का मन्दिर आबू का सबसे प्राचीन मन्दिर माना जाता है क्योकि आबू पर्वत के अधिष्ठाता देव, अचलेश्वर महादेवजी ही है। आबू के परमार शासक इन्हे अपना कुलदेवता मानते थे। बाद मे जब चौहानो का राज्य आबू पर हुआ तो वे भी इन्हे अपना कुल-देव मानने लगे। इस मन्दिर मे शिवलिंग नही, वरन् शिवजी के चरण का अंगूठा ही पूजा जाता है। मन्दिरो मे जो जिलहरी है, उसमे शिवजी के चरण का अगूठा ही स्थापित है। सामने दीवार मे पार्वतीजी और पार्श्व मे ऋषियो और राजाओ की मूर्तिया है। इसके गूढ़-मण्डप से अलग एक शिवलिंग पट है, जिसमे १०८ शिवलिंग बनाये गए है। इस मन्दिर का कई राजाओ ने अपने-अपने समय मे जीर्णोद्धार कराया और मूर्तियां भी स्थापित की। इसके जीर्णोद्धार का सबसे प्राचीन उल्लेख सवत १३४३ मे मिलता है। उस समय मेवाड़ के महारावल समरसिंह ने मन्दिर का जीर्णोद्धार करवाकर इस पर सोने का ध्वजदड चढाया और उनके शिलालेख में तपस्वियो के लिए भोजन और निवास की व्यवस्था कराने का भी उल्लेख मिलता है। मन्दिर के सामने नदी-भगवान की एक विशालकाय पीतल की मूर्ति है, जिसकी पीठ पर खुदे हुए लेख के अनुसार वह स० १४६४ की बनी हुई मालूम होती है। मन्दिर की देहरी के बाहर धातु का एक त्रिशूल है, जिसे राणा लाखा, ठाकुर माडण और कु वर भादा ने सम्मिलित रूप से बनवाकर स्थापित कराया था। शकरजी का इतना विशाल त्रिशूल भारत के और किसी शिवालय मे देखने को नही मिलता।

अचलेश्वर महादेवजी के मन्दिर के अहाते मे और भी अनेक छोटे-छोटे हिन्दू मन्दिर है। इसी मन्दिर की बगल मे पवित्र मन्दाकिनी-कु ड है, जो ९०० फुट लम्बा और २४० फुट चौड़ा है। इतने विशाल कु ड भारत मे विरले ही देखने को मिलते है। कुण्ड के समीप ही परमार राजा धारावर्ष की शक्ति के चिन्ह धनुष और पत्थर के तीन भैसे स्थापित है, जिन्हे वह एक ही बाण से बेध सकता था। मदाकिनी-कुण्ड के समीप ही सारणेश्वर महादेव के भी दर्शन होते हैं। इस मन्दिर मे महाराव मानसिंह की पाँचो रानियो सहित मूर्तिया स्थापित है, जिनमे वे शिवजी की आराधना करते हुए दिखाये गए हैं। कहा जाता है ये पाचो रानिया मृत्यु के पश्चात् राजा मानसिंह के साथ सती हुई थी। मन्दिर के आसपास ही भर्तृहरि-गुफा, रेवती-कुण्ड और भृगु-आश्रम दर्शनीय स्थान है।

गुरुशिखर

ओरिया से वायव्य कोण मे गुरुशिखर आबू का सर्वोच्च अग है, जिसकी ऊँचाई समुद्र की सतह से ५६५० फुट है। परिश्रम की चढ़ाई के पश्चात् इस शिखर पर गुरु दत्तात्रेय के चरण

एक शिला के ऊपर अंकित मिलते है, जिनका स्पर्श आज भी धर्मप्राण हिन्दुओ मे कल्याणदायक माना जाता है। इसी स्थान पर एक वृहदाकार घण्टा लटकता है जिसका रव मीलो तक आबू की पर्वतश्रेणियो में गूजता है।

रसियाबालम कुमारी कन्या

यह प्रसिद्ध ऐतिहासिक मन्दिर जैन मन्दिरो के पार्श्व मे है। इसमे श्रीमाता, गणपति, महादेव और शेषशायी विष्णु भगवान के भी मन्दिर है।

अम्बिकादेवी का मन्दिर

अम्बिकादेवी का मन्दिर अति प्राचीन गुफा मे है। कुछ यात्रीगण इन्हे अधरदेवी भी कहते है क्योकि इस मन्दिर तक ४५० सीढियाँ चढने के बाद पहुँचना होता है। पार्श्व मे महादेवजी का भी मन्दिर है।

इसी प्रकार आबू पर्वत पर पापकटेश्वर महादेव, नखीतालाव, रघुनाथजी का मन्दिर, दुलेश्वरजी का मन्दिर, ज्वालादेवी, भद्रकाली, हृषिकेश आदि देवी-देवताओ के कितने ही देवी-मन्दिर, देवालय तथा देवगुफाएँ है। इसके अलावा तीर्थ-सरोवर, रामझरोखा, ऋषियो और तपस्वियो के आश्रम तथा गुफायें प्राकृतिक सौन्दर्य और धार्मिक दृष्टि से दर्शनीय है। साराश यह कि आबू पर्वत की भूमि का चप्पा-चप्पा देवताओ और ऋषियो की महिमा एवं धार्मिक वैभव से भरा पडा है। इसलिए हरएक धर्मप्रेमी हिन्दू आबू तीर्थ मे अपने को पाकर कृतार्थ समझता है।

जैन मन्दिरो मे धार्मिक कला-शिल्प

कलादर्शन की दृष्टि से तो जैन मन्दिर अपनी उत्कृष्टता के लिए विश्वविख्यात है ही, जिनके अतिसूक्ष्म और कलापूर्ण शिल्प को देखकर विदेशी निर्माण-कला विशारद भी आश्चर्य-चकित रह जाते है, जिसकी सगमर्मर की कला की तुलना पर केवल ताजमहल ही आ सकता है। लेकिन कुछ वातो मे विशेपज्ञो ने इसे ताजमहल से भी बढकर बतलाया है। फिर इनकी धातुकला तो अद्वितीय है। इन मन्दिरो मे केवल जैन सस्कृति और जैन धर्म का ही चित्रण नही है, वरन् एक ऐतिहासिक युग की वेष-भूषा, रीति-रिवाज और अजन्ता तथा एल्लोरा की गुफाओ के समान भावविन्यास और नाट्यकला का सागोपाग चित्रण भी कलाशिल्प और पच्चीकारी मे देखने को मिलता है। मन्दिरो के विभिन्न चित्रलेखो मे हिन्दू दर्शको को हिन्दू-धर्म और सस्कृति की झलक भी देखने को मिलेगी, जिन्हे कि उन कुशल कलाशिल्पियो ने चित्रित किया है। श्रीकृष्ण भगवान के चरित्र और नरसिंह अवतार की कथाये इन मन्दिरो मे बडी सुन्दरता के साथ अंकित की गई हैं। जिनकी कलापूर्णता देख बरबस मुग्ध होकर रह जाना पडता है। कला और अध्ययन की दृष्टि से तो इन मन्दिरो की कला का अध्ययन महीनो मे भी पूर्ण नही हो सकता। जैन महामन्त्री विमलशाह और वस्तुपाल तेजपाल, आबू सरीखे पर्वत-शिखर पर अपनी धार्मिक महत्वकाक्षा, पराक्रम और वैभव के प्रतिरूप मे १९ करोड की धनराशि लगाकर इन अमर-चिन्हो का निर्माण कर गए है और हिन्दू-धर्म के प्रति उनको कैसी रुचि थी उसका भी परिचय वे देने से नही चूके। ऐसा है आबू तीर्थ हिन्दू-धर्म और सस्कृति का पुण्य प्रतीक।

आबू का आधुनिक रूप

आबू पर्वत पर बीसवी शताब्दी मे निर्माण की दृष्टि से जो परिवर्तन हुए है, उनसे आबू के वर्तमान स्वरूप मे आधुनिकता की एक नई छाप-सी लगी दिखाई देती है, और उसका महत्व भी अब कही अधिक बढ गया है। ब्रिटिश सरकार के आगमन और राजपूताना स्टेट की ऐजेन्सी की स्थापना से आबू राजपूताना और मध्यभारत की ग्रीष्मकालीन राजधानी बन गया है। इसी लिए आबू पर्वत पर जहा मन्दिर और देवालय है, वहाँ आधुनिक ढग के महाराजा जयपुर, जोधपुर, अलवर, सिरोही, बीकानेर, लिमडी, भरतपुर, धौलपुर, सीकर, जैसलमेर, खेत्री आदि के ग्रीष्मकालीन महल (Summer Palaces), और ऐजेन्ट टू दी गवर्नर-जनरल, रेजीडेन्सी, आदि की भव्य इमारतें भी है। क्रीडा, नौकाविहार और भ्रमण के आधुनिक साधन भी यहाँ प्रस्तुत है। जहां मन्दिरो के घण्टो और घडयालो की ध्वनि सुनाई देती है, वहाँ किसी क्लब से पियानो, वायलिन और यूरोपियन सगीत की भी ध्वनि आप सुन सकते है। ग्रीष्म-ऋतु मे तापमान अस्सी और नब्बे डिग्री के बीच रहने के कारण, गर्मिया बिताने के लिए तीर्थ-यात्रियो के अलावा बहुत-से सैलानी और मनोरजनप्रिय लोग भी यहाँ आते है। आज आबू तक पहुँचना उतना दुर्गम नही रहा है, बल्कि वहाँ तक पहुँचने के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा जैन जनता की २० हजार रुपये की सहायता से सन् १९२३ से पक्की मोटर की सडक बन गई है। इसलिए आजकल आबू दर्शन के लिए जाने वाले यात्री आबू के मार्ग की उस बीहडता और भयानकता की कल्पना भी नही कर सकते, जिसका कि सामना आज से सौ वर्ष पूर्व यात्रियो को करना पडता था।

आबू का एक कलकित पहलू

लेकिन आबू की यात्रा का एक कलकित पहलू भी है जोकि आज आबू के दर्शनो के हेतु जाने वाली तीर्थ-यात्री जनता के लिए अभिशाप बन जाता है और इसके स्रष्टा है आबू के शासक सिरोही राज्य के अधिकारी जो आबू के देव-मन्दिरो के दर्शनो के लिए यात्रियो से टैक्स वसूल कर इस धार्मिक तीर्थ को एक प्रकार से व्यापार और धार्मिक जनता के शोषण का साधन बनाए हुए है। आबू जाने वाले प्रत्येक यात्री को १ रु० २३ पैसे टैक्स सिरोही राज्य को देना पडता है, तब कही वह अपने इन धर्म-मन्दिरो की सीमा को छू सकता है और इस कर का सारा बोझ उस हिन्दू और जैन सद्गृहस्थ जनता पर पडता है, जोकि धार्मिक श्रद्धाभाव से प्रेरित होकर तीर्थ यात्रा के हेतु यहाँ आती है।

इस टैक्स की विशेषता यह है कि आज यह बिना किसी आधार पर ही सिरोही राज्य द्वारा यात्रियो से वसूल किया जाता है। इस टैक्स की कहानी भी विचित्र है। आबू में जैन मन्दिरो के शिलालेखो को देखने से पता चलता है कि यहाँ के मन्दिरो की कलापूर्णता और सुन्दरता देखकर आज से पाच-छै सौ वर्ष पूर्व ही आबू के शासको को सम्भावना दिखाई दी थी कि कोई भी शासक इन मन्दिरो के दर्शन पर कर लगाकर अनुचित लाभ उठा सकता है, अथवा किसी ने उस समय इसी प्रकार अनुचित लाभ उठाने का प्रयत्न किया होगा। इसीलिये आबू के मन्दिरो पर किसी भी प्रकार का कर लेने का निषेध करते हुए ३ शिलालेख जैन मन्दिर

विमलवसही मे पाये जाते है। ये तीनो लेख चौहान नरेश महाराव लुभाजी के है जिनमें एक स० १३७२ का और दो स० १३७३ के है। इन तीनो शिलालेखो में महाराव लुभाजी ने आबू के यात्रियो और पूजार्थियो से किसी प्रकार का कर वसूल करने का निषेध किया है, तथा अपने उत्तराधिकारियो के नाम भी वसीयत के रूप मे आज्ञा दी है कि वे भी भविष्य मे इन मन्दिरो के पूजार्थियो और यात्रियो से किसी प्रकार का कर वसूल न करे। इसी प्रकार का एक दूसरा शिलालेख जैन मन्दिर मे पित्तलहर मे स० १३५० का विमलदेव के नाम का मिलता है, वह भी उपरोक्त आशय का है। महाराणा कुम्भा द्वारा जारी की गई आज्ञा भी १५०६ के शिलालेख मे मिलती है, उन्होने भी इन मन्दिरो पर करो की माफी दी है। स० १४६७ का राउल राजधर का भी एक शिलालेख इसी सम्बन्ध मे पाया जाता है। इस प्रकार न्याय और धर्म की दृष्टि से आबू के मन्दिरो पर किसी प्रकार का लगान का अधिकार न तो सरकार को ही है और न ही सिरोही राज्य के शासको को ही, यदि वे अपने पूर्वजो की आज्ञाओ और इच्छाओ का कोई मूल्य समझते है ? इन फरमानो के बाद सवत १९३३ तक सिरोही के शासको द्वारा आबू के मन्दिर और यात्रियो पर किसी भी प्रकार के कर का पता नही चलता। सवत १९३३ मे ही पहली बार आबू यात्रियो पर राहजनी के भय से आबू मार्ग पर चौकियो का प्रबन्ध किया गया, जहाँ से कि यात्रियो की रक्षा के हेतु राज्य के सिपाही यात्री-दलो के साथ-साथ आया-जाया करते थे। प्रत्येक चौकी पर यात्रियो से चौकियो का टैक्स लिया जाता था, जो सब मिलाकर आठ आने था। लेकिन यही टैक्स पाच साल बाद सवत १९३८ मे बढा कर १ रु० २ आने ६ पाई कर दिया गया। इस प्रकार इन चौकियो के नाम पर सिरोही राज्य द्वारा आबू के यात्रियो से यह धार्मिक कर लिया जाने लगा। लेकिन तब इस कर का उतना अन्यायपूर्ण रूप नही था, जितना कि वह आज है। उन दिनो यदि यात्रियो को मार्ग मे चोर और डाकुओ के कारण किसी प्रकार आर्थिक क्षति उठानी पडती थी, तो कहा जाता है कि उस समय राज्य उसका वाजिब मुआवजा भी देता था। यह टैक्स उस समय केवल रिशिकिशनजी से देलवाडा-अचलगढ के मार्ग पर ही लिया जाता था और यह क्रम सन् १९१७ तक उसी प्रकार जारी रहा।

सन् १९१८ मे जब आबू की कुछ भूमि ब्रिटिश सरकार द्वारा सिरोही राज्य से लीज पर ले ली गयी, और वहाँ ब्रिटिश सरकार के सैनिक तथा अधिकारी गण आने जाने लगे और मार्ग की देखरेख भी जब ब्रिटिश सरकार ने अपने हाथ मे ले ली, तो सिरोही राज्य के रिशिकिशनगढ से अचलगढ-देलवाडा के मार्ग पर से अपनी चौकियाँ हटा लेनी पडी। इन चौकियो के हट जाने से अब सिरोही के शासको के सामने यह प्रश्न खडा हुआ कि यह टैक्स वसूली आखिर अब किस प्रकार जारी रखी जाए। इसके लिए राज्य ने ता० २-६-१९१८ ई० को नया फरमान निकालकर इस कर को, अब अलग चौकियो द्वारा वसूल किये जाने का साधन न रहने के कारण बढाकर एक मुश्त १ रु० ३ आने ६ पाई प्रति यात्री के हिसाब से रक्षा-कर के रूप मे लगा दिया। साथ ही साथ यह सोचकर कि अग्रेज, सरकारी अफसर और कर्मचारी इस टैक्स पर बखेडा न उठावे, इसलिए सिरोही स्टेट ने इस कर-से समस्त यूरोपियनो, एग्लो इडियनो, राजपूताने के राजा-महाराजाओ तथा उनके राजकुमारो को मुक्त कर दिया। ऐसे साधु-सन्यासियो और ब्राह्मणो

पर यह कर अनिवार्य न रहा जिनके पास बिल्कुल पैसा ही न हो और जो शपथ लेकर कह सकें कि हमारे पास पैसा नही है। सिरोही राज्य की प्रजा से भी यह कर आंशिक रूप से लिया जाने लगा।

उपरोक्त सशोधनो के पश्चात् इस टैक्स का स्वरूप यह हो गया कि वह अब विशेष रूप से दर्शनार्थी और सद्गृहस्थ हिन्दू और जैन यात्रियो के ही ऊपर विशेष भार के साथ लागू हो गया क्योकि आमोद-प्रमोद के लिए जाने वाले कर से राजा-महाराजाओ, यूरोपियनो, ऐंग्लो इडियनो और अधिकारियो को तो राज्य ने पहले ही मुक्त कर दिया था। फकीर, साधु और सन्यासियो से राज्य को आमदनी भी क्या हो सकती थी, इसलिए उनके साथ रियायत कर दी गई। अब फल यह है कि रक्षा-कर के नाम से यह कर विशेष रूप से देवालयो और मन्दिरो के हिन्दू और जैन यात्रियो के लिए लागू होकर आबू के मन्दिरो के व्यापार का एक कलकित उदाहरण बन गया है। १६२३ मे ब्रिटिश सरकार ने आबू के लिए एक पक्की सडक खराडी से आबू कैम्प तक बनवाई, जिसके निर्माण के लिए जैन जनता ने बीस हजार रुपए की सहायता दी। इस नवीन पक्के मार्ग के खुल जाने से आबू के लिए आवागमन की सुविधाएँ अत्यधिक बढ गई और फलस्वरूप रिशिकिशनगढ से अचलगढ देलवाडा का मार्ग आवागमन की दृष्टि से प्राय बन्द-सा हो गया। ब्रिटिश सरकार ने सडक बनवाते समय वचन दिया था कि इस मार्ग के प्रबन्ध और मरम्मत के हेतु जनता से किसी प्रकार का कर न लिया जाएगा और वह स्वय ही इसका प्रबन्ध करेगी। लेकिन सिरोही राज्य को तो यात्रियो से टैक्स वसूल करना था। इसलिए (मु डका) की वसूली के लिए उसने अपनी चौकियाँ कायम कर दी।

जहाँ इस नये मार्ग के निर्माण से यात्रियो के लिए आबू का मार्ग सुगम और निरापद हो गया, और सिरोही राज्य से भी सारे प्रबन्ध और रक्षा की जिम्मेदारियाँ समाप्त हो गई, वहाँ यह अधार्मिक कर फिर भी यात्रियो के ऊपर लदा रहा। लेकिन सिरोही राज्य द्वारा दर्शनार्थी यात्रियो का शोषण इसी रक्षा कर तक ही सीमित नही रहा, वरन् इस नई सडक के बन जाने से ज्यो-ज्यो यात्रियो की सख्या मे वृद्धि हुई, लोगो मे मार्ग सुगम हो जाने से आबू तीर्थ की दर्शन-लालसा बढी, त्यो-त्यो यह शोषण का स्रोत और भी लाभदायक होता गया। लेकिन यह टैक्स विडम्बनाए तब और बढ गयी जब नई पक्की सडक का लाभ उठा कर सिरोही राज्य ने मार्ग पर मोटरो, लारियो, ताँगो, रिक्शाओं और बैलगाडियो आदि के चलाने के लिए ठेकेदारी की प्रथा कायम कर दी और ठेकेदारो ने मोटी-मोटी रकमो पर ठेके देकर अपनी ओर से सवारियो के दुगने और चौगुने किराये बाँधकर पैसा ऐंठना शुरू कर दिया। राह टैक्स, कस्टमस् ड्यूटियाँ, नाकेदारी आदि टैक्सो का भी बाजार गर्म हो गया और अब भी आबू की धार्मिक महानता को अधिक से अधिक शोषण का साधन बनाने की सिरोही के शासको की मनोवृत्ति बढती ही चली जाती है।

आज इन टैक्सो और ठेकेदारी की प्रथा के कारण तीर्थयात्रियो के लिए आबू की यात्रा जितनी सुगम हुई, उतनी ही परेशानी और विडम्बनापूर्ण भी हो गई है। अपने ही मन्दिरो और तीर्थो के दर्शनो के मार्ग मे राज्य की ओर से इस प्रकार के टैक्स और विडम्बनाए देखकर यात्री

के हृदय की धार्मिक भावनाओ को स्थान-स्थान पर जब अपमानपूर्ण ठेस लगती है, तो वह व्याकुल हो उठता और सोचने लगता है, कि उसके धर्म मे क्या इतनी भी ताकत नही कि वह अपने मन्दिरो के दर्शन स्वतन्त्रतापूर्वक कर सके ? फिर इन टैक्सो का भार उन गरीब गृहस्थो पर तो और भी बुरी तरह पडता है, जो कौडी-कौडी जोडकर आबू पर्वत की तीर्थयात्रा और दर्शनो के हेतु आते हैं ।

आबू के समान तीर्थयात्रियो और देव-दर्शन पर कर के उदाहरण भारत मे शायद ही कही देखने को मिले । हिन्दुओ के बडे-बडे तीर्थ और धार्मिक स्थान रियासतो मे है, जहा कि करोडो की सम्पत्ति है और लाखो यात्री प्रतिवर्ष दर्शनार्थ आते है, लेकिन ऐसी धाधलेबाजी और करो के उदाहरण कही देखने को नही मिलते । हैदराबाद निजाम सरीखी मुस्लिम रियासत मे भी हिन्दू-सस्कृति के अमर चिन्ह अजता और एल्लोरा की कलापूर्ण गुफाये है, जिन्हे लाखो यात्री और कलाप्रेमी देखने जाते है । लेकिन इस मुस्लिम रियासत मे भी इस प्रकार अनुचित ढग के कर इन स्थानो पर नही है, जोकि एक बडी आय का साधन बनाए जा सकते है । इसके विपरीत यह रियासत प्रतिवर्ष इनकी रक्षा और प्रबन्ध-कार्य मे हजारो रुपया खर्च करती है । अभी हाल ही मे अजता गुफा के चित्रो के रग उखड चले थे, जिन्हे फिर से इस रियासत ने लाखो रुपया खर्च कर इटली आदि से कारीगर बुलवाकर रग करवाया है । यह भी नही कहा जा सकता कि वहा जैन तीर्थ नही है । रियासत मे जैनियो का कुन्तलगिरि सरीखा प्रसिद्ध तीर्थ भी विद्यमान है जिसकी यात्रा के लिए भारतवर्ष से लाखो जैन यात्री प्रति वर्ष आते है । रियासत ने जैन यात्रियो की सुविधार्थ मोटर का पक्का मार्ग भी कुन्तलगिरि तक बनाया है और अभी हाल ही मे इस जैन-तीर्थ मे पानी के अभाव को दूर करने के लिए हजारो रुपया खर्च कर विशाल तालाब और ट्यूबवेल्स का प्रबन्ध किया गया है । लेकिन दूसरी ओर आबू सरीखे प्रसिद्ध हिन्दू और जैन तीर्थ के प्रति सिरोही सरीखी हिन्दू रियासत का यह रवैया है ।

धार्मिक अधिकारो का प्रश्न

यह सघर्ष का युग है और चहुँमुखी क्रान्ति के थपेडे प्रत्येक समाज को आन्दोलित कर रहे हैं । आज की जनता हर दिशा मे क्रान्ति, परिवर्तन और स्वतन्त्रता चाहती है । जन स्वतन्त्रता के साथ साथ हरएक मनुष्य आज अपनी धार्मिक स्वतन्त्रता भी चाहता है और आबू सरीखा टैक्स किसी भी धर्म के लिए अपमान का कारण हो सकता है । यह परिवर्तन का युग है । दुनिया आज एक बडे टेढे मोड से गुजर रही है । इस सघर्षकाल मे हरएक अपने धर्म और अधिकारो की रक्षा मे सतत् रूप से प्रयत्नशील है, क्योकि आज समस्त धार्मिक और नागरिक अधिकारो के लिए एक खतरा-सा हो गया है । धर्म की कच्ची दीवारे आज भूकम्प के से वेग से ढह रही है । चिर पुरातन रूढियो और सस्कारो का अन्त हो रहा है । इस परिवर्तन के युग मे जो भी जाति अपने धर्म तथा अधिकारो की रक्षा कर सकेगी, उन्ही के अधिकारो का आने वाले युग मे मान होगा । आज जो अनुचित टैक्स और बन्धन चाहे वे हमारे धर्म पर हो या हमारे सामाजिक अथवा व्यक्तिगति अधिकारो पर, यदि हम आज उन्हे न तोड सके, तो वे आगे चलकर या तो हमारे

अस्तित्व को ही समाप्त कर देंगे, अथवा वे इतने कठोर और भयानक हो सकते है कि हम चिरकाल तक उनसे मुक्ति न पा सके।

आबू-तीर्थ के सम्बन्ध मे आज जैन-समाज चैतन्य हुआ है। उसने इन करो के विरुद्ध आन्दोलन उठाया है और जैनियो के इस आन्दोलन और विरोध के पीछे केवल जैन-मन्दिरो का ही नही, वरन् हिन्दुओ और जैनियो के सयुक्त तीर्थ का हित निहित है। आबू पर्वत पर हिन्दुओ के धार्मिक स्थान और देवालय, जैनियो के मन्दिरो से कही अधिक ही है और वे अपनी ममता के कारण हिन्दू धर्म मे एक विशिष्ट स्थान रखते है। आबू-तीर्थ के टैक्सो के साथ जहा कुछ लाख जैनियो का सम्बन्ध है, वहा भारत की एक सबसे बडी शक्तिशाली और बहुसख्यक जाति के करोड़ो हिन्दुओ का भी निकट सम्बन्ध है। आबू मन्दिरो के करो के विरोध मे उठाये गये आन्दोलन के प्रवर्तको ने हिन्दू-सस्थाओ और उनके नेताओ की ओर सहयोग के लिए हाथ बढाया है। वे इसे हिन्दुओ और जैनियो का सगठित मोर्चा बनाना चाहते है, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कि आबू हिन्दू और और जैनो का सयुक्त तीर्थस्थान है।

श्री आबू तीर्थ टैक्स विरोधी कांफ्रेंस

यहाँ तारीख २४-२५-२६ को श्री आबू मन्दिर टैक्स विरोधी कान्फ्रेन्स कर्मवीर लाला तनसुखरायजी जैन देहली वालो की अध्यक्षता मे करने का निश्चय किया गया है। उक्त कान्फ्रेन्स को कैसे सफल बनाया जाय इस सम्बन्ध मे विचार करने के लिए नागरिको की एक मीटिंग ता० २८ को श्री महावीर प्रेस मे बुलाई गई। दिगम्बर, श्वेताम्बर तथा स्थानकवासी तीनो सम्प्रदायो के करीब २८-३० आदमी इकट्ठे हुए। सर्वानुमति से निम्न कार्रवाई हुई —

ता० २४-२५-२६ जनवरी को उक्त कान्फ्रेन्स का अधिवेशन बुलाया जाय!

निम्न पदाधिकारियो का चुनाव हुआ :—

अध्यक्ष	कर्मवीर लाला तनसुखरायजी
स्वागताध्यक्ष	रा ब सेठ चम्पालालजी साहब के सुपुत्र श्रीमान बा० तोतालालजी सा. रानीवाले
उपाध्यक्ष	श्रीमान सेठ शकरलालजी सा० मुणोत
,,	,, उदयचन्दजी सा. कास्टिया
स्वागत मत्री	,, पन्नालालजी सा जैन बी ए, एल-एल. बी वकील
,,	,, मोतीलालजी सा० हालाखण्डी
उपमत्री	,, जंवरीलालजी कास्टिया
,,	,, चम्पालालजी जैन

सयोजक -	,, चिमनसिंह जी लोढा
कोपाध्यक्ष	,, मूलचन्दजी सा० मुणोत
स्वागताध्यक्ष	,, मानमलजी गोदा
,,	,, शोभाचन्दजी भारिल्ल
,,	,, पुखराजजी खजान्ची
,,	,, जतनमलजी भडारी
,,	,, इन्दरचन्दजी गगवाल
,,	,, मुलुकराजजी जैन बी. ए , एल-एल बी
,,	,, शान्तिलालजी सेठ

आदि ३५ सज्जनो की स्वागत समिति बनाई गई ।

उपस्थित सभी सज्जनो ने पूर्ण उत्साह से सेवा देने का वचन फरमाया !

स्वागत समिति ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है !

ता० १-१-४२ को स्वागत समिति की दूसरी मीटिंग होगी जिसमे सब कमेटियो का चुनाव होगा ।

श्री सेठ शकरलालजी मुणोत, मोतीलालजी हालाखण्डी, जवरीलालजी कास्टिया आदि का उत्साह स्तुत्य है ?

बहुत शीघ्र पडाल तथा प्रचार कार्य प्रारम्भ होने वाला है ?

इन्ही तारीखो मे श्री ओसवाल जैन होस्टल के छात्रो के लिए फ्री उपयोगार्थ बनाये हुए श्री घसूलालजी स्मारक भवन का उद्‌घाटन धूमधाम से होगा । साथ ही प्रवेशोत्सव, अखण्ड जैन कान्फ्रेन्स तथा कवि-सम्मेलन एव व्याख्यान प्रतियोगिता आदि अनेक आयोजन किये जायेंगे ।

श्रीमती लेखवती जैन, प० जुगलकिशोरजी मुख्तयार, प० दरबारीलालजी महात्मा, भगवानदीनजी, बा० जैनेन्द्र कुमारजी, श्री धर्मचन्दजी सुराणा बी ए , एल-एल. बी वकील सिरोही, श्री ताराचन्दजी दोपी आदि जैन सज्जनो के पधारने की सम्भावना है ।

सम्भवत इस अवसर पर वीरपुत्र आनन्दसागर जी महाराज भी पधार जावेंगे ।

प्रत्येक श्री सघ को चाहिए कि इस अवसर पर अपने यहाँ के प्रतिनिधियो को इस पुण्य कार्य मे भाग लेने अवश्य भेजे । यह टैक्स नही हमारे लिए भारी कलक है । इससे मुक्त होने का प्रयत्न करना प्रत्येक जैन का धर्म है ।

सयोजक—चिमनसिंह लोढा

"यह युग सगठन का युग है । इस जगत मे वही समाज जीवित रह सकता है जो सगठित, बलवान और शक्तिशाली होगा । आज हम इस जगह जिस उत्तम कार्य के लिये एकत्रित हुए है, वह चीज उन महापुरुषो की बनवाई हुई है जिन्होने आबू पर्वत के आस-पास की दिलवाडा की भूमि पर करोड़ो रुपये का सोना और चादी बिछाकर अपनी तलवार के बल पर जगत विख्यात
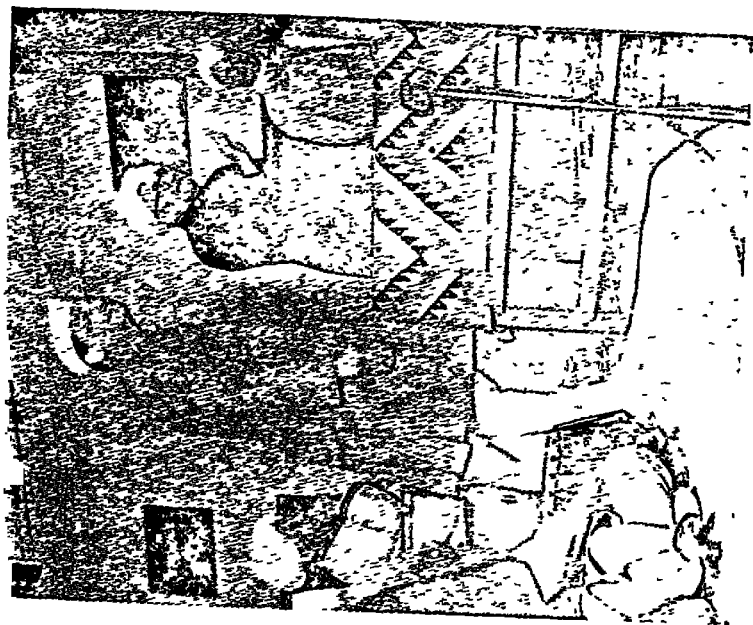
जागृति के अग्रदूत
स्वनामधन्य सेठ माणिकचन्द जी जव्हेरी बम्बई

शाकाहारी कान्फ्रेन्स के अवसर पर
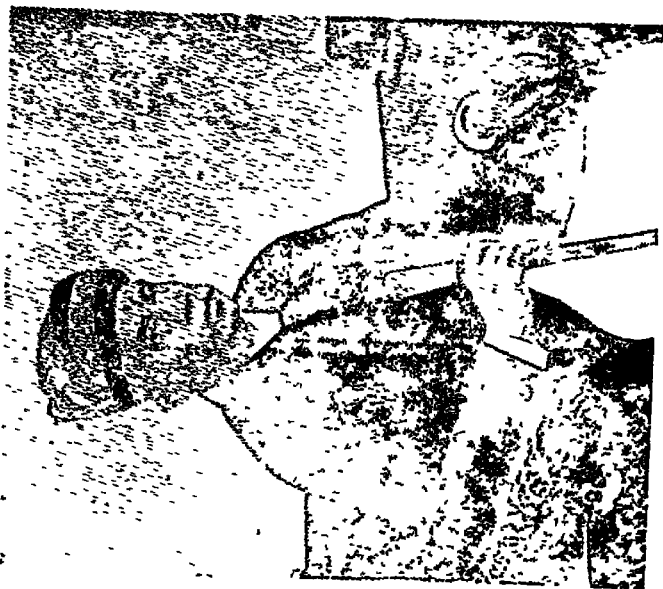
लाला तनसुखराय जी

आबू टैक्स विरोधी आन्दोलन के अध्यक्ष रूप मे
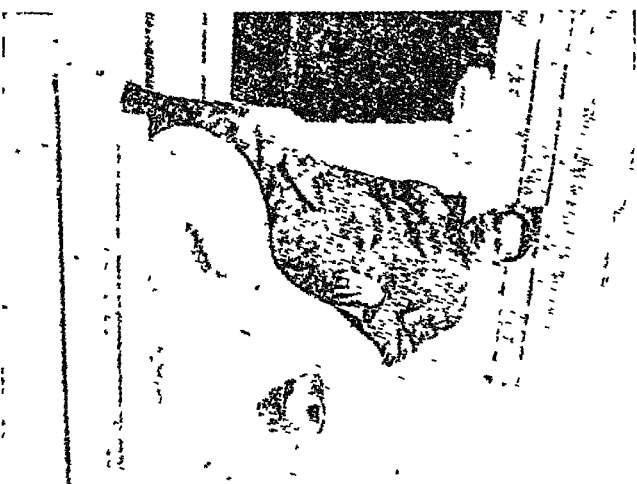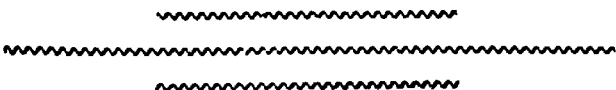
बिरला मंदिर मे

मन्दिर बनवाये थे। हमारा धर्म और कर्त्तव्य है कि हम उनके बनाये हुए स्मारको को कायम रखने के लिए हर प्रकार का त्याग करे। यह हमारे लिए सुवर्ण अवसर है। यदि हम सगठित होकर कुछ कर गये तो जैन-जाति का गौरव बढेगा। यदि हमने कुछ नही किया तो आने वाली सताने हमे धिक्कारेंगी, कहेगी कि हमारे पूर्वजो से अपने मन्दिरो की भी रक्षा न हो सकी।" इन शब्दो के साथ अखिल भारतीय आबू टैक्स विरोधी सम्मेलन के सभापति लाला तनसुखराय जैन ने अपना प्रभावशाली भाषण समाप्त किया।

टैक्स का विरोध करते हुए आपने कहा—आबू के जैन मन्दिरो के विषय मे समाचार-पत्रो मे काफी प्रकाश डाला जा चुका है। आज तो यही निर्णय करना है कि क्या हम इसी तरह से इन मन्दिरो पर प्रतिदिन नए-नए टैक्स देते रहे और एक दिन ऐसा आए कि टैक्स तथा बन्धन इस कदर बढ जावे कि साधारण भाइयो को इन मन्दिरो मे पूजन-प्रक्षाल तो क्या दर्शन करना भी दुर्लभ हो जाये ?"

उपाय—सत्याग्रह आखिरी सीढी

इन अनुचित टैक्सो को कैसे दूर कराया जाय, इसके विषय मे मैं अपने विचार समाचार-पत्रो मे पहले प्रकट कर चुका हूँ। मेरे पास बहुत से पत्र आये जिनमे मेरे भाइयो ने सत्याग्रह करने की सम्मति दी है। इस विषय मे मेरी सम्मति यह है कि सबसे प्रथम आवश्यक है कि तमाम सम्प्रदायो के जैनो की एक शक्तिशाली समिति बनाई जाय जो इस काम को अपने हाथ से ले। इसके द्वारा स्थान-स्थान पर स्थानीय समितिया बनाई जाये ताकि काम सुचारु रूप से प्रारम्भ किया जाय। इसके पश्चात् समाज के धनी-मानी महानुभावो का एक डेपुटेशन राज्य के अधिकारियो से मिले और उनसे प्रार्थना करे कि वह अनुचित टैक्सो को कम करे। यदि डेपुटेशन को सफलता न हो तो फिर सारे देश मे इसका आन्दोलन किया जाए और एक दिन नियत करके विरोधी सभायें की जाये। उस दिन प्रस्ताव पास किये जायें और उनकी प्रति रियासत तथा सरकार के पास भेजी जायें। यदि इससे भी कुछ सफलता न हो तो फिर अन्तिम योजना सत्याग्रह की रह जाती है जिसके लिये मेरे मित्रो ने भी हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह का उदाहरण देकर, हमे भी उसका अनुकरण करने के लिये लिखा है। परन्तु हमे इसमे जल्दी नही करनी चाहिये। हैदराबाद तथा भागलपुर के मोर्चों का जिक्र एव उनकी सफलता के साधनो पर प्रकाश डालते हुए, अन्त मे आपने सगठन की शक्ति पर बल दिया।

सम्मेलन की कार्यवाही

आबू मुडका विरोधी यह सम्मेलन गत २३ जनवरी सन् १९४२ को बडे उत्साह से ब्यावर मे हो गया। श्री तनसुखराय जैन (देहली) सभापति थे। वहाँ आपका शानदार जुलूस निकला। रात को व दूसरे दिन कार्यवाही हुई। इस सम्मेलन मे श्रीमती लेखावती जैन भूतपूर्व एम० एल० ए० (पजाब), श्री अजितप्रसाद जैन, सेठ हीरालाल जी काला, ला० हेमचन्द्र जी जैन, डाक्टर नन्दलाल आदि जैन नेताओ के भाषण हुए। निम्न चार प्रस्ताव पास किये गये।

स्थायी विरोध समिति का निर्णय

यह सम्मेलन आबू (देलवाडा) के विश्वविख्यात जैन मन्दिरो के यात्रियो एव दर्शनार्थियो पर लगे हुए मु डका टैक्स को हटाने के कार्य के हेतु एक स्टैडिग कमेटी की योजना करता है। इसके सदस्यो की सख्या ५१ सदस्यो तक होगी और इसके सभापति श्री तनसुखराय जी जैन रहेगे। इसके दो मन्त्री रहेगे जिनमे एक प्रधान मन्त्री व दूसरे कार्यालय मन्त्री होगे। इसका आफिस सभापति व कमेटी को इस विषय मे पूर्ण अधिकार व स्वतन्त्रता देती है।

स्वीकृत प्रस्ताव

इस जरिये को हटाइये

आबू मु डका विरोधी यह सम्मेलन महसूस करता है कि आबू (देलवाडा) पर स्थित विश्व विख्यात जैन मन्दिरो के यात्रियो एव दर्शनार्थियो से मुँडका के रूप मे जो कर लिया जाता है वह कलकित है और उसकी उपयोगिता भी नही है क्योकि इस मुँडका का जो रूप कुछ वर्षो पहले चौकी व बोलावे का था, वह अब नही रहा है। इसको सिर्फ जजिया ही कहा जा सकता है। क्योकि सिरोही राज्य ने इसको अपनी आय का एक जरिया बना लिया है, जो किसी भी दृष्टि से उचित नही माना जा सकता है। यह विशेष रूप से जैनो की धार्मिक स्वतन्त्रता का घातक है यद्यपि यह हर कौम, हर जाति व हर विचार के लोगो से लिया जाता है। इसलिये यह कान्फ्रेस सिरोही नरेश से सानुरोध निवेदन करती है कि इस अपमानजनक एव धर्मघातक टैक्स को हटावे।

मुनिमण्डल से नेतृत्व का अनुरोध

यह सम्मेलन अनुभव करता है कि जैन समाज मे मुनि-मण्डल का एक विशिष्ट स्थान और अद्वितीय प्रभाव है। इसलिये यह सम्मेलन उनसे सविनय प्रार्थना करता है कि वे आबू मन्दिर टैक्स हटाने में सक्रिय भाग लेकर इसे सफल बनाने मे सहयोग दे।

अध्यक्ष का ओजस्वी भाषण

ब्यावर २३ जनवरी। आज रात को दिल्ली अहमदाबाद ऐक्सप्रेस से आबू मन्दिर टैक्स विरोधी सम्मेलन के सभापति लाला तनसुखराय जी जैन यहाँ पहुच गये। ११ बजे की ठिठुरती सरदी मे भी सम्मेलन के अधिकारियो और जैन भाइयो ने आपका स्वागत किया। आपके साथ श्रीमती लेखवती जैन, लाला हेमचन्द्र जैन चेयरमैन मर्कोण्टाइल एसोसिएशन देहली, ला० रत्नलाल जैन मत्री जैन प्रेम सभा, डा० नन्दकिशोर आफिस सेक्रेटरी अ० भा० जैन परिषद् आदि भी आये है।

इन अनुचित टैक्सो को कैसे दूर कराया जाय? मेरे पास बहुत से पत्र आये है जिनमें मेरे भाइयो ने सत्याग्रह करने की सम्मति दी है। मैं जबानी जमा खर्च पर विश्वास नही करता मैं तो कार्य को कार्यरूप में परिणित करना चाहता हूँ। किसी बडे काम करने के लिये सबसे

पहले साहस, उत्साह और सगठन की आवश्यकता है। मैं तो समाज और देश का सिपाही हूँ तथा आप महानुभावो की आज्ञा से आया हूँ। आप निर्णय करके बताइये मुझसे क्या सेवा चाहते हैं। टैक्सो के हटवाने के लिये क्या करना है ?

इस विषय मे मेरी सम्मति यह है कि तमाम सम्प्रदायो के जैनो की एक शक्तिशाली समिति बनाई जाय जो इस काम को अपने हाथ मे ले। इसके द्वारा स्थान-स्थान पर स्थानीय समितिया बनाई जाय, ताकि काम सुचारू रूप से किया जाय। बिना सगठन के कोई काम सफल नही हो सकता। इसके पश्चात् समाज के धनी मानी महानुभावो का एक डेपुटेशन राज्य के अधिकारियो से मिले और उनसे प्रार्थना करे कि वह अनुचित टैक्सो को कम करे

जगह-जगह स्वागत

ता० २३ जनवरी सन् ४२ को श्री लाला तनसुखरायजी जैन प्रात काल अहमदाबाद एक्सप्रेस से अपने मित्र तथा प्रतिनिधि श्रीमती लेखवती जैन, एक्स एम एल. ए श्री० हेमचन्द्र जी जैन चेयरमेन मर्कन्टाइल एसोशियेशन देहली, श्री अजीतप्रसाद जी जैन सुपुत्र लाला महावीर प्रसादजी ठेकेदार देहली, श्री लाला रत्नलाल जी जैन मत्री जैन मित्रमडल, श्री आदीश्वरप्रसाद जी जैन एम ए, डा० नदकिशोर जी, प० रामलाल जी आदि के साथ रवाना हुए। देहली पर आपकी विदाई बडे जोर-शोर के साथ हुई मानो कोई वीर किसी युद्ध मे लडाई के लिए जा रहा हो। आपको फूलहारो के साथ विदा किया गया।

जयपुर पहुँचते ही यहा के तमाम जैन भाइयो ने आपका शानदार स्वागत किया और सबने यह कान्फ्रेन्स अच्छी तरह सफल हो इसकी खूब चर्चा की। यहा से गाडी किशनगढ पहुँची। यहा पर भी पहिले ही से आपके स्वागत की अच्छी तैयारी कर रक्खी थी। गाडी पहुँचते ही सारा प्लेटफार्म जयनारो से गूज उठा। फूलो के हार, चाय आदि के साथ आपका स्वागत किया गया। फोटो भी लिये गये। किशनगढ से गाडी अजमेर पहुँची। यहा पर भी फूलहारो से आपका स्वागत किया गया। रात को करीब १२ बजे आप ब्यावर पहुँचे। इस कडक सर्दी मे इस कान्फ्रेन्स के सयोजक श्री० चिमनसिंह जी लोढा, श्री० मोतीलालजी हालाखण्डी आदि स्वागत कारिणी के सदस्य व दूसरे जैन भाइयो ने आपका बहुत बढिया स्वागत किया। प्रात काल १० बजे लालाजी का शानदार जुलूस स्टेशन से निकाला गया। जुलूस ब्यावर के मुख्य मुख्य बाजारो मे होता हुआ मेवाडी दरवाजे के पास सेठ कुन्दनमलजी लालचन्दजी की बगीची मे समाप्त हुआ। रास्ते मे पचासो जगह पान-सुपारी-फूल आदि से आपका स्वागत किया गया व फोटो आदि का भी प्रबन्ध किया गया।

रात्रि को ठीक ७॥ बजे पडाल मे आबू मन्दिर टैक्स विरोधी कान्फ्रेन्स का अधिवेशन आरम्भ हुआ। प्रथम मगलाचरण के बाद स्वागताध्यक्ष श्रीमान् सेठ तोतालालजी सा० रानीवाले

का व्याख्यान हुआ। पश्चात इस सभा के सभापति कर्मवीर लाला तनसुखरायजी का सारगर्भित व्याख्यान हुआ। इसके बाद अखण्ड जैन परिषद् के स्वागताध्यक्ष श्री० सेठ हीरालाल जी काला का भाषण हुआ और फिर इस परिषद् के सभापति उत्साही श्रीमान् हेमचन्द्रजी जैन चेयरमेन मर्कन्टाइल एसोसियेशन देहली का व्याख्यान हुआ। डा० नन्दकिशोर सा० ने जैन समाज के अलग-अलग फिरकाबदी व जैन समाज की दुर्दशा के ऊपर बडा ही सारगर्भित भाषण दिया। अन्त मे प० रामलालजी का जोशीला व्याख्यान होकर आज की कार्यवाही समाप्त हुई।

प्रात काल ठीक ६ बजे सभापतिजी के स्थान सब्जेक्ट कमेटी की मिटिंग हुई जिसमे चार प्रस्ताव पेश हुए और उनके ऊपर चर्चा की गई। दोपहर को पडाल मे खुला अधिवेशन हुआ।

प्रारम्भ में मगलाचरण के बाद बाहर के आए हुए करीब १५० सदेश सुनाये गए। इन सदेशो को देखते हुए कहा जा सकता है कि जनता की सहानुभूति अधिक से अधिक दिखाई देती है। इसमे जैन व जैनेतर बडे-बडे धनीमानी व विद्वानो के सदेश है। प्रस्तावको ने प्रस्ताव पेश किये और उनके ऊपर जोशिले व्याख्यानो के द्वारा उनका अच्छा विवेचन किया इसी प्रकार समर्थक व अनुमोदको ने भी खूब जोरदार भाषणो के द्वारा विवेचन किया। तमाम प्रस्ताव सर्वानुमत से पास हुए। प्रस्ताव अन्यत्र प्रकाशित किए गए है। इसमे श्रीमती लेखवती जैन, पुखराज जी सिंघी, डॉ० नन्दलालजी, धर्मचन्दजी सुराणा, राजमलजी लोढा सपादक जैन ध्वज अजमेर, प० रामकुमार जी, प० रामलाल जी, चिमनसिंह जी लोढा, देवीचन्दजी जैन, मुकुट बिहारीलाल जी भार्गव आदि के बहुत ही मनोहर व्याख्यान हुए।'

ब्यावर का भाषण

जो स्यादवाद् मयक के प्रतिभा मई छवि धाम है।
जो रिद्ध सिद्ध प्रकाशदायक वदनीय ललाम है॥

नित प्रात तिनके स्मरण से होता अपूर्व ललाम है।
उन महावीर जिनेश को श्रद्धा समेत प्रणाम है॥

आदरणीय बन्धुओ तथा माताओ और बहनो !

इस समय जैन जाति की दशा अति शोचनीय है। हमारे पास सब कुछ होते हुए भी हम अपने देश मे अपना व्यक्तित्व कायम नही रख सकते। युद्ध भारत के द्वार पर आ गया है। ससार की स्थिति डॉवाडोल है, इस समय प्रत्येक कार्य को बहुत सोच-समझकर करने की अत्यत आवश्यकता है। आज हम इस बात पर विचार करने के लिए एकत्रित हुए है कि हम जाति के मान, गान तथा अपने पूर्वजो के बनाए हुए धर्मस्थानो और स्मारको को कैसे सुरक्षित रख सकते हैं।

उन वीरों की सतान जिन्होंने भारत-भूमि पर राज्य किया है और सिकन्दर जैसे वीर राजा को जो यूनान से योरोप को फतह करता हुआ ईरान पर विजय पाकर भारत को पराजित करना चाहता था, भारत से खदेड भगाया था। क्या आज वह जाति इस कदर नपुंसक हो गई है कि वह अपने पूर्वजो के बनाये हुए धर्मस्थान, देवालय तथा स्मारको की भी रक्षा नहीं कर सकती। यदि यही दशा रही तो एक दिन आयेगा कि हमारे अपने-अपने नगर और ग्राम के मन्दिरों तथा धर्मस्थानो का भी यही हाल होगा। कोई भी शक्तिवान अनुचित रूप से हमारे मन्दिरों और धर्म-स्थानो पर कब्जा कर लेगा और कहेगा कि इतना टैक्स या पैसा दोगे तो फिर दर्शनों की आज्ञा मिलेगी। इस समय हमारे सामने आबू रोड पर दिलवाड़ा के जैन मन्दिरों का उदाहरण उपस्थित है।

आबू के जैन मन्दिरो के विषय में समाचारपत्रों मे काफी प्रकाश डाला जा चुका है। आज तो यही निर्णय करना है कि क्या हम इसी तरह से इन मन्दिरो पर प्रतिदिन नए-नए टैक्स देते रहें और एक दिन ऐसा आए कि टैक्स तथा बन्धन इस कदर बढ़ जावें कि साधारण भाइयों को इन मन्दिरो मे पूजन-प्रक्षाल तो क्या दर्शन करना भी दुर्लभ हो जाय। मेरा अपना यह अनुमान है कि आबू रोड पर जो इस प्रकार टैक्स बढ़ा है सब हमारे असगठन, लापरवाही और दब्बू नीति के कारण बढा है। यदि अब भी इस ओर ध्यान न दिया गया तो भय है कि हम कहीं इनसे भी बिल्कुल हाथ न धो बैठें जैसा कि इन मन्दिरो के साथ जो गाव लगे हुए थे उनका इन मन्दिरों के साथ आज कुछ भी सबध नही दीख पडता।

इन अनुचित टैक्सो को कैसे दूर कराया जाय, इसके विषय में मैं अपने विचार समाचार पत्रो में पहले प्रकट कर चुका हूँ। मेरे पास बहुत से पत्र आए हैं जिनमे मेरे भाइयों ने सत्याग्रह करने की सम्मति दी है। मै जबानी जमा-खर्च पर विश्वास नही करने वाला, मैं तो कार्य को कार्य रूप मे परिणत करना चाहता हूँ और मेरा पूर्ण विश्वास है कि ससार में कोई बात असम्भव नहीं है। परन्तु किसी बडे काम करने के लिए सबसे पहले साहस, उत्साह और संगठन की आवश्यकता है। मै तो समाज और देश का एक सिपाही हूँ। आप महानुभावो की आज्ञा से आया हूँ। आप निर्णय करके बताइए मुझसे क्या सेवा चाहते है। टैक्सों को हटवाने के लिए क्या करना है।

इस विषय मे मेरी सम्मति यह है कि सबसे प्रथम आवश्यक है कि तमाम सम्प्रदायों के जैनो की एक शक्तिशाली समिति बनाई जाय जो इस काम को अपने हाथ में ले। इनके द्वारा स्थान-स्थान पर स्थानीय समितिया बनाई जायें ताकि काम सुचारु रूप से प्रारम्भ किया जाय। बिना सगठन के कोई काम सफल नही हो सकता। इसके पश्चात् समाज के धनी-मानी महानुभाव का एक डेपुटेशन राज्य के अधिकारियो से मिले और उनसे प्रार्थना करे कि वह अनुचित टैक्सों को कम करें। यदि डेपुटेशन को सफलता न हो तो फिर सारे देश में इसका आन्दोलन किया जाए और एक दिन नियत करके विरोधी सभाए की जाय। उस दिन प्रस्ताव पास किए जायें और उनकी प्रति रियासत तथा सरकार के उच्च अधिकारियो के पास भेजी जायें।

यदि इससे भी कुछ सफलता न हो तो फिर अन्तिम योजना सत्याग्रह की रह जाती है

जिसके लिये मेरे बहुत से मित्रो ने भी हैदराबाद के आर्य सत्याग्रह का उदाहरण देकर, हमे भी उसका अनुकरण करने के लिए लिखा है। परन्तु हमे इसमें जल्दी नही करनी चाहिए। सत्याग्रह कोई साधारण सा काम नही है। आर्यसमाज ने हैदराबाद के सत्याग्रह को किस प्रकार परिश्रम करके सफल बनाया था आप सबके सामने है। हजारो वीरो ने अपने आपको प्रसन्नता के साथ सत्याग्रह कार्य के लिए पेश किया, आर्यसमाजी भाइयो ने लाखो रुपया दान देकर आन्दोलन मे जान डाली, सर्वप्रथम आर्य समाज के सर्वमान्य नेता श्री नारायण स्वामी जी महाराज धर्म की रक्षार्थ हैदराबाद के सत्याग्रह में गए। गुरुकुल और कालेजो के विद्यार्थी सब कुछ छोडकर सत्याग्रह में सम्मिलित हुए। इन सबसे अधिक सफलता की कुञ्जी यह थी कि आर्यसमाज के चोटी के नेता और धनिक वर्ग स्वय सत्याग्रह का नेतृत्व करके जेल जा रहे थे। इन उच्च कोटि के महानुभावो के जेल जाने का प्रभाव रियासत तथा जनता पर पडा। जनता ने दिल खोलकर जन और धन से सहयोग दिया। अत मे रियासत को हार माननी पडी।

हिंदू महासभा का भागलपुर का मोर्चा तो कल की ही बात है हिंदू महासभा के प्रधान वीर सावरकरजी से लेकर सारे हिन्दू नेता अपने अधिकारो की रक्षार्थ भागलपुर मे जा डटे, जिनमे ब्रिटिश सरकार के कृपापात्र सर और राजा भी सम्मिलित है, अपने अधिकारो के प्रश्न जीवन-मरण की समस्या समझकर वहा गिरफ्तार हो गए। हिन्दू नेताओ के इस त्याग ने सारे भारत की सस्थाओ की सहानुभूति प्राप्त कर ली और बिहार गवर्नर के इस कार्य की सारे भारत मे निन्दा हुई। क्या जैन समाज के पास यह सब तय्यारी है? मै तो यह समझता हूं कि धर्म स्थान तथा देवालय की रक्षा करना उतना पुण्य का कार्य है जितना कि अपनी तरफ से चैतालय या देवालय बनवाना। जैन समाज धर्मक्रिया पालन करने मे बहुत ही प्रतिष्ठित है। हमारी जाति का साधुवर्ग यदि इस ओर थोडा-सा ध्यान दे देगा तो मुझे आशा है कि इस कार्य की सफलता मे कोई देर न लगेगी। जैन समाज ने आज तक कोई ऐसा मोर्चा नही लिया है। हम आज महाराज सिरोही से अपने जन्मदिन धार्मिक अधिकार मागते है, यदि जैन समाज का साधुवर्ग, धनी तथा सरकार के कृपा पात्र भी अपने धार्मिक अधिकारो की रक्षार्थ एक प्लेटफार्म पर एकत्रित होकर धर्म पर सब कुछ न्योछावर करने को तैयार हो तो सत्याग्रह का नाम लेना चाहिए।

जैन समाज इस समय तक दब्बू नीति से काम लेती रही है, मुझे मालूम है कि कई बार जैन समाज ने सरकार तथा रियासतो मे अपने अधिकार मनवाने के लिए धन के बल से काम लिया है और मुह मागा रुपया लुटाया है। उसका ही यह कारण है कि हरएक के मुह मे पानी आ जाता है और वह समझता है जैन समाज एक तीर्थभक्त समाज है। इसलिए जिनके भी राज्य या सीमा मे कोई जैन तीर्थ या धर्मस्थान होता है वह उसको कमाई का साधन बनाना चाहता है और जितना धन जैन समाज से लूटा जाता है लूटता है। भला इनसे कोई पूछे कि इसमे इनका क्या लगा है। हमारे पूर्वजो ने अपने धन और बल से मन्दिरो को बनवाया था फिर यह किस कारण हमे तग करते है। हमने माना कि जैन समाज मे बडे-बडे धनाढ्य है और वह झगडे मे न पडकर अपने रुपये के बल से काम निकालना ज्यादा अच्छा समझते है परतु इससे बहुत बडी हानि

हुई है। जैन समाज अपने अधिकारो को भूल गया, स्वाभिमान जाता रहा, शक्ति क्षीण हो गई, रगो मे से वीरता का रक्त लुप्त हो गया। जिसके वीरो से ससार कपकपाता था, जिस जाति के वीरो ने जैन धर्म की ध्वजा ससार भर मे फैहराई थी आज वह जाति नपु सक और कायर कहलाए और उसके धर्म को घृणा की दृष्टि से देखा जाय, कितने खेद की बात है।

किसी समय मे जैन वीर और महात्मा के नाम से पुकारे जाते थे आज उनको बनिया और बक्काल मे नाम से पुकारते हे। वास्तव मे जैन धर्म वीरो का धर्म था। राजपूतो और क्षत्रियो ने इसे अपनाया था। जितने भी हमारे तीर्थंकर हुए है लगभग सभी राजपूत या क्षत्रिय वश से ही उत्पन्न हुए है। पहले समय मे जैनो का केवल एक धधा व्यापार ही नही था, जैनियो मे सेनापति, राजा-महाराजा, चक्रवर्ती राजा और कोपाध्यक्ष हो चुके हे। श्री भामाशाह जैसे धन-कुवेर और चन्द्रगुप्त मौर्य जैसे वीरो का नाम आज तक ससार मे विख्यात है और गौरव के साथ लिया जाता है। यह जैन समाज के नर रत्न थे।

यह युग सगठन का युग हे। इस युग मे वही समाज जीवित रह सकता है जो सगठित, बलवान और शक्तिशाली होगा। आज हम इस जगह जिस उत्तम कार्य के लिए एकत्रित हुए है, वह चीज उन महापुरुषो की बनवाई हुई है जिन्होंने आबू पर्वत के आस-पास की दिलवाडा की भूमि पर करोडो रुपए का सोना और चादी बिछाकर अपनी तलवार के बल पर जगत विख्यात मदिर बनवाये थे। हमारा धर्म और कर्तव्य है कि हम उनके बनाए हुए स्मारक को कायम रखने के लिए हर प्रकार का त्याग करे। यह हमारे लिए [illegible]वर्ण अवसर है। यदि हम सगठित होकर कुछ कर गए तो जैन जाति का गौरव बढेगा यदि हमने कुछ नही किया तो आने वाली सताने हमे धिक्कारेगी, कहेंगे कि हमारे पूर्वजो से अपने मदिरो की भी रक्षा न हो सकी। इस कान्फ्रेंस मे प्रण करो कि तन, मन, धन से इस कार्य को पूरा करेगे। मुझे पूर्ण आशा है कि हमे अवश्य सफलता मिलेगी।

अन्त मे आप महानुभावो का मै अत्यन्त आभार मानता हूँ कि आप सबने मुझे यह मान दिया जिसके कारण आपके दर्शनो का लाभ हुआ। हम सबका यहा एकत्र होना तभी सफल होगा जबकि हम इस अवसर पर तमाम साम्प्रदायिक भेदभावो को दूर करके एक शक्तिशाली समिति का निर्माण करें जो सारे देश मे सगठन के कार्य को अपने हाथ मे ले। इस समिति के बनने से तमाम कार्य पूर्ण हो जायेगे। मै आशा करता हूँ कि आप अवश्य मेरी इस प्रार्थना पर ध्यान देगे और इस कार्य को सफल बनाने मे प्रयत्नशील होगे।

दुर्भाग्य जैन समाज तेरा क्या दशा यह हो गई।
कुछ भी नही अवशेष, गुण-गरिमा सभी तो खो गई॥
क्या पूर्वजो का रक्त अब तेरी नसो मे है कही ?
सब लुप्त होता देख गौरव जोश जो खाता नही॥
पूर्वज हमारे कौन थे, वे कृत्य क्या-क्या कर गये।
किन-किन उपायो से कठिन भवसिधु को भी तर गए॥

धार्मिक शिल्पकला

भारत मे कलाशिल्प की दृष्टि से जिन स्थानो को प्रधानता दी जाती है आबू की शिल्पकला को उनमे महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। कई विशेषताओ के कारण तो आबू की कला को सर्वोत्तम भी कहा जा सकता है। प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता कर्नल टाड के मतानुसार यदि ताजमहल की शिल्पकला के मुकाबिले कला यदि कही पाई जाती है, तो वह आबू मे। कई दृष्टियो से तो आबू के जैन मन्दिरो की शिल्पकला ताजमहल की कला से भी आगे बढ गई है।

आबू को कलात्मक रूप देने मे वहा प्राकृतिक सौन्दर्य का बहुत बडा हाथ है, जहा नरेशो ने, वहा के प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति आकर्षित होकर उसे अपना ग्रीष्म निवास और क्रीडास्थली बनाया, वहा वे अपनी धार्मिक भावनाओ के स्मृति स्वरूप ऐसी कलापूर्ण कृतियो के निर्माण का लोभ भी सवरण न कर सके। उन्होने शिल्पकला के अमर चिन्हो का निर्माण कराकर आबू के तीर्थ के आकर्षण मे चार चाद लगा दिये है। इस प्रकार आबू का यह कलासौन्दर्य सोने में सुगन्ध की उपमा का काम कर रहा है। इन पराक्रमी नरेशो की धार्मिक भावनाओ के चिन्ह हमे आबू पर्वत पर स्थित सुन्दर मन्दिरो, मूर्तियो, महलो, जलाशयो और ताम्रपत्रो तथा शिला लेखो मे जहा तहा बिखरे मिलते है, और इनमे हमे जैन तथा हिन्दू धर्म की मिलीजुली कला, धर्म और सस्कृति का अपूर्व एकीकरण दिखाई देता है। अनेको शैव्य और वैष्णव मन्दिरो मे हमे जैन मन्दिरो की शिल्पकला और धातुकला की छाप दिखाई देती है। क्या मूर्तिकला और क्या निर्माणकला की विशालता और भव्यता की दृष्टि से यहा के हिन्दू मन्दिरो की मूर्तिया सारे भारत के मन्दिरो से अपना एक विशेष महत्त्व रखती है। इन मन्दिरो और मूर्तियो के निर्माता मेवाड और उदयपुर के राणा, चक्रवर्ती चौहान के वशज तथा बाद मे सिरोही तत्कालीन शासक हैं।

लेकिन अपनी जिस श्रेष्ठ शिल्पकला के लिए आबू तीर्थ भारत मे ही नही वरन् सारे ससार मे प्रसिद्ध है, वह शिल्पकला वहा के उन जैन मन्दिरो मे पाई जाती है जिन्हे कि जैन महामन्त्री विमलशाह और वस्तुपाल, तेजपाल ने आबू सरीखे पर्वत शिखर पर अपनी धार्मिक महत्त्वाकाक्षा, पराक्रम और वैभव के प्रतिरूप मे करोडो रुपये की धनराशि व्यय कर बनवाया यह जैन मदिर विमलवसहि, लूणवसहि, पित्तलहर और खरतरवसहि नाम से प्रसिद्ध है। वह मदिर सवत् ११०८ और सवत् १३५० के बीच मे बने है। इनके निर्माण मे दो सौ वर्ष से ऊपर का समय व्यतीत हुआ, इतने लम्बे वर्षो का अकथ परिश्रम इन जैन महामन्त्रियो की निर्माण कला की ओर अत्यन्त गभीर और धैर्यपूर्ण लगन का उत्कृष्ट उदाहरण है। जहा ताजमहल सरीखी श्रेष्ठ कृति मुगल सम्राट के बीस वर्ष के परिश्रम का परिणाम है, वहा इन मन्दिरो के निर्माण मे इतने-इतने अधिक समय का लग जाना इसलिए ठीक मालूम होता है, जब हम इन मन्दिरो की विशालता और उन मूर्तियो तथा खम्भो को देखते है जो एक ही पाषाण के है और अभग है। तब यह बात कल्पना से परे की ही दिखाई देती है कि इस पाच हजार फुट की ऊँचाई पर इतनी बडी-बडी शिलाये और निर्माण की इतनी सामग्री किस परिश्रम के साथ यहा तक चढाकर लाई गई होगी।

और उस समय आबू पर्वत के मार्ग जब कहीं अधिक बीहड़ और अगम्य थे। आज जो दर्शक पक्की सड़क के द्वारा इन मन्दिरों के कला-दर्शन हेतु जाते है, वे उस दुर्गमता की कल्पना नही कर सकते। इसलिए ताजमहल के साथ तुलनात्मक दृष्टि से विचार करते समय हमे इस परिश्रम और अगम्यता का भी ध्यान रखना होगा। दूसरी दृष्टि से ताजमहल जहा मुगल सम्राट के पत्नी-प्रेम की स्मृति का प्रतीक है, और एक सम्राट के शक्ति, धन और प्रभाव मे निर्मित वस्तु वहां आबू के यह जैन मदिर उन जैन मन्त्रियो की पवित्र धार्मिक महत्त्वाकाक्षा और उनके एक सीमित धन-वैभव के प्रतीक है। इसीलिए जहा-जहा ताजमहल के निर्माण मे शाहजहा की शासन-सत्ता ने काम किया, वहा इन मन्दिरो के निर्माण मे हजारो शिल्पियो और मजदूरो की पवित्र धार्मिक भावना ने काम किया है, जिनके वश वे वर्षों तक अथक भाव से आबू पर कलासर्जना करते रहे। उनके सामने पूजी का वह लोभ न था, जो ताजमहल के निर्माता कलाशिल्पियो के सामने। यहा पर उन कलाशिल्पियों ने जी खोल कर अपनी कलासर्जना की प्यास बुझाई और वे उसे चरम सीमा तक पहुँचा देने मे सफल हुए है। उनके अतिसूक्ष्म और विराट कलाचित्र को देखकर विदेशी निर्माणकला विशारद भी दग रह जाते है। सगमरमर की कला का निखार यहा ही देखने में आता है। अध्ययन की दृष्टि से देखने पर हमे इन जैन मन्दिरो मे जैन धर्म की सस्कृति का इतिहास एक प्रकार से बडे आकर्षक ढग से सचित्र और सजीवता के साथ लिखा हुआ दिखाई देता है। हम जैनधर्म सम्बन्धी भावनाओं और आचार-विचारो और उसके विकास की बारीक बातो को आज के मन्दिरो की कला मे स्पष्ट रूप से अकित देख सकते है। यही नही वरन् एक ऐतिहासिक युग की वेषभूषा, रीति-रिवाज और लोकरुचि की सागोपाग झलक इन मन्दिरो मे दिखाई देती है। अजन्ता और एल्लोरा की गुफाओ के समान हम नाट्य, नृत्य और सगीत तथा भावविन्यास का विशद चित्रण पाते है, जो अध्ययन की दृष्टि से एक विश्वविद्यालय का काम दे सकता है। मूर्तिकला और धातुकला का भी चरम विकास इन मदिरो मे देखने को मिलता है। मदिरो मे भिन्न-भिन्न तीर्थंकरों और मुनियो की जो मूर्तिया है वे आकार-प्रकार मे काफी विशाल है। एक-एक मूर्ति कई-कई मन वजनी है, ऐसे वजन की विशाल मूर्तिया भारत के बहुत ही कम मन्दिरो में पाई जा सकती है।

इन मदिरो मे जैन धर्म और सस्कृति के अध्ययन की दृष्टि से जहा आप अक्षय भण्डार भरा पाएँगे, वहा आपको जैन और हिन्दू धर्म की मिलीजुली सस्कृति की भी झलक विभिन्न चित्रालेखों मे देखने को मिलेगी। इससे पता चलता है उस काल के निर्माता किस प्रकार अपने समकालीन हिन्दू धर्म और सस्कृति से प्रभावित थे और किस प्रकार समवर्गों की भावना का एकीकरण था। इन मदिरो के बीच मे श्रीकृष्ण भगवान के चरित्र की कथाएँ, नरसिंह अवतार की कथा और महाभारत काल की कथाएँ बडी सुन्दरता के साथ अकित पाते है जिनकी पूर्णता पर दर्शक बरबस मुग्ध हो जाते हैं।

× × × ×

मेरी दृष्टि मे वह धर्म ही नही जो अपने जीवन को सुधारने के लिए इस जीवन को सक्लिष्ट बनाये बिगाड़े। वस्तुत धर्म की कसौटी अगला जीवन नही, यही जीवन है।

सामयिक आवश्यक अपील

व्यवस्थित ढग से अ० भा० आबू मन्दिर टैक्स विरोधी आन्दोलन को सफलतापूर्वक चलते हुऐ आज लगभग चार माह व्यतीत हो गये। पर कमेटी के कार्यकर्ताओ ने आजतक कभी भी समाज के समक्ष धन प्राप्ति के लिये अपील नही की और न भविष्य मे ऐसा विचार ही है कि सार्वजनिक अपील की जाय क्योकि कमेटी के कार्यकर्ता इस बात को अच्छी तरह जानते व समझते है कि ऐसा करने से हमारी सारी शक्ति इस ओर लग जाएगी जिससे समय का व्यर्थ दुरुपयोग होगा। लेकिन यह सभी भाई महसूस करते है कि यह कार्य महान् है और अर्थाभाव के कारण उसे हरगिज सफलता न मिल सकेगी। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए मारवाड के जिन-जिन स्थानो मे मै डेपुटेशन के साथ गया वहा के भाइयो ने बिना अपील किए ही मुझे थैलियाँ भेट की और आश्वासन दिया कि आवश्यकता पडने पर हम और भी अधिक आर्थिक सहायता आपको देंगे। इसके अतिरिक्त और भी कई जगह के दानियो एव इस आन्दोलन से प्रेम रखने वाले महानुभावो की ओर से हमे बिना अपील किए रुपयो की प्राप्ति हुई है। इसलिए यह निःसकोच कहा जा सकता है कि समाज आबू आन्दोलन की सार्थकता को समझने लग गया है। अस्तु धनिक वर्ग स्वय इस ओर ध्यान देकर आबू आन्दोलन को सफल बनायेंगे ही परन्तु इस समय जिस जरूरत को अधिक महसूस कर रहे है वह जरूरत है उत्साही युवको के सहयोग की जो एक बार धर्म और समाज की मान-मर्यादा की रक्षा हेतु तथा इस जग को जीतने के लिये अपने सर्वस्व की बाजी लगावे। समाज के उत्साही युवको के अलावा हम अपने समाज के विद्वानो, विद्यार्थियो और वकीलो से भी जोरदार अपील करेंगे कि ग्रीष्मावकाश मे सभी भाई अपने-अपने इलाके मे आबू आन्दोलन के प्रचार का अगर बीडा उठा ले तो एक बारगी जो कार्य वेतनभोगी प्रचारको से होना असम्भव है उसे आप लोग सम्भव करके दिखा सकते है।

हैदराबाद सत्याग्रह के समय आर्य समाज के छोटे-छोटे बच्चो से लेकर बड़े-बूढ़ो तक ने अपने को उस आन्दोलन मे अर्पण कर दिया था उनके सामने सिर्फ एक ही लक्ष्य था और वह था आर्य धर्म और उसकी सस्कृति की रक्षा। कई आर्य भाइयो ने तो हैदराबाद की बलिवेदी पर अपने अमूल्य जीवन को अर्पण कर दिया था उस समय उनकी सारी शक्ति उसी ओर लगी हुई थी। ऐशो-आराम को उस वक्त उन्होने ताक मे रख दिया था और हैदराबाद की ओर चल पड़े थे और उन्होने अपने त्याग तथा बलिदानी भावों से एक बार ससार को दिखा दिया था कि आर्यो मे अभी अपने पूर्वजो का रक्ताश मौजूद है। फिर क्या बात है कि हमारे ही पूर्वजो के बनवाये विशाल एवं दर्शनीय मन्दिर तथा उनमें विराजमान सागोपाग सौम्य मूर्तियो के दर्शनो पर सिरोही की स्वेच्छाचारी सरकार मनमाना टैक्स हर यात्री पर चाहे वह दिगम्बर, श्वेताम्बर हो या कि हिन्दू हो वसूल कर उसे ऐश-परस्ती मे खर्च करे। उसे क्या अधिकार है कि जैनो के स्वत्वो को अपहरण कर अपनी मनमानी चलाये और टैक्स बढ़ाती रहे।

जिस दिन से आबू आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ और जैसे-जैसे यह आन्दोलन अधिक उग्र और व्यापक होकर जैन समाज की सीमा को लाँघ कर सर्वव्यापी बना तब से हमे कुचलने

के लिए सिरोही स्टेट के निरकुश अधिकारियो ने जैन जनता पर अधिकाधिक अत्याचार करने की घृणित नीति को अख्त्यार कर लिया है और वे बराबर वार पर वार करते ही चले जा रहे हैं।

जैन समाज के बच्चे-बच्चे को यह जान कर महान् दुःख होगा कि आबू आन्दोलन के कुचलने के हेतु अभी अभी जावाल के जैन मदिर में स्थित श्री नेमीनाथ की सांगोपांग भव्य एवं सुन्दर मूर्ति के टुकड़े टुकड़े राज्य के अधिकारियो ने अपने सहयोगियों से करवा डाले और मंदिरजी के सामने एक भैंसा कटवाकर उसके रक्त से मदिर की दीवारें सुर्ख करदीं। क्या इस प्रकार के अपमानजनक अत्याचार को जैन समाज सहन कर लेगा और चुपचाप मूर्तियों का अपमान होते देखता रहेगा ?

आये दिन जैन समाज की उदासीनता से तो यही पता चलता है कि वे कुछ कर सकने मे अपने को सर्वथा असमर्थ पाते है। हम अहिंसक जरूर हैं पर क्या हमें इस प्रकार के निरन्तर होने वाले अत्याचारो के निराकरण के लिये खून का घूंट पी कर चुपचाप बैठे रहना चाहिए ? वह तो अपने स्वत्वो की रक्षा के हेतु करने की इजाजत देती है फिर क्या कारण है कि हमारे दिलो में स्वत्व प्राप्ति के हेतु किसी प्रकार भी उथल-पुथल नहीं मचती।

जैन समाज को यह जान कर अतीव आश्चर्य होगा कि आबू आंदोलन का साथ अ० भा० हिन्दू महासभा, अ० भा० हिन्दू धर्म सेवा संघ कलकत्ता, भारत सेवाश्रम कलकत्ता, बंगाल प्रातीय आर्य प्रतिनिधि सभा, संन्यास आश्रम गया, कन्या गुरुकुल भैंसावल, कन्या गुरुकुल खानपुर, शुद्धि सभा आगरा, श्रद्धानन्द दलितोद्धार सभा देहली, आर्यसमाज हैदराबाद, दयानन्द साल्वेशन मिशन होशियारपुर, आर्य प्रतिनिधि सभा अजमेर, हिंदू सभा अजमेर, हिंदू सभा भोपाल, वनिता विश्राम आश्रम देहली, हिंदू सभा चांदखाली (बगाल), सी० पी० हिंदू सभा, यू० पी० हिंदू सभा, आर्योपदेशक सभा लाहौर, श्री श्रद्धानन्द अनाथाश्रम अजमेर, गुरुद्वारा शिरोमणि सभा अमृतसर, राजस्थान प्रा० हिंदू सभा अजमेर, आर्य प्रतिनिधि सभा करांची, बिहार हिंदू सभा पटना, प्रताप सभा उदयपुर, अ० भा० शुद्धि सभा देहली आदि कई जैनेतर सभाएं भारत में अपनी मान-मर्यादा के हेतु तथा स्वत्व संरक्षण के लिए प्रचार कर रही हैं और उपरोक्त सभी संस्थाओं का सहयोग हमें प्राप्त है। पर अफसोस है कि सोती हुई जैन कौम के कानों में जूं तक नही रेंगती। समाचार-पत्रों में कितनी ही मर्तबा लिखा गया कि जगह जगह आबू मदिर टैक्स विरोधी शाखायें सभायें स्थापित करें ब्यावर मे पासशुदा प्रस्ताव का समर्थन करके सिरोही स्टेट भेज दें पर दो ढाई सौ स्थानो के अतिरिक्त अन्य स्थानों से प्रस्ताव पास कराकर नही भेजे गये। जैन समाज की इस उदासीनता को देखकर दुख होता है कि क्या दरअसल में इस संघर्ष के जमाने मे दुनिया के पर्दे से जैन समाज का अस्तित्व नष्ट हो जायगा। इस सम्बन्ध मे डेपुटेशन बनाकर जगह-जगह दौरा किया। इस सम्बन्ध मे लगातार आंदोलन चलता रहा। डेपुटेशन कई बार दीवान साहब से मिला परन्तु मंदिरों के दर्शनों से प्राप्त हुई आय का लोभ वे भी न रोक सके। किन्तु जनता की प्रबल मांग और जैन समाज के जागृत हो जाने के कारण वे सब अधिकारी यह भी अनुभव करने लगे कि यह टैक्स लेकर हम जनता के साथ अन्याय कर रहे हैं। १९४२ में देश

की आज़ादी के लिए किए गए 'भारत छोड़ो' ऐतिहासिक आंदोलन के कारण कार्यकर्ताओं का ध्यान देश की स्वतन्त्रता की ओर लग गया और आंदोलन बन्द करना पड़ा।

ज्योंही देश स्वतन्त्र हुआ महारानी साहिबा सिरोही ने जनता की न्यायपूर्ण माग को स्वीकार कर लिया और जैन समाज के मस्तक के ऊपर लगे हुए कलक को धो डाला गया।

इस आंदोलन की सफलता में उन सभी पत्रों, सामाजिक सस्थाओं, हिन्दू और आर्य समाज के प्रमुख विद्वानो, नेताओ और जैन समाज से सभी सम्प्रदायो के प्रमुख महानुभावो का हार्दिक सहयोग रहा जिनके प्रताप और सहयोग के कारण सफलता प्राप्त हुई। सफलता में मुख्य श्रेय समाज के त्याग को है, समाज ने तन-मन-धन से इस आंदोलन में पूर्ण सहयोग प्रदान किया। फल-स्वरूप सफलता का मुकुट समाज के मस्तक पर सुशोभित हुआ। किसी कवि ने उचित ही कहा है—वीर और शक्तिशाली पुरुषों को होने वाले अन्याय के विरोध में पूर्ण शक्तिशाली आवाज उठानी चाहिए। और तब तक शांति से नही बैठना चाहिए जब तक सफलता पैर को चूमने के लिए अग्रसर न हो उठे। वही सम्यक्दृष्टि जीव है जो धन की शक्ति, तलवार की शक्ति और विचार शक्ति के रहते हुए अन्याय को न तो सहन करता है और न दूसरो पर अन्याय करता है।

यही जैन धर्म की शिक्षा है जिसका उत्तम पुरुष पालन करते है। इस आंदोलन से समाज के युवकों को शिक्षा लेनी चाहिए और अन्याय के विरोध में आवाज उठानी चाहिये।

सफलता उनका स्वागत करेगी।

आबूटैक्स विरोधी आन्दोलन के अवसर पर ब्यावर मे अध्यक्षपद पर सुशोभित होते हुए।

स्याद्वाद महाविद्यालय, भदैनीघाट और उसका जीर्णोद्धार

पूज्य न्यायाचार्य श्री १०५ गणेशप्रसादजी वर्णी

श्रद्धेय पूज्य वर्णीजी अध्यात्मज्ञान के भडार थे। विद्वानो के अनन्य प्रेमी और धार्मिक शिक्षा के प्रचार में आपकी अपूर्व रुचि थी। उन्होने अपने जीवन में १०० से अधिक शिक्षण संस्थाएं स्थापित कराई। उनका सभी वर्ग के स्त्री-पुरुषो पर अद्भुत प्रभाव पड़ता था। स्याद्वाद महाविद्यालय तो उनके लिए पुत्र के समान था जिसका सरक्षण जीवन पर्यन्त करते रहे। जब गंगाजी की प्रबलधारा विद्यालय के भवन को भस्मसात करने लगी और उस पर बने हुए भ० पार्श्वनाथ के जिन-मन्दिर तथा विद्यालय के सुन्दर भवन को खतरा हो गया तो उनसे देखा न गया और इसके लिए उन्होने अथक परिश्रम किया। जब उन्हे लाला तनसुखरायजी का पता चला कि उनके मित्र चीफ इजीनियर पद पर सुशोभित है तो उन्होने इस सम्बध में कई महत्वपूर्ण पत्र लालाजी को लिखे जिनमे विद्यालय की रक्षा का भाव स्पष्ट है। लालाजी ने और इजीनियर साहब ने इस सम्बन्ध मे जो उल्लेखनीय प्रयत्न किया वह उनकी स्वर्णाक्षरो मे लिखने योग्य प्रशंसनीय सेवा है। इसका सारा श्रेय वर्णीजी को है जिनकी भक्ति से प्रेरित होकर भदैनीघाट का पुर्ननिर्माण हुआ।

वर्णीजी के अभाव से देश का एक दैदीप्यमान लोकप्रिय मार्गदर्शक आध्यात्मिक रत्न खोगया जिसकी पूर्ति होना कठिन है।

आए हुए पत्रो मे से वर्णीजी का एक पत्र अविकल दे रहे है।

न्यायाचार्य हो - पत्र आया आप का परिश्रम जो घर्ट के
रूप में अत्यन्त श्लाघ्य है यदि इंजीनियर साहब कैसे यू. पी. वाले
घाट इलीवर्थ बन जाता - परन्तु सो तो नहीं प्रारम्भ हो जावे फिर तो
ही जावेगा हम तो आप को कोटिशः आशीर्वाद देते हैं जो आपने
तापूर्वक काम किया - कलकत्ता से अभी उत्तर नहीं आया - आप निर
न्न हैं भाग्य कहीं जावे अपने को सपर्णोप रहना चाहिए

आ. शु. चि.

गणेश वर्णी

चैत्र कृष्ण ?

सं. २००५

आदर्श सामूहिक विवाह

श्री गोकुलप्रसाद जैन, दिल्ली

आदर्श विवाह योजना की समाज में बडी आवश्यकता है। यह प्रथा नामधारी सिक्खो और दूसरे सम्प्रदायो मे बहुत समय से प्रचलित है। परन्तु जैन समाज में इस आदर्श प्रथा को लाने का श्रेय बैरिस्टर जमुनाप्रसादजी को है। द्रोणगिरि पचकल्याण के अवसर पर मै गया था वहां १६ विवाह योग्य वर-बधू बने।

जब उनके विवाह का आयोजन किया गया तो प्रतिक्रिया विचारधारा वाले व्यक्तियो ने इसका खुलकर विरोध किया। वे नही चाहते थे कि यह कार्य मेले में सम्पन्न हो। परन्तु बैरिस्टर साहब इस कार्य के लिए तत्पर थे। जैन मिशन के कार्यकर्त्ताओ ने इस कार्य मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया और मेले के बाहर जगल की मनोरम भूमि मे १६ विवाह सानन्द सम्पन्न हुए। लाखों स्त्री-पुरुष बिना आमन्त्रण दिये वहाँ पहुँच गये। उनकी शोभा-यात्रा बडी सुन्दर ढग से चढी। मेले मे आये हुए स्त्री-पुरुषो ने इस कार्य मे पूर्ण सहयोग प्रदान किया। धीरे-धीरे यह प्रथा समस्त मध्य भारत मे फैल गई। देहली में भी परिषद के तत्वावधान मे चार विवाह सामूहिक रूप से सम्पन्न हुए। केन्द्रीय लोकसभा के अध्यक्ष श्री आयगर साहब ने सभी को सुन्दर आशीर्वाद दिया और इस प्रथा को प्रोत्साहन देने के लिए जनता से अपील की। ला० तनसुखरायजी को भी इस कार्य में विशेष रुचि थी। उन्होने इस आन्दोलन को प्रोत्साहन देने मे बडी सहायता प्रदान की। इस आन्दोलन का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है।

समाज मे आदर्श विवाहो की प्रथा को योजनाबद्ध रूप से चलाने का सम्पूर्ण श्रेय जैन समाज के मान्य नेता स्व० बैरिस्टर जमनाप्रसादजी को रहा है। आप ही इसके प्रवर्तक थे और आपने ही जीवन पर्यन्त इसे सफल नेतृत्व प्रदान किया। मध्य प्रदेश मे आपकी छत्रछाया मे इस प्रकार के हजारो विवाह सम्पन्न हुए है।

प्रचलित विवाह रूप की इसी बुराइयो ने हमारे मान्य नेता श्री जमनाप्रसादजी को सामूहिक आदर्श विवाह पद्धति चलाने के लिए प्रेरित किया था। वैवाहिक कार्यों के सुधार का सर्वप्रथम प्रयास तो बैरिस्टर चम्पतरायजी ने किया था जिसमे उन्होने अनेक प्रचलित रूढियो को तोडा था। समाज में और भी स्थान-स्थान पर ऐसे विवाह होते आये है जिसमे समाज ने दहेज और फिजूलखर्ची के जुए को उतार फेका था। परिवर्तित परिस्थिति और सामाजिक जागरण ने हमें बहुत कुछ सिखा दिया है। व्यवस्थित रूप से सामूहिक आदर्श विवाह योजना को समाज मे प्रचलित करने का सारा श्रेय समाज और परिषद के स्वर्गीय नेता सन्मार्ग प्रवर्तक बैरिस्टर जमनाप्रसादजी कलरैया (नागपुर) को है। उन्होने परिषद के जबलपुर अधिवेशन के अवसर पर सर्वप्रथम इस योजना को कार्यान्वित किया था। घोर विरोध का सामना करने हुए भी जिस महान कार्य का उन्होने बीडा उठाया था, उसमे वे लगे रहे और इसे पूर्ण सफल बनाया।

दिल्ली मे सामूहिक विवाह का एक दृश्य। माननीय आयंगर सा की अध्यक्षता में पं० शीलचन्दजी शास्त्री गृहस्थाचार्य का कार्य करते हुए

इस योजना को सफल बनाने और इसे कार्य-रूप मे परिणत करने का बहुत कुछ श्रेय स्व० वैरिस्टर साहब के अनन्य सहयोगी सेठ गोभालालजी सागरवालो को है जिन्होंने इस योजना का सफल नेतृत्व करके इसे सफलतर और सफलतम बनाया। इन्ही महानुभावो के सततप्रयासो से आज बुन्देलखण्ड और मध्यप्रदेश में हजारो आदर्श विवाह हो चुके है।

वैरिस्टर साहब ने अपने जीवन मे स्थान-स्थान पर हजारो आदर्श विवाहो का आयोजन कराया। आदर्श विवाह हमारे लिए इसलिए आवश्यक है कि हम विवाहों के अवसर पर होने वाले अपव्यय, वाह्याडम्बर और अनावश्यक रूढियो और रीति-रिवाजो से बच सकें। समाज मे धनी-निर्धन, ग्रामीण, नागरिक आदि सभी गृहस्थों को समान स्तर पर लाया जा सके तथा अनेकानेक वर्तमान कुरीतियों से मुक्ति प्राप्त की जा सके। इस योजना के मूल में एक ही प्रेरणा गतिशील है कि आर्थिक विपन्नता के कारण आज जो व्यक्ति अविवाहित रह जाते हैं या कि जिनके विवाह सम्बन्ध अनेक कठिनाइयो के बाद विलम्ब से होते हैं, उन्हें राहत मिल

सके। इसे जितना कम से कम खर्चीला बनाया जा सके, उतनी ही अधिक इसकी उपादेयता बढ़ेगी। सबके लिए अनुकरणीय यह इसलिए है कि जो व्यक्ति चाहे व्यक्तिगत रूप से अधिक व्यय भी कर सकते हो वे यदि आगे आकर इस प्रकार के आदर्श स्थापित करेंगे जिससे कि अनुकरण-प्रिय निरीह निर्धन जनता उन पर चल सके तो समाज इस हीनावस्था से निकल सकेगी।

स्व० बैरिस्टर साहब और उनके सहयोगियो के चिर प्रयत्नशील रहने कारण आज समाज में इस योजना का बड़ा स्वागत हुआ और सामूहिक रूप से सम्पन्न होने वाले इन आदर्श विवाहो का व्यापक प्रचार हुआ। समाज ने इन विवाहो की आवश्यकता, सुरुचिपूर्णता और सुविधात्मकता को हृदयगम किया और इस पर अपनी मान्यता की छाप भी लगा दी।

बैरिस्टर साहब ने प्राय: सभी प्रमुख धार्मिक और सामाजिक उत्सवो पर, मेलो आदि में सामूहिक आदर्श विवाहो की योजना कराई। अन्य विशेष अवसरों पर भी इस प्रकार के आयोजन कराये जिनमे एक ही साथ एक ही मण्डप मे, एक ही समय एक ही व्यवस्था के अन्तर्गत अनेक वर-वधुओ का शास्त्रोक्त विधि-विधान सहित पाणिग्रहण सस्कार हुआ।

बैरिस्टर साहब इस प्रकार के प्रगतिशीलता के कार्यों मे सदा आगे रहे हैं। परिषद ने १६५६ मे अपने देवगढ अधिवेशन के अवसर पर सामूहिक आदर्श विवाह योजना के बारे मे पूर्ण विचार-विमर्श के पश्चात् एक प्रस्ताव पास किया था और इसे कार्यान्वित करने के लिए जो समिति बनाई गई थी उनके कार्यो का सम्पूर्ण भार उसके मन्त्री श्री जमनाप्रसादजी को ही सौपा गया था। यो तो इस योजना का व्यापक प्रचार हुआ है किन्तु इस कार्य मे बडी सावधानी के साथ अग्रसर होने की आवश्यकता है। प्राय: समाज-सुधार के नाम पर ढोगी, बेईमान, ठग और धूर्त अपनी दुकानें कायम कर लेते है। उनसे बचने की आवश्यकता है ताकि वे इस योजना के मूल उद्देश्यो और वास्तविकता को ही नष्ट न कर दे। बैरिस्टर साहब के जीवनव्यापी सतत्-प्रयत्नो और अथक परिश्रम से समाज ने आदर्श विवाहो की मौलिक महत्ता को तो स्वीकार किया ही, साथ ही इस योजना को सफल बनाकर इसकी व्यावहारिकता और उपादेयता को भी सिद्ध कर दिया।

आज हमारा मान्य नेता तो हमारे बीच नही है जो हमारा मार्ग-दर्शन कर हमें रास्ता दिखाता चले। किन्तु उनके द्वारा प्रशस्त मार्ग और स्थापित मिशन हमारे सन्मुख है जिस पर हमे चलना है और समाज को चलाना है। स्व० बैरिस्टर साहब की यही सच्ची स्मृति होगी और यही वास्तविक श्रद्धाजलि।

जो सब कुछ जानकर भी अपने-आपको नही जानता, वह अविद्वान है। विद्वान् वही है, जो दूसरो को जानने से पूर्व अपने-आपको भली भाँति जान ले।

विश्व का शाकाहार आन्दोलन

श्री सम्मतिकुमार जैन

> सत्तर वर्ष से भी अधिक समय से मैं शाकाहारी हू। शाकाहार के लाभ के विषय मे कुछ कहना नही चाहता। इसके परिणाम से जनता सुपरिचित हैं।
>
> —जार्ज बर्नार्ड शा

सन् १६१७ मे लन्दन के शाकाहारी समाज के सत्रहवे वार्षिकोत्सव के अवसर पर जार्ज बर्नार्डशा ने अपने सन्देश मे कहा था—

मुझे अपनी आस्था का श्रेय मिल सका या नही इस सम्बन्ध मे आप अपनी धारणा स्वय निश्चित कीजिएगा। मैं इसे आस्था कहता हू—क्योकि आज हम भौतिकवादी दृष्टि से शिक्षित इस युग मे शरीरविज्ञान पर आधारित जो युक्तियाँ प्रस्तुत करते है उनमें मेरा तनिक भी समादर नही। प्रामाणिक मनोविज्ञान के विकसित होने पर हम अधिशरीर क्रियाविज्ञान तक पहुच सकेंगे और तब हम स्वजाति भक्षण के प्रति नैसर्गिक विद्रोह की विश्वासजनक ढंग से व्याख्या कर सकेंगे।

यदि बचपन मे मुझे अकेला छोड दिया जाता तो मैंने अपने जीवन मे कभी भी मास भक्षण न किया होता।

मेरे जैसा आध्यात्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति शव भक्षण नही करता।

यह बात सर्वथा स्पष्ट है कि मनुष्य शाकाहार से दीर्घायु प्राप्त कर सकता है।

लन्दन के सुप्रसिद्ध नाट्यकार बर्नार्ड शा जीवन भर शाकाहारी रहे। उन्होने अपने जीवन मे कभी भी मास, मछली, अन्डे को स्वीकार नही किया। एक बार वे किसी भोज में आमन्त्रित थे। उनके भोजन में शाकाहार का ही प्रबध किया गया था। किसी व्यक्ति ने उनके सामने मासाहार का भोजन परोसना चाहा तो उन्होने तत्काल मना कर दिया और कहा मै अपने शरीर को कब्रस्तान नही बनाना चाहता हू। प्रकृति ने अन्न, फल, मेवा, दूध आदि सर्वोत्तम पदार्थ उत्पन्न किए है, मैं इन्हे छोड़कर मांसाहार कदापि नही कर सकता। दीर्घायु, निरोग शरीर, शात स्वभाव, कर्तव्यशील प्रकृति, हसमुख वदन और सात्विक विचार जो मेरे अन्दर आये है उसका प्रमुख कारण शाकाहार है। मै शाकाहार को ही जीवन के लिए आवश्यक समझताहूं। विश्ववन्द्य महात्मा गाँधीजी ने अपने जीवन मे कभी भी मासाहार नही किया। उन्होंने अपनी माताजी के समक्ष जैन साधु बेचर स्वामी से तीन प्रतिज्ञाये ली। माँस, मदिरा और पर-स्त्री सेवन का त्याग। इन प्रतिज्ञाओ के कारण उनका जीवन अहिसा सस्कृति से ओतप्रोत हो गया। वे जब बैरिस्टरी के शिक्षण के लिए विलायत गए तो शाकाहारी आन्दोलन में उन्होने विशेष रुचि दिखाई। विदेशो के वयोवृद्ध शाकाहारी विद्वानो के बीच मे नवयुवक गाँधीजी अध्यक्षता करते थे और उनका शाकाहार के कारण विशेष सम्मान था। उस समय लन्दन मे कई शाकाहारी सस्थाओ की नीव रखी गई। शाकाहार

आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। एक बार गाधीजी के बडे पुत्र बीमार हुए। डाक्टरो ने उन्हे अन्डे का शोरवा देने का प्रस्ताव किया। गाधीजी ने कहा मैं कदापि अपने पुत्र को अडे का शोरवा नही दूगा। उनसे किसी ने कहा गाय का दूध उसके बच्चे का आहार है उन्होने तत्काल दूध का त्याग कर दिया। जब उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा तो उनसे कहा गया कि आप बकरी का दूध प्रयोग मे लाइए। उन्होने बकरी के दूध को स्वीकार कर लिया। गाधीजी अहिंसा के अवतार थे। उन्होने अहिसा प्रचार के कार्य मे अनुपम कार्य किये। सात्विक आहार-विहार पर वे अधिक जोर देते थे। भारतवर्ष की सस्कृति और सभ्यता धर्मप्रधान रही है। धर्म मे अहिंसा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। इसलिए कहा है:

धम्मो मगल मुक्किट्ठ, अहिसा सयमो तपो,
देवापि तस्स णम स्यति, जस्य धम्मे सयामणे।

धर्म लोक मे उत्कृष्ट मगल है। और वह अहिंसा सयम और तप है। देवता भी उसको प्रणाम करते है जिसके हृदय मे अहिसा का वास है।

भारतवर्ष मे धर्म की बड़ी प्रधान थी। सभी मनुष्यो का आहार-विहार सात्विक था। जब से विदेशियो का भारत मे आना हुआ यहा मासाहार बढ गया। सात सौ वर्ष मुसलमानो के रहने से और दो सौ वर्ष अग्रेजो के रहने से भारतीयता का रूप-रग बदल गया। पाश्चात्य सस्कृति का इतना अत्यधिक असर हुआ कि आज भारत सरकार मासाहार के लिए बडा प्रयत्न कर रही है। करोड़ो रुपयो की लागत से नए-नए कसाईखाने स्थापित कर रही है।

मुर्गी पालन को प्रोत्साहन देकर अनेक स्थानो पर विशाल केन्द्र स्थापित किए जा रहे है। भारत से करोड़ो रुपये के प्रतिवर्ष चमडे और पशुओ के शरीर के विभिन्न अग विदेशो में भेजे जा रहे है। ऐसी परिस्थिति मे कोई भी विवेकी भारत सरकार को अहिंसा सस्कृति पर विश्वास करने वाला नही मान सकता। आवश्यकता है, देश में पशुधन की वृद्धि की जाय और सघन खेती को प्रोत्साहन दिया जाय तभी अन्न की समस्या सुलझ सकती है।

शाकाहार स्वास्थ्य के लिए अत्यत लाभदायक है। यह देखकर विदेशी विद्वानो, डाक्टरो और दूसरे विचारको ने अनुभव किया कि मासाहार तामस और अनेक रोगो को उत्पन्न करने वाला है। क्यो न जीवन मे शाकाहार को प्रोत्साहन दिया जाय। उन्होने इसका अनुभव किया और स्वय शाकाहारी रहने का दृढ सकल्प किया। उन्होने इस सम्बन्ध मे शाकाहारी सोसायटिया स्थापित की और इस प्रकार का साहित्य निर्माण किया जिसके पढने से स्पष्ट प्रकट होता है, शाकाहार जीवन को शक्ति, बल और कर्तव्य की ओर प्रेरित करता है। प्रकार पाश्चात्य देशो मे अनेक Vegetarian Society कायम हुई। फलस्वरूप शाकाहार का प्रचार किया। ससार के कोने-कोने मे ऐसी सोसाइटियाँ है जो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रचार के विविध साधनों द्वारा प्रचार करती है। ऐसी सोसायटियो मे लन्दन और मैनचेस्टर की प्रसिद्ध सोसायटिया है जो बहुत प्राचीन है। विविध रीति से शाकाहार का विश्व मे प्रचार करती है। प्राणी-रक्षा के सम्बन्ध मे प्रयत्न करती है।

प्रति वर्ष ४ अक्टूबर को प्राणीरक्षक दिवस के नाम से इसे मनाते है। यह १६२८ मे प्रारम्भ हुआ। सन्त फासिस जो जीवो के प्रति बडा प्रेम करते थे उन्होंने यह दिवस प्राणीरक्षक दिवस के नाम से मनाना प्रारम्भ कराया। उनका विचार था हमे पशु, के प्रति शुभ भावनाए रखनी चाहिए। उनकी रक्षा के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।

न्यूजीलैंड मे इस दिन को विशेष उत्साह से मनाते है और ससार के सभी लोग इस प्राणी रक्षक दिवस को मनाकर जीवधारियो के प्रति करुणा का भाव प्रकट करते है। वे इसे एक सप्ताह तक मनाते है। और यह विश्व मे प्राणीरक्षक सप्ताह के रूप मे बड़े उत्साह से मनाया जाता है। इसलिए व्याख्यानो, रेडियो, वार्तालाप, म्यूजिक लालटेन, प्रेस, पत्र और दूसरे साधनों द्वारा शिक्षा विभाग के सहयोग से मनाते हैं।

इस सप्ताह के मनाने का प्रयोजन देश के नौनिहाल बालको के हृदय मे जीवों के प्रति करुणा और दया का भाव जानवरो के प्रति पैदा करना है ताकि वे उदार, दयावान और जीव-रक्षक बनें। न्यूजीलैंड में एक सोसायटी है जिसका नाम

World Weak For Animals Campaign N 17 Bellvedere Street Epsom है।

विश्व शाकाहारी सम्मेलन का १७वा अधिवेशन भारत की राजधानी देहली मे हुआ। उसके सयोजक ला० तनसुखराय थे। विश्व के विविध भागो से ३५० के करीब आए हुए प्रतिनिधियो ने इस अधिवेशन मे भाग लिया। शाकाहार आन्दोलन ब्रिटेन और पश्चिमी देशो मे बडी तेजी के साथ फैल रहा है। क्योकि लन्दन और दूसरे शहरो में इस आन्दोलन को आधुनिक ढग और वैज्ञानिक रीति से सचालन किया जा रहा है। मैंचेस्टर लन्दन की वैजिटेरियन सोसायटी इस सम्बन्ध मे उल्लेखनीय कार्य कर रही है। विश्व-अन्तर्राष्ट्रीय शाकाहारी सम्मेलन का प्रारम्भ १६१० में शुरू हो गया था। इस सस्था से विश्व की समस्त शाकाहारी सोसायटियो का सम्बन्ध है। और यह परस्पर सहयोग और एकता के आधार पर चलाई जा रही है। इसके सगठन में इस सस्था की शक्ति बढी है।

World Vegetarian Congress का १८वा अधिवेशन २७ अगस्त से ४ सितम्बर १६६५ तक लन्दन मे होने का निश्चय हुआ है। जिस स्थान पर अधिवेशन होगा वह लन्दन का प्रमुख केन्द्र है। और उसका ऐतिहासिक महत्व है। यह स्थान Swanwick है। शाकाहारी सम्मेलन की कार्य-कारिणी परिषद् मे हालैन्ड, हेग और चैकोस्लेविया प्रमुख रुचि रखने वाले सदस्य है। प्रत्येक प्रतिनिधि की फीस ३) स्टर्लिंग है। इस अधिवेशन को वहा कराने का सारा श्रेय ब्रिटेन शाकाहारी आन्दोलन (British Vegetarian Youth Movement) को है जिसके प्रयत्न से यह अधिवेशन वहा किया जा रहा है।

पिछला जो १७वा अधिवेशन दिल्ली मे हुआ उस सम्बन्ध मे देश के विविध भागो से गण्य-मान्य राज्याधिकारियों, नेताओं, विद्वानो, सामाजिक कार्यकर्ताओ के पत्र-सदेश प्राप्त हुए जिनमे इस आन्दोलन की प्रशसा की गई थी। और प्रोत्साहन देते हुए लिखा था। इसी प्रकार विदेशो

की शाकाहारी सोसायटियो ने अत्यन्त सुन्दर शब्दो में प्रेरणादायक स्फूर्तिवत शब्द लिखे जिन्हे पढ़ने पर प्रतीत होता है कि यदि शक्तिशाली और व्यवस्थित ढग से शाकाहारी आन्दोलन चलाया जाय तो निःसदेह सफलता प्राप्त हो सकती है।

प्रिय बन्धु,

आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। धन्यवाद !

आपने अपने जीवन मे जो अनेक जन-कल्याण के कार्य किये उनमे शाकाहार की महत्ता प्रचारित करने का आपका यह सकल्प सर्वश्रेष्ठ है। इस पुनीत लोकोपकारी शुभ कार्य में मेरा पूर्ण सहयोग आपको निरन्तर उपलब्ध होता रहेगा।

भारत ससार का अनेक क्षेत्रो मे गुरू माना जाता रहा है। आज हमे अपने उस गौरव को पुन: प्राप्त करने के लिए सासारिक कल्याण के ऐसे शुभ कार्यो मे अधिकाधिक योग प्रदान करना ही चाहिए जिससे आधुनिक मनुष्य का मस्तिष्क सन्तुलित होकर अध्यात्मवाद की ओर अग्रसर हो सके।

निरामिष आहार के प्रचार, वृद्धि और शिक्षण के अतिरिक्त राजधानी मे सम्मानित विदेशी अतिथियो के लिए किसी ऐसे विश्रामग्रह की भी योजना बनानी होगी जहाँ वे विशुद्ध भारतीय संस्कृति के अनुरूप शाकाहार का आनन्द ले सकें।

आप मुझे अपने समाज के सरक्षण सदस्यो मे सहर्ष सम्मिलित कर सकते हैं।

आपका शुभचिन्तक,

रामनाथ कालिया

भारतवर्ष में कई सोसायटिया इस सम्बन्ध मे प्रशसनीय कार्य कर रही है। उनमे The Bombay Humanitarian League मुख्य है जिसकी स्थापना बम्बई मे श्रीमान माननीय दयालकार श्री लालूभाई जव्हेरी ने की थी जिसका प्रधान कार्यालय १४६, जौहरी बाजार बम्बई न० २ में है। आजकल जिसके प्रमुख संचालक श्रीमान् सेठ जयन्तीलालजी मानकर साहब है।

इसी प्रकार दूसरी सोसायटी-भारत वेजिटेरियन सोसायटी, ११६ सुन्दरनगर, नई दिल्ली में है जिसके सेक्रेटरी श्री अमृतलालजी जिन्दल है। इसी प्रकार बम्बई, सौराष्ट्र और आंध्र प्रदेश मे कई पिंजरापोल सोसायटिया है जो पशुरक्षा का महत्वपूर्ण कार्य करती है। रीवा, सतना, मध्यप्रदेश से शाकाहारी त्रैमासिक पत्र का प्रकाशन होता है जिसके सम्पादक श्री पन्नालालजी है जो शाकाहार के सम्बन्ध में उल्लेखनीय कार्य कर रहे हैं।

आवश्यक हो कि शाकाहार पशुरक्षा, गोरक्षा, जीवदया सम्बन्धी आन्दोलन विभिन्न प्रांतो में उत्साही कार्यकर्ताओ द्वारा मिलकर सगठित होकर चलाया जाय ताकि वैज्ञानिक ढग से इसका सचालन हो और सही रूप से पूर्ण सफलता मिल सके। जैन समाज के उदीयमान युवक श्री प्रेमचन्दजी जैना वाच कम्पनी ने दि० जैन लाल मंदिरजी पर अहिंसा प्रचार समिति स्थापित की है। जिसने प्रशसनीय कार्य किया है तथा जो उत्तम काम कर रही है।

लाला तनसुखरायजी ने भी भारत वेजिटेरियन सोसायटी नामक मस्था खोली थी। और उसीके माध्यम से यह अधिवेशन करवाया और विदेशी शाकाहार से रुचि रखने वाले अतिथियो को आमन्त्रित किया। इसमे कोई सदेह नही लालाजी की इस कार्य मे विशेष रुचि थी। उन्होने प्रयत्न भी किया। परतु पूर्ण सहयोग का अभाव और योग्य हाथो मे न सौंपने के कारण इस सस्था का कार्यक्षेत्र केवल कागजो मे ही रह गया। और उनके स्वर्गवास के पश्चात् समाप्त हो गई। आवश्यकता है जैन समाज के उत्साही कर्मशील सपन्न युवक इस कार्य को अपने हाथो मे ले और पूर्ण रुचि के साथ इसका सचालन करे तो मानव जाति का अकथनीय उपकार हो। इस समय विश्व मे एक बडा सघर्ष चल रहा है। मासाहार, मछली, अन्डो का उत्पादन इतनी द्रुतगति से बढ रहा है जिसकी कल्पना भी नही की जा सकती। किसी समय पशुओ का वध धर्म के नाम पर होता था, अब उदर पूर्ति के नाम पर होता है। परन्तु आज विटामिन शक्तिवर्धक तत्वो के नाम पर होता है। जैनो मे जो विशुद्ध शाकाहारी है कतिपय नवयुवको के मस्तिष्क मे भी यह दूषित विचारधारा बिना बुलाए तेजी से आ रही है। कुछ अडे भी इस प्रकार के होते है जिनमे जीव पैदा होने का सभावना नही होती। तो उस सम्बन्ध मे तर्क किया जाता है उनके खाने मे क्या दोष है? इसी प्रकार का प्रश्न मुझसे माननीय प्रधान मन्त्री जी के एक उच्चपदासीन सेक्रेटरी ने उस समय किया जब मै अमेरीकन राष्ट्रपति श्री आइजन हौवर को भारत पधारने पर Key of Knowledge भेंट करने के लिए गया था। मैंने उत्तर दिया श्रीमान जी! हम आपकी विचारधारा को स्वीकार नही कर सकते। कुछ स्त्रिया भी ऐसी होती है जिनके सन्तान नही होती। तो क्या हम उन्हे निर्जीव कहे। जब मैंने यह उत्तर दिया तो वे मेरी ओर देखने लगे और कहा नि सदेह शाकाहारी भोजन सर्वश्रेष्ठ है। मैं इसकी प्रशसा करता हूँ। मुझे भी शाकाहार के सम्बन्ध मे कुछ उत्तम साहित्य दीजिए। फिर उन्हे कुछ साहित्य भेंट दिया गया।

कहने का साराश है कि शाकाहार के प्रचार की बडी आवश्यकता है। प्रचार की तीव्रता के कारण निन्दनीक घृणास्पद मासाहार की वृद्धि हो रही है जिसका सामना करना युवको को चुनौती दे रहा है कि वे उस चुनौती को स्वीकार करे और विरोध मे शक्तिशाली आन्दोलन उठावे।

विदेशो मे जहाँ मासाहार की बड़ी प्रचुरता है रेगिस्तान मे नखलिस्तान की तरह कुछ विशिष्ट शक्तिशाली पुरुषो और महिलाओ द्वारा यह आन्दोलन चलाया जा रहा है। वे इस सम्बन्ध मे निर्भीकता से कार्य करते है। और आधुनिक प्रचार के साधनो को अपनाकर शाकाहार का प्रचार तेजी से कर रहे है। आपको यह जानकर अत्यत प्रसन्नता होगी कि विदेशो मे बीस हजार स्त्री-पुरुष शाकाहारी आन्दोलन के सदस्य है जो शाकाहार पर निर्भर है। उन्होने इस सम्बन्ध मे घोषणाए की है कि शाकाहारी निरोग और स्वस्थ रहता है। उसमे ऐसे सक्रामक रोगो का समावेश नही हो पाता, जिन रोगो से ग्रसित वह पशु होता है जिसका मासाहार काम मे लिया जाता है। अनेक बीमारिया मासाहार के त्याग के साथ उनकी समाप्त हो गई।

मासाहार मनुष्य की खुराक नही है। शाकाहार, अन्न, फल, दूध आदि ही मनुष्य की सच्ची खुराक है। इस सम्बन्ध मे उत्तम साहित्य भी प्रकाशित किया गया है जिसकी सूची, सस्थाओ के नाम उनके सचालक और इस सम्बन्ध मे आवश्यक बातो का परिचय क्रमश देने का

विचार है। अब कुछ उल्लेखनीय विदेशी संस्थाओं का परिचय जानकारी के लिये देते हैं जिससे हमारे देश के भाइयों में इस सम्बन्ध में उत्साह प्रकट हो और इस महत्त्वपूर्ण कार्य में अपनी रुचि प्रकट करें।

डबलिन में The Dublin Vegetarian Society है, जिसकी स्थापना डा० जोहन्स हेनरी मिनाली ने की है, जो वहीं जाकर बस गए हैं। यह संस्था अमरीका, कनाडा, इंग्लैंड, अर्जेन्टायना, दक्षिण अफ्रीका, आस्ट्रेलिया, जापान और ब्रिटिश द्वीपों में प्रचार कार्य कर रही है। Evening Mail. Evening Herald और दूसरे पत्रों में शाकाहार का विज्ञापन देकर जनता की रुचि बढ़ा रही है।

यह संस्था विविध उपायों से शाकाहार को प्रोत्साहन देती है जिनमें शाकाहारी भोजन बनाने की विधि मुख्य है। Mr. Florence, Gourlay इसके सेक्रेटरी हैं जो शाकाहारी भोजन को Natural Pure Diet कहते हैं एवं उत्साह से जिसका प्रचार करते हैं। इस संस्था ने २६,८० ५९३ से अधिक व्यक्तियों के सम्पर्क में आकर शाकाहार का महत्त्व समझाया है।

इसी प्रकार The American Humane Association है इस संस्था की स्थापना १८७७ में हुई इसका उद्देश्य पशुओं पर क्रूरता न होने देना, बच्चों के कल्याणकारी कार्य करना, पशुरक्षा का कार्य करना, शाकाहार का प्रचार करना इसका उद्देश्य है। इसका प्रधान कार्यालय 896 Pennsylvania, Street, Denver 3, Cold. U.S.A.

यह पत्रों, व्याख्यानों, डिनर, भोजन बनाने की विधि, मेलों, गोष्ठियों और दूसरे साधनों द्वारा शाकाहार का प्रचार करती है। २१ वर्ष का कोई भी व्यक्ति इसका सदस्य बन सकता है। मेम्बर बनने के लिए प्रतिज्ञा-पत्र भरना होता है जिसमें जीवन भर शाकाहारी रहने का संकल्प करना पड़ता है। व्यवस्थित सोसाइटी है, इसका नियम है दूध का भोजन मांस नहीं है। क्योंकि गाय, भैंस, बकरी आदि पशुओं से प्राप्त होता है। उनको हानि बिना पहुँचाए मिलता है। जबकि मांस उनके विनाश से प्राप्त होता है। दूध उन्हीं पशुओं द्वारा पूर्ण विटामिन युक्त शुद्ध भोजन है। इसमें मांस आहार का संकल्प भी नहीं है। इसलिए ग्रहण करने योग्य है। इसे उन नियमों में शामिल नहीं करना चाहिए जिन्हें कतिपय विदेशियों ने शामिल किया है।

इसके अतिरिक्त : London Vegetarian Society के अध्यक्ष हैं मि० Bertrand P. Allinson M. R. A. S.,

और आनरेरी सेक्रेटरी Ronaldlightower हैं। जिन्होंने सारा जीवन इस कार्य में लगा दिया। यह एक डाक्टर हैं। इनके पुत्र भी इस काम में पूरी सहायता प्रदान करते हैं। इसी प्रकार :—

Dr. D. R. Allinson Advocate हैं जिन्होंने पशु रक्षा और पशुओं के प्रति होने वाली निर्दयता को दूर करने का संकल्प किया है। आपका पता 81 Lambs Conduit Street London W. C. I. है।

इसी प्रकार आस्ट्रेलिया के प्रोफेसर Jabanes Ude ने अपने यहा प्रशसनीय कार्य किया है। शाकाहार, अहिंसा प्रचार के सम्बन्ध में आपका कार्य शानदार रहा है। इनके इस कार्य में कई कठिनाइया आयी परन्तु इन्होने इसकी कुछ भी परवाह नही की।

डा० Hugovio इसके अध्यक्ष है। श्री Evelin Guzada सेक्रेटरी हैं। Mr Wiluram जो पत्र और प्रदर्शनी द्वारा शाकाहार का प्रचार करते है।

Osterric Chister vegeteriarbund Wiem I Rethawsplate 4
Halbstock B इसका प्रधान कार्यालय है।

विदेशो मे अहिसा की अभिरुचि

जनता मे निरामिष भोजन की प्रवृत्ति बढ़ाने के आदर्श कार्य को "भारत वेजीटेरियन सोसायटी दिल्ली" बहुत समय से कर रही है। इस सोसायटी के सयोजक लाला तनसुखराय जैन ने एक पत्र लदन की फ्रेड्स वैजीटैरियन सोसायटी को बम्बई मे होने वाली वर्ल्ड वैजीटेरियन काग्रेस मे अपने प्रतिनिधि भेजने का निमन्त्रण भेजा था। उसके उत्तर मे उपर्युक्त सस्था के मत्री टी० लेन के पत्र का कुछ भाग देते है, जिससे उनको प्रतिभास हो जाएगा कि विदेशा मे भी जीवो की हिंसा न करने की कितनी अभिरुचि है, "जैनियो और वौद्धमतानुयायियो मे जो जीवो के हिंसा न करने की परम्परा चली आ रही है उसका हम हृदय से आदर करते हैं। हमे आशा है कि वर्ल्ड वैजीटेरियन काग्रेस को पूरी सफलता मिलेगी। निरामिष आहार की प्रवृत्ति तथा अहिसा आन्दोलन विश्वभर मे फैलना चाहिए, इससे प्राणियो मे पारस्परिक सहयोग और सहायता की भावना फैलेगी। विश्व के मानवो तथा पशुओ के वध को रोकने के लिए पश्चिमीय देश पूर्वीय देशो के नेतृत्व की ओर निहार रहे है। विश्व मे युद्ध न फैले, इसके लिए भारत वहुत काम कर रहा है। हमे आशा है कि आप अहिसा और निरामिष भोजन की पद्धति को ससार के वहुभाग मे वढाने की प्रवृत्ति को जारी रक्खेंगे।"

ᔕ ᔕ ᔕ

विदेशो मे शाकाहार के सम्बन्ध मे जो साहित्य प्रकट हुआ है उसकी सूची प्रकाशित कर रहे है। आशा है आप उससे लाभ उठावेंगे, और शाकाहार का प्रचार करेंगे।

आचार्यश्री विहार करते हुए जा रहे थे, मार्ग मे एक विशाल आम्र-वृक्ष आ गया। सन्तो ने उनका ध्यान उधर आकृष्ट करते हुए कहा—यह वृक्ष बहुत वडा है।

आचार्यश्री ने भी उसे देखा और गम्भीरता से कहने लगे—एक मूल में ही कितनी शाखाएँ-प्रशाखाएँ निकल जाती है। धर्म-सम्प्रदाय भी इसी प्रकार एक मूल में से निकली हुई शाखाएँ होती है। परन्तु इनकी यह विशेपता है कि इनमे परस्पर कोई झगड़ा नही है, जवकि सम्प्रदायो मे नाना प्रकार के झगडे चलते रहते है। शाखाएँ वृक्ष की शोभा है। उसी प्रकार सम्प्रदायो को भी धर्म-वृक्ष की शोभा वनना चाहिए।

LONDON VEGETARIAN SOCIETY

List of Books

Health Giving Dishes Dr M Bircher-Benner	10/6
Complete Vegetraian Recipe Book Ivan Baker	9/6
Diet Reform Cook Book Vivien Quick	7/6
Standard Vegetarian Cookery Ivan Baker	5/-
Good Cakes, Bread & Biscuits Ambrose Heath	4/6
100 Ways of Cooking Without Meat Lettice Pither	4/-
Meatless Dishes C. Herman Senn	3/6
Dishes Without Meat Ambrose Heath	3/6
Egg Dishes Mary Ball	3/6
Food for Health J. & J. E Thompson	2/6
Vegetarian Recipes Ivan Baker	2/-
63 Meatless Meals Bridget Amies	2/-
Cakes, Scones, Biscuits & Fancies Bridget Amies	2/-
Menusper Festive Occasions Bridget Amies	1/-
75 Vegetarian Savouries Ivan Baker	1/-
Vegetarianism for Beginners Maud Baines	1/-
100 Meatless Recipes	9d.
Hotel Menus & Recipes for Seven Days Ivan Baker	6d.
Vegetarian Recipes Without Dairy Produce Margaret Rawls	6d.
Of Cottage & Cream Cheses Florence Daniel	6d.
Salads for All Seasons London Health Centre	6d.
Meatless Meals for The Times	4d.

Free Leaflets

Savoury Egg Dishes Avis Lever
Spring Menus & Meals Avis Lever
Quickly Made Savouries Beatrice James

DIET

Health, Diet & Commonsense C. Scott	10/6

Food Values At a Glance V. G Plimmer	8/6
Sensible Food For All Edgar Saxon	7/6
Eat Nature's Food and Live Long Dr J. Oldfield	7/6
Dear Housewives Doris Grant	7/6
Your Daily Bread Doris Grant	6/6
Your Diet in Health & Disease H. Benjamin	6/6
How to Eat for Health Stanley Lief	5/-
Health in the Home Essays	5/-
Simple and Attractive Food Reform Edgar Saxon	3/6
Fruit Dishes & Raw Vegetables Dr. M. Bircher Benner	3/6
Honest Bread B. T Fraser & C L Thomson	3/6
Fruit and Vegetable Juices Bridget Amies	3/-
Commonsense Vegetarianism H. Benjamin	3/-
Vital Vegetables Leslie Powell	2/6
What to Eat for Health (Various)	2/6
Food Values Chart Bridget Amies	3/-
Crude Black Molasses Cyril Scott	2/-
Culinary & Medicinal Herbs H M.S.O	2/-
Raw Food in Health & Disease Dr. R. Bircher	1/-
A Simple Guide to Healthy Food London Health Centre	1/-
Bread The Whole-Wheat Way to Health do	1/- & 6d.
The Biological Value of Proteins H H Jones	3d.
Vitamins and Vegetarianism Dr. F Wokes	6d.
Rational Diet A. E Druitt	2d

Free Leaflet

How to Be a Vegetarian

Health and Disease, Naturopathy, etc.

Everybody's Guide to Nature Cure H. Benjamin	17/6
Natural Therapy Dr E K Ledermann	15/-
Herbal Remedies Mary Thorne Quelch	10/6
Magic, Myth and Medicine Harry Clements	7/6
A Apple A Day H M. Irwin	7/6
Better Sight Without Glasses H. Benjamin	6/-

Attacking and Arresting Arthritis F A. Robinson	6/-
Health in the Home Essays	5/-
The Heart J. C. Thomson	4/6
Cause and Cure of Disease R. Park Yunnie	4/6
Health From British Wild Herbs	4/-
Home Cures for Common Ailments Dugald Simple	3/6
Nature Cure Treatment of Gastric-Duodenal Ulcerations Russell Sneddon	2/6
Attack Your Rheumatism Russell Sneddon	2/6
Home Treatment of Asthma Russell Sneddon	2/6
The Water Cure at Home Kenneth Trueman	2/6
Crude Black Molasses Cyril Scott	2/-
The Bach Remedies Repertory F. J. Wheeler	1/6
Hydrotherapy A. C Barthels	1/6
Digestive Troubles G Dewar	1/6
Appendicitis J. C. Thomson	1/6
Constipation Dr. Josiah Oldfield	1/6
Constipation Edgar Saxon	1/-
Nature Cure in A Nutshell Tom W. Moule	1/-
Diabetes : Its Cause and Treatment Dr. A. Gold	6d.
The Raw Food Treatment of Cancer & Other Diseases Dr. K Nolfi	6d.
Diet As A Factor in Cancer Causation Dr. M. Beddow Bayly	6d.
Diet and High Blood Pressure Dr. B P Allinson	6d.
The Conquest of Rheumatism Dr B. P Allinson	3d.
The Cause and Cure of Catarrh Dr. B. P Allinson	3d.
Diet in Relation to Health and Disease Dr. M. Beddow Bayly	3d.

Free Leaflet

The Problen of Pernicious Anaemia
Dr. M. Beddow Bayly.

Maternity and Children's Diet

Having A Baby Easily Margaret Brady	9/6
Children's Health and Happiness Margaret Brady	8/6

Your Child and Diet Dr C. V. Pink & H F. Rathbone 6/-
Aids to a Vegan Diet for Children Kathleen Mayo 1/-
Vegetarianism in the Nursery Dr. C V. Pink 6d.
Good Food for Growing Children London Health Centre 6d.
Diet in Pregnancy Dr. C. V. Pink 3d.

Free Pamphlet

Mother, Child and Diet Dr. C V. Pink

THE LAND

Gardening Without Digging A. Guest 2/-
Food and Famine H H Jones 1/-
The Manuring of Soils On No-Animal Lines H Valentine Davis 6d
A Vegetarian Looks at the World Peter Freeman 6d.
Can Britain Feed Herself on Home-Produced Foods H. H. Jones 3d.

GENERAL

Food for the Golden Age Frank Wilson 21/-
The Recovery of Culture Dr H B Stevens 21/-
The Golden Feast Roy Walker 18/-
Salt and his Circle S Winsten 16/-
Design for Happiness John O'Connell 12/6
Recollections and Essays Leo Tolstoy 6/-
These We Have Not Loved Rev V A Holmes-Gore 3/6
Commonsense Vegetarianism Harry Benjamin 3/-
The Truth About Vaccination & Immunization L. Loat. 3/-
On Behalf of the Creatures J. Todd Ferrier 2/-
Systems of Feeding Alfred H. Haffenden 1/6
On the Vegetable System of Diet P B. Shelley 1/6
A Vindication of Natural Diet P B Shelley 1/-
Bread and Peace Roy Walker 1/-
Ethics of Diet Howard Williams 1/-

Vegetarian Handbook (a Handboom of facilities for Vegetarians including lists of Guest Houses, Health, Food Stores, etc) 1/-

Vegan Trade List 1954. (a list of Commercial products of non-animal origin) 1/-

Song of Supper Dr. P. A. Scholes 9d.

Vegetarianism and Medicine, Science, Poetry, Sport, Literature, Economics, Temperance and Religious Thought (a book of quotations) 6d.

Was The Master A Vegetarian Rev. V. A. Holmes-Gore 3d.

The Bible and Vegetarianism Geoffrey L. Rudd 3d.

The Advantages of Vegetarian Diet Gen. Bramwell Booth 2d.

Free Leaflets

Why Not Be A Vegetarian ?

Vegetarians and Vaccination Dr. Douglas Latto

Vegetarianism and the Growing Boy W. A. Sibly

Vegetarian Diet for Dogs and Cats J. de Bairacli Levy

My Botanic Book (a booklet for children)

Periodicals

Vegetarian News	London Vegetarian Society (quarterly)	1/-
	Annual sub. i e. postage	5/-
The Vegetarian	The Vegetarian Society, Manchester (bi-monthly)	1/-
World Forum	Geoffrey L. Rudd, Ltd. (quarterly)	1/6
The Vegan	The Vegan Society (quarterly)	1/-
The Farmer	F. Fewman Turner (quarterly)	1/6

Postage

To all orders please add postage as follows :

For	books	up to	2/- in price	3d.
„	„	from	2/1d. to 5/-	4d.
„	„	„	5/1d. to 7/6d.	6d.
„	„	„	7/7d. to 10/-	2d.
„	„	„	10/1d. to 15/-	8d.

जैन कोआपरेटिव बैंक लिमिटेड नई दिल्ली

रायसाहब ला० जोतिप्रसादजी जैन

आज से लगभग २५ वर्ष पूर्व जब इस बैंक की स्थापना हुई उस समय जनता की आर्थिक हालत बहुत कमजोर थी। देश मे चीजो के भाव एक दम गिर गये थे और इस डिफ्लेशन ने समाज के सभी वर्गों को भारी कठिनाई में डाल दिया था। क्या किसान, क्या मजदूर, क्या व्यापारी और क्या कर्मचारी—सभी आर्थिक सकट मे थे। आस-पास के गाँवो मे लोग रोजगार और नौकरी की खोज मे दिल्ली आ रहे थे। उस समय हमारे भाइयो को व्यापार के लिए धन की आवश्यकता थी। लोगो को कम ब्याज पर रुपया मिलना बहुत ही कठिन काम था। इन कठिन परिस्थितियो में इस बैंक की स्थापना करने का श्रेय स्वर्गीय लाला तनसुखरायजी को है।

दिनांक २० सितम्बर, १९३९ को जैन भाइयो की एक साधारण सभा में स्वर्गीय लाला तनसुखरायजी की योजना को स्वीकार किया गया और जैन को-ओपरेटिव बैंक लि० नई दिल्ली के नाम से इस सहकारी सस्था की स्थापना हुई। यह खुशी की बात है कि लालाजी ने जिस पौध को लगाया था वह अब सुन्दर वृक्ष बन चुका है जिससे हम सभी लाभ उठा रहे है। अतः हम अपने सस्थापक प्रधान को उनके इस महान सेवा-कार्य के लिए अपनी श्रद्धाजलि अर्पित करते है।

पहले दिन इस बैंक के २१ सदस्य बने जिनके हिस्सो की पूंजी ५५६ रुपये थी। सहकारी विभाग की ओर से बैंक का रजिस्ट्रेशन १६-२-१९४० को स्वीकृत हुआ और लगभग दो साल की कोशिशो के बाद भी इसकी सदस्य सख्या ३९ तक ही पहुँची। इसके आठ वर्ष के पश्चात् भी बैंक की सदस्य सख्या १०१ से आगे न बढ़ सकी।

इस आन्दोलन तथा सस्था के प्रति जैन समाज मे एक नया विश्वास पैदा होने के कारण फिक्सड डिपोजिट की रकम मे अपूर्व वृद्धि हुई जब कि ३० जून, १९५९ तक फिक्सड डिपोजिट की जो रकम केवल २॥ हजार रुपये तक थी, वह बढते-बढते अब एक लाख २० हजार रुपये तक पहुँच चुकी है।

बैंक इस समय यद्यपि शहर के बीच मे है किन्तु दिल्ली की आबादियाँ दूर-दूर तक फैली होने के कारण सदस्यो को आने-जाने की बड़ी कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त ऐसे प्रश्न भी होते है जिन्हे स्थानीय व्यक्ति भली प्रकार हल कर सकते है। इसलिए हम इस सुझाव पर भी विचार कर रहे है कि नगर के विभिन्न क्षेत्रो मे बैंक की शाखाएँ और क्षेत्रीय समितियाँ बनाई जाएँ जिनसे निकट सम्पर्क बना रहे और आने-जाने की वर्तमान असुविधा भी दूर हो जाय।

इस बैंक द्वारा जनता का विशेष लाभ हो रहा है। मै इसके संस्थापक के प्रति अत्यन्त अनुगृहीत हूँ।

आध्यात्म और विज्ञान

श्री तनसुखराय जैन, दिल्ली

आध्यात्म प्रवाह

इस बीसवी शताब्दी के महान क्रान्तिकारी युग मे मानव समाज सुख-शान्ति-समृद्धि और आनन्द के स्थान पर विनाश, भय, स्वार्थ और ईर्ष्या के भयानक जलते हुए बारूद के विनाशकारी अग्निरूप पर्वत पर बैठा है। न मालूम किस समय अग्नि की जलती हुई चिनगारी उस बारूद के ढेर पर लग जाए और विनाश रूपी राक्षस का मुंह खुल जाए।

समस्त मानव जाति की सास्कृतिक धरोहर जो युगो से बडे सभाल और बलिदानों के बाद अब तक सुरक्षित रह सकी है वह किसी भी समय थोडे से कुरुचिमय प्रयत्न से विनाश के अग्निकुण्ड में समाप्त हो सकती है।

आज के विज्ञान ने मानव-जाति के हाथो मे विनाश की ऐसी शक्ति भस्मासुर के समान दे रक्खी है जो उसका विनाश करके शान्त हो सकती है। ऐसी भयानक परिस्थिति में मनुष्य को विवेक और आध्यात्मिक शक्ति के बल पर ही अपनी रक्षा करनी चाहिए। विज्ञान की मानव जाति को बड़ी आवश्यकता है। उसी प्रकार आध्यात्मिक शक्ति की। दोनो के मेल से मनुष्य सच्ची सुख-समृद्धि को प्राप्त कर सकता है। आध्यात्मिक शक्ति का उद्देश्य मनुष्य मे सद् प्रवृत्तियो को जगाना है, आध्यात्मिक गुणो का विकास करना है, उत्साह, आत्मविश्वास धैर्य, कर्तव्य-परायणता चरित्र-निर्माण और लोकसेवा की भावना उत्पन्न करना है। अन्याय के विरोध में शक्तिशाली मनोबल की आवश्यकता है। आत्मविश्वास जगाना है और मस्तिष्क में इस प्रकार के भाव जगाना है कि जो कुछ शक्ति हमे प्राप्त हुई है उसका सदुपयोग हो, दुरुपयोग न हो। सदुपयोग से विनाश से बच सकते है, सुख-समृद्धि की ओर बढ सकते है। एक-दूसरे के कार्यों मे सहायक हो सकते है। बिना आधारक के विज्ञान अपने आविष्कृत अस्त्र-शस्त्रो से समस्त मानव जाति को ध्वस करने के लिए समर्थ है। ज्योही मस्तिष्क में थोडी-सी प्रतिहिंसा की भावना उत्पन्न हुई त्योही मानव महास्वार्थी बनकर विध्वस करने के लिए तत्पर हो गया। इसलिए आवश्यक है कि वैज्ञानिक आविष्कारो का उपयोग सही ढग से हो। विध्वसकारी अस्त्र-शस्त्रो पर नियन्त्रण हो। विज्ञान का वास्तविक लाभ उठाया जाए। उसका उद्देश्य जनहित हो। यह कार्य अध्यात्म शक्ति के बल पर ही होगा। इसलिए विज्ञान और अध्यात्म का मेल हो। यह बात आचार्य विनोबा भावे जैसे मुनि भी पुकार-पुकार कर कह रहे है। और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के अध्यक्ष माननीय कोठारीजी से वैज्ञानिक अपने लेखो और भाषणो के द्वारा जन-साधारण को समझा रहे है। सामाजिक बुराइयो का अन्त अध्यात्म शक्ति से होगा। विकास और उत्थान का मार्ग विज्ञान से ही होगा। इसलिए लाला तनसुखरायजी ने एक आध्या- त्मिक समाज कायम करने की रूपरेखा बनाई-और उसका प्रचार किया परन्तु योग्य प्रचारको और कार्यकर्त्ताओ के अभाव मे इस समाज की स्थापना से जन साधारण को लाभ नही होगा। उनके विचार पठनीय और मननीय है।

यदि सच्चे अर्थो मे आध्यात्मिक जागरण हो और अध्यात्म शक्ति द्वारा मानव के सद्भाव और विवेक को एक सूत्र में पिरो दिया जाए तो हम निश्चय ही वर्तमान समाज से कही अधिक श्रेष्ठ और उत्तम समाज की स्थापना कर सकते हैं।

भौतिक विज्ञान के असीम उत्कर्ष और यान्त्रिक एव औद्योगिक सुधारो के प्रचण्ड विस्तार के बल पर पाश्चात्य सस्कृति हमे इस विनाश काल में भी यही भुलावा दे रही है कि मानव जाति पूर्ण समृद्धि के युग मे खडी है। इसमे सदेह नही है कि यान्त्रिक सस्कृति ने जिन शक्तियो को जन्म दिया है वे दोनो तरह की है। उत्कर्ष करने वाली और विध्वसक। यह सस्कृति जलती हुई मशाल अथवा धधकती अग्नि के समान है—मशाल मार्ग भी दर्शाती है और घरो मे आग भी लगाती है—सच तो यह है मशाल अथवा अग्नि का उपयोग करने वाले मानव पर यह दोनो कार्य निर्भर है। वैज्ञानिक सस्कृतिक का भी यही हाल है। मनुष्य की नैतिक बुद्धि तथा ज्ञान के नष्ट और भ्रष्ट होने से ही समूचे विश्व के समूल नष्ट होने की आशका पैदा हुई है। मानव की आत्मा मे दोष-पूर्ण प्रवृत्तियो की वजह से आज मानव-मानव के सम्बन्ध बिगड़े हुए है—क्या सामाजिक सम्बन्ध, क्या दैनिक जीवन के सम्बन्ध, क्या राष्ट्रो के बीच के सम्बन्ध—सभी दोषपूर्ण बने है। यह नितान्त आवश्यक है कि मानव अपनी आत्मा को शुद्ध करके और अपने मे परिवर्तन करके सामाजिक, दैनिक तथा राष्ट्रीय सम्बन्धो मे भी सुधार करे, क्योकि विश्व के सब प्रकार के सम्बन्धो का जन्म आत्मा से ही होता है—व्यक्ति ही उनका कारण है। कुछ व्यक्ति ही दल, वर्ग-सगठन, या पक्ष-सगठन करके राजनैतिक सत्ता हस्तगत करते है, समाज पर नियत्रण रखते है और सत्ता के लिए स्पर्द्धा की राजनीति को जन्म देते हुए वास्तविक जन-कल्याण के मार्ग मे बाधा डालते है—अतएव आध्यात्मिक शक्तियो का आह्वान करने वाली सद्प्रवृत्तियाँ ही भविष्य के प्रलयकारी सघर्ष से मनुष्य को मुक्त करा सकती हैं।

इसी अध्यात्म धारा को प्रवाहित करने के लिए अध्यात्म समाज की स्थापना हुई है। इस मच से आध्यात्मिक विचारो का प्रचार करने मे हम सबके सहयोग की अपेक्षा करते है।

अध्यात्म समाज

(१) उसकी सद्भाव और विवेक की उच्चतम भावना का विकास किया जाए, तो कोई कारण नही है हम वर्तमान समाज की अपेक्षा एक अच्छे और उच्च समाज की रचना न कर सकें।

(२) यदि सच्चे अर्थो में राष्ट्रीय जागरण तो मनुष्य मे अध्यात्म भाव जगाकर।

मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ। ज्ञानदर्शन वाला हूँ। परमाणुमात्र भी मेरा नही है। मैं सप्त प्रकार के भय से निर्मुक्त हूँ। सम्यग्दृष्टि जीव निर्भय और निशक होता है। शुद्ध आत्मज्ञान का अभिलाषी पुरुष बडा आत्म-विश्वासी, सरल-हृदय, कर्त्तव्य-परायण और अपने पर का कल्याण करने वाला होता है। उसे भौतिक ऐश्वर्य मोह मे नही डाल सकते। सोने-चादी के टुकड़े उसे रचमात्र में प्रलोभन नही दे सकते। उसके सामने शुद्ध आत्मतत्व की प्राप्ति का लक्ष्य होता है।

परिकल्पना

१ चिन्तन और आस्था का युग।

२ आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत निष्ठावान मानव।

३. करुणा, त्याग तथा कर्त्तव्यपरायणता की भावना से युक्त मानव।

४. सेवा और परस्पर सहयोग का भाव।

५. विकृति की भावनाओं के स्थान पर सुकृति के भावो की विजय।

नव-निर्माण के चार पथ

१. दैनिक जीवन में अपने-अपने अहंकार की संतुष्टि के लिए स्वार्थ के संघर्ष का अन्त।

२. सात्विक प्रवृत्तियों के प्रस्फुरण के लिए सहयोगमूलक अर्थ-व्यवस्था की स्थापना।

३. सत्ता के स्थान पर सेवा का मार्ग।

४. शुद्ध और सात्विक जीवन और विचारों द्वारा परस्पर सहयोग तथा सेवाभाव का जागरण।

आध्यात्मिक शक्ति के सहारे क्या हो सकता है ?

१. आध्यात्मिक मान्यताओं की शक्ति समाज की भौतिक प्रवृत्तियों पर अधिकार पाकर मानव समाज को सुखी और समृद्ध बना सकती है।

२. अनेक परिवर्त्तनों के बावजूद आध्यात्मिक भावनाएँ युगों तक अपनी प्रभुता कायम रख कर मनुष्य को विवेकशील और निष्ठावान बना सकती हैं।

३. सादा जीवन और नैतिकता मनुष्य को समस्त क्षुद्र स्वार्थों से ऊपर उठाकर राष्ट्र और समाज के लिए अधिक से अधिक उपयोगी बना सकता है।

४. करुणा, सहिष्णुता तथा समस्त जीवों पर दयाभाव मनुष्य को देश और समाज के लिए रचनात्मक कार्यों की ओर प्रवृत्त कर सकता है।

५. कर्त्तव्यपरायण, निष्ठावान, विवेकशील और आध्यात्मिक भावनाओं से युक्त मानव से ही अहिंसात्मक और सहयोगी समाज की स्थापना हो सकती है।

क्या नहीं हो सकता ?

१. परम्परा के सम्पूर्ण विनाश से नवनिर्माण नहीं हो सकता।

२. क्षुद्र अहं और स्वार्थों के संघर्ष में सुखी और समृद्ध समाज की स्थापना नहीं हो सकती।

३. भौतिकवाद मनुष्य को रचनात्मक कार्य की ओर प्रवृत्त नहीं कर सकता।

४. विज्ञान की दी हुई क्रूरता मनुष्य को परस्पर सेवा तथा सहयोग के मार्ग पर नहीं ले जा सकती।

५. करुणा और सहिष्णुता के अभाव में एक सुखी और समृद्ध समाज की स्थापना नहीं हो सकती।

क्या हो सकता है ?

१. आध्यात्मिक अथवा वैचारिक स्थिर मूल्यों की शक्ति समाज की भौतिक प्रवृत्तियों पर अधिकार पाकर मानव समाज को सुखी और समृद्ध बना सकती है।

२. अनेक परिवर्तनों के बावजूद आध्यात्मिक मान्यताएँ युगों तक अपनी प्रभुता कायम रख कर मनुष्य को विवेकशील और निष्ठावान बना सकती हैं।

उसकी वास्तविक उपलब्धि विनय, श्रम और साधना से प्राप्त होती है। प्राचीन भारत में आचार्य शिष्यो के लिए दीक्षात के समय अमूल्य लाभकारी उपदेश देते थे। 'तैत्तिरीयोपनिषद' के अनुशासन मे इसी श्रेयबुद्धि निषेधविहीन विधायक के सकल्प का उदात्त स्वर है। इस उपदेश के पढने से छात्रो में पूज्यबुद्धि और शिवसकल्प जागे, राष्ट्र, मानवता उनके पुरुषार्थ से लाभान्वित हो और वे स्वय जीवन की सर्वोच्च सार्थकता उपार्जित करें।

दीक्षांत के समय शिष्यों को आचार्य का उपदेश

सत्यं वद : धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमद।
सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्।
कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्।
स्वाध्याय-प्रवचनाभ्या न प्रमदितव्यम्।
मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव।
अतिथि देवो भव। राष्ट्रदेवो भव।
यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि।
नो इतराणि। यान्यस्माक सुचरितानि।
तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।
श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया देयम्। श्रिया देयम्।
ह्रिया देयम्। भिया देयम्। सविदा देयम्। अथ।
यदि ते कर्म विचिकित्सा वा वृत्तविचिकित्सा।
वा स्यात्। ये तत्र ब्राह्मणा समर्शिन.।
युक्ता आयुक्ता। अलूक्षा धर्मकामा स्यु।
यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथा.।
एष आदेश। एप उपदेश.। एपा
वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्।
एवमुपासितव्यम्। एवमुचैतदुपास्यम्।
भो. स्नातका. एवम् एतत् मनसि।
दृढे निधाय युप्माभि सदा सच्छीले।
समुदाचारे च वर्तितव्यम्।

सत्य बोलो। धर्म का आचरण करो। स्वाध्याय मे प्रमाद मत करो। सत्य की उपेक्षा मत करो। धर्म की उपेक्षा मत करो। कल्याण और कुशलता की उपेक्षा मत करो। समृद्धि की

उपेक्षा मत करो। ज्ञान को ग्रहण करने और अन्यो को ज्ञान का दान करने मे प्रमाद मत करो।

माता को देवता समझो। पिता को देवता समझो। आचार्य को देवता समझो। अतिथि को देवता समझो। राष्ट्र को देवता समझो।

जो अच्छे कर्म है उन्ही का सेवन करो, अन्यो का नही। हमारे जो आचरण तुम्हे अनिंद्य लगते हो उन्ही का अनुकरण करो, अन्यो का नही।

श्रद्धापूर्वक दान दो। अश्रद्धा से दान मत दो। सम्पत्ति के अनुसार दान दो। शालीनता और लज्जापूर्वक दान दो। भय से दान दो। सहानुभूति से दान दो।

और यदि तुम्हे कभी कर्म के सम्बन्ध में सन्देह हो, या आचरण के सम्बन्ध में सन्देह हो, तो जो विचारशील, न्यायपरायण, योग्य, निष्ठावान, सहृदय, धर्मप्रेमी ब्राह्मण हो, विशिष्ट प्रसंग में वे जैसा आचरण करे उस प्रसंग में तुम भी वैसा ही आचरण करो।

यही आदेश है। यही उपदेश है। यही वेद और उपनिषद है। यही सीख है।

इस प्रकार साधना करो। इसी प्रकार साधना करो। ओ स्नातको, इसे अपने मन मे दृढ़तापूर्वक धारणा करो और सदैव सदाचार और सद्व्यवहार का आचरण करो।

राणाप्रताप और भामाशाह

स्व० फलचन्द पुष्पेन्दु

भारतभूमि में त्याग और नि.स्वार्थ भावना से कार्य करने को विशेष महत्व दिया है इसलिए हमारे देश में दानवीर और लोकसेवी पुरुषो का विशेष सम्मान किया जाता है।

महाराणा प्रताप और देशभक्त भामाशाह का युवको के हृदय में विशेष मान है क्योकि दोनो ने मातृभूमि के रक्षा के लिए अगणित कठिनाइयाँ उठायी। उनका आदर्श सदैव भारतीयो को मार्गदर्शन करता रहेगा। उदीयमान युवक पुष्पेन्दु की यह कविता अत्यत रोचक और नवयुवको के लिए मार्गदर्शक है। खेद है कि यह कला असमय मे ही कुम्हला गई। उनकी कविता उनकी स्मृति सदैव याद दिलाती रहेगी।

कहता हूँ कहानी कि एक देशभक्त की,
राणा प्रतापसिंह व अकबर के वक्त की।
जिसने रखी थी लाज भारतीय रक्त की,
जिसने अशक्त-सी स्वतन्त्रता सशक्त की॥

वीरो में वीर भामाशाह दानवीर था,
राणा प्रतापसिंह का बूढ़ा वजीर था॥

ताजिंदगी जिसने न मनाई थी दिवाली,
दुश्मन से खेलता रहा जो खून की होली।
ऐसे प्रतापसिंह की दुखपूर्ण जिन्दगी,
झोंकी गई थी आग में या मौत मे पगी॥

पर मातृभूमि के लिए, मेवाड़ के लिए,
वर्बाद था आरावली पहाड़ के लिए ।।

राणा प्रताप के तो मुट्ठी भर जवान थे,
दुश्मन तथा गद्दार जमी आसमान थे ।
दुर्भाग्य से सेना की रसद भी समाप्त थी,
चहुँ ओर निराशा-ही-निराशा व्याप्त थी ।।
लगता था मातृभूमि पर हो जायगा कब्जा,
सबने कहा प्रताप जा दुश्मन को सर झुका ।।

संकट के समय जैन ऐन वक्त पै आया,
आकर प्रतापसिंह को निज शीश झुकाया ।
सोना व रजत-रत्न का वह ढेर लगाया,
जिससे प्रताप ने कि शत्रु मार भगाया ।।
वीरो मे वीर भामाशाह दानवीर था,
राणा प्रतापसिंह का बूढा वजीर था ।।

तादादे-जायदाद का सुनियेगा हाल तक,
चलती कुमुक उसी से ठीक बारह साल तक ।
होती रसद पच्चीस हजार फौज के लिए,
जट्टों व गूजरो हितार्थ—मौज के लिए ।।
वीरो में वीर भामाशाह दानवीर था,
राणा प्रतापसिंह का बूढा वजीर था ।।

दुहरा रहा इतिहास आज हू-ब-हू गाथा,
झुक-झुक रहा राष्ट्रीयता के वास्ते माथा ।
सीमा का हर जवान अब राणा प्रताप है,
बेटा हरएक हिन्द का दुश्मन का बाप है ।।
देंगे लहू हिमालया पहाड के लिए,
उजड़ें स्वय कि चीन के उजाड़ के लिए ।।

अंगार भी बरसाएगे, बरसाएंगे सोना,
पत्थर पै पटक दें चलो चीनी का खिलौना ।
बारूद बने ओढ़नी बारूद बिछौना,
सोकर जगा है देश का प्रत्येक ही कोना ।।
सोना बरस रहा है गरीबोअमीर से,
निश्चित बचेगा राष्ट्र सिर्फ दानवीर से ।।

★ ★ ★ ★

भारतीय एकत्व की भावना

ब्योहार राजेन्द्र सिंह
सेठियाकुंज, जबलपुर

भारतीय एकत्व की भावना का आधार एक ब्रह्म की भावना है जोकि सब जगत में व्याप्त है। इसी के अंश रूप सारे जगत् के प्राणी है। वह सारा जगत् उसी एक ब्रह्म का विस्तृत रूप है। भिन्न-भिन्न देव उसी एक तत्व के विभिन्न रूप हैं। ऋग्वेद मे इस भावना के समर्थन मे अनेक मंत्र मिलते है :—

एक एवाग्नि बहुधा समिद्ध एक सूर्यो विश्व अनु प्रभूव ।
एकैवोषा सर्वम् इद विभात्येकंवा इद वि बभूव सर्वम् ॥
(८।५।८।२)

इसी का समर्थन हमे उपनिषदो में भी मिलता है जिनमें कहा गया है कि एक ही देव अनेक वर्ण होकर बहुत शक्तियो के योग से अनेक रूप हो जाता है :—

एँको वर्णो बहुधा शक्ति योगात् ।
वर्णाननेकान्त् निहितार्थौं दधाति ॥

आगे चलकर इतिहास और पुराणो ने इसी भावना को लेकर शिव, विष्णु आदि देवताओ की एकता का प्रतिपादन किया तथा प्राणी मात्र की एकता की स्थापना की। कर्मों के विभाग के आधार पर वर्णो का विभाजन हुआ किन्तु उनकी एकता पर ही समाज आधारित रहा। महाभारत मे एक स्थान पर कहा गया है कि सभी वर्ण ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण ही है।

सर्वे वर्णब्राह्मणा ब्रह्मजाश्च ।

भागवत धर्म के उदय होने पर भी उसी को और आगे बढाया गया। ईश्वर के एक नाम के आधार पर उसके सभी उपासको और जातियो की एकता का प्रतिपादन किया —

किरातहूपान्धपुलिन्द वुल्कसा आभीरुकथा यवना खसादय ।
चेत्वे च पापा मदुपाश्रयाश्रया शुध्यन्ति तस्मै ".भविषणेक्तिम ।

पुराणो मे समग्र देश की एकता की भावना भी विकसित हुई। वैसे तो उसका मूल्य हमें ऋग्वेद के पृथ्वी सूक्त मे मिलता है जिसमे कहा गया है कि यह भूमि हमारी माता है और हम उसके पुत्र है :—

माता भूमि पुत्रो अह प्रथिव्या. ।

किन्तु भारत देश का स्पष्ट नाम पुराणो मे ही मिलता है। विष्णुपुराण मे इस देश की प्रशंसा करते हुए कहा गया है कि हे भारत भूमि तुम धन्य हो—इस प्रकार देवता भी गीत गाते है —

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्याऽस्तुते भारत भूमिभागे।

इसी प्रकार महाभारत मे भी भारत भूमि का उल्लेख आया है। उत्तर मे हिमालय और पूर्व-पश्चिम मे समुद्रो से घिरी हुई भारत भूमि की कल्पना बहुत पहले से एकता की भावना की पुष्टि करती आ रही हैं। पुराणो मे जिन सम्राटो का वर्णन है वे हिमालय से लेकर सिन्धु तट तक दिग्विजय करके समस्त भारत पर अपना राज्य स्थापित करते थे। कालिदास ने भी ऐसे सम्राटो का वर्णन किया है जोकि समुद्र तक पृथ्वी पर राज्य करते थे —

आ समुद्र क्षितीसता रघूणाम् रघुवश ।

वैसे वेदो मे भी राजसूय यज्ञ के अवसर पर यही कामना की जाती है कि हम हिमालय से लेकर समुद्र पर्यन्त पृथ्वी के एकछत्र सम्राट् है। इस प्रकार समग्र देश की एक ही भावना की परम्परा बहुत प्राचीन काल से हमारे धर्म की अगभूत होकर चली आती है। हम भारत की किसी भी नदी मे स्नान करें किन्तु भारत की सभी प्रमुख नदियो का नाम स्मरण कर उन सबका जल उसमे सम्मिलित किया जाता है और एक मन्त्र पढा जाता है —

गगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वती।
नर्मदेसिंधु कावेरी चले स्मिन् सन्निधिम कुरु ॥

इसी प्रकार देश के सप्त पर्वतो और सप्त महापुरियो का स्मरण किया जाता है— अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका। यह प्रथा भी हमारी राष्ट्रीय एकता को सिद्ध करती है कि राज्याभिषेक के समय भारत की सभी पवित्र नदियो का जल मगाकर उनसे राजा का अभिषेक किया जाता था। महाभारत और रामायण मे उल्लेख है कि रामचन्द्रजी के तथा युधिष्ठिर के अभिषेक के लिये सभी पवित्र नदियो का जल मगाया गया था। उस समय समस्त भारत के राजाओ को निमन्त्रित किया गया था—

प्राच्येदीच्या प्रतीच्याश्च दाक्षिणत्माश्च भूमिपा ।
म्लेच्छाश्चायश्चिये चान्ये वन शैल निवासिन ।

(रामायण, अयोध्या० ३-२५)

इसका उल्लेख रामचरितमानस मे भी आया है कि जब चित्रकूट मे रामचन्द्रजी ने राज्य स्वीकार नही किया तब भरतजी ने पूछा कि उस जल का क्या किया जावे—

देव देव अभिषेक हित गुरु अनुसासनु पाइ ।
आनेउ सब तीरथ सलिलु तेहि कह काह रजाइ ॥

गुरु की आज्ञा से वह जल कूप मे रखा गया—

भरत कूप अब कहिहहिं लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा ॥

मध्यकाल मे भारत की एकता खंडित हो कर वह विभिन्न राज्यो मे विभक्त हो गया। उस समय आपसी मतभेद के कारण हमारे देश की एकता छिन्न-भिन्न हो गयी। उस समय भी एकता के उपासक हमारे कवियो ने अपने देश की एकता का बोध कराके उसे फिर से स्थापित

किया। वीरगाथा-काल में भी पृथ्वीराज को उल्लास दिखाने वाले महाकवि चन्दरबरदाई, मध्यकाल में गोस्वामी तुलसीदास तथा अन्त मे महाकवि भूषण की देश की एकता की भावना सबसे अधिक मुखरित हुई है। चन्दरबरदाई ने अनेक स्थानो पर "पृथ्वीराज रासो" में हिन्दुस्तान का उल्लेख कर उसकी एकता जागृत की है।

गो० तुलसीदासजी ने रामचरितमानस मे जन्मभूमि की महिमा का वर्णन किया है :—

जन्म भूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिशि सरयू बह पावनि ॥
अति प्रिय मोहिं यहा के वासी। मम धामदा पुरी सुखरासी ॥

"विनयपत्रिका" और "कवितावली" में तो स्पष्ट रूप से उन्होने भारत भूमि मे जन्म होने का अभिमान प्रगट किया है—

यह भारत खड पुनीत सुरसरि थल भलो सगति भली।
तेरी कुमति काचर कल्प बल्ली चहति है विष कल फली ॥
(विनय पत्रिका)

भक्ति भारत भूमि भले कुलजन्म समाज शरीर भलो लहिके। आदि
(कवितावली)

इसी प्रकार भूषण ने हिन्दू धर्म और हिन्दुस्तान का उल्लेख कर शिवाजी को उत्साह दिलाया था। सत कवियो को देश की एकता का बोध तो उतना नही था जितना कि उसमे निवास करने वाले जातियो और धर्मो की एकता का बोध था। कबीरदास और नानक आदि कवियो ने धर्मों की एकता के लिए बहुत बडा काम किया। गुरु नानक ने एक स्थान पर कहा है—

हिन्दू तुरुक कहां ते आए किनि एह राम चलाई।
दिल महि सोच विचार कवादे भिसक दोजख किति पाई ॥

दादूदयाल ने एकता का प्रतिपादन करते हुए कहा है—

दूनो भाई नैन हैं दूनो भाई कान। दूनो भाई बैन हैं हिन्दू मुसलमान ॥

कबीरदास ने तो एक ईश्वर की एकता के आधार पर सब वर्णो और जातियो की एकता स्थापित की —

एक देव एक मल मूतर एक चाप एक गूदा।
एक ज्योति ते सब जग उपजा को बाह्मन को सूदा ॥

अंग्रेजी राज्य की स्थापना से हमारे देश की पराधीनता पूर्ण हुई किन्तु देश एक राज-छत्र के अन्तर्गत आया। विदेशी राज्य के साथ विदेशी राष्ट्रीयता भी हमारे देश में आई और उससे प्रेरित होकर हमारे नेताओ ने विदेशी राज्य के विरुद्ध आन्दोलन प्रारम्भ किये। इनके साथ ही अपने देश की दुर्दशा पर कवियो का ध्यान आकर्षित हुआ। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने सबसे पहले भारत की दुर्दशा पर आंसू बहाये —

आवहु सब मिलकर रोवहु भारत भाई।
हा हा भारत दुर्दशा न देखी जाई॥
(भारत दुर्दशा)

इस समय के अन्य कवियो ने भी राष्ट्रीय एकता की ज्योति जगाई। सर्वश्री बालमुकुन्द गुप्त तथा प्रतापनारायण मिश्र ने भी इस ज्योति के जागरण मे योगदान दिया। बाद में उसी परम्परा को श्री मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिह उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी तथा श्रीधर पाठक ने देशात्म बोध की कविताएँ लिखकर देश का ध्यान उसकी एकता और अखण्डता के प्रति आकर्षित किया—

नीलाम्बर परिधान हरित पट यह सुन्दर है।
सूर्य चन्द्र युग मुकुट मेखला रत्नाकर है।
नदियाँ प्रेम प्रवाह फूल तारे मडन हैं।
बदी जन खग वृन्द शेषफन सिहासन है।
करते अभिषेक पयोद हैं बलिहारी इस देश की।
हे मातृभूमि तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की॥

त्रिशूलजी की कविताओ ने भी राष्ट्रीयता की लहर वहा दी —

सुरसरि सलिलसुधा से सिंचित मलय समीर सजारिन।
सुषमा सब सुरपुर की सजिल करते सुर गुणगान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान॥
पुण्य पु ज पावन पृथ्वी पर धीर वीरवर धर्म्म धुरन्धर।
सत्य अहिंसा दया सरोवर मुक्ति मुक्ति की खान।
जयति भारत जय हिन्दुस्तान॥

वर्तमान युग मे राष्ट्रीयता की भावना सबसे पहले बगाल मे उदित हुई क्योकि वही विदेशी राज्य का सबसे अधिक प्रभाव पडा था। श्री बकिमचन्द्र के "आनन्द मठ" उपन्यास में ही हमारे राष्ट्रीय गीत वन्देमातरम् का उद्घोष हुआ था। उसमे उन्होने कहा था —

द्विंत्रिश कोटि कठ कल कल निनाद कराले।

ज्यो-ज्यो राष्ट्रीयता की भावना बढी इसका रूप हो गया —

त्रिंश कोटि कठ कल कल निनाद कराले।

श्री द्विजेन्द्रलाल राय ने अपने नाटको मे राष्ट्रीयता से भरे गीतो को पिरोया। उन्होने एक गीत में गाया है :—

बग आभार जननि आभार धात्री आभार देश।

आगे चल कर वह गीत इस रूप मे बदल गया :—

भारत आभार जननि आभार धात्री आभार देश।

उनके गीतों मे सम्पूर्ण भारत की एकता की भावना मुखरित हुई —

जे दिन सुनील जलधि होई ते उठिले जननी भारतवर्ष।
उठिल विश्वेसे कि कलरव से कि मा भक्ति से कि मा हर्ष।

श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविताओ मे राष्ट्रीय एकता की भावना और अधिक स्पष्ट और गहन हो उठी है :—

मातृ मन्दिर पुण्य अगन कर महोज्ज्वल आज है।
जय नरोत्तम पुरुष सत्य जय तपरूपी राज है।

उन्होने उसी गीत मे समग्र भारतवासियो को आह्वान किया :—

ऐश दुर्जय शक्ति सम्पद मुक्त बंध समाज है।
ऐश ज्ञानी ऐश कर्मी नाश भारत लाज है ॥

आगे चलकर भारत के वीर धर्म को भी जाग्रत किया .—

ऐश तेज: सूर्य उज्ज्वल कीर्ति अन्तर माझ है।
वीर धर्म पुण्य कर्म विश्व हृदये राज है॥

एक दूसरे गीत में उन्होने भारत की भेरी सारे ससार में बजाने का आह्वान किया है :—

देश देश नन्दित करि मन्द्रित तव भेरी।
आसिल सब वीर वृन्द आसन तव घेरी॥

भारत की सब जातियों और प्रान्तों की एकता की भावना हमारे राष्ट्र-गीतो मे "जनमन" मे जितनी प्रबल है उतनी कही नही।

जुग जुग तव आह्वान प्रचरित सुन उदार तव वाणी।
हिन्दू बौद्ध सिक्ख जैन पारसिक मुसलमान क्रिस्टानो॥
पूरब पश्चिम आसे। तव सिहासन पासे।

उन्होने 'मानव तीर्थ' नामक कविता मे माता के अभिषेक के लिए सभी देशवासियो को एकत्व होने का आह्वान किया गया है .—

आओ ब्राह्मण श्रुतिकर निजमान गहो सभी का हाथ।
आओ पातित हटाओ सबही तव अपमान अश्राद्य॥

मम अभिषेके करो तुम त्वारा,
मंगल घट यह धरा है भरा।

सकल स्पर्श से पुनीत करके तीर्थ सुनीरे,
भारत मानव सागर तट के निर्मल तीरे-तीरे।

हे मम चित्त पुण्य सुतीर्थ मे जागो धीरे धीरे।
भारत मानव सागर तट के निर्मल तीरे तीरे॥
अहो आर्य जन हे अनार्य गण हिन्दू हे मुसलमान।
आओ आओ हे अंग्रेजों आओ हे क्रिस्तान॥

इस प्रकार भारत की राष्ट्रीय एकता की वाणी युग-युग से मुखरित होती चली आ रही है, आज भी मुखरित हो रही है और युगान्त तक मुखरित होती रहेगी।

❋ ❋ ❋

मेवाड़ोद्धारक भामाशाह

श्री अयोध्याप्रसादजी गोयलीय
डालमियानगर, बिहार

"स्वाधीनता की लीलास्थली वीरप्रसवा मेवाड़-भूमि के इतिहास में भामाशाह का नाम स्वर्णाक्षरो में अंकित है। जब वीरकेशरी राणा प्रताप निराश होकर सिन्ध की ओर जाने लगे तो भामाशाह ने अगणित सम्पत्ति राणा के चरणो मे लाकर अर्पित कर देश-भक्ति का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। भामाशाह के इस अपूर्व त्याग के कारण मेवाड़ भूमि का उद्धार हुआ इसलिए आज भी भामाशाह मेवाड़ोद्धारक के नाम से प्रसिद्ध है। लेखनी के धनी श्री अयोध्या-प्रसादजी गोयलीय ने बहुत ही सुन्दर ढग से भामाशाह का चरित्र प्रस्तुत किया है। भामाशाह का त्यागपूर्ण आदर्श देश के सकट के समय मे हम सबके लिए अनुकरणीय है।"

स्वाधीनता की लीलास्थली वीर-प्रसवा मेवाड़-भूमि के इतिहास मे भामाशाह का नाम स्वर्णाक्षरो मे अंकित है। हल्दीघाटी का युद्ध कैसा भयानक हुआ, यह पाठको ने मेवाड़ के इतिहास मे पढा होगा। इसी युद्ध मे राणा प्रताप की ओर से वीर भामाशाह और उसका भाई ताराचन्द भी लडा था। २१ हजार राजपूतो ने असंख्य यवन-सेना के साथ युद्ध करके स्वतंत्रता की वेदी पर अपने प्राणो की आहुति दे दी, किन्तु दुर्भाग्य कि वे मेवाड को यवनो द्वारा पददलित होने से न बचा सके। समस्त मेवाड़ पर यवनो का आतक छा गया। युद्ध-परित्याग करने पर राणाप्रताप मेवाड़ का पुनरुद्धार करने की प्रबल आकाक्षा को लिए हुए वीरान जगलो मे भटकते फिरते थे। उनके ऐशो-आराम मे पलने योग्य बच्चे भोजन के लिए उनके चारो तरफ रोते रहते थे। उनके रहने के लिए कोई सुरक्षित स्थान न था। अत्याचारी मुगलो के आक्रमणो के कारण बना बनाया भोजन राणाजी को सात बार छोडना पडा था। इतने पर भी आन पर मर मिटने वाले समर-केसरी प्रताप विच-लित नही हुए। वह अपने पुत्रो और सम्बन्धियो को प्रसन्नतापूर्वक रणक्षेत्र में अपने साथ रहते हुए देखकर यही कहा करते थे कि राजपूतो का जन्म ही इसीलिए होता है। परन्तु उस पर्वत-जैसे स्थिर मनुष्य को भी आपत्तियो के तीव्र थपेड़ों ने विचलित कर दिया। एक समय जंगली अन्न के आटे की रोटियाँ बनाई गई, और प्रत्येक के भाग मे एक-एक रोटी—आधी उस समय के लिए और आधी दूसरे समय के लिए—आई। राणा प्रताप राजनैतिक पेचीदा उलझनों को

सुलझाने मे व्यस्त थे, मातृभूमि की परतन्त्रता के दुख से दुखी होकर गर्म निश्वास छोड़ रहे थे कि इतने मे लड़की के हृदयभेदी चीत्कार ने उन्हे चौका दिया। बात यह हुई कि एक जगली बिल्ली लड़की की रक्खी हुई रोटी उठा ले गई जिससे मारे भूख के वह चिल्लाने लगी। ऐसी-ऐसी अनेक आपत्तियो से घिरे हुए, शत्रु के प्रवाह को रोकने में असमर्थ होने के कारण, वीर चूडामणि प्रताप मेवाड़ छोडने को जब उद्यत हुए तब भामाशाह राणाजी के स्वदेश निर्वासन के विचार को सुनकर रो उठा।

हल्दीघाटी के युद्ध के बाद भामाशाह कुम्भलमेर की प्रजा को लेकर मालवे मे रामपुर की ओर चला गया था, वहा भामाशाह और उसके भाई ताराचन्द ने मालवे पर चढाई करके २५ लाख रुपये तथा २० हजार अशर्फियाँ दण्डस्वरूप वसूल की। इस सकट-अवस्था मे उस वीर ने देशभक्ति तथा स्वामिभक्ति से प्रेरित होकर, कर्नल जैम्स टाड के कथनानुसार, राणा प्रताप को जो धन भेट किया था वह इतना था कि २५ हजार सैनिको का १२ वर्ष तक निर्वाह हो सकता था। भामाशाह के इस अपूर्व त्याग के सम्बन्ध मे भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रजी ने लिखा है :—

जा धन के हित नारि तजै पति, पूत तजै पितु शीलहि सोई।
भाई सो भाई लरै रिपु से पुनि, मित्रता मित्र तजै दुख जोई।
ता धन को बनियाँ है गिन्यो न, दियो दुख देश के आरत होई।
स्वारथ आर्य तुम्हारी ई है, तुमरे सम और न या जग कोई॥

देशभक्त भामाशाह का यह कैसा अपूर्व स्वार्थत्याग है। जिस धन के लिए औरगजेब ने अपने पिता को कैद कर लिया, अपने भाई को निर्दयतापूर्वक मरवा डाला, जिस धन के लिए बनवीर ने अपने भतीजे—मेवाड़ के उत्तराधिकारी बालक उदयसिह—को मरवा डालने के अनेक प्रयत्न किये, जिस धन के लिए मारवाड के कई राजाओ ने अपने पिता और भाइयो का सहार किया, जिस धन के लिए लोगो ने मान बेचा, धर्म बेचा, कुल-गौरव बेचा साथ ही देश की स्वतत्रता बेची, वही धन भामाशाह ने देशोद्धार के लिए प्रताप को अर्पण कर दिया। भामाशाह का यह अनोखा त्याग धन-लोलुप मनुष्यो की बलात् आँखे खोलकर उन्हे देश-भक्ति का पाठ पढ़ाता है।

भामाशाह का जन्म कावडया सज्ञक ओसवाल जैन कुल में हुआ था। इनके पिता का नाम भारमल था। महाराणा सागा ने भारमल को वि० स० १६१० ई० स० १५५३ में अलवर से बुलाकर रणथम्भौर का किलेदार नियत किया था। पीछे से जब हाड़ा सूरजमल बूँदवाला वहा का किलेदार नियत हुआ, उस समय भी बहुत-सा काम भारमल के ही हाथ मे था। वह महाराणा उदयसिंह के प्रधान पद पर प्रतिष्ठित था। भारमल के स्वर्गवास होने पर राणा प्रताप ने भामाशाह को अपना मन्त्री नियत किया था। हल्दीघाटी के युद्ध के बाद जब भामाशाह मालवे की ओर चला गया था तब उसकी अनुपस्थिति मे रामा सहाणी महाराणा के प्रधान का कार्य करने लगा था। भामाशाह के आने पर रामा ने प्रधान का कार्य-भार लेकर पुनः भामाशाह को सौप दिया। उसी समय किसी कवि का कहा गया प्राचीन पद्य इस प्रकार है —

भामौ परधानो करे, रामौ कीधो रद्द।

भामाशाह के दिए हुए रुपयो का सहारा पाकर राणा प्रताप ने फिर बिखरी हुई शक्ति को बटोर कर रण-भेरी वजादी जिसे सुनते ही शत्रुओ के हृदय दहल गए, कायरों के प्राण-पखेरू उड गए, अकबर के होश-हवास जाते रहे। राणाजी और वीर भामाशाह अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित होकर जगह्-जगह् आक्रमण करते हुए यवनो द्वारा विजित मेवाड़ को पुनः अपने अधिकार मे करने लगे। प० झावरमल्लजी शर्मा सम्पादक दैनिक 'हिन्दू ससार' ने लिखा है :—

"इन धावो मे भी भामाशाह् की वीरता के हाथ देखने का महाराणा को खूब अवसर मिला और उससे वडे प्रसन्न हुए। महाराणा ने भामाशाह् के भाई ताराचन्द को मालवे भेज दिया था, उसे शहवाजखां ने जा घेरा। ताराचन्द उसके साथ वीरता से लडाई करता हुआ बसी के पास पहुँचा और वहा घायल होने के कारण वेहोश होकर गिर पड़ा। बसी का राव साईंदास नेवड़ा घायल ताराचन्द को उठाकर अपने किले मे ले गया और वहां उसकी अच्छी परिचर्या की। इसी प्रकार महाराणा अपने प्रवल पराक्रान्त वीरो की सहायता से वरावर आक्रमण करते रहे और सवत् १६४३ तक उनका चित्तौड़ और माण्डलगढ़ को छोडकर समस्त मेवाड़ पर फिर से अधिकार हो गया। इस विजय मे महाराणा की साहस प्रधान वीरता के साथ भामाशाह् की उदार सहायता और राजपूत सैनिको का आत्म-बलिदान ही मुख्य कारण था। आज भामाशाह् नही हैं किन्तु उनकी उदारता का वखान सर्वत्र वडे गौरव के साथ किया जाता है।"

प्राय साढे तीन सौ वर्ष होने को आये,—भामाशाह् के वंशज आज भी भामाशाह् के नाम पर सम्मान पा रहे है। मेवाड़ की राजधानी उदयपुर मे भामाशाह् के वशज को पंचायत और अन्य विशेष उपलक्षो में सर्वप्रथम गौरव दिया जाता है। समय के उलट-फेर अथवा कालचक्र की महिमा से भामाशाह् के वशज आज मेवाड़ के दीवान-पद पर नही है और न धन का बल ही उनके पास रह गया है। इसलिये धन की पूजा के इस दुर्घट समय मे उनकी प्रधानता, धन-शक्ति-सम्पन्न उनकी जाति-बिरादरी के अन्य लोगो को अखरती है। किन्तु उनके पुण्यश्लोक पूर्वज भामाशाह् के नाम का गौरव ही ढाल बनकर उनकी रक्षा कर रहा है। भामाशाह् के वंशजो की परम्परागत प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए सवत् १६१२ में तत्सामयिक उदयपुराधीश महाराणा सरूपसिंह् को एक आज्ञापत्र निकालना पड़ा था जिसकी नकल ज्यो की त्यों इस प्रकार है :—

'श्री रामोजयति

श्री गणेशजीप्रसादात् श्रीएकलिंगजी प्रसादात्

भाले का निशान (सही)

स्वस्तिश्री उदयपुर सुभसुथाने महाराजाधिराज महाराणाजी श्री सरूपसिंघ जी आदेशात् कावडया जैचन्द कुनणे वीरचन्दकस्य अप्र थारा वडा वासा भामो कावड्यो ई राजम्हे सामध्रकासु काम चाकरी करी जी की मरजाद ठुठसुइया है म्हाजना की जातम्हे बावनी त्था चौका को जीमण वा सीग पूजा होवे जीम्हे यह् लथ पहेली तलक थारे होती हो सो अगला नगर सेठ वेणीदास करसो कर्यो अर वेदर्याफ्त तलक थारे नही करवा दीदो अबारू थारी सालसी दीखी सो नगे करी अर न्यात म्हे हुक्सर मालम हुई सो अब तलाक माफक दसतुर के थे थारो कराड्या जाजो आगासु थारा हुकुम करदीय्यो है सो पेली तलक थारे होवेगा। प्रवानगी म्हेता सेरसीघ संवत् १६१२ जेठसुद १५ बुधो।'

इनका अभिप्राय यही है कि—"भामाशाह के मुख्य वंशधर की यह प्रतिष्ठा चली आती रही, कि जब महाजनों में समस्त जाति-समुदाय का भोजन आदि होता, तब सबसे प्रथम उनके तिलक किया जाता था, परन्तु पीछे से महाजनों ने उनके वंश वालों के तिलक करना बन्द कर दिया, तब महाराणा स्वरूपसिंह ने उनके कुल की अच्छी सेवा को स्मरण कर इस विषय की जाँच कराई और आज्ञा दी कि—महाजनों की जाति में बावनी (सारी जाति का भोजन) तथा चौके का भोजन व सिंहपूजा में पहिले के अनुसार तिलक भामाशाह के मुख्य वंशधर के ही किया जाय। इस विषय का एक परवाना वि० स० १९१२ ज्येष्ठ सुदी १५ को जयचन्द कुनणा वीरचन्द कावड़िया के नाम कर दिया, तब से भामाशाह के मुख्य वंशधर के तिलक होने लगा।"

"फिर महाजनों ने महाराणा की उक्त आज्ञा का पालन न किया, जिससे वर्तमान महाराणा साहब के समय वि० स० १९५२ कार्तिक सुदी १२ को मुकद्दमा होकर उनके तिलक किए जाने की आज्ञा दी गई।"

वीर भामाशाह! तुम धन्य हो!! आज प्रायः साढ़े तीन सौ वर्ष से तुम इस संसार में नहीं हो परन्तु वहाँ के बच्चे-बच्चे की जबान पर तुम्हारे पवित्र नाम की छाप लगी हुई है। जिस देश के लिए तुमने इतना बड़ा आत्म-त्याग किया था, वह मेवाड़ पुनः अपनी स्वाधीनता प्रायः खो बैठा है। परन्तु फिर भी वहाँ तुम्हारा गुणगान होता रहता है। तुमने अपनी अक्षयकीर्ति से स्वयं को ही नहीं किन्तु समस्त जैन-जाति का सर्वथा मस्तक ऊँचा कर दिया है। निःसन्देह वह दिन धनिक समाज के धन-कुबेरों में भामाशाह जैसे सद्भावों का उदय होगा।

जिस नर-रत्न का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसके चरित्र, दान आदि के सम्बन्ध में ऐतिहासिकों की चिरकाल से यही धारणा रही है किन्तु हाल में रायबहादुर महामहोपाध्याय पं० गौरीशंकर हीराचन्द जी ओझा ने अपने उदयपुर राज्य के इतिहास में "महाराणा प्रताप की सम्पत्ति" शीर्षक के नीचे महाराणा के निराश होकर मेवाड़ छोड़ने और भामाशाह के रुपये दे देने पर फिर लड़ाई के लिए तैयारी करने की प्रसिद्ध घटना को असत्य ठहराया है।

इस विषय में आपकी युक्ति का सार 'त्याग-भूमि' के शब्दों में इस प्रकार है :—

"महाराणा कुम्भा और सांगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति अभी तक मौजूद थी, बादशाह अकबर इसे अभी तक न ले पाया था। यदि यह सम्पत्ति न होती तो जहाँगीर से सन्धि होने के बाद महाराणा अमरसिंह उसे इतने अमूल्य रत्न कैसे देता? आगे आनेवाले महाराणा जगतसिंह तथा राजसिंह आदि महादान किस तरह देते हैं और राजसमुद्रादि अनेक बृहत्-व्यय-साध्य कार्य किस तरह सम्पन्न होते? इसलिए उस समय भामाशाह ने अपनी तरफ से न देकर भिन्न-भिन्न सुरक्षित राज-कोषों से रुपया लाकर दिया।

इस पर त्याग-भूमि के विद्वान् समालोचक श्री हंसजी ने लिखा है :—

"निस्सन्देह इस युक्ति का उत्तर देना कठिन है, परन्तु मेवाड़ के राजा महाराणा प्रताप को भी अपने खजानों का ज्ञान न हो, यह मानने को स्वभावतः किसी का दिल तैयार न होगा। ऐसा मान लेना महाराणा प्रताप की शासन-कुशलता और साधारण नीतिमत्ता से इन्कार करना है। दूसरा सवाल यह है कि यदि भामाशाह ने अपनी उपार्जित सम्पत्ति न देकर केवल राजकोषों

की ही सम्पत्ति दी होती तो उसका और उसके वंश का इतना सम्मान, जिसका उल्लेख श्री ओझा जी ने पृ० ७८८ पर किया है, हमें बहुत सभव नही दीखता। एक खजाची का यह तो साधारण सा कर्त्तव्य है कि वह आवश्यकता पडने पर कोष से रुपया लाकर दे। केवल इतने मात्र से उसके वशधरो की यह प्रतिष्ठा (महाजन जाति-भोज के अवसर पर पहले उसको तिलक किया जाए) प्रारम्भ हो जाय, यह कुछ बहुत अधिक युक्तिसगत मालूम नहीं होता।"

इस आलोचना में ओझाजी की युक्ति के विरुद्ध जो कल्पना की गई है वह बहुत कुछ ठीक जान पड़ती है। इसके सिवाय, मै इतना और भी कहना चाहता हूँ कि यदि श्री ओझाजी का यह लिखना ठीक भी मान लिया जाय कि "महाराणा कुम्भा और साँगा आदि द्वारा उपार्जित अतुल सम्पत्ति प्रताप के समय तक सुरक्षित थी—वह खर्च नही हुई थी, तो वह सपत्ति चित्तौड़ थी, यह उदयपुर के कुछ गुप्त खजानो मे ही सुरक्षित रही होगी। भले ही अकबर को उन खजानो का पता न चल सका हो, परन्तु इन दोनो स्थानो पर अकबर का अधिकार तो पूरा हो गया था और ये स्थान अकबर की फौज से बराबर घिरे रहते थे, तब युद्ध के समय इन गुप्त खजानो से अतुल सपत्ति का बाहर निकाला जाना कैसे सभव हो सकता था। और इसलिए हल्दीघाटी के युद्ध के बाद जब प्रताप के पास पैसा नही रहा तब भामाशाह ने देश-हित के लिए अपने पास से—खुद के उपार्जन किये हुए द्रव्य से—भारी सहायता देकर प्रताप का यह अर्थ-कष्ट दूर किया है; यही ठीक जँचता है। रही अमरसिह और जगतसिह द्वारा होने वाले खर्चों की बात, वे सब तो चित्तौड तथा उदयपुर के पुन हस्तगत करने के बाद ही हुए हैं और उनका उक्त गुप्त खजानो की सम्पत्ति से होना सभव है, तब उनके आधार पर भामाशाह की उस सामयिक विपुल सहायता तथा भारी स्वार्थ-त्याग पर कैसे आपत्ति की जा सकती है? अतः इस विषय मे ओझाजी का कथन कुछ अधिक युक्ति-युक्त प्रतीत नही होता। और यही ठीक है कि भामाशाह के इस अपूर्व त्याग की बदौलत ही उस समय मेवाड़ का उद्धार हुआ जिन व्रतों के पालन करने पर बापू विशेष जोर देते थे। और इसीलिए आज भी भामाशाह मेवाडोद्धारक के नाम से प्रसिद्ध है।

एकादश-व्रत

जिन व्रतों के पालन पर बापू विशेष जोर देते थे

अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य असग्रह।
शरीरश्रम अस्वाद सर्वत्र भयवर्जन॥
सर्वधर्मी समानत्व स्वदेशी स्पर्शभावना।
हीं एकादश सेवावी नम्रत्वे व्रतनिश्चये॥

बापू के प्रिय भजन

. १ .

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीड पराई जाणे रे;
परदुःखे उपकार करे तोये, मन अभिमान न आणे रे।

सकल लोकमा सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे,
वाच काच मन निश्चल राखे, धन-धन जननी तेनी रे।
समदृष्टि ने तृष्णा त्यागी, परस्त्री जेने मात रे,
जिह्वा थकी असत्य न वोले, परधन नव झाले हाथ रे।
मोह माया व्यापे नहिं जेने, दृढ वैराग्य जेना मनमा रे;
रामनाममु ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमा रे।
वणलोभी ने कपटरहित छे, काम क्रोध निवार्या रे;
भणे नरसैंयो तेनू दरसन करता कुल एकतेर तार्या रे।

: २ .

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी, तुम वढ़ायो चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि धर्‌यो आप शरीर।
हरिनकश्यप मार लीन्हो धर्‌यो नाहिन धीर।
वूडते गजराज राख्यो, कियो वाहर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर, दुःख जहां तहा पीर॥

: ३ .

यदि तोर डाक सुने केउ ना आसे तवे एकला चलो रे,
एकला चलो, एकला चलो, एकला चलो रे!
यदि केउ कथा ना काय, ओरे, ओरे ओ अभागा,
यदि सवाई थाके मुख फिराये, सवाई करे भय—
तवे परान खुले
ओ, तुई मुख फूटे तोर मनेर कथा एकला वोलो रे
यदि सवाई फिरे जाय, ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि गहन पथे जावार काले केउ फिरे ना जाय—
तव पथेर काटा
जो, तुई रक्त माखा चरन तले एकला दलो रे।
यदि आलो न धरे ओरे, ओरे, ओ अभागा,
यदि झातु वादले आधार राते दुआर देय धरे—
तवे वज्रानले
आपन वुकेर पाजर ज्वालिये निये एकल चलो रे!

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

. ४ :

राम-सदन

काम क्रोध मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥
जिन्हके कपट दंभ नहिं माया। तिन्हके हृदय वसहु रघुराया॥

सबके प्रिय सबके हितकारी । दुख-सुख सरिस प्रशसा गारी ॥
कहइ सत्य प्रिय वचन विचारी । जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहिं छाड़ि गति दूसरि नाही । राम बसहु तिनके मन माही ॥
जननी सम जानहिं पर नारी । धन पराय विषते विष भारी ॥
जे हरषहिं पर सम्पति देखी । दुखित होहिं परविपति विसेखी ॥
जिन्हहिं राम तुम प्रान पियारे । तिन्हके मन सुभ सदन तुम्हारे ॥
स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्हके सब तुम तात ।
मन-मन्दिर तिन्हके बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥

एकादश-व्रत

१. सत्य—सत्य ही परमेश्वर है । सत्य-आग्रह, सत्य-विचार, सत्य-वाणी और सत्य-कर्म ये सब उसके अग है । जहाँ सत्य है, वहाँ शुद्ध ज्ञान है । जहाँ शुद्ध ज्ञान है, वहाँ आनन्द ही हो सकता है ।

२ अहिंसा—सत्य ही परमेश्वर है । उसके साक्षात्कार का एक ही मार्ग, एक ही साधन, अहिंसा है । बगैर अहिसा के सत्य की खोज असम्भव है ।

३ ब्रह्मचर्य—ब्रह्मचर्य का अर्थ है, ब्रह्म की—सत्य की—खोज मे चर्या, अर्थात् उससे सम्बन्ध रखने वाला आचार । इस मूल अर्थ मे से सर्वेन्द्रिय-सयम का विशेष अर्थ निकलता है । केवल जननेन्द्रिय-सयम के अधूरे अर्थ को तो हमे भूल जाना चाहिए ।

४. अस्वाद—मनुष्य जब तक जीभ के रसो को न जीते तबतक ब्रह्मचर्य का पालन अति कठिन है । भोजन केवल शरीर-पोषण के लिए हो, स्वाद या भोग के लिए न हो ।

५ अस्तेय (चोरी न करना)—दूसरे की चीज को उसकी इजाजत के बिना लेना तो चोरी है ही, लेकिन मनुष्य अपनी कम से कम जरूरत के अलावा जो कुछ लेता या सग्रह करता है, वह भी चोरी ही है ।

६ अपरिग्रह—सच्चे सुधार की निशानी परिग्रह-वृद्धि नही बल्कि विचार और इच्छापूर्वक परिग्रह कम करना उसकी निशानी है । ज्यो-ज्यो परिग्रह कम होता है, सुख और सच्चा सन्तोष बढ़ता है, सेवा-शक्ति बढती है ।

७. अभय—जो सत्यपरायण रहना चाहे, वह न तो जात-बिरादरी से डरे, न सरकार से डरे, न चोर से डरे, न बीमारी या मौत से डरे, न किसी के बुरा मानने से डरे ।

८. अस्पृश्यता-निवारण—छुआछूत हिन्दू-धर्म का अग नही है; इतना ही नही, बल्कि उसमें घुसी हुई सड़न है, वहम है, पाप है और उसका निवारण करना प्रत्येक हिन्दू का धर्म है, कर्तव्य है ।

९ शरीरश्रम—जिनका शरीर काम कर सकता है, उन स्त्री-पुरुषो को अपना रोजमर्रा का सभी काम, जो खुद कर लेने लायक हो, खुद ही कर लेना चाहिए और बिना कारण दूसरो से सेवा न लेनी चाहिए ।

जो खुद मेहनत न करे, उन्हें खाने का हक ही क्या है ?

१०. सर्वधर्म-समभाव—जितनी इज्जत हम अपने धर्म की करते हैं, उतनी ही इज्जत हमें दूसरों के धर्म की भी करनी चाहिए। जहाँ यह वृत्ति है, वहाँ एक-दूसरे के धर्म का विरोध हो ही नहीं सकता, न परधर्मी को अपने धर्म में लाने की कोशिश ही हो सकती है, बल्कि हमेशा प्रार्थना यही की जानी चाहिए कि सब धर्मों में पाये जाने वाले दोष दूर हों।

११. स्वदेशी—अपने आस-पास रहने वालों की सेवा में ओत-प्रोत हो जाना स्वदेशी-धर्म है। जो निकट वालों की सेवा छोड़कर दूर वालों की सेवा करने को दौड़ता है, वह स्वदेशी को भंग करता है।

: ५

रचनात्मक-कार्यक्रम
(गांधीजी के शब्दों में)

रचनात्मक कार्यक्रम को सत्य और अहिंसात्मक साधनों द्वारा पूर्ण स्वराज्य की रचना कहा जा सकता है। .... उसके एक-एक अंग पर विचार करें।

१ कौमी एकता—एकता का मतलब सिर्फ राजनैतिक एकता नहीं है...सच्चे मानी तो है वह दिली दोस्ती जो तोड़े न टूटे। इस तरह की एकता पैदा करने के लिए सबसे पहली जरूरत इस बात की है कि कांग्रेसजन, वे किसी भी धर्म के मानने वाले हों, अपने को हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी, सभी कौमों का नुमाइंदा समझें।

२. अस्पृश्यता-निवारण—हरिजनों के मामले में तो हरेक हिन्दू को यह समझना चाहिए कि हरिजनों का काम उसका अपना काम है।

३. मद्य-निषेध—अफीम, शराब, वगैरा चीजों के व्यसन में फँसे हुए अपने करोड़ों भाई-बहनों के भविष्य को सरकार की मेहरबानी या मरजी पर झूलता नहीं छोड़ सकते।...इन व्यसनों के पंजे में फँसे हुए लोगों को छुड़ाने के उपाय निकालने होंगे।

४. खादी—खादी का मतलब है देश के सभी लोगों की आर्थिक स्वतन्त्रता और समानता का आरम्भ। खादी में जो चीजें समाई हुई हैं, उन सब के साथ खादी को अपनाना चाहिए। खादी का एक मतलब यह है कि हम में से हरेक को सम्पूर्ण स्वदेशी की भावना बढ़ानी और टिकानी चाहिए।

५. दूसरे ग्रामोद्योग—हाथ से पीसना, हाथ से कूटना और पछोरना, साबुन बनाना, कागज बनाना, दियासलाई बनाना, चमड़ा कमाना, तेल पेरना और इस तरह के दूसरे सामाजिक जीवन के लिए जरूरी और महत्व के धन्धों के बिना गांवों की आर्थिक रचना सम्पूर्ण नहीं हो सकती।

६. गाँवों की सफाई—देश में जगह-जगह सुहावने और मनभावने, छोटे-छोटे गांवों के बदले हमें घूरे-जैसे गांव देखने को मिलते हैं।... हमारा फर्ज हो जाता है कि गांवों को सब तरह से सफाई के नमूने बनावें।

७ बुनियादी तालीम—बुनियादी तालीम हिन्दुस्तान के तमाम बच्चों को, वे गावो के रहने वाले हो या शहरो के, हिन्दुस्तान के सभी श्रेष्ठ तत्वो के साथ जोड देती है। यह तालीम बालक के मन और शरीर दोनो का विकास करती है।

८. प्रौढ़-शिक्षा—बड़ी उम्र के अपने देशवासियों को जबानी यानी सीधी बातचीत द्वारा सच्ची राजनैतिक शिक्षा दी जाय।

९. स्त्रियाँ—स्त्री को अपना मित्र या साथी मानने के बदले पुरुष ने अपने को उसका स्वामी माना है। काग्रेस वालो का यह खास कर्त्तव्य है कि वे हिन्दुस्तान की स्त्रियो को इस गिरी हुई हालत से हाथ पकड़कर ऊपर उठावे।

१० आरोग्य के नियमो की शिक्षा—हमारे देश की दूसरे देशों से बढी-चढी मृत्यु-सख्या का ज्यादातर कारण निश्चय ही वह गरीबी है, जो देशवासियों के शरीरो को कुरेदकर खा रही है, लेकिन अगर उनको तन्दुरुस्ती के नियमो की ठीक-ठीक तालीम दी जाय तो उसमे बहुत कमी की जा सकती है।

जब बीमार पडे तब अच्छे होने के लिए अपने साधनो की मर्यादा के अनुसार प्राकृतिक चिकित्सा करें।

११ प्रान्तीय भाषाएँ - हिन्दुस्तान की महान् भाषाओ की अवगणना की वजह मे हिन्दुस्तान को जो बेहद नुकसान हुआ है, उसका कोई अन्दाजा हम नही कर सकते।······जब तक जन-साधारण को अपनी बोली मे लडाई के हर पहलू व कदम को अच्छी तरह मे नहीं समझाया जाता तब तक उनसे यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि वे उसमे हाथ बँटावे ?

१२ राष्ट्रभाषा—समूचे हिन्दुस्तान के साथ व्यवहार करने के लिए हमको भारतीय भाषाओ मे से एक ऐसी भाषा की जरूरत है, जिसे आज ज्यादा-से-ज्यादा तादाद मे लोग जानते और समझते हो और बाकी के लोग जिसे झट सीख सकें, और वह भाषा हिन्दी (हिन्दुस्तानी) ही हो सकती है।

१३ आर्थिक समानता – आर्थिक समानता के लिए काम करने का मतलब है पूजी और मजदूरो के बीच के झगड़ो को हमेशा के लिए मिटा देना। अगर धनवान लोग अपने धन को और उसके कारण मिलने वाली सत्ता को खुद राजी-खुशी से छोडकर और सबके कल्याण के लिए सबो के मिलकर बरतने को तैयार न होगे तो यह तय समझिये कि हमारे मुल्क मे हिंसक और खूखार क्रान्ति हुए बिना नही रहेगी।

१४ किसान—स्वराज्य की इमारत एक जबरदस्त चीज है, जिसे बनाने मे अस्सी करोड़ हाथो का काम है। इन बनाने वालो मे किसानों की तादाद सबसे बडी है। सच तो यह है कि स्वराज्य की इमारत बनाने वालो मे ज्यादातर (करीब ८० फी-सदी) वे ही लोग है, इसलिए असल मे किसान ही काग्रेस है, ऐसी हालत पैदा होना चाहिए।

१५ मजदूर—अहमदाबाद के मजदूर-सघ का नमूना समूचे हिन्दुस्तान के लिए अनुकरणीय है, क्योकि वह शुद्ध अहिंसा की बुनियाद पर खड़ा है।··· मेरा बस चले तो मैं

हिन्दुस्तान की सब मजदूर-संस्थाओं का सचालन अहमदाबाद के मजदूर-सघ की नीति पर करूँ।

१६ आदिवासी—आदिवासियो की सेवा भी रचनात्मक कार्यक्रम का एक अग है।··· समूचे हिन्दुस्तान मे आदिवासियो की आबादी दो करोड़ है।····· उनके लिए कई सेवक काम कर रहे है। फिर भी अभी उनकी सख्या काफी नही है।

१७. कुष्ठ-रोगी—यह एक बदनाम शब्द है। फिर भी हम मे जो सबसे श्रेष्ठ या बढ़े-चढे है, उन्ही की तरह कुष्ठ-रोगी भी हमारे समाज के अग है।। पर हकीकत यह है कि जिन कुष्ठ-रोगियो की सार-सँभाल की ज्यादा जरूरत है, उन्ही की हमारे यहाँ जान-बूझकर उपेक्षा की जाती है।

१८ विद्यार्थी—विद्यार्थी भविष्य की आशा है।···· इन्ही नौजवान स्त्रियों और पुरुषो मे से तो राष्ट्र के भावी नेता तैयार होने वाले है। विद्यार्थियो को दलबन्दी वाली राजनीति में कभी शामिल नही होना चाहिए। उन्हे राजनैतिक हड़ताले नही करनी चाहिए। सब विद्यार्थियो को सेवा की खातिर शास्त्रीय तरीके से कातना चाहिए। अपने पहने-ओढने के लिए वे हमेशा खादी का इस्तेमाल करे।

१९. गोसेवा—गोरक्षा मुझे बहुत प्रिय है। मुझसे कोई पूछे कि हिन्दू-धर्म का बड़े-से-बड़ा बाह्य स्वरूप क्या है, तो मैं गोरक्षा बताऊँगा। मुझे वर्षो से दीख रहा हैं कि हम इस धर्म को भूल गये है। दुनिया मे ऐसा कोई देश मैने कही नही देखा जहा गाय के वश की हिन्दुस्तान जैसी लावारिस हालत हो।

× × × ×

रायचंद भाई के कुछ संस्मरण

महात्मा गांधी

["राष्ट्रपिता गाधीजी ने सत्य और अहिसा का मगलमय सदेश विश्व के लिए देकर नवयुग का सूत्रपात किया। वे युगप्रवर्तक थे। मानवजाति का उन्होने अपरिमित उपकार किया। उनके जीवन पर किन-किन महापुरुषो की छाप है, यह जानना भी आवश्यक है। उन्होने श्री मद्रायचद भाई के सस्मरण लिखते समय यह बात स्वीकार की है कि मेरे ऊपर तीन पुरुषो ने गहरी छाप डाली है। टालस्टाय, रस्किन और रायचद भाई। टालस्टाय ने अपनी पुस्तको द्वारा और उनके साथ थोड़े पत्र-व्यवहार से; रस्किन ने अपनी एक ही पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' जिसका गुजराती अनुवाद मैने 'सर्वोदय' रक्खा है। और रायचद भाई ने अपने गाढ़ परिचय से मेरी शकाओ का समाधान किया, इससे मुझे शाति मिली। हिन्दू धर्म मे मुझे जो चाहिए वह मिल सकता है ऐसा मन को विश्वास हुआ। इससे मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिए इसका पाठक लोग कुछ अनुमान कर सकते है।" रायचद भाई के सस्मरण उन्होने स्वय लिखे है। जिसे पढकर आप भली प्रकार जान सकेंगे कि गाँधीजी के मन मे अहिंसा की विशेष प्रीति कैसे बढी ? इसलिए पूरा लेख यहाँ अविकल दिया जा रहा है।]

मै जिनके पवित्र सस्मरण लिखना आरम्भ करता हू, उन स्वर्गीय श्रीमद् रायचन्द की आज जन्म-तिथि है। कार्तिक पूर्णिमा (सवत् १९२४) को उनका जन्म हुआ था। मै कुछ यहा श्रीमद् रायचद का जीवनचरित्र नही लिख रहा हू। यह कार्य मेरी शक्ति के बाहर है। मेरे पास सामग्री भी नही। उनका यदि मुझे जीवनचरित्र लिखना हो तो मुझे चाहिए कि मै उनकी जन्म-भूमि ववाणी आबदर मे कुछ समय बिताऊ, उनके रहने का मकान देखू, उनके खेलने-कूदने के स्थान देखू, उनके बाल-मित्रो से मिलू, उनकी पाठशाला मे जाऊ, उनके मित्रो, अनुयायियो और सगे-संबधियो से मिलू, और उनसे जानने योग्य बातें जानकर ही फिर कही लिखना आरम्भ करू। परन्तु इनमे से मुझे किसी भी बात का परिचय नही।

इतना ही नही, मुझे लिखने की अपनी शक्ति और योग्यता के विषयो में भी शंका है। मुझे याद है मैने कई बार ये विचार प्रकट किए है कि अवकाश मिलने पर उनके सस्मरण लिखूगा। एक शिष्य ने जिनके लिए मुझे बहुत मान है, ये विचार सुने और मुख्यरूप से यहाँ उन्ही के सन्तोष के लिए यह लिखा है। श्रीमद् रायचन्द को मैं 'रायचन्द भाई' अथवा 'कवि' कहकर प्रेम और मानपूर्वक सम्बोधन करता था। उनके संस्मरण लिखकर उनका रहस्य मुमुक्षुओ के समक्ष रखना मुझे अच्छा लगता है। इस समय तो मेरा प्रयास केवल मित्र के सतोष के लिए है। उनके सस्मरणों पर न्याय देने के लिए मुझे जैनमार्गों का अच्छा परिचय होना चाहिए, मै स्वीकार करता हू कि वह मुझे नही है। इसलिए मै अपना दृष्टि-विन्दु अत्यत सकुचित रखूगा। उनके जिन सस्मरणो की मेरे ऊपर छाप पडी है, उनके नोट्स और उनसे जो मुझे शिक्षा मिली है, इस समय उसे ही लिखकर मै सतोष मानूगा। मुझे आशा है कि उनसे जो लाभ मुझे मिला है वह या वैसा ही लाभ उन सस्मरणो के पाठक मुमुक्षुओ को भी मिलेगा।

'मुमुक्ष' शब्द का मैने यहाँ जानबूझकर प्रयोग किया है। सब प्रकार के पाठको के लिए यह पर्याप्त नही।

मेरे ऊपर तीन पुरुषो ने गहरी छाप डाली है—टालस्टाय, रस्किन और रायचद भाई। टालस्टाय ने अपनी पुस्तको द्वारा और उनके साथ थोडे पत्रव्यवहार से, रस्किन ने अपनी एक ही पुस्तक 'अन्टु दिस लास्ट' से जिसका गुजराती अनुवाद मैने 'सर्वोदय' रक्खा है, और रायचन्द भाई ने अपने साथ गाढ परिचय से। जब मुझे हिन्दू धर्म मे शका पैदा हुई उस समय उसके निवारण करने मे मदद करने वाले रायचन्द भाई थे। सन् १८९३ मे दक्षिण अफ्रीका में मै कुछ क्रिश्चियन सज्जनो के विशेष सम्पर्क मे आया। उनका जीवन स्वच्छ था। वे चुस्त धर्मात्मा थे। अन्य धर्मियो को क्रिश्चियन होने के लिए समझाना उनका मुख्य व्यवसाय था। यद्यपि मेरा और उनका सम्बन्ध व्यावहारिक कार्य को लेकर ही हुआ था तो भी उन्होने मेरी आत्मा के कल्याण के लिए चिन्ता करना शुरू कर दिया। उस समय मै अपना एक ही कर्त्तव्य समझ सका कि जब तक मैं हिन्दू धर्म के रहस्य को पूरी तौर से न जान लू और उससे मेरी आत्मा को असतोष न हो जाए, तब तक मुझे अपना कुलधर्म कभी न छोडना चाहिए। इसलिए मैने हिन्दू धर्म और अन्य धर्मों की पुस्तकें पढ़ना शुरू कर दी। क्रिश्चियन और मुसलमानी पुस्तके पढी। विलायत के अग्रेज मित्रो के साथ पत्रव्यवहार किया। उनके समक्ष अपनी शंकायें रखी तथा हिन्दुस्तान मे जिनके

ऊपर मुझे कुछ भी श्रद्धा थी, उनके पत्रव्यवहार किया। उनमे रायचद भाई मुख्य थे। उनके साथ तो मेरा अच्छा सम्बन्ध हो चुका था। उनके प्रति मान भी था, इसलिए उनसे जो मिल सके उसे लेने का मैंने विचार किया। उसका फल यह हुआ कि मुझे शाति मिली। हिन्दू धर्म मे मुझे जो चाहिए वह मिल सकता है, ऐसा मन को विश्वास हुआ। मेरी इस स्थिति के जवाबदार रायचन्द भाई हुए, इससे मेरा उनके प्रति कितना अधिक मान होना चाहिए, इसका पाठक लोग कुछ अनुमान कर सकते है।

इतना होने पर भी मैने उन्हे धर्मगुरु नही माना। धर्मगुरु की तो मै खोज किया ही करता हू, और अबतक मुझे सबके विषय में यही जवाब मिला है कि 'ये नही।' ऐसा सम्पूर्ण गुरू प्राप्त करने के लिए तो अधिकार चाहिए, वह मैं कहाँ से लाऊ ?

प्रथम भेंट

रायचन्द भाई के साथ मेरी भेट जौलाई सन् १८९१ मे उस दिन हुई जब मैं विलायत से बम्बई वापस आया। इन दिनो समुद्र में तूफान आया करता है, इस कारण जहाज रात को देरी से पहुँचा। मैं डाक्टर—बैरिस्टर—और अब रगून के प्रख्यात झवेरी प्राणजीवनदास मेहता के घर उतरा था। रायचन्द भाई उनके बडे भाई के जमाई होते थे। डाक्टर साहब ने ही परिचय कराया। उनके दूसरे बडे भाई झवेरी रेवाशकर जगजीवनदास की पहिचान भी उसी दिन हुई। डाक्टर साहब ने रायचन्द भाई को 'कवि' कहकर परिचय कराया और कहा—'कवि होते हुए भी आप हमारे साथ व्यापार मे है, आप ज्ञानी और शतावधानी हैं।' किसी ने सूचना दी कि मै उन्हे कुछ शब्द सुनाऊ, और वे शब्द चाहे किसी भी भाषा के हो, जिस क्रम से मै बोलूगा उसी क्रम से वे दुहरा जावेंगे। मुझे यह सुनकर आश्चर्य हुआ। मै तो उस समय जवान और विलायत से लौटा था, मुझे भाषाज्ञान का भी अभिमान था। मुझे विलायत की हवा भी कुछ कम न लगी थी। उन दिनो विलायत से आया मानो आकाश से उतरा। मैने अपना समस्त ज्ञान उलट दिया, और अलग-अलग भाषाओ के शब्द पहले मैंने लिख लिए—क्योकि मुझे वह क्रम कहाँ याद रहने वाला था ? और बाद में उन शब्दो को मैं बाच गया। उसी क्रम से रायचन्द भाई ने धीरे से एक के बाद एक शब्द कह सुनाए। मैं राजी हुआ, चकित हुआ और कवि की स्मरण-शक्ति के विषय मे मेरा उच्च विचार हुआ। विलायत की हवा कम पडने के लिए यह सुन्दर अनुभव हुआ कहा जा सकता है।

कवि को अग्रेजी का ज्ञान बिल्कुल न था। उस समय उनकी उमर पच्चीस से अधिक न थी। गुजराती पाठशाला मे भी उन्होने थोडा ही अभ्यास किया था। फिर भी इतनी शक्ति, इतना ज्ञान और आस-पास से इतना उनका मान। इससे मैं मोहित हुआ। स्मरणशक्ति पाठशाला में नही बिकती, और ज्ञान भी पाठशाला के बाहर, यदि इच्छा हो जिज्ञासा हो—तो मिलता है, तथा मान पाने के लिए विलायत अथवा कही भी नही जाना पडता; परन्तु गुण को मान चाहिए तो मिलता है—यह पदार्थ-पाठ मुझे बम्बई उतरते ही मिला।

कवि के साथ यह परिचय बहुत आगे बढा। स्मरण-शक्ति बहुत लोगो की तीव्र होती है, इसमे आश्चर्य की कुछ बात नही। शास्त्र-ज्ञान भी बहुतो मे पाया जाता है। परन्तु यदि वे

लोग सस्कारी न हो तो उनके पास फूटी कौड़ी भी नही मिलती। जहां सस्कार अच्छे होते है, वही स्मरण-शक्ति और शास्त्रज्ञान का सम्बन्ध शोभित होता है, और जगत को शोभित करता है कवि सस्कारी ज्ञानी थे।

वैराग्य

अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवेगे, क्यारे थईशु बाह्यान्तर निर्ग्रंथ जो,
सर्व सबधनु बधन तीक्ष्ण छेदीने, विचरशु कव महत्पुरुष ने पथ जो ?
सर्वभावथी औदासीन्य वृत्तिकरी, मात्र देहे ते सयमहेतु होय जो,
अन्य कारणे अन्य कशु कल्पे नहि, देहे पण किंचित् मूर्छा नवजोय जो ॥

—अपूर्व

रायचन्द भाई की १८ वर्ष की उमर के निकले हुए अपूर्व उद्गारो की ये पहली दो कडिया है। जो वैराग्य इन कडियो मे छलक रहा है, वह मैंने उनके दो वर्ष के गाढ परिचय से प्रत्येक क्षण मे उनमे देखा है। उनके लेखो की एक असाधारणता यह है कि उन्होने स्वय जो अनुभव किया वही लिखा है। उसमे कही भी कृत्रिमता नहीं। दूसरे के ऊपर छाप डालने के लिए उन्होने एक लाइन भी लिखी हो यह मैंने नही देखा। उनके पास हमेशा कोई-न-कोई धर्मपुस्तक और एक कोरी कापी पडी ही रहती थी। इस कापी मे वे अपने मन मे जो विचार आते उन्हें लिख लेते थे। ये विचार कभी गद्य मे और कभी पद्य मे होते थे इसी तरह 'अपूर्व अवसर' आदि पद भी लिखा हुआ होना चाहिए।

खाते, बैठते, सोते और प्रत्येक क्रिया करते हुए उनमे वैराग्य तो होता ही था। किसी समय उन्हे इस जगत के किसी भी वैभव पर मोह हुआ हो यह मैंने नही देखा।

उनका रहन-सहन मैं आदरपूर्वक परन्तु सूक्ष्मता से देखता था। भोजन मे जो मिले वे उसीसे सतुष्ट रहते थे। उनकी पोशाक सादी थी। कुर्ता, अगरखा, खेस, सिल्क का दुपट्टा और और धोती यही उनकी पोशाक थी तथा ये भी कुछ बहुत साफ या इस्तरी किए हुए रहते हो, यह मुझे याद नही। जमीन पर बैठना और कुर्सी पर बैठना उन्हे दोनो ही समान थे। सामान्य रीति से अपनी दुकान मे वे गद्दी पर बैठते थे।

उनकी चाल धीमी थी, और देखनेवाला समझ सकता था कि चलते हुए भी वे अपने विचार मे मग्न हैं। आख मे उनकी चमत्कार था। वे अत्यन्त तेजस्वी थे। विह्वलता जरा भी न थी। आँख मे एकाग्रता चित्रित थी। चेहरा गोलाकार, होठ पतले, नाक न नोकदार और न चपटी, शरीर दुर्बल, कद मध्यम, वर्ण श्याम, और देखने मे वे शान्तिमूर्ति थे। उनके कठ मे इतना अधिक माधुर्य था कि उन्हे सुनने वाले थकते न थे, उनका चेहरा हसमुख और प्रफुल्लित था। उसके ऊपर अतरानद की छाया थी। भाषा उनकी इतनी परिपूर्ण थी कि उन्हे अपने विचार प्रगट करते समय कभी कोई शब्द ढूढना पडा हो, यह मुझे याद नही। पत्र लिखने बैठते तो शायद ही शब्द बदलते हुए मैंने उन्हे देखा होगा। फिर भी पढने वाले को यह मालूम न होता था कि कही विचार अपूर्ण है अथवा वाक्य-रचना त्रुटित है, अथवा शब्दो के चुनाव में कमी है।

यह वर्णन सयमी के विषय में सभव है। बाह्याडम्बर से मनुष्य वीतरागी नही हो सकता। वीतरागता आत्मा की प्रसादी है। यह अनेक जन्मो के प्रयत्न से मिल सकती है, ऐसा हर मनुष्य अनुभव कर सकता है। रागो को निकालने का प्रयत्न करने वाला जानता है कि राग-रहित होना कितना कठिन है। यह राग-रहित दशा कवि की स्वाभाविक थी, ऐसी मेरे ऊपर छाप पडी थी।

मोक्ष की प्रथम पीढी वीतरागता है। जब तक जगत की एक भी वस्तु मे मन रमा है तब तक मोक्ष की बात कैसे अच्छी लग सकती है। अथवा अच्छी लगती भी तो केवल कानो को ही—ठीक वैसे ही जैसे कि हमे अर्थ के समझे बिना किसी सगीत का केवल स्वर ही अच्छा लगता है। ऐसी केवल कर्ण-प्रिय क्रीड़ा में से मोक्ष का अनुसरण करने वाले आचरण के आने में बहुत समय बीत जाता है। आतर वैराग्य के बिना मोक्ष की लगन नही होती। ऐसे वैराग्य की लगन कवि में थी।

व्यापारी जीवन

●"वणिक तेहनु नाम जेंह जूठू नव बोले, वणिक तेहनु नाम, तोल ओछु नव तोले।
वणिक तेहनु नाम बापे बोल्यु ते पाले, वणिक तेहनु नाम व्याज सहित घनवाले।
विवेक तोल ए वणिकनु सुलतान तोल ए शाव छे, बेपार चुके जो वाणीओ,
दु ख दावानल थाह छे।"

—सामलभट्ट

सामान्य मान्यता ऐसी है कि व्यवहार अथवा व्यापार और परमार्थ अथवा धर्म ये दोनो अलग-अलग विरोधी वस्तुए है। व्यापार मे धर्म को घुसेड़ना पागलपन है। ऐसा करने से दोनो बिगड जाते है। यह मान्यता यदि मिथ्या न हो तो अपने भाग्य में केवल निराशा ही लिखी है; क्योंकि ऐसी एक भी वस्तु नही, ऐसा एक भी व्यवहार नही जिससे हम धर्म को अलग रख सकें।

धार्मिक मनुष्य का धर्म उसके प्रत्येक कार्य मे झलकना ही चाहिये, यह रायचन्द भाई ने अपने जीवन मे बताया था। धर्म कुछ एकादशी के दिन ही, पर्यूषण मे ही, ईद के दिन ही, या रविवार के दिन ही पालना चाहिए, अथवा उसका पालन मदिरो मे, देरासरो में, और मस्जिदो मे ही होता है और दूकान या दरबार मे नही होता, ऐसा कोई नियम नही। इतना ही नही, परन्तु यह कहना धर्म को न समझने के बराबर है, यह रायचन्द भाई कहते, मानते और अपने आचार में बताते थे।

●बनिया उसे कहते हैं जो कभी झूठ नही बोलता, बनिया उसे कहते है जो कम नही तौलता। बनिया उसका नाम है जो अपने पिता का वचन निभाता है, बनिया उसका नाम है जो ब्याज सहिय मूलधन चुकाता है। बनिये की तौल विवेक है, साहू सुलतान की तौल का होता है। यदि बनिया अपने बनिज को चूक जाय तो ससार की विपत्ति बढ जाय।

—अनुवादक

उनका व्यापार हीरे-जवाहरात का था। वे श्री रेवाशकर जगजीवन झवेरी के साझी थे। साथ मे वे कपडे की दूकान भी चलाते थे। अपने व्यवहार मे सम्पूर्ण प्रकार से वे प्रमाणिकता बताते थे, ऐसी उन्होने मेरे ऊपर छाप डाली थी। वे जब सौदा करते तो मैं कभी अनायास ही उपस्थित रहता। उनकी बात स्पष्ट और एक ही होती थी। 'चालाकी' सरीखी कोई वस्तु उनमें मै न देखता था। दूसरे की चालाकी वे तुरन्त ताड जाते थे, वह उन्हे असह्य मालूम होती थी। ऐसे समय उनकी भ्रकुटि भी चढ जाती और आँखो में लाली आ जाती, यह मैं देखता था।

धर्मकुशल लोग व्यापार-कुशल नही होते, इस वहम को रायचन्द भाई ने मिथ्या सिद्ध करके बताया था। अपने व्यापार मे वे पूरी सावधानी और होशियारी बताते थे। हीरे-जवाहरात की परीक्षा वे बहुत बारीकी से कर सकते थे। यद्यपि अंग्रेजी का ज्ञान उन्हे न था फिर भी पेरिस वगैरह के अपने आड़तियो की चिट्ठियो और तारो के मर्म को वे फौरन समझ जाते थे और उनको कला समझने मे उन्हें देर न लगती। उनके जो तर्क होते थे, वे अधिकाश सच्चे ही निकलते थे।

इतनी सावधानी और होशियारी होने पर भी वे व्यापार की उद्विग्नता अथवा चिन्ता न रखते थे। दुकान मे बैठे हुए भी जब अपना काम समाप्त हो जाता तो उनके पास पडी हुई धार्मिक पुस्तक अथवा कापी, जिसमे वे अपने उद्गार लिखते थे, खुल जाती थी। मेरे जैसे जिज्ञासु तो उनके पास रोज आते ही रहते थे और उनके साथ धर्म-चर्चा करने मे हिचकते न थे। 'व्यापार के समय मे व्यापार और धर्म के समय मे धर्म, अर्थात् एक समय मे एक ही काम होना चाहिए, इस सामान्य लोगो के सुन्दर नियम का कवि पालन न किरते थे। वे शतावधानी होकर इसका पालन न करें तो यह हो सकता है, परन्तु यदि और लोग इसका उल्लघन करने लगें तो जैसे दो घोड़ो पर सवारी करने वाला गिरता है, वैसे ही वे भी अवश्य गिरते। सम्पूर्ण धार्मिक और वीत-रागी पुरुष भी जिस क्रिया को जिस समय करता हो, उसमे ही लीन हो जाय, यह योग्य है; इतना ही नही परन्तु उसे यही शोभा देता है। यह उसके योग की निशानी है। इसमे धर्म है। व्यापार अथवा इसी तरह की जो कोई अन्य क्रिया करना हो तो उसमे भी पूर्ण एकाग्रता होनी ही चाहिए। अन्तरंग मे आत्मचिन्तन तो मुमुक्षु मे उसके श्वास की तरह सतत चलना ही चाहिए। उससे वह एक क्षण भर भी वचित नही रहता। परन्तु इस तरह आत्म-चिन्तन करते हुए भी जो कुछ वह बाह्य कार्य करता हो वह उसमे तन्मय रहता है।

मैं यह नही कहना चाहता कि कवि ऐसा न करते थे। ऊपर मै कह चुका हू कि अपने व्यापार मे वे पूरी सावधानी रखते थे। ऐसा होने पर भी मेरे ऊपर ऐसी छाप जरूर पडी है कि कवि ने अपने शरीर से आवश्यकता से अधिक काम लिया है। यह योग की अपूर्णता तो नही हो सकती? यद्यपि कर्तव्य करते हुए शरीर तक भी समर्पण कर देना यह नीति है, परन्तु शक्ति से अधिक बोझ उठाकर उसे कर्तव्य समझना यह राग है। ऐसा अत्यत सूक्ष्म राग कवि में था, यह मुझे अनुभव हुआ।

बहुत बार परमार्थ दृष्टि से मनुष्य शक्ति से अधिक काम लेता है और बाद में उसे पूरा करने मे उसे कष्ट सहना पडता है। इसे हम गुण समझते हैं और इसकी प्रशसा करते हैं।

परन्तु परमार्थ धर्म-दृष्टि से देखने से इस तरह किए हुए काम में सूक्ष्म मूर्छा का होना बहुत सम्भव है।

यदि हम इस जगत मे केवल निमित्त मात्र ही है, यदि यह शरीर हमे भाड़े मिला है, और उस मार्ग से हमे तुरन्त मोक्ष-साधन करना चाहिये, यही परम कर्त्तव्य है, तो इस मार्ग मे जो विघ्न आते हो उनका त्याग अवश्य ही करना चाहिए, यही पारमार्थिक दृष्टि है, दूसरी नही।

जो दलीलें मैंने ऊपर दी है, उन्हे ही किसी दूसरे प्रकार से रायचन्द भाई अपनी चमत्कारिक भाषा मे मुझे सुना गये थे। ऐसा होने पर भी उन्होने कैसी-कैसी व्याधिया उठाई कि जिसके फलस्वरूप उन्हे सख्त बीमारी भोगनी पडी।

रायचन्द भाई को भी परोपकार के कारण मोह ने क्षण भर के लिए घेर लिया था, यदि मेरी यह मान्यता ठीक हो तो 'प्रकृति पाति भूतानि निग्रह कि करिष्यति' यह श्लोकार्ध यहा ठीक बैठता है, और इसका अर्थ भी इतना ही है। कोई इच्छापूर्वक बर्ताव करने के लिए उपर्युक्त कृष्ण-वचन का उपयोग करते है, परन्तु वह तो सर्वथा दुरुपयोग है। रायचन्द भाई की प्रकृति उन्हे बलात्कार गहरे पानी में ले गई। ऐसे कार्य को दोषरूप से भी लगभग सम्पूर्ण आत्माओ मे ही माना जा सकता है। हम सामान्य मनुष्य तो परोपकारी कार्य के पीछे अवश्य पागल बन जाते है, तभी उसे कदाचित पूरा कर पाते है। इस विषय को इतना ही लिखकर समाप्त करते है।

यह भी मान्यता देखी जाती है कि धार्मिक मनुष्य इतने भोले होते हैं कि उन्हे सब कोई ठग सकता है। उन्हे दुनिया की बातो की कुछ भी खबर नही पडती। यदि यह बात ठीक हो तो कृष्णचन्द और रामचन्द दोनो अवतारो को केवल ससारी मनुष्यो में ही गिनना चाहिए। कवि कहते थे कि जिसे शुद्धज्ञान है उसका ठगा जाना असम्भव होना चाहिए। मनुष्य धार्मिक अर्थात् नीतिमान होने पर भी कदाचित ज्ञानी न हो परन्तु मोक्ष के लिए नीति और अनुभव ज्ञान का सुसगम होना चाहिए। जिसे अनुभव ज्ञान हो गया है, उसके पास पाखड निभ ही नही सकता। अहिंसा के सान्निध्य मे हिंसा बद हो जाती है। जहा सरलता प्रकाशित होती है वहाँ छलरूपी अध-कार नष्ट हो जाता है। ज्ञानवान और धर्मवान यदि कपटी को देखे तो उसे फौरन पहिचान लेता है, और उसका हृदय दया से आर्द्र हो जाता है। जिसने आत्म को प्रत्यक्ष देख लिया, वह दूसरे को पहिचाने बिना कैसे रह सकता है? कवि के सम्बन्ध मे यह नियम हमेशा ठीक पड़ता था, यह मै नही कह सकता। कोई-कोई धर्म के नाम पर उन्हे ठग भी लेते थे। ऐसे उदाहरण नियम की अपूर्णता सिद्ध नही करते, परन्तु ये शुद्धज्ञान की ही दुर्बलता सिद्ध करते हैं।

इस तरह के अपवाद होते हुए भी व्यवहारकुशलता और धर्म-परायणता का सुन्दर मेल जितना मैंने कवि मे देखा है, उतना किसी दूसरे मे देखने मे नही आया।

धर्म

रायचन्द भाई के धर्म का विचार करने से पहले यह जानना आवश्यक है कि धर्म का उन्होने क्या स्वरूप समझाया था।

धर्म का अर्थ मत-मतान्तर नही। धर्म को अर्थशास्त्रो के नाम से कही जाने वाली

पुस्तकों को पढ़ जाना, कठस्थ कर लेना, अथवा उनमे जो कुछ कहा है, उसे मानना भी नही है।

धर्म आत्मा का गुण है और वह मनुष्य जाति मे दृश्य अथवा अदृश्य रूप से मौजूद है। धर्म से हम मनुष्य जीवन का कर्त्तव्य समझ सकते है। धर्म द्वारा हम दूसरे जीवो के साथ अपना सच्चा सम्बन्ध पहचान सकते है। यह स्पष्ट है कि जब तक हम अपने को न पहचान ले, तब तक यह सब कभी भी नही हो सकता। इसलिए धर्म वह साधन है, जिसके द्वारा हम अपने आपको स्वय पहिचान सकते है।

यह साधन हमे जहा कही मिले, वही से प्राप्त करना चाहिए। फिर भले ही वह भारत वर्ष मे मिले, चाहे यूरोप से आए या अरबस्तान से आए। इन साधनो का सामान्य स्वरूप समस्त धर्मशास्त्रो मे एक ही सा है। इस बात को वह कह सकता है जिसने भिन्न-भिन्न शास्त्रो का अभ्यास किया है। ऐसा कोई भी शास्त्र नही कहता कि असत्य बोलना चाहिये अथवा असत्य आचरण करना चाहिए। हिंसा करना किसी भी शास्त्र में नही बताया। समस्त शास्त्रो का दोहन करते हुए शकराचार्य ने कहा है—'ब्रह्म सत्य जगन्मिथ्या'। उसी बात को कुरानशरीफ मे दूसरी तरह कहा है कि ईश्वर एक ही है और वही है, उसके बिना और दूसरा कुछ नही। बाइबिल में कहा है, कि मैं और मेरा पिता एक ही है। ये सब एक ही वस्तु के रूपातर है। परन्तु इस एक ही सत्य के स्पष्ट करने मे अपूर्ण मनुष्यो ने अपने भिन्न-भिन्न दृष्टि-बिन्दुओ को काम मे लाकर हमारे लिए मोहजाल रच दिया है, उसमे से हमे बाहर निकलना है। हम अपूर्ण है और अपने से कम अपूर्ण की मदद लेकर आगे बढते हैं और अन्त मे न जाने अमुक हद तक जाकर ऐसा मान लेते है कि आगे रास्ता ही नही है, परन्तु वास्तव मे ऐसी बात नही है। अमुक हद के बाद शास्त्र मदद नही करते, परन्तु अनुभव करता है। इसलिए रायचन्द भाई ने कहा है :—

ए पद श्री सर्वज्ञे दीठु ध्यानमा, कही शक्या नही ते पद श्रीभगवत जो
एह परमपदप्राप्तिनु कर्यु ध्यान मे, गजावगर पणहाल मनोरथ रूपजो।

इसलिए अन्त मे तो आत्मा को मोक्ष देने वाली आत्मा ही है।

इस शुद्ध सत्य का निरूपण रायचन्द भाई ने अनेक प्रकारो से अपने लेखो मे किया है। रायचन्द भाई ने बहुत-सी धर्मपुस्तको का अच्छा अभ्यास किया था। उन्हे सस्कृत और मागधी भाषा के समझने मे जरा भी मुश्किल न पडती थी। उन्होने वेदान्त का अभ्यास किया था, इसी प्रकार भागवत और गीताजीका भी उन्होने अभ्यास किया था। जैन पुस्तके तो जितनी भी उनके हाथ मे आती, वे बाच जाते थे। उनके बाचने और ग्रहण करने की शक्ति अगाध थी। पुस्तक का एक बार का बाचन उन पुस्तको के रहस्य जानने के लिए उन्हे काफी था। कुरान, जदअवेस्ता आदि पुस्तकें भी वे अनुवाद के जरिये पढ गए थे।

वे मुझसे कहते थे कि उनका पक्षपात जैनधर्म की ओर था। उनकी मान्यता थी कि जिनमगा मे आत्मज्ञान की पराकाष्ठा है, मुझे उनका यह विचार बता देना आवश्यक है। इस विषय मे अपना मत देने के लिए मैं अपने को बिल्कुल अनधिकारी समझता हू।

परन्तु रायचन्द भाई का दूसरे धर्मो के प्रति अनादर न था, बल्कि वेदान्त के प्रति

पक्षपात भी था। वेदाती को तो कवि वेदांती ही मालूम पड़ते थे। मेरे साथ चर्चा करते समय मुझे उन्होंने कभी भी यह नही कहा कि मुझे मोक्ष प्राप्ति के लिए किसी खास धर्म का अवलंबन लेना चाहिए। मुझे अपना ही आचार-विचार पालने के लिए उन्होने कहा। मुझे कौन सी पुस्तकें वाचनी चाहिये, यह प्रश्न उठने पर, उन्होने मेरी वृत्ति और मेरे बचपन के संस्कार देखकर मुझे गीताजी वाँचने के लिए उत्तेजित किया, और दूसरी पुस्तकों मे पंचीकरण, मणिरत्नमाला, योग-वासिष्ठ का वैराग्य प्रकरण, काव्यदोहन पहला, और अपनी मोक्षमाला बाचने के लिए कहा।

रायचन्द भाई बहुत बार कहा करते थे कि भिन्न-भिन्न धर्म तो एक तरह के बाड़े है और उनमें मनुष्य घिर जाता है। जिसने मोक्ष प्राप्ति ही पुरुषार्थ मान लिया है, उसे अपने माथे पर किसी भी धर्म का तिलक लगाने की आवश्यकता नही।

०सूतर आवे त्यम तुं रहे, ज्यम त्यम करिने हरीने लहे—

जैसे आखाका यह सूत्र था वैसे ही रायचन्द भाई का भी था। धार्मिक झगड़ो से वे हमेशा ऊबे रहते थे—उनमे वे शायद ही कभी पड़ते थे। वे समस्त धर्मो की खूबियाँ पूरी तरह से देखते और उन्हे उन धर्मावलम्बियो के सामने रखते थे। दक्षिण अफ्रीका के पत्रव्यवहार मे भी मैंने यही वस्तु उनसे प्राप्त की।

मैं स्वय तो यह मानने वाला हू कि समस्त धर्म उस धर्म के भक्तो की दृष्टि से सम्पूर्ण है, और दूसरो की दृष्टि से अपूर्ण है। स्वतत्र रूप से विचार करने से सब धर्म परिपूर्ण है। अमुक हद के बाद सब शास्त्र बन्धन रूप मालूम पड़ते हैं। परन्तु यह तो गुणातीत की अवस्था हुई। रायचन्द भाई की दृष्टि से विचार करते हैं तो किसी को अपना धर्म छोड़ने की आवश्यकता नही। सब अपने-अपने धर्म मे रह कर अपनी स्वतन्त्रता—मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं। क्योंकि मोक्ष प्राप्त करने का अर्थ सर्वांश से राग-द्वेष रहित होना ही है।

*परिशिष्ट

इस प्रकरण में एक विषय का विचार नही हुआ। उसे पाठको के समक्ष रख देना उचित समझता हू। कुछ लोग कहते हैं कि श्रीमद् पच्चीसवे तीर्थंकर हो गए हैं। कुछ ऐसा मानते हैं कि उन्होने मोक्ष प्राप्त कर लिया है। मैं समझता हूं कि ये दोनो ही मान्यताए अयोग्य हैं। इन बातो को मानने वाले या तो श्रीमद् को ही नही पहचानते, अथवा तीर्थंकर या मुक्त पुरुष की वे व्याख्या ही दूसरी करते हैं। अपने प्रियतम के लिए भी हम सत्य को हल्का अथवा सस्ता नहीं कर देते हैं। मोक्ष अमूल्य वस्तु है। मोक्ष आत्मा की अन्तिम स्थिति है। मोक्ष बहुत महँगी वस्तु है। उसे प्राप्त करने मे, जितना

०जैसे सूत निकलता हैं वैसे ही तू कर। जैसे बने तैसे हरि को प्राप्त कर।

*'श्रीमद् रायचन्द' का गाधीजी द्वारा लिखा हुआ प्रस्तावना का वह अंश जो उक्त सस्मरणो से अलग है और उनके बाद लिखा गया है।

—अनुवादक

प्रयत्न समुद्र के किनारे बैठकर एक सीक लेकर उसके ऊपर एक-एक बूंद चढ़ा-चढ़ाकर समुद्र को खाली करने वाले को करना पड़ता है और धीरज रखना पड़ता है। उससे भी विशेष प्रयत्न करने वाले को करना पड़ता है और धीरज रखना पड़ता है। उससे भी विशेष प्रयत्न करने की आवश्यकता है। इस मोक्ष का सम्पूर्ण वर्णन असम्भव है। तीर्थंकर को मोक्ष के पहले की विभूतिया सहज ही प्राप्त होती है। इस देह मे मुक्त पुरुष को रोगादि कभी भी नही होते। निर्विकारी शरीर मे रोग नही होता। राग के बिना रोग नही होता। जहा विकार है वहा राग रहता ही है, और जहां राग है वहा मोक्ष भी सम्भव नही। मुक्त पुरुष के योग्य वीतरागता या तीर्थङ्कर की विभूतिया श्रीमद् को प्राप्त नही हुई थी। परन्तु सामान्य मनुष्य की अपेक्षा श्रीमद् की वीतरागता और विभूतियां बहुत अधिक थी, इसलिये हम उन्हें लौकिक भाषा में वीतराग और विभूतिमान कहते है। परन्तु मुक्त पुरुष के लिए मानी हुई वीतरागता और तीर्थंकर की विभूतियो को श्रीमद् न पहुँच सके थे, यह मेरा दृढमत है। यह कुछ मै एक महान और पूज्य व्यक्ति के दोष बताने के लिए नही लिखता। परन्तु उन्हे और सत्य को न्याय देने के लिए लिखता हू। यदि हम ससारी जीव हैं तो श्रीमद् असारी थे। हमे यदि अनेक योनियो में भटकना पडेगा तो श्रीमद् का शायद एक ही जन्म बस होगा। हम शायद मोक्ष से दूर भागते होगे तो श्रीमद् वायुवेग से मोक्ष की ओर धंसे जा रहे थे। यह कुछ थोड़ा पुरुषार्थ नही। यह होने पर भी मुझे कहना होगा कि श्रीमद् ने जिस अपूर्व पद का स्वय सुन्दर वर्णन किया है, उसे वे प्राप्त न कर सके थे। उन्होने ही स्वय कहा है कि उनके प्रवास में उन्हे सहारा का मरुस्थल बीच में आ गया और उसका पार करना बाकी रह गया। परन्तु श्रीमद् रायचन्द असाधारण व्यक्ति थे। उनके लेख उनके अनुभव के बिन्दु के समान है। उनके पढने वाले, विचारने वाले और तदनुसार आचरण करने वालो को मोक्ष सुलभ होगा, उनकी कषायें मन्द पड़ेंगी, और वे देह का मोह छोडकर आत्मार्थी बनेंगे।

इसके ऊपर से पाठक देखेंगे कि श्रीमद् के लेख अधिकारी के लिए ही योग्य है। सब पाठक तो उसमे रस नही ले सकते। टीकाकार को उसकी टीका का कारण मिलेगा। परन्तु श्रद्धावान तो उसमे से रस ही लूटेगा। उनके लेखो मे सत् नितर रहा है, यह मुझे हमेशा भास हुआ है। उन्होने अपना ज्ञान बताने के लिए एक भी अक्षर नही लिखा। लेखक का अभिप्राय पाठको को अपने आत्मानन्द मे सहयोगी बनाने का था। जिसे आत्मक्लेश दूर करना है, जो अपना कर्त्तव्य जानने के लिए उत्सुक है, उसे श्रीमद् के लेखो मे से बहुत कुछ मिलेगा, ऐसा मुझे विश्वास है, फिर भले ही कोई हिन्दू धर्म का अनुयायी हो या अन्य किसी दूसरे धर्म का।

न्याय और दलबन्दी, ये दो विरोधी दिशाएँ है, एक व्यक्ति एक साथ दो दिशाओ मे चलना चाहे, इससे बड़ी भूल और क्या हो सकती है!

महात्मा गांधी के २७ प्रश्नों का समाधान

श्रीमद् रायचन्दजी

प्रश्न (१)—आत्मा क्या है ? क्या वह कुछ करती है ? और उसे कर्म दुख देता है या नही ?

उत्तर—(१) जैसे घट-पट आदि जड़ वस्तुयें है, उसी तरह आत्मा ज्ञानस्वरूप वस्तु है। घट-पट आदि अनित्य है—त्रिकाल मे एक ही स्वरूप से स्थिरतापूर्वक रह सकने वाली नही है। आत्मा एक स्वरूप से त्रिकाल में स्थिर रह सकने वाला नित्य पदार्थ है। जिस पदार्थ की उत्पत्ति किसी भी सयोग से न हो सकती हो वह पदार्थ नित्य होता है। आत्मा किसी भी सयोग से उत्पन्न हो सकती है, ऐसा मालूम नही होता। क्योकि जड़ के चाहे कितने भी सयोग क्यो न करो तो भी उससे चेतन की उत्पत्ति नही हो सकती। जो धर्म जिस पदार्थ मे नही होता, उस प्रकार के बहुत से पदार्थो के इकट्ठे करने से भी उसमे जो धर्म नही है वह धर्म उत्पन्न नही हो सकता। जो घट-पट आदि पदार्थ हैं, उनमे ज्ञानस्वरूप देखने मे नही आता। उस प्रकार के पदार्थो का यदि परिणामांतरपूर्वक संयोग किया हो अथवा सयोग हुआ हो, तो भी वह उसी तरह की जाति का होता है, अर्थात् यह जड़स्वरूप ही होता है, ज्ञानस्वरूप नहीं होता। तो फिर उस तरह के पदार्थ के सयोग होने पर आत्मा अथवा जिसे ज्ञानी पुरुष मुख्य 'ज्ञानस्वरूप लक्षण-युक्त' कहते हैं, उस प्रकार के (घट-पट आदि, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश) पदार्थ मे किसी तरह उत्पन्न हो सकने योग्य नही। 'ज्ञानस्वरूप' यह आत्मा का मुख्य लक्षण है, और जड का मुख्य लक्षण 'उसके अभावरूप' है। उन दोनो का अनादि सहज स्वभाव है। ये, तथा इसी तरह के दूसरे हजारो प्रमाण आत्मा को 'नित्य' प्रतिपादन कर सकते हैं तथा उसका विशेष विचार करने पर नित्य रूप से सहज रूप आत्मा अनुभव मे भी आता है। इस कारण सुख-दुख आदि भोगने वाले उससे निवृत्त होने वाले, विचार करने वाले, प्रेरणा करने वाले इत्यादि भाव जिसकी विद्यमानता से अनुभव में आते है, ऐसी वह आत्मा मुख्य चेतन (ज्ञान) लक्षण से युक्त है और उस भाव से (स्थिति से) वह सब काल मे रह सकने वाला 'नित्य पदार्थ' है। ऐसा मानने मे कोई भी दोष अथवा बाधा मालूम नही होती, बल्कि इससे सत्य के स्वीकार करने रूप-गुण की ही प्राप्ति होती है।

यह प्रश्न तथा तुम्हारे दूसरे बहुत से प्रश्न इस तरह के है कि जिनमे विशेष लिखने, कहने और समझाने की आवश्यकता है। उन प्रश्नो का उस प्रकार से उत्तर लिखा जाना हाल में कठिन होने से प्रथम तुम्हे षट्दर्शन समुच्चय ग्रन्थ भेजा था, जिसके बाँचने और विचार करने मे तुम्हें किसी भी अंश मे समाधान हो, और इस पत्र से भी कुछ विशेष अंश मे समाधान हो सकना संभव है। क्योकि इस सम्बन्ध मे अनेक प्रश्न उठ सकते हैं जिनके फिर-फिर समाधान होने मे, विचार करने से समाधान होगा।

(२) ज्ञान दशा में—अपने स्वरूप मे यथार्थ बोध से उत्पन्न हुई दशा में—वह

आत्मा निज भाव का अर्थात् ज्ञान, दर्शन (यथा-स्थित निश्चय) और सहज-समाधि परिणाम का कर्त्ता है; अज्ञान दशा में क्रोध, मान, माया, लोभ इत्यादि प्रकृतियो का कर्म है, और उस भाव के फल भोक्ता होने से प्रसगवश घट-पट आदि पदार्थों का निमित्त रूप से कर्ता है। अर्थात् घट पट आदि पदार्थो का मूल द्रव्यो का वह कर्त्ता नही, परन्तु उसे किसी आकार मे लाने रूप क्रिया का ही कर्त्ता है। यह जो पीछे की दशा कही है, जैनदर्शन उसे 'कर्म' कहता है, वेदान्त दर्शन उसे 'भ्रान्ति' कहता है, और दूसरे दर्शन भी इसी से मिलते-जुलते इसी प्रकार के शब्द कहते है। वास्तविक विचार करने से आत्मा घट-पट आदि का तथा क्रोध आदि का कर्त्ता नही हो सकती, है—वह केवल निजस्वरूप ज्ञान-परिणाम का ही कर्त्ता है—ऐसा स्पष्ट समझ मे आता है।

(३) अज्ञानभाव से किए हुए कर्म प्रारम्भकाल से बीजरूप होकर समय का योग पाकर फलरूप वृक्ष के परिणाम से परिणमते है, अर्थात् उन कर्मो को आत्मा को भोगना पडता है। जैसे अग्नि के स्पर्श से उष्णता का सम्बन्ध होता है और वह उसका स्वाभाविक वेदनारूप परिणाम होता है, वैसे ही आत्मा को क्रोध आदि भाव के कर्त्तापने से जन्म, जरा, मरण आदि वेदनारूप परिणाम होता है। इस बात का तुम विशेषरूप से विचार करना और उस सम्बन्ध में यदि कोई प्रश्न हो तो लिखना। क्योकि इस बात को समझकर उससे निवृत्त होने रूप कार्य करने पर जीव को मोक्ष दशा प्राप्त होती है।

प्रश्न (२)—ईश्वर क्या है ? वह जगत का कर्त्ता है, क्या वह सच है ?

उत्तर—(१) हम-तुम कर्म-बन्धन में फसे रहने वाले जीव हैं। उस जीव का सहज स्वरूप अर्थात् कर्मरहितपना—मात्र एक आत्मा स्वरूप जो स्वरूप है, वही ईश्वरपना है। जिसमे ज्ञान आदि ऐश्वर्य है वह ईश्वर कहे जाने योग्य है और वह ईश्वरपना आत्मा का सहज स्वरूप है। जो स्वरूप कर्म के कारण मालूम नही होता, परन्तु उस कारण को अन्य स्वरूप जानकर जब आत्मा की ओर दृष्टि होती है, तभी अनुक्रम से सर्वज्ञता आदि ऐश्वर्य उसी आत्मा मे मालूम होता है। और इससे विशेष ऐश्वर्ययुक्त कोई पदार्थ—कोई भी पदार्थ ईश्वर नही है इस प्रकार का निश्चय से मेरा अभिप्राय है।

(२) वह जगत का कर्ता नही है अर्थात् परमाणु आकाश आदि पदार्थ नित्य ही होने सभव हैं, वे किसी भी वस्तु मे से बनने सभव नही। कदाचित ऐसा मानें कि वे ईश्वर मे से बने है तो यह बात भी योग्य मालूम नही होती, क्योकि यदि ईश्वर को चेतन मानें तो फिर उससे आकाश वगैरह कैसे उत्पन्न हो सकते है ? क्योकि चेतन से जड़ की उत्पत्ति कभी सभव ही नही होती। यदि ईश्वर को जड़ माना जाय तो वह सहज ही अनैश्वर्यवान ठहरता है तथा उससे जीवरूप चेतन पदार्थ की उत्पत्ति भी नही हो सकती। यदि ईश्वर को जड और चेतन उभयरूप मानें तो फिर जगत भी जड चेतन उभयरूप होना चाहिये। फिर तो यह उसका ही दूसरा नाम ईश्वर रखकर सतोष रखने जैसा होता है। तथा जगत का नाम ईश्वर रखकर सतोष रख लेने की अपेक्षा जगत को जगत कहना ही विशेष योग्य है। कदाचित परमाणु, आदि को नित्य मानें और ईश्वर को कर्म आदि के फल देने वाला माने, तो भी यह बात सिद्ध होती हुई नही मालूम होती। इस विषय पर षट्दर्शन समुच्चय मे श्रेष्ठ प्रमाण दिये है।

प्रश्न (३)—मोक्ष क्या है ?

उत्तर – जिस क्रोध आदि अज्ञानाभाव मे देह आदि मे आत्मा को प्रतिबन्ध है, उससे सर्वथा निवृत्ति होना—मुक्ति होना—उसे ज्ञानियो ने मोक्ष पद कहा है। उसका थोड़ा सा विचार करने मे वह प्रमाणभूत मालूम होता है।

प्रश्न (४)—मोक्ष मिलेगा या नही ? क्या यह इसी देह मे निश्चित रूप से जाना जा सकता है ?

उत्तर—जैसे यदि एक रस्सी के बहुत से बन्धनों से हाथ बाध दिया गया हो, और उनमे से क्रम-क्रम से ज्यो-ज्यों बन्धन खुलते जाते है त्यो-त्यो उस बन्धन की निवृत्ति का अनुभव होता है, और वह रस्सी बलहीन होकर स्वतन्त्रभाव को प्राप्त होती है, ऐसा मालूम होता है, अनुभव में आता है, उसी तरह आत्मा को अज्ञानभाव के अनेक परिणाम रूप बन्धन का समागम लगा हुआ है, वह बन्धन ज्यो-ज्यो छूटता जाता है, त्यो-त्यो मोक्ष का अनुभव होता है। और जब उसकी अत्यन्त अल्पता हो जाती है तब सहज ही आत्मा में निजभाव प्रकाशित होकर अज्ञान-भावरूप बन्धन से छूट सकने का अवसर आता है, इस प्रकार स्पष्ट अनुभव होता है तथा सम्पूर्ण आत्माभाव समस्त अज्ञान आदि भाव से निवृत होकर इसी देह मे रहने पर भी आत्मा को प्रगट होता है, और सर्व सम्बन्ध से केवल अपनी भिन्नता ही अनुभव में आती है, अर्थात् मोक्ष-पद इस देह में भी अनुभव मे आने योग्य है।

प्रश्न (५)—ऐसा पढ़ने मे आया है कि मनुष्य देह छोडने के बाद कर्म के अनुसार जानवरो मे जन्म लेता है; वह पत्थर और वृक्ष भी हो सकता है, क्या यह ठीक है ?

उत्तर.—देह छोड़ने के बाद उपार्जित कर्म के अनुसार ही जीव की गति होती है, इससे वह तिर्यंच (जानवर) भी होता है; और पृथ्वीकाय अर्थात् पृथ्वीरूप शरीर भी धारण करता है और बाकी की दूसरी चार इन्द्रियो के बिना भी जीव को कर्म के भोगने का प्रसंग आता है, परन्तु वह सर्वथा पत्थर अथवा पृथ्वी ही हो जाता है, यह बात नहीं है। वह पत्थर रूप काया धारण करता है और उसमे भी अव्यक्त भाव से जीव, जीवरूप से ही रहता है। वहां दूसरी चार इन्द्रियो का अव्यक्त (अप्रगट) पनाह होने से वह पृथ्वीकाय रूप जीव कहे जाने योग्य है। क्रम-क्रम से ही उस कर्म को भोग कर जीव निवृत्त होता है। उस समय केवल पत्थर का दल परमाणु रूप से रहता है, परन्तु उसमें जीव का सम्बन्ध चला आता है, इसलिए उसे आहार आदि सज्ञा नही होती। अर्थात् जीव सर्वथा जड़—पत्थर—हो जाता है, यह बात नही है। कर्म की विषमता से चार इन्द्रियो का अव्यक्त समागम होकर केवल एक स्पर्श रूप इन्द्रिय रूप से जीव को जिस कर्म से देह का समागम होता है, उस कर्म के भोगते हुए वह पृथ्वी आदि में जन्म लेता है, परन्तु वह सर्वथा पृथ्वी रूप अथवा पत्थर रूप नही हो जाता, जानवर होते समय सर्वथा जानवर भी नही हो जाता। जो देह है वह जीव का वेषधारीपना है, स्वरूपपना नही है।

प्रश्नोत्तर (६-७)—इसमे छठे प्रश्न का भी समाधान आ गया है।

इसमे सातवें प्रश्न का भी समाधान आ गया है, कि केवल पत्थर अथवा पृथ्वी किसी कर्म का कर्त्ता नही है। उनमे आकर उत्पन्न हुआ जीव ही कर्म का कर्त्ता है; और वह भी दूध और पानी की तरह है जैसे दूध और पानी का सयोग होने पर भी दूध दूध है और पानी पानी ही है, उसी तरह एकेन्द्रिय आदि कर्मबन्ध से जीव का पत्थरपना—जडपना—मालूम होता है, तो भी वह जीव अन्तर मे तो जीवरूप ही है, और वहा भी वह आहार, भय आदि सज्ञापूर्वक ही रहता है, जो अव्यक्त जैसी है।

प्रश्न (८)—आर्यधर्म क्या है ? क्या सबकी उत्पत्ति वेद से ही हुई है ?

उत्तर —(१) आर्यधर्म की व्याख्या करते हुए सबके सब अपने पक्ष को ही आर्यधर्म कहना चाहते हैं। जैन जैनधर्म को, बौद्ध बौद्धधर्म को, वेदान्ती वेदान्त धर्म को आर्यधर्म कहे, यह साधारण बात है। फिर भी ज्ञानी पुरुष तो जिससे आत्मा को निज स्वरूप की प्राप्ति हो, ऐसा जो आर्य (उत्तम) मार्ग है उसे ही आर्यधर्म कहते है, और ऐसा ही योग्य है।

(२) सबकी उत्पत्ति वेद मे से होना सम्भव नही हो सकता। वेद मे जितना ज्ञान कहा गया है उससे हजारगुना आशययुक्त ज्ञान श्री तीर्थङ्कर आदि महात्माओ ने कहा है, ऐसा मेरे अनुभव मे आता है, और इससे मैं ऐसा मानता हूँ कि अल्प वस्तु मे से सम्पूर्ण वस्तु उत्पन्न नही हो सकती। इस कारण वेद मे से सबकी उत्पत्ति मानना योग्य नही है। हाँ, वैष्णव आदि सम्प्रदायो की उत्पत्ति उसके आश्रय से मानने मे कोई बाधा नही है। जैन-बौद्ध के अन्तिम महावीरादि महात्माओ के पूर्व वेद विद्यमान थे, ऐसा मालूम होता है। तथा वेद बहुत प्राचीन ग्रन्थ है, ऐसा भी मालूम होता है, परन्तु जो कुछ प्राचीन हो, वह सम्पूर्ण हो अथवा सत्य हो, ऐसा नही कहा जा सकता, तथा जो पीछे से उत्पन्न हो, वह सब सम्पूर्ण और असत्य हो ऐसा भी नही कहा जा सकता। बाकी तो वेद के समान अभिप्राय और जैन के समान अभिप्राय अनादि से चला आ रहा है। सर्वभाव अनादि ही है, मात्र उनका रूपान्तर हो जाता है, सर्वथा उत्पत्ति अथवा सर्वथा नाश नही होता। वेद, जैन, और सबके अभिप्राय अनादि है ऐसा मानने मे कोई बाधा नही है, फिर उसमे किस बात का विवाद हो सकता है ? फिर भी इनमें विशेष बलवान सत्य अभिप्राय किसका मानना योग्य है, इसका हम तुम सबको विचार करना चाहिए।

प्रश्न (९)—वेद किसने बनाये ? क्या वे अनादि है। यदि वेद अनादि हो तो अनादि का क्या अर्थ है ?

उत्तर —(१) वेदो की उत्पत्ति बहुत समय पहले हुई है।

(२) पुस्तक रूप से कोई भी शास्त्र अनादि नही, और उसमें कहे हुए अर्थ के अनुसार तो सभी शास्त्र अनादि हैं। क्योकि उस-उस प्रकार का अभिप्राय भिन्न-भिन्न जीव भिन्न-भिन्न रूप से कहते आये है, और ऐसा ही होना सम्भव है। क्रोध आदि भाव भी अनादि है। हिंसा आदि धर्म भी अनादि है और अहिंसा आदि धर्म भी अनादि है। केवल जीव को हितकारी किया है, इतना विचार करना ही कार्यकारी है। अनादि तो दोनो है, फिर कभी किसी का कम मात्रा मे बल होता है और कभी किसी का विशेष मात्रा में बल होता है।

प्रश्न (१०)—गीता किसने बनाई है ? वह ईश्वरकृत तो नही है ? यदि ईश्वरकृत हो तो उसका कोई प्रमाण है।

उत्तर —ऊपर कहे हुए उत्तरो से इसका बहुत कुछ समाधान हो सकता है। अर्थात् 'ईश्वर' का अर्थ ज्ञानी (सम्पूर्ण ज्ञानी) करने से तो वह ईश्वरकृत हो सकती है, परन्तु नित्य, निष्क्रिय आकाश की तरह ईश्वर के व्यापक स्वीकार करने पर उस प्रकार की पुस्तक आदि की उत्पत्ति होना सम्भव नही। क्योकि वह तो साधारण कार्य है, जिसका कर्तृत्व आरम्भपूर्वक ही होता है—अनादि नही होता।

गीता वेदव्यासजी की रची हुई पुस्तक मानी जाती है, और महात्मा श्रीकृष्ण ने अर्जुन को इस प्रकार का बोध किया था, इसलिए मुख्यरूप से श्रीकृष्ण ही उसके कर्त्ता कहे जाते है, यह बात सम्भव है। ग्रन्थ श्रेष्ठ है। उस तरह का आशय अनादि काल से चला आ रहा है, परन्तु वे ही श्लोक अनादि से चले आते हो, यह सम्भव नही है, तथा निष्क्रिय ईश्वर से उसकी उत्पत्ति होना भी सम्भव नही। वह क्रिया किसी सक्रिय अर्थात् देहधारी से ही होने योग्य है, इसलिए जो सम्पूर्ण ज्ञानी है वह ईश्वर है, और उसके द्वारा उपदेश किए हुए शास्त्र ईश्वरीय शास्त्र है, यह मानने मे कोई बाधा नही है।

प्रश्न (११)—पशु आदि के यज्ञ करने से थोडा सा भी पुण्य होता है, क्या यह सच है ?

उत्तर :—पशु के वध से, होम से अथवा उसे थोड़ा-सा भी दुःख देने से पाप ही होता है। फिर उसे यज्ञ मे करो अथवा चाहे तो ईश्वर के धाम मे बैठकर करो परन्तु यज्ञ मे जो दान आदि क्रियाएँ होती है, वे कुछ पुण्य की कारणभूत है। फिर भी हिंसा-मिश्रित होने से उनका भी अनुमोदन करना योग्य नही है।

प्रश्न (१२)—जिस धर्म को आप उत्तम कहते हो, क्या उसका कोई प्रमाण दिया जा सकता है ?

उत्तर —प्रमाण तो कोई दिया न जाय, और इस प्रकार प्रमाण के बिना ही यदि उसकी उत्तमता का प्रतिपादन किया जाय तो फिर तो अर्थ-अनर्थ, धर्म-अधर्म सभी को उत्तम कहा जाना चाहिए। परन्तु प्रमाण से ही उत्तम-अनुत्तम की पहचान होती है। जो धर्म ससार के क्षय करने में सबसे उत्तम हो और निज स्वभाव मे स्थित कराने मे बलवान हो, वही धर्म उत्तम और वही धर्म बलवान है।

प्रश्न (१३)—क्या आप ख्रिस्टीधर्म के विषय मे कुछ जानते है ? यदि जानते है तो क्या आप अपने विचार प्रगट करेगे ?

उत्तर—ख्रिस्टीधर्म के विषयो मे साधारण ही जानता हूँ। भरत खण्ड के महात्माओ ने जिस तरह के धर्म की शोध की है, विचार किया है, उस तरह के धर्म का किसी दूसरे देश के द्वारा विचार नही किया गया, यह तो थोडे से अभ्यास से ही समझ मे आ सकता है। उसमे (ख्रिस्टीधर्म) जीव की सदा परवशता कही गई है, और वह दशा मोक्ष मे भी इसी तरह की मानी गई है, जिसमे

जीव के अनादि स्वरूप का तथा योग्य विवेचन नही है, जिसमे कर्मबन्ध की व्यवस्था और उसकी निवृत्ति भी जैसी चाहिए वैसी नही कही, उस धर्म का मेरे अभिप्राय के अनुसार सर्वोत्तम धर्म होना सम्भव नही है। ख्रिस्ती धर्म मे जैसा मैंने ऊपर कहा, उस प्रकार जैसा चाहिए वैसा समाधान देखने मे नही आता। इस वाक्य को मैंने मतभेद के वश होकर नही लिखा अधिक पूछने योग्य मालूम हो तो पूछना—तब विशेष समाधान हो सकेगा।

प्रश्न (१४)—वे लोग ऐसा कहते हैं कि बाइबल ईश्वर-प्रेरित है। ईसा ईश्वर का अवतार है—वह उसका पुत्र है और था।

उत्तर —यह बात तो श्रद्धा से ही मान्य हो सकती है, परन्तु यह प्रमाण से सिद्ध नही होती। जो बात गीत और वेद के ईश्वर कर्तृत्व के विषय मे लिखी है, वही बात बाइबल के सम्बन्ध मे भी समझना चाहिए। जो जन्म-मरण से मुक्त हो, वह ईश्वर अवतार ले, यह सम्भव नही है। क्योकि राग-द्वेष आदि परिणाम ही जन्म के हेतु है, ये जिसके नही है, ऐसा ईश्वर का अवतार धारण करे, यह बात विचारने से यथार्थ नही मालूम होती। 'वह ईश्वर का पुत्र है और था' इस बात को भी यदि किसी रूपक के तौर पर विचार करे तो ही यह कदाचित ठीक बैठ सकती है, नही तो यह प्रत्यक्ष प्रमाण से बाधित है। मुक्त ईश्वर के पुत्र हो, यह किस तरह माना जा सकता है ? और यदि मानें भी तो उसकी उत्पत्ति किस प्रकार स्वीकार कर सकते है ? और यदि दोनो को अनादि मानें तो उनका पिता-पुत्र सम्बन्ध किस तरह ठीक बैठ सकता है ? इत्यादि बातें विचारणीय है जिनके विचार करने से मुझे ऐसा लगता है कि वह बात यथायोग्य नही मालूम हो सकती।

प्रश्न (१५)—पुराने करार मे जो भविष्य कहा गया है, क्या वह ईसा के विषय मे ठीक-ठीक उतरा है ?

उत्तर—यदि ऐसा हो तो भी उससे उन दोनो शास्त्रो के विषय मे विचार करना योग्य है तथा इस प्रकार का भविष्य भी ईसा को ईश्वरावतार कहने मे प्रबल प्रमाण नही है, क्योकि ज्योतिष आदि से भी महात्मा की उत्पत्ति जानी जा सकती है। अथवा भले ही किसी ज्ञान से वह बात कही हो, परन्तु वह भविष्यवेत्ता सम्पूर्ण मोक्ष-मार्ग का जानने वाला था यह बात जब तक ठीक-ठीक प्रमाणभूत न हो, तब तक वह भविष्य वगैरह केवल एक श्रद्धा—ग्राह्य प्रमाण ही है, और वह दूसरे प्रमाणो से बाधित न हो, यह बुद्धि मे नही आ सकता।

प्रश्न (१६)—इस प्रश्न मे 'ईसामसीह' के चमत्कार के विषय मे लिखा है।

उत्तर —जो जीव काया मे से सर्वथा निकलकर चला गया है, उसी जीव को यदि उसी काया मे दाखिल किया गया हो अथवा यदि दूसरे जीव को उसी काया मे दाखिल किया गया हो तो यह होना सम्भव नही है, और यदि ऐसा हो तो फिर कर्म आदि की व्यवस्था भी निष्फल ही हो जाय। बाकी योग आदि की सिद्धि से बहुत से चमत्कार उत्पन्न होते हैं; और उस प्रकार के बहुत से चमत्कार ईसा के हुए हो सो यह सर्वथा मिथ्या है, अथवा असम्भव है ऐसा

नही कह सकते। उस तरह सिद्धियाँ आत्मा के ऐश्वर्य के सामने अल्प हैं—आत्मा के ऐश्वर्य का महत्व इससे अनतगुना है। इसके विषय मे समागम होने पर पूछना योग्य है।

प्रश्न (१७)—आगे चलकर कौन सा जन्म होगा, क्या इस बात की इस जन्म में खबर पड़ सकती है ? अथवा पूर्व मे कौन स जन्म था इसकी कुछ खबर पड सकती है ?

उत्तर :—हा, यह हो सकता है, जिसे निर्मल ज्ञान हो गया हो उसे वैसा होना सम्भव है। जैसे बादल इत्यादि के चिन्हो के ऊपर से बरसात का अनुमान होता है, वैसे ही इस जीव की इस भव की चेष्टा के ऊपर से उसके पूर्व कारण कैसे होने चाहिएँ, यह भी समझ मे आ सकता है—चाहे थोडे ही अशो से समझ मे आये। इसी तरह वह चेष्टा भविष्य मे किस परिमाण को प्राप्त करेगी, यह भी उसके स्वरूप के ऊपर से जाना जा सकता है, और उसके विशेष विचार करने पर भविष्य मे किस भव का होना सम्भव है, तथा पूर्व मे कौन सा भव था, यह भी अच्छी तरह विचार में आ सकता है।

प्रश्न (१८)—दूसरे भव की खबर किसे पड सकती है ?

उत्तर :—इस प्रश्न का उत्तर ऊपर आ चुका है।

प्रश्न (१९)—जिन मोक्ष-प्राप्त पुरुषो के नाम का आप उल्लेख करते हो, वह किस आधार से करते हो ?

उत्तर —इस प्रश्न को यदि मुझे खास तौर पर लक्ष्य करके पूछते हो तो उसके उत्तर मे यह कहा जा सकता है कि जिसकी ससार दशा अत्यन्त परिक्षीण हो गई है, उसके वचन इस प्रकार के सम्भव है, उसकी चेष्टा इस प्रकार की सम्भव है इत्यादि अश से भी अपनी आत्मा में जो अनुभव हुआ हो, उसके आधार से उन्हे मोक्ष हुआ कहा जा सकता है, प्राय करके वह यथार्थ ही होता है। ऐसा मानने मे जो प्रमाण है वे भी शास्त्र आदि से जाने जा सकते है।

प्रश्न (२०)—बुद्धदेव ने भी मोक्ष नही पाई, यह आप किस आधार से कहते हो ?

उत्तर :—उनके शास्त्र-सिद्धान्तो के आधार से। जिस तरह से उनके शास्त्र-सिद्धान्त है, यदि उसी तरह उनका अभिप्राय हो तो वह अभिप्राय पूर्वापर विरुद्ध भी दिखाई देता है, और वह सम्पूर्ण ज्ञान का लक्षण नही है।

जहाँ सम्पूर्ण ज्ञान नही होता वहा सम्पूर्ण राग-द्वेष का नाश होना सम्भव नही। जहा वैसा हो वहा ससार का होना सम्भव है। इसलिए उन्हे सम्पूर्ण मोक्ष मिली हो, ऐसा नही कहा जा सकता। और उनके कहे हुए शास्त्रो मे जो अभिप्राय है उसको छोड़कर उसका कुछ दूसरा ही अभिप्राय था, उसे दूसरे प्रकार से तुम्हे और हमें जानना कठिन पडता है, और फिर भी यदि कहे कि बुद्धदेव का अभिप्राय कुछ दूसरा ही था तो उसे कारणपूर्वक कहने से वह प्रमाणभूत न समझा जाय, यह बात नही है।

प्रश्न (२१)—दुनिया की अन्तिम स्थिति क्या होगी ?

उत्तर :—सब जीवो को सर्वथा मोक्ष हो जाय, अथवा इस दुनिया का सर्वथा नाश ही

हो जाये, ऐसा होना मुझे प्रमाणभूत नही मालूम होता। इसी तरह के प्रवाह मे उसकी स्थिति रहती है। कोई भाव रूपान्तरित होकर क्षीण हो जाता है, तो कोई वर्धमान होता है, वह एक क्षेत्र मे बढता है, तो दूसरे क्षेत्र मे घट जाता है, इत्यादि रूप से इस सृष्टि की स्थिति है। इसके ऊपर से और बहुत ही गहरे विचार मे उतरने के पश्चात् ऐसा कहना सम्भव है कि यह सृष्टि सर्वथा नाश हो जाय, अथवा इसकी प्रलय हो जाय, यह कहना सम्भव नही। सृष्टि का अर्थ एक इसी पृथ्वी को नही समझना चाहिए।

प्रश्न (२२)—इस अनीति मे से सुनीति उद्भूत होगी, क्या यह ठीक है ?

उत्तर :—इस प्रश्न का उत्तर सुनकर जो जीव अनीति की इच्छा करता है, उसके लिए इस उत्तर को उपयोगी होने देना योग्य नही। नीति-अनीति सर्वभाव अनादि हैं। फिर भी हम-तुम अनीति का त्याग करके यदि नीति को स्वीकार करे, तो इसे स्वीकार किया जा सकता है, और यही आत्मा का कर्तव्य है। और सब जीवो की अपेक्षा अनीति दूर करके नीति का स्थापन किया जाय, यह वचन नही कहा जा सकता; क्योकि एकान्त से उस 'कार की स्थिति का हो सकना सम्भव नही।

प्रश्न (२३)—क्या दुनिया की प्रलय होती है ?

उत्तर :—प्रलय का अर्थ यदि सर्वथा नाश होना किया जाय तो यह बात ठीक नही। क्योकि पदार्थ का सर्वथा नाश हो जाना सम्भव नही है। यदि प्रलय का अर्थ सब पदार्थो का ईश्वर आदि मे लीन होना किया जाय तो किसी अभिप्राय से यह बात स्वीकृत हो सकती है, परन्तु मुझे यह सम्भव नही लगती। क्योकि सब पदार्थ सब जीव इस प्रकार समपरिणाम को किस तरह प्राप्त कर सकते है, जिससे इस प्रकार का सयोग बने ? और यदि उस प्रकार के परिणाम का प्रसग आये भी तो फिर विषमता नही हो सकती।

यदि अव्यक्त रूप से जीवन मे विषमता और व्यक्त रूप से समता के होने को प्रलय स्वीकार करे तो भी देह आदि सम्बन्ध के बिना विषमता किस आधार से रह सकती है ? यदि देह आदि का सम्बन्ध माने तो सबको एकेन्द्रियपना मानने का प्रसग आये, और वैसा मानने से तो बिना कारण ही दूसरी गतियो का निषेध मानना चाहिए—अर्थात् ऊची गति के जीव को यदि उस प्रकार के परिणाम का प्रसग दूर होने आया हो तो उसके प्राप्त होने का प्रसग उपस्थित हो, इत्यादि बहुत से विचार उठते है। अतएव सर्व जीवो की अपेक्षा प्रलय होना सम्भव नही है।

प्रश्न (२४)—अनपढ को भक्ति करने से मोक्ष मिलती है, क्या यह सच है ?

उत्तर :—भक्ति ज्ञान का हेतु है। ज्ञान मोक्ष का हेतु है। जिसे अक्षरज्ञान न हो यदि उसे अनपढ कहा हो तो उसे भक्ति प्राप्त होना असम्भव है, यह कोई बात नही है। प्रत्येक जीव ज्ञानस्वभाव से युक्त है। भक्ति के बल से ज्ञान निर्मल होता है। सम्पूर्ण ज्ञान की आवृत्ति

हुए विना सर्वथा मोक्ष हो जाय, ऐसा मुझे मालूम नही होता, और जहाँ सम्पूर्ण ज्ञान है वहाँ सर्व भाषा-ज्ञान समा जाता है, यह कहने की भी आवश्यकता नही। भाषाज्ञान मोक्ष का हेतु है? तथा, वह जिसे न हो उसे वाकी दूसरी उपासना सर्वथा मोक्ष का हेतु नही है—वह उसके साधन का ही हेतु होती है। वह भी निश्चय से हो ही, ऐसा नही कहा जा सकता।

प्रश्न (२५)—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर कौन थे?

उत्तर :—सृष्टि के हेतु रूप तीनो गुणों को मानकर उनके आश्रम से उनका यह रूप वताया हो, तो यह वात ठीक वैठ सकती है, तथा उस प्रकार के दूसरे कारणो से उन ब्रह्मा आदि का स्वरूप समझ मे आता है परन्तु पुराणो में जिस प्रकार से उनका स्वरूप कहा है, वह स्वरूप उसी प्रकार से है, ऐसा मानने मे मेरा विशेप झुकाव नही है। क्योकि उनमे बहुत से रूपक उपदेश के लिए कहे हो, ऐसी भी मालूम होता है। फिर भी उसमे उनका उपदेश के रूप में लाभ लेना, और ब्रह्मा आदि के स्वरूप का सिद्धान्त करने की जजाल मे न पड़ना, यही मुझे ठीक लगता है।

प्रश्न (२६)—यदि मुझे सर्प काटने आवे तो उस समय मुझे उसे काटने देना चाहिए या उसे मार डालना चाहिए? यहाँ ऐसा मान लेते हैं कि उसे किसी दूसरी तरह हटाने की मुझमें शक्ति नही है?

उत्तर —सर्प को तुम्हें काटने देना चाहिए, यह काम वताने के पहले तो कुछ सोचना पड़ता है, फिर भी यदि तुमने यह जान लिया हो कि देह अनित्य है, तो फिर इस असारभूत देह की रक्षा के लिए, जिसकी उसमे प्रीति है, ऐसे सर्प को मारना तुम्हें कैसे योग्य हो सकता है? जिसे आत्महित की चाहना है, उसे तो फिर अपनी देह को छोड देना ही योग्य है। कदाचित यदि किसी को आत्म-हित की इच्छा न हो तो उसे क्या करना चाहिए? तो इसका उत्तर यही दिया जा सकता है कि उसे नरक आदि मे परिभ्रमण करना चाहिए, अर्थात् सर्प को मार देना चाहिए। परन्तु ऐसा उपदेश हम कैसे कर सकते है? यदि अनार्य-वृत्ति हो तो उसे मारने का उपदेश किया जाय, परन्तु वह तो हमें और तुम्हें स्वप्न मे भी न हो, यही इच्छा करना योग्य है।

अब सक्षेप में इन उत्तरो को लिखकर पत्र समाप्त करता हूँ। पट्दर्शन समुच्चय के समझने का विशेप प्रयत्न करना। मेरे इन प्रश्नोत्तरो के लिखने के सकोच से तुम्हें इनका समझना विशेप आकुलताजनक हो, ऐसा यदि जरा भी मालूम हो, तो भी विशेषता से विचार करना, और यदि कुछ भी पत्र द्वारा पूछने योग्य मालूम दे तो यदि पूछोगे यो प्राय करके उसका उत्तर लिखूंगा। विशेप समागम होने पर समाधान होना अधिक योग्य लगता है।

लिखित आत्मस्वरूप मे नित्य निष्ठा के हेतु भूत विचार की चिंता मे रहने वाले रायचन्द का प्रणाम!

वीर-भूमि पंजाब

सरदार इन्द्रजीतसिंह 'तुलसी'

भारत भूमि वीरगर्भा है। देश की रक्षा के अवसर पर सभी प्रातो के नर-नारी एक-दूसरे से आगे बढकर अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए आतुर रहते है। परन्तु भारत की तलवार पजाब मे कुछ अपनी विशेषताएँ है। देश का सीमांत प्रदेश होने के कारण यहाँ के वीर-पुरुषो ने समय-समय पर जो अपने जौहर दिखाए वह अन्य प्रातो के लिए ईर्ष्या की वस्तु है।

पजाब प्रदेश के निवासी वीर, साहसी, पराक्रमी और तेजस्वी हैं। सेना मे उनकी ही अधिक सख्या है। पजाब-केसरी लाला लाजपतराय, वीरो के सरदार भगतसिंह आदि नर-रत्नो को जन्म देने वाली यही वीर-भूमि है। यहा की मिट्टी में कुछ ऐसा आकर्षण है कि मनुष्य को कर्तव्यशील और साहसी बना देती है। देश के बँटवारा होने पर पजाब को अपरिमित हानि हुई, परन्तु साहसी पजाबियो ने उसकी रचमात्र भी परवा न करके नए सिरे से पजाब का निर्माण कर डाला। स्व० प्रधानमन्त्री प० जवाहरलालजी इस बात के लिए पजाब की बडी प्रशसा करते थे जो वास्तव मे उचित ही थी। दिल्ली मे कई प्रख्यात जैन परिवार पजाब के हैं जिन्होने अपने उद्यम, साहस और परिश्रम के बल पर धन के अर्जन तथा सामाजिक और देश-सम्बन्धी सेवा-कार्यो मे अच्छी ख्याति प्राप्त की है। लाला तनसुखराय जी भी पजाब (रोहतक) जिले से आकर दिल्ली में बसे थे। उन्होने अपने कार्यो से देश और समाज की प्रशसनीय सेवा की। वीर-भूमि पजाब के सम्बन्ध मे सरदार इन्द्रजीतसिंह तुलसी की एक कविता और एक पत्र प्रस्तुत करते है जो पजाबियो के भावो को दर्शाने के लिए अलम है।

पंजाब

जद जद बुलाया देश ने, पजाब अग्गे आ गया,
सब तो जियादा खून ते, धन दी आहुत्ती पा गया।
दित्ता सुहागन कत हैं, मावा ने दित्ता पुत्त है।
हर इक्क हिन्दी वास्ते, आई शहीदी रुत्त है।
इक इक बहादुर फौजदा, इक इक हिमालय बन गया,
मरदा होया होशियारसिंह, गौदा है जन गन मन गया।
निक्का जया सूबा किसे, मगया सी मैन्नू याद है।
हिन्दी जबा दे शोर ने, डगिया सी मैन्नू याद है।
सूबे ते हिन्दी वालेयो, पूरा होया हुने स्वाब है।
नेफा तो अज लद्दाख तक, पजाब ही पजाब है।

एक स्त्री का पति अगले मोर्चों की बर्फानी ऊँचाइयो मे दुश्मन का मुकाबला करते हुए शहीद हो गया। उसको पंजाब के मुख्यमत्री सरदार प्रतापसिंह कैरो ने पत्र लिखा—"मेरी लाड़ली, तू तो मेरी अपनी ही बच्ची है। तेरी जो कीमती चीज खो गई है, उसके नुकसान ने मेरी कमर

भी तोड दी हैं। लेकिन बिटिया, प्यारी चीजें सबको हमेशा प्यारी लगती हैं। तुम्हारा सरदार तुम्हें ही नहीं, सारे देश को प्यारा था, वाहेगुरु को प्यारा था, इसलिए वाहेगुरु को प्यारा हो गया। उसने वीरता के वे जौहर दिखाये हैं कि फरिश्ते भी उसकी जवाँमर्दी पर ईर्ष्यालु हो उठते। चीजें टूटने-फूटने के वास्ते ही बनी हैं। लेकिन तुम्हारी चीज इसलिए टूटी है कि देश न टूटे। तुम्हारी एक माग के सिन्दूर की जगह तुम्हारे दूल्हे ने देश की करोडो सुहागिनों की मांग मे सिन्दूर भर दिया है। तेरा बच्चा सारे देश का प्यारा बच्चा है। तेरा दुःख सारे देश का दु:ख है। हौसला कर मेरी बच्ची—हौसलाकर, और अपने बहादुर पति की आत्मा को प्रणाम करके बेशक कहदे कि वह विश्वास रखे कि उसकी इज्जत और आबरू की तरफ जिस किसी ने भी आँख उठाकर देखा तो मैं, तेरा बापू उस कमीने की आँखें फोड़ दूँगा।"

इस सदेश का जादू का प्रभाव उस नारी पर हुआ। उसने आंसुओं को पोंछकर बिखरे बालो को चेहरे पर से हटाया और तनकर बैठ गई है। उसने अपने बच्चे के सिर पर हाथ फेरकर कहा—मेरा भी एक सदेश मेरे स्नेहमयी पिता तक पहुँचा दीजिये—

"मै इसलिए नही रो रही हूँ कि जाने वाला क्यो गया? वह तो अमर हो गया। लेकिन दु:ख तो इस बात का है कि मेरे मासूम बच्चे करनैलसिंह की अगूरी भी नही फूटी। कब यह जवान होगा और कब दुश्मनो से बदला चुका सकेगा। मेरे आँसू तो यही वरदान माँग रहे हैं कि जल्दी बड़ा होकर मेरा करनैलसिंह भी फौज का करनैल बने।"

युद्ध में जाते हुए वीर माता का सदेश—"मेरे बेटे, तुम युद्ध भूमि की ओर चले हो, दुश्मन पर विजय प्राप्त करके ही लौटना। मर जाना लेकिन मेरा दूध हराम न करना। मैं तुम्हें विजयी देखना चाहती हूँ।"

"ऐ मेरे देश के सिपाहियो! भगवान तुम्हारी रक्षा करे। मुझे यह पता नही कि तुम किस कोख के जाए हो लेकिन यह अवश्य जानता हूँ कि वीरता, पौरुष, दिलेरी और देश-प्रेम के साथ-साथ इन्सानियत, सहृदयता, उदारता, भक्ति और शक्ति के गुण तुम्हारे रक्त मे मौजूद हैं। तुम्हारे रक्त के सिंचन ने बर्फ में आग के फूल खिला दिए हैं। जहाँ नग्न वृक्षों का शरीर ठिठुर-ठिठुर कर जम जाता है वहां तुम अग्नि-स्तम्भ बनकर खड़े हो।"

* * * *

हिन्द का जवाहर

महात्मा गांधी

पंडित जवाहरलाल हर तरह सुयोग्य हैं। उन्होंने वर्षो तक अनन्य योग्यता और निष्ठा के साथ महासभा (कांग्रेस) के मंत्री का काम किया है। अपनी बहादुरी, दृढ़ संकल्प, निष्ठा, सरलता, सच्चाई और धैर्य सपर्क में आये हैं। यूरोपीय राजनीति का जो सूक्ष्म परिचय उन्हें है, उससे उन्हें स्वदेश की राजनीति को समझने और निर्माण करने में बडी सहायता मिलेगी।

जिन्हें यह पता है कि जवाहरलाल का और मेरा सम्बन्ध है, वे यह भी जानते हैं कि वह सभापति हुए तो क्या और मैं हुआ तो क्या! विचार या बुद्धि के लिहाज से हममे मतभेद

भले ही हो, हमारे दिल तो एक है। दूसरे, यौवन-सुलभ उग्रता के रहते हुए भी, अपने कड़े अनुशासन और एकनिष्ठादि गुणो के कारण वह एक ऐसे अद्वितीय सखा है, जिनमे पूरा-पूरा विश्वास किया जा सकता है।

जहाँ उनमे एक योद्धा के समान साहस और चपलता है, वहाँ एक राजनीति की-सी बुद्धिमता तथा दूरन्देशी भी है। अनुशासन के वह पूरे भक्त हैं और ऐसे समय भी, जबकि अनुशासन मे रहना अपमान-सा प्रतीत होता था, उन्होने उसका कठोरता के साथ पालन करके बताया है। इसमे शक नही कि अपने आस-पास वालो के मुकाबले वह बहुत ज्यादा अतिवादी और गर्म दल के है, लेकिन साथ ही वह नम्र और व्यवहार-कुशल इतने है कि किसी बात पर इतना अधिक जोर नही देते कि वह अमान्य हो जाय। जवाहरलाल स्फटिक के समान शुद्ध हैं। उनकी सच्चाई के सम्बन्ध में तो शका की गु जाइश ही नही। वह एक निडर और निष्कलक निर्दोष सरदार हैं। राष्ट्र उनके हाथो मे सुरक्षित है।

भारत मे नवयुवको की कमी नही है, लेकिन जवाहरलाल के मुकाबले मे खड़े होने वाले किसी नौजवान को मैं नही जानता। इतना मेरे दिल मे उनके लिए प्रेम है, या कहिये कि मोह है। लेकिन यह प्रेम या मोह उनकी शक्ति के अनुसार स्थापित है और इसलिए मैं कहता हू कि जब तक उनके हाथ मे लगाम है, हम अपनी इच्छित वस्तु प्राप्त कर ले तो कितना अच्छा हो।

जवाहरलाल हिन्द का जवाहर सिद्ध हुआ है। उनके व्याख्यान मे उच्चतम विचार, मधुर और नम्र भाषा मे, प्रकट हुए है। अनेक विषयो का प्रतिपादन होने पर भी व्याख्यान छोटा है। आत्मा का तेज प्रत्येक वाक्य से झलकता है। कई लोगो के दिल मे जो भय था, भाषण के बाद वह सब मिट गया। जैसा उनका व्यख्यान था, वैसा ही उनका आचरण भी था। कांग्रेस के दिनो मे उन्होने अपना सारा काम स्वतन्त्रता और सपूर्ण न्याय-बुद्धि से किया और अपना काम सतत उद्यम से करते रहने के कारण सब कुछ ठीक समय पर निर्विघ्नता के साथ पूर्ण हुआ।

ऐसे वीर और पुण्य नवयुवक के सभापतित्व मे यदि हम कुछ न कर पायेंगे तो मुझे बड़ा आश्चर्य होगा। परन्तु यदि सेना ही नालायक हो तो वीर नायक भी कर क्या सकता है ? इसलिए हमे आत्म-निरीक्षण करना चाहिए। क्या हम जवाहरलाल के नेतृत्व के लिए योग्य है ? यदि है तो परिणाम शुभ ही होगे।

पण्डित नेहरू ने अपने देश और उसकी वेदी पर अपने जीवन की समस्त अभिलाषाओ तथा ममताओ का बलिदान किया है। सबसे बड़ी विशेषता की बात यह है कि उन्होंने किसी दूसरे देश की सहायता से मिलनेवाली अपने देश की आजादी को कभी सम्मानपूर्ण नही समझा।

हमे अलग करने के लिए केवल मतभेद ही काफी नही है। हम जिस क्षण से सहकर्मी बने है, उसी क्षण से हमारे बीच मे मतभेद रहा है, लेकिन फिर भी मै वर्षो से कहता रहा हूँ और अब भी कहता हूँ कि जवाहरलाल मेरा उत्तराधिकारी होगा।..... वह कहता है कि मेरी भाषा उसकी समझ मे नही आती। वह यह भी कहता है कि उसकी भाषा मेरे लिए अपरिचित है। यह सही हो या न हो, किन्तु हृदयो की एकता मे भाषा बाधक नही होती।

और मै जानता हूँ कि जब मै चला जाऊगा, जवाहरलाल मेरी ही भाषा से बात करेगा।

आपके असली बादशाह जवाहरलाल है। वह ऐसे बादशाह है, जो हिन्दुस्तान को तो अपनी सेवा देना चाहते ही है, पर उसके मार्फत सारी दुनिया को अपनी सेवा देना चाहते है। उन्होने सभी देशो के लोगो से परिचय किया है।

जवाहर तो किसी से भी धोखा करने वाले नही है। जैसा उनका नाम है वैसा उनका गुण है।

वह आसानी से पिता, भाई, लेखक, यात्री, देशभक्त, या अतर्राष्ट्रीय नेता के रूप में प्रकाशमान है, तो भी पाठको के सामने इन लेखो में से उनका जो रूप उभरेगा वह अपने देश और उसकी स्वतन्त्रता के, जिसकी वेदी पर उन्होने अपनी दूसरी सभी कामनाओ का बलिदान कर दिया है, निष्ठावान भक्त का रूप होगा। यह श्रेय उन्हे मिलना ही चाहिए कि वह किसी अन्य देश की सहायता की कीमत पर अपने देश की आजादी प्राप्त करना शान के खिलाफ समझेंगे। उनकी राष्ट्रीयता अन्तर्राष्ट्रीयता-जैसी है।

ऋतुराज के प्रतीक

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

नये भारत के सिंहासन पर बैठने का अधिकार निस्सदेह जवाहरलाल को है। जवाहरलाल की शानदार भूमिका है, उनका सकल्प अडिग है। और उनके साहस को रोकने की क्षमता किसी में नही है। उन्हे शिखर पर पहुँचाने का काम सत्य के प्रति अटूट निष्ठा और उनके बौद्धिक चरित्र ने किया है। जवाहरलाल ने पवित्रता का मापदण्ड उस राजनैतिक उथल-पुथल के बीच कायम रखा है, जहा प्रवचना, आत्मप्रवचना अक्सर चारित्रिक शुद्धता को नष्ट कर देती है। सत्य को अगीकार करने में खतरा होने पर भी जवाहरलाल कभी सत्य से विमुख नही हुए और न सुविधा-जनक होने के कारण कभी भी असत्य से रिश्ता जोडा। छल-प्रपचपूर्ण कूटनीति से मिलने वाली निकृष्ट और सुगम सफलता से जवाहरलाल का प्रबुद्ध मस्तिष्क हमेशा स्पष्ट रूप से अलग रहा है। नीयत की यह पवित्रता और सत्य के प्रति अटूट लगन ही जवाहरलाल की सबसे बड़ी देन है।

जवाहरलाल हमारा ऋतुराज है, जो प्रतीक है यौवन के पुनरागमन का और विजयपूर्ण उल्लास का। वह प्रतीक है बुराई के विरुद्ध सघर्ष का और स्वतन्त्रता के लिए ऐसी निष्ठा का, जो किसी प्रकार का समझौता करना नही जानती।

सबके लाडले

—वल्लभभाई पटेल

जवाहरलाल और मैं साथ-साथ काग्रेस के सदस्य, आजादी के सिपाही, कांग्रेस की कार्यकारिणी और अन्य समितियो के सहकर्मी, महात्माजी के, जो हमारे दुर्भाग्य से हमे जटिल समस्याओ के साथ जूझने को छोड गये है, अनुयायी और इस विशाल देश के शासन-प्रबन्ध के गुरुतर भार के वाहक रहे है। इतने विभिन्न प्रकार के कर्मक्षेत्रो मे साथ रह कर और एक-दूसरे
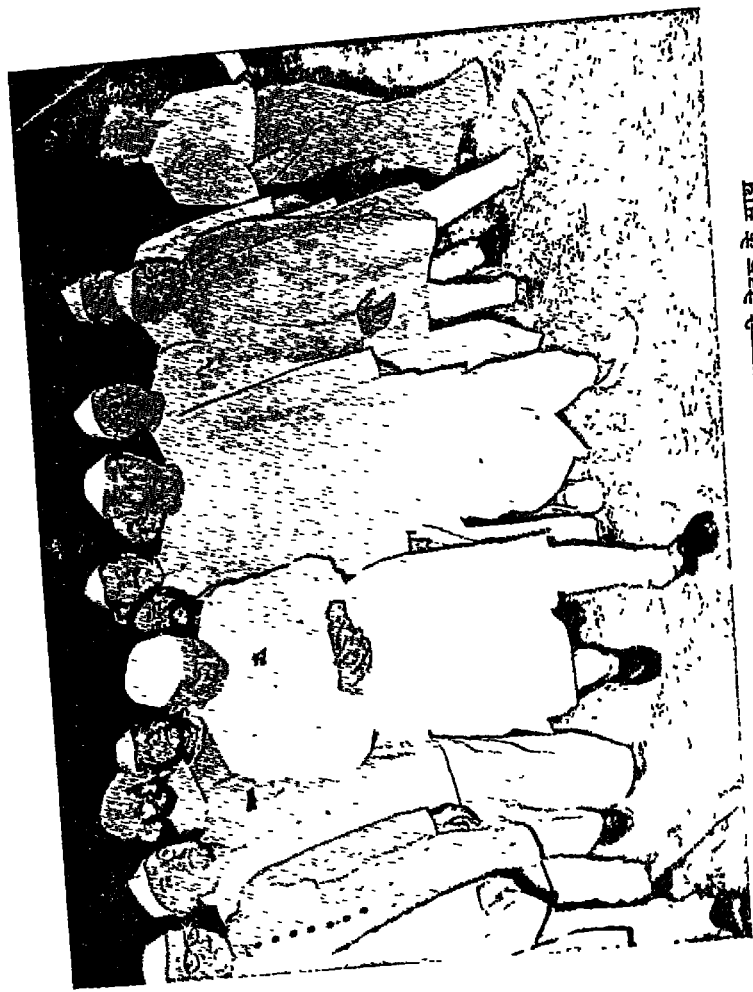
.. ।आ शान्ति के अग्रदूत स्व० प० जवाहरलालजी नेहरू के साथ
महावीर जयती के अवसर पर

लालाजी के साथ माननीय राज्यर्षि श्री पुरुषोत्तमदास टडन
महावीर जयती उत्सव मे पधारते समय

को जानकर हममे परस्पर स्नेह होना स्वाभाविक था। काल की गति के साथ वह स्नेह बढता गया है और आज लोग कल्पना भी नही कर सकते कि जब हम अलग होते है और अपनी समस्याओ और कठिनाइयो का हल निकालने के लिए उन पर मिल कर विचार नही कर सकते तो यह दूरी हमे कितनी खलती है। परिचय की इस घनिष्ठता, आत्मीयता और भ्रातृतुल्य स्नेह के कारण मेरे लिए यह कठिन हो जाता है कि सर्व-साधारण के लिए उसकी समीक्षा उपस्थित कर सकू। पर देश के आदर्श, जनता के नेता, राष्ट्र के प्रधान मत्री और सबके लाडले जवाहरलाल को, जिनके महान् कृतित्व का भव्य इतिहास सबके सामने खुली पोथी-सा है, मेरे अनुमोदन की कोई आवश्यकता नही है।

दृढ और निष्कपट योद्धा की भाति उन्होने विदेशी शासन से अनवरत युद्ध किया। युक्त-प्रान्त के किसान-आन्दोलन के संगठनकर्त्ता के रूप में पहली 'दीक्षा' पाकर वह अहिंसात्मक युद्ध की कला और विज्ञान मे पूरे निष्णात हो गये। उनकी भावनाओ की तीव्रता और अन्याय या उत्पीडिन के प्रति उनके विरोध ने शीघ्र ही उन्हे गरीबी पर जिहाद बोलने को बाध्य कर दिया। दीन के प्रति सहज सहानुभूति के साथ उन्होने निर्धन किसान की अवस्था सुधारने के आन्दोलन की आग मे अपने को झोक दिया। क्रमश उनका कार्यक्षेत्र विस्तीर्ण होता गया और शीघ्र ही वह उसके विशाल सगठनकर्ता हो गए, जिसे अपने स्वाधीनता युद्ध का साधन बनाने के लिए हम सब समर्पित थे। जवाहरलाल के ज्वलन्त आदर्शवाद, जीवन मे कला और सौन्दर्य के प्रति प्रेम, दूसरो को प्रेरणा और स्फूर्ति देने की अद्भुत आकर्षण-शक्ति और ससार के प्रमुख व्यक्तियो की सभा मे भी विशिष्ट रूप से चमकने वाले व्यक्तित्व ने, एक राजनैतिक नेता के रूप मे, उन्हे क्रमश उच्च से उच्चतर शिखरो पर पहुँचा दिया है। पत्नी की बीमारी के कारण की गई विदेश-यात्रा ने भारतीय राष्ट्रवाद-सम्बन्धी उनकी भावनाओ को एक आकाशीय अन्तर्राष्ट्रीय तल पर पहुँचा दिया। यह उनके जीवन और चरित्र के उस अन्तर्राष्ट्रीय झुकाव का आरम्भ था। जो अन्तर्राष्ट्रीय अथवा विश्व-समस्याओ के प्रति उनके रवैये मे स्पष्ट लक्षित होता है। उस समय से जवाहरलाल ने कभी पीछे मुडकर नही देखा। भारत में भी और बाहर भी उनका महत्व बढता ही गया है। उनकी वैचारिक निष्ठा, उदार प्रवृत्ति, पैनी, दृष्टि और भावनाओ की सच्चाई के प्रति देश और विदेशो की लाखो-लाख जनता ने श्रद्धाजलि अर्पित की है।

अतएव यह उचित ही था कि स्वातन्त्र्य की उषा से पहले के गहन अन्धकार मे वह हमारी मार्ग-दर्शक ज्योति बनें, और स्वाधीनता मिलते ही जब भारत के आगे सकट-पर सकट आ रहा हो तब हमारे विश्वास की धुरी हो और हमारी जनता का नेतृत्व करें। हमारे नये जीवन के पिछले कठिन वर्षो मे उन्होने देश के लिए जो अथक परिश्रम किया है, उसे मुझसे अधिक अच्छी तरह कोई नही जानता। मैने इस अवधि मे उन्हें अपने उच्च पद की चिन्ताओ और अपने गुरुतर उत्तरदायित्व के भार के कारण बडी तेजी के साथ बूढे होते देखा है। शरणार्थियो की सेवा में उन्होने कोई कसर नहीं उठा रखी और उनमे से कोई कदाचित ही उनके पास से निराश लौटा हो। राष्ट्र-सघ (कामनवैल्थ) की मन्त्रणाओं मे उन्होने उल्लेखनीय भाग लिया है और ससार के

मच पर भी उनका कृतित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण रहा है किन्तु इस सब के बावजूद उनके चेहरे पर जवानी की पुरानी रौनक कायम है। और वह सन्तुलन, मर्यादा, ज्ञान, धैर्य और मिलनसारी, जो आन्तरिक सयम और बौद्धिक अनुशासन का परिचय देते है, अब भी ज्यो-के-त्यो है। निस्सदेह उनका रोष कभी-कभी फूट पडता है, किन्तु उनका अधैर्य क्योकि न्याय और कार्य तत्परता के लिए होता है और अन्याय या धीगा-धीगी को सहन नही करता, इसलिए ये विस्फोट प्रेरणा देने वाले ही होते हैं और मामलो को तेजी तथा परिश्रम के साथ सुलझाने मे मदद देते है। ये मानो सुरक्षित शक्ति है, जिनकी कुमुक से आलस्य, दीर्घसूत्रता और लगन या तत्परता की कमी पर विजय प्राप्त हो जाती है।

आयु मे बडे होने के नाते मुझे कई बार उन्हे उन समस्याओ पर परामर्श देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, जो शासन-प्रबन्ध या सगठन-क्षेत्र मे हम दोनो के सामने आती रही है। मैंने उन्हे सदैव सलाह लेने को तत्पर और मानने को राजी पाया है। कुछ स्वार्थ-प्रेरित लोगो ने हमारे विषय में भ्रान्तिया फैलाने का यत्न किया है और कुछ भोले व्यक्ति उन पर विश्वास भी कर लेते है, किन्तु वास्तव मे हम लोग आजीवन सहकारियो और बन्धुओ की भाति साथ काम करते रहे है। अवसर की माग के अनुसार हमने परस्पर एक-दूसरे के दृष्टिकोण के अनुसार अपने को बदला है और एक-दूसरे के मतामत का सर्वदा सम्मान किया है, जैसा कि गहरा विश्वास होने पर ही किया जा सकता है। उनके मनोभाव युवकोचित उत्साह से लेकर प्रौढ गम्भीरता तक बराबर बदलते रहते है। और उनमे वह मानसिक लचीलापन है, जो दूसरो को झेल भी लेता है और निरुत्तर भी कर देता है। क्रीडारत बच्चो मे और विचार-सलग्न वूढो में जवाहरलाल समान भाव से भागी हो जाते है। यह लचीलापन और बहुमुखता ही उनके अजस्र यौवन का, उनकी अद्‌भुत स्फूर्ति और ताजगी का रहस्य है।

उनके महान् और उज्ज्वल व्यक्तित्व के साथ इन थोडे से शब्दो में न्याय नही किया जा सकता। उनके चरित्र और कृतित्व का बहुमुखी प्रसार अकन से परे है। उनके विचारो मे कभी-कभी वह गहराई होती है, जिसका तल न मिले, किन्तु उनके नीचे सर्वदा एक निर्मल पारदर्शी खरापन और यौवन की तेजस्विता रहती है और इन गुणो के कारण सर्वमान्य, जाति, धर्म, देश की सीमाएँ पार कर, उनसे स्नेह करती है।

× × × ×

नेहरूजी की राष्ट्र को सौंपी गई आखिरी वसीयत, जो उन्होने २१ जून १९५४ को लिखी थी और जिसको निधन के बाद ३ जून, १९६४ को प्रसारित किया गया।

आखिरी वसीयत

मुझे, मेरे देश की जनता ने, मेरे हिन्दुस्तानी भाइयो और बहनो ने, इतना प्रेम और इतनी मुहब्बत दी है कि मैं चाहे जितना कुछ करूँ, वह उसके एक छोटे-से हिस्से का भी बदला नही हो सकता। सच तो यह है कि प्रेम इतनी कीमती चीज है कि इसके बदले कुछ देना मुमकिन नही। इस दुनिया मे बहुत से लोग है जिनको अच्छा समझकर, बडा मानकर पूजा गया, लेकिन भारत के लोगो ने छोटे और बडे, अमीर और गरीब सब तबको के बहिनो और भाइयो ने मुझे

इतना ज्यादा प्यार किया जिसका वयान करना मेरे लिए मुश्किल है। और जिससे मैं दब गया। मै आशा करता हूँ कि मैं अपने जीवन के वाकी वर्षो मे अपने देशवासियों की सेवा करता रहूँगा और उनके प्रेम के योग्य सावित होऊँगा।

वेशुमार दोस्तो और साथियो के मेरे ऊपर और भी ज्यादा अहसान है। हम वडे-वडे कामो मे एक-दूसरे के साथ रहे, शरीक रहे, मिल-जुलकर काम किये। यह तो होता ही है कि जब वड़े काम किए जाते है उनमे कामयावी भी होती है। नाकामयावी भी होती है। मगर हम सब शरीक रहे—कामयावी की खुशी मे भी और नाकामयावी के दुःख मे भी। मै चाहता हूँ और सच्चे दिल से चाहता हूँ, कि मेरे मरने के वाद कोई धार्मिक रस्म अदा न की जाय। मैं ऐसी वातों को मानता नही हूँ। और सिर्फ रस्म समझकर उसमे वँध जाना, धोके मे पडना मानता हूँ। मेरी इच्छा है कि जब मै मर जाऊँ तो मेरा दाह-सस्कार कर दिया जाए। अगर विदेश मे मरूँ तो मेरे शरीर को वही जला दिया जाय, और मेरी अस्थियाँ इलाहावाद भेज दी जाएँ। उनमे से मुट्ठी-भर गगा मे डाल दी जाएँ और उनके वड़े हिस्से के साथ क्या किया जाए, मै आगे वता रहा हू। उनका कुछ हिस्सा किसी हालत मे बचा न रखा जाय।

गगा मे अस्थियो का कुछ हिस्सा डलवाने के पीछे, जहाँ तक मेरा ताल्लुक है कोई धार्मिक ख्याल नही है। मुझे वचपन मे गगा और जमुना से लगाव रहा है। और जैसे-जैसे मैं वडा हुआ, यह लगाव वढता ही गया। मैंने मौसमो के वदलने के साथ इनमे वदलते हुए रग और रूप को देखा है। और कई वार मुझे याद आई उस इतिहास की, उन परम्पराओ की, पौराणिक गाथाओ की, उन गीतो और कहानियो की, जोकि कई युगो से उनके साथ जुड गई हैं और उनके बहते हुए पानी मे घुल-मिल गई है।

गगा तो विशेषकर भारत की नदी है। जनता की प्रिय है। जिससे लिपटी हुई हैं भारत की जातीय स्मृतियाँ, उसकी आशाएँ और उसके भय, उसके विजय गान, उसकी विजय और पराजय। गगा तो भारत की प्राचीन सभ्यता का प्रतीक रही है। निशानी रही है। सदा वदलती सदा वहती फिर वही गगा की गगा। वह मुझे याद दिलाती है हिमालय की, वर्फ से ढकी चोटियो की और गहरी घाटियो की जिनसे मुझे मुहव्वत रही है। उनके नीचे उपजाऊ और दूर-दूर तक फैले मैदानो की जहाँ काम करते मेरी ज़िन्दगी गुज़री है। मैंने सुवह की रोशनी मे गगा को मुस्कराते, उछलते-कूदते देखा है। और देखा है शाम के साए मे उदास काली-सी चादर ओढे हुए, भेद भरी जाडो मे सिमटी-सी आहिस्ते-आहिस्ते वहती सुन्दर धारा और वरसात मे दौडती हुई समुद्र की तरह चौडा सीना लिए हुए, और सागर को वरवाद करने की शक्ति लिए हुए, यही गगा मेरे लिए निशानी है। भारत की प्राचीनता की यादगार जो वहती हुई वर्तमान तक और वहती चली जा रही है। भविष्य के महासागर की ओर।

भले ही मैंने पुरानी परम्पराओ, रीति और रस्मो को छोड दिया है। और मै चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान इन रीति और रस्मो को तोड़ दे जिनमे वह जकडा है। और उसको आगे वढने से रोकती है। और देश मे रहने वालो मे फूट डालती हैं। जो वेशुमार लोगो को दवाये रखती है। और जो शरीर और आत्मा के विकास को रोकती है।

चाहे यह सब मैं चाहता हूँ । फिर भी मैं यह नही चाहता मैं अपने को इन पुरानी बातो से बिलकुल अलग कर लू । मुझे फख़ है इस शानदार उत्तराधिकार का—इस विरासत का जो हमारी रही है और हमारी है। और मुझे यह भी अच्छी तरह से मालूम है कि मैं भी इन सबो की तरह इस जजीर की एक कड़ी हूँ । जोकि कभी नही और कही नही टूटी । और जिसका सिल-सिला हिन्दुस्तान के अतीत के इतिहास के प्रारम्भ से चला आता है। यह सिलसिला मैं कभी नही तोड़ सकता क्योकि मै उसकी बेहद कद्र करता हूँ । और इससे मुझे प्रेरणा, हिम्मत, हौसला मिलता है। मेरी इस आकाक्षा की पुष्टि के लिए, भारत की सस्कृति को श्रद्धाजलि भेट करने के लिए मै यह दरख्वास्त करता हूँ कि मेरी भस्म की एक मुट्ठी इलाहाबाद के पास गगा मे डाल दी जाय जिससे कि वह महासागर में पहुँचे, जो हिन्दुस्तान को घेरे हुए है।

मेरे भस्म के बाकी हिस्से को क्या किया जाय ? मैं चाहता हू कि इसे हवाई जहाज में ऊचाई पर ले जाकर बिखेर दिया जाय, उन खेतो पर जहा भारत के किसान मेहनत करते है। ताकि वह भारत की मिट्टी मे मिल जाय और उसी का अग बन जाय ।

\+ + +

जयन्ती के जलूस का श्रेय

श्री आदीश्वरप्रसाद जैन M. A.

मन्त्री श्री, जैनाभिमण्डल

धर्मपुरा, दिल्ली ।

लाला तनसुखराय जी स्थानीय समाज के ही नही भारतीय जैन समाज मे एक आदर्श गौरव स्वरूप सफल कार्यकर्त्ता थे । सर्वप्रथम जैन मित्र-मण्डल की कमेटी ने जलूस निकालने का निश्चय किया तो लाला जी ने आगे आकर अपने तत्वावधान मे जलूस का नेतृत्व किया । यह कहते हुए बड़ा हर्ष होता है कि आज महावीर जयन्ती का जलूस जैन समाज के जलूसो मे एक आदर्श और महत्वपूर्ण है जिसका श्रेय लाला तनसुखराय जी को है। मैं उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ ।

\+ + +

धर्म और संस्कृति

णमो अरिहंताण, णमो सिद्धाण, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं।

अर्थ—अरहन्तो को नमस्कार हो, सिद्धो को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यों को नमस्कार हो और लोक के सब साधुओं को नमस्कार हो।

एसो पचणमोयारो, सव्व पावप्पणासणो,
मगलाणं च सव्वेसि, पढमं होइ मगलम।

यह नमस्कार मंत्र सब पापों का नाश करने वाला है और सब मंगलो में पहला मगल है।

जिन सासणस्य सारो, चउदस पुव्वाण जो समुद्धारो,
जस्समणे नवकारो ससारे तस्य कि कुणई।
एसो मगल निलओ भयविलओ सयल सघ सुहजणओ,
नवकार परममतो चिंति, अमित्त सुह देई।
नव कार ओ अन्नो सारो, मंतो न अत्थि तिय लोए,
तम्हाहु अणदिण चिय, पठियव्वो परम भत्तीए।
हरइ दुह कुणइ सुह जणइ जसं सोसए भवसमुद्द,
इह लोय परलोइय सुहाण, मूल नमोक्कारो।

यह णमोकार मत्र जिन शासन का सार चतुर्दश पूर्वो का समुद्धार है। जिसके मन में यह णमोकार महामन्त्र है, ससार उसका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता। यह मन्त्र मंगल का आगार, भय को दूर करने वाला, सम्पूर्ण चतुर्विध सघ को सुख देने वाला और चिन्तन मात्र से अपरिमित शुभफल को देने वाला है। तीनों लोको में णमोकार मत्र से बढ़कर कुछ सार नहीं है। इसलिए भक्तिभाव और श्रद्धापूर्वक णमोकार मत्र को पढ़ना चाहिए। यह दुःखों का नाश करने वाला, सुखो को देने वाला, यश को उत्पन्न करने वाला और संसार रूपी समुद्र से पार करने वाला है। इस मन्त्र के समान इहलोक और परलोक मे अन्य कुछ भी सुखदायक नहीं है।

मन्त्र ससार सारं, त्रिजगदनुपमं सर्व पापारिमन्त्रं,
ससारोच्छेद मन्त्र, विषम विषहरं कर्म निर्मूल मन्त्रम्।
मन्त्र सिद्धि प्रदान शिव सुखजननं, केवल ज्ञान मन्त्रम्,
मन्त्र श्री जैन मन्त्रं जप जप जपितं, जन्मनिर्वाणमन्त्रम्।

आकृष्टि सुर सम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यतां,
उच्चाट विपदां चतुर्गतिभुवां, विद्वेष मात्मैन सां।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं,
पापात्पंच नमस्क्रिया क्षरमयी, साराधना देवता।

अपवित्र पवित्रो वा सुस्थितो दुःस्थितो वा,
ध्यायेत्पच नमस्कार सर्वपापै प्रमुच्यते।
अपवित्र पवित्रो वा सर्वावस्था गतोऽपि वा,
य' स्मरेत्परमात्मान, स वाह्याभ्यन्तरे शुचि.।
अपराजित मन्त्रोऽय, सर्वविघ्न विनाशन,
मङ्गलेषु च सर्वेपु, प्रथम मगल मत. ।।५।।
विघ्नौघा प्रलय यान्ति, शाकिनी भूत पन्नगाः,
विषो निर्विषता याति स्तूयमाने जिनेश्वरे ।।६।।
अन्यथा शरण नास्ति, त्वमेव शरण मम,
तस्मात्कारुण्य भावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर ।।७।।

भारतेन्दु बाबू हरिशचन्द

जैन को नास्तिक भाखै कौन ?

परम धरम जो दया अहिंसा सोई आचरत जौन ।।
सत कर्मन को फल नित मानत अति विवेक के भौन ।।
तिन के मतहि बिरुद्ध कहत जो महा मूढ है तौन ।।
सब पहुँचत एक हि थल चाहो करो जौन पथ गौन ।
इन आँखिन सो तो सब ही थल सूझत गोपी रौन ।।
कौन ठाम जह प्यारो नाही भूमि अनल जल पौन ।
'हरीचद' ए मतवारे तुम रहत न क्यो गहि मौन ।।१।।

बात कोउ मूरख की यह मानो ।
हाथी मारै तौहू नाही जिन-मदिर मे जानो ।।
जग मे तेरे विना और है दूजो कौन ठिकानो ।
जहाँ लखो तह रूप तुम्हारो नैनन माहि समानो ।।
एक प्रेम है एकहि प्रन है हमरो एकहि बानो ।
'हरीचद' तब जग मे दूजो भाव कहा प्रगटानो ।।२।।

अहो तुम बहु बिधि रूप धरो ।
जब जब जैसो काम परै तब तैसो भेख करो ।।
कहु ईश्वर कहु बनत अनीश्वर नाम अनेक परो ।
सत पथहि प्रगटावन कारन लै सरूप विचारो ।।
जैन धरम मे प्रगट कियो तुम दया धर्म सगरो ।
'हरीचद' तुमको विनु पाए लरि-लरि जगत मरो ।।३।।

विभिन्न सम्प्रदायों में एक-सूत्रता

प्रबुद्धविचारक श्री सौभाग्यमल जैन, एडवोकेट
शुजालपुर म०प्र०

"माननीय श्री सौभाग्यमलजी प्रसिद्ध देशभक्त, कुशल राजनीतिज्ञ, प्रबुद्ध विचारक, और उच्चकोटि के लेखक है। मध्यभारत विधान सभा के आप अध्यक्ष रह चुके हैं। आपके हृदय मे इस बात से विशेष ठेस है कि जिस अनेकान्त शासन से विश्व के समस्त कार्य सचालित होते हैं जो जगत के विरोध को शान्त करता है। अपने गुणो के कारण भुवन का एकमात्र गुरु है। उसी शासन के मानने वाले सम्प्रदायवाद से सत्रस्त है। आज विश्व को अहिंसा की बडी आवश्यकता है। मै अपने मन मे इस विश्वास को सजोए हुए हूँ कि समाज मे कोई ऐमा महाभाग उत्पन्न हो, जो जैनधर्म को इनकी परम्पराओ को एक सूत्र मे आवद्ध कर सके जिससे समाज सगठित होकर शक्तिशाली रूप में अहिंसा का प्रचार कर सके। देश मे अहिंसात्मक विचार-आचार की प्रतिष्ठा हो और देश पुन एक बार 'जिओ और जीने दो' का मन्त्र उद्‌घोष करते हुए आचार मे उतार सके।"

एक प्रसिद्ध जैनाचार्य ने कहा है कि :—

जेणविणा विलोगस्स, ववहारो सव्वहान निव्वहई।
तस्सभुवनेक-गुरुणो, णमो अणेगत वादरस्य ॥

उक्त जैनाचार्य ने अनेकान्तवाद का महत्त्व सक्षिप्त में उपरोक्त गाथा मे स्पष्ट किया है। वह वस्तुत सत्य है। अनेकान्तवाद के आधार पर पर सारे विश्व का कार्यभार चल रहा है। इसी अनेकान्तवाद को त्रिभुवन-गुरु होने की सज्ञा दी गई है। हमारे प्राचीन जैन शास्त्रो, ग्रथो मे अनेकान्तवाद के विचार बीज मे विद्यमान थे। प्राचीन आचार्यो ने उन बीज रूपी विचारो को लेकर विपुल साहित्य का सृजन किया अनेकान्तवाद वास्तव मे तीर्थङ्करो की देन है। भगवान महावीर ने देश मे विभिन्न विचारधाराओ का प्रतिनिधित्व करने वाले—वाद—विद्यमान देखे तथा यह भी देखा कि उनमे से प्रत्येक के पास आशिक सत्य है, उनकी विचार-शैली एकांगी है। यदि यह विचारक अनेकान्त-मार्ग का अवलम्बन करे तो उन्हें—सत्य—का साक्षात्कार हो सकता है। भगवान महावीर ने बडे कष्ट से यह भी अनुभव किया कि इस प्रकार एकागी विचार-धारा का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्ति परस्पर वाद-विवाद करते हैं तथा धार्मिक असहिष्णुता के कारण अशान्ति उत्पन्न करते है। विभिन्न वादो के परस्पर सघर्ष ने केवल देश मे नही अपितु सारे ससार मे इस प्रकार का वातावरण-निर्माण किया है। इस कारण कोई व्यक्ति अपने से विभिन्न विचारधारा के प्रति न्याय करना चाहता है तो उसे अनेकान्त विचार-पद्धति से काम लेना होगा। अनेकान्त विचार-पद्धति मे वस्तु की अनन्त धर्मात्मकता का ध्यान रखा जाता है। यदि कोई व्यक्ति किसी वस्तु के सम्बन्ध मे कोई विश्लेषण करे तो वह वस्तु का समग्र चित्र नही हो सकता। यदि हम उसी वस्तु के विभिन्न पहलुओ को एकत्रित कर लें तो वस्तु का समग्र चित्र सम्मुख आ सकता है। अनेकान्त विचार-पद्धति से उत्पन्न . उद्‌भुत दृष्टिकोण को जैनाचार्यो

ने—स्याद्वाद—सज्ञा से अभिहित किया था। इस विचार-पद्धति को जिस भाषा मे व्यक्त किया जाता है—स्याद्वाद—है। कई जैनाचार्यो ने वर्गीकरण के लिए इसे सप्तभगी न्याय, सप्त नग आदि से विभाजित करने का प्रयत्न किया अपितु वास्तविकता यह है कि वस्तु जब अनन्त धर्मात्म कहे तो सत्य को भी वर्गीकरण के द्वारा सीमा मे नही बांधा जा सकता। सत्य के लिए भौगोलिक अथवा अन्य कोई भी सीमा नही होती। अतएव मोटे रूप से जैनाचार्यो ने 'नय' को केवल दो भागो मे विभक्त किया १ निश्चय नय २ व्यवहार नय—किन्तु विशालता की दृष्टि से नय की सख्या भी उतनी ही है कि जितनी विचार-पद्धति की।

वास्तव मे उपरोक्त दृष्टिकोण से विचार करने पर सहज ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकेगा कि सत्य का इजारा किसी मत, पन्थ या वाद के पास नही हो सकता। विभिन्न मतो, पन्थो, वादो को समत्व की दृष्टि से विचारा जावे तो उनमे एकता परिलक्षित होगी। विश्व मे धार्मिक असहिष्णुता का नाम शेष करने के लिए—समन्वय—की आवश्यकता है—सर्व धर्म समभाव—को जन्म देगी। इस युग के महान विचारक सन्त महात्मा गांधी ने सर्वधर्म समभाव को अपने द्वारा निर्दिष्ट ११ वृत्तो मे स्थान दिया है। गाधीजी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी ने उसे—अनाग्रही विचार—कहा। एक प्राचीन जैनाचार्य ने भारतीय षट्दर्शन मे विभिन्न नयो दृष्टिकोणो : के माध्यम से सत्य का दर्शन किया। चाहे तत्व की दृष्टि से, चाहे वाद की दृष्टि से ससार का कार्य—अनेकान्त विचार-पद्धति—के बिना—नही चल सकता। यही नही विश्व मे विभिन्नता का राज्य है किन्तु विभिन्नता मे ही एकता का दर्शन पाना जीवन के कलाकार का काम है। धार्मिक, सामाजिक, राजनीतिक, कौटुम्बिक आदि क्षेत्र मे यदि अनेकान्त विचार-पद्धति से काम न लिया जाये तो सघर्ष अवश्यम्भावी है। और उसका परिणाम—अशान्ति। मानव जाति अपनी अशान्ति, दुख, दु ख के कारणो के नाश के लिए—धर्म की शरण में जाती है वहाँ पर भी अशान्ति ही प्राप्त होगी इस स्थिति मे भी—जल मे आग—लग जावेगी इसमें सन्देह नही है।

यदि हम सूक्ष्मता से अध्ययन करे तो—अनेकान्त विचार-पद्धति—अहिंसा के विचार से ही हुआ है। अपने से भिन्न विचार रखने वाले के प्रति न्याय करने के लिए ये उसके विचार में भी सत्यता का अश विद्यमान होने के विचार को मानव जाति के उद्धारक तीर्थङ्करो ने जन्म दिया। कहा जाता है कि तीर्थङ्करो द्वारा उपदेशित मार्ग मे . चाहे उसे निर्ग्रन्थ धर्म के नाम से पहिचाना जावे चाहे जैन धर्म के नाम से अहिंसा मुख्य है। यह सत्य है कि अनेकान्त विचार-पद्धति अथवा स्याद्वाद बौद्धिक अहिंसा है। इस विचार-पद्धति से हम जीवन के किसी भी क्षेत्र मे समन्वयात्मक दृष्टिकोण ले सकते है। राजनीतिक क्षेत्र मे प्रजातान्त्रिक विचार इसी ओर ले जाते है। हमारे देश मे आज Parliamentary Democracy ससदीय प्रजा तान्त्रिक परम्परा चल रही है। इस परम्परा मे बहुमत दल द्वारा गठित सरकार, अल्पमत को अपने विचार प्रदर्शन का अधिकार मान्य करती है। उससे यथासभव लाभ उठाती है, यह राजनीतिक —स्याद्वाद—है। इसी प्रकार कौटुम्बिक क्षेत्र मे भी इस पद्धति का योगदान परस्पर कुटुम्बो मे, कुटुम्ब के सदस्यो में सघर्ष को टाल कर शान्तिपूर्ण वातावरण का निर्माण करेगा, इसमें सन्देह

नही। तात्पर्य यह है कि जैनाचार्यो ने अनेकान्तवाद को संसार गुरु की जो उपमा दी है वह सत्य है, अनूठी है तथा ससार को सच्चा मार्गदर्शन देने वाली है।

हम प्राचीन जैनाचार्यो के अनुपम विचारो को प्राचीन ग्रन्थो मे जब अध्ययन करते है तो पता चलता है कि उनमे कितनी उद्दात्त भावनाएँ विद्यमान थी। अनेकान्त विचार-पद्धति के अनुयायी जैनाचार्यो ने स्पष्ट रूप से घोषणा की कि :—

भवबीजाकुरजनना, रागाद्या क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा, हरौजिनोवा नमस्तमे ॥

उन्होने ब्रह्मा, विष्णु, हरि, जिन सब को नमस्कार किया है बशर्ते कि उनके पुनर्भव के बीज राग, द्वेष आदि क्षय हो चुके हो कितनी उदात्त भावना काम कर रही थी, कितना अनाग्रही विचार उनका था। यही नही उन्होने भारतीय दर्शनो मे आशिक सत्य की अनुभूति की। चूंकि विभिन्न दर्शन आशिक सत्य का प्रतिनिधित्व करते है इस कारण उनमे पाखण्ड है किन्तु उन्होने यह उद्घोष करने में भी हिचक नही की कि "जैन दर्शन" पाखण्डो का समूह है। कारण कि जैन दर्शन मे सब दर्शनो के आशिक सत्य का समन्वय करके पूर्ण सत्य बनाने का प्रयत्न किया गया है। उन्होने यह भी घोषणा की कि —

पक्षपातो नमे वीरे, न द्वेष कपिलादिपू।
युक्तिमद्वचन यस्य, तस्य कार्य परिग्रह ॥

उन्होने भगवान महावीर के वचनो के प्रति पक्षपात तथा कपिल आदि मुनियो के वचनो के प्रति द्वेष न होना प्रकट किया था। उन्होने केवल युक्ति-पुरस्सर वचनो को अगीकार करने का निश्चय किया :—

प्राचीन ग्रथ इस बात के साक्षी है कि भगवान महावीर के समय मे भगवान पार्श्वनाथ के अनुयायी श्रमण विद्यमान थे और दोनो परम्परा के प्रतिनिधित्व करने वाले श्रमण वर्ग के विचार तथा आचार मे कुछ भिन्नता थी। श्वेताम्बर परम्परा के एक उपदेशप्रद शास्त्र "उत्तराध्ययन" के ····वे अध्ययन मे दोनो परम्परा के प्रतिनिधि मुनि, केशी तथा गौतम स्वामी के मिलन का वर्णन है कितना सुन्दर, भव्य दृश्य था दोनो का शुभ मिलन। परम्परा भेद मे समन्वयात्मक दृष्टिकोण अपनाने का था। दोनो सफल हो गए और उन्होने देश मे अहिंसा धर्म का प्रचार किया। भगवान महावीर के समय मे भी श्रमणवर्ग ने वस्त्रधारी तथा नग्न दोनो प्रकार के श्रमण विद्यमान थे चाहे उनको वर्गीकरण के नाम पर "जिन कल्पी, स्थविर कल्पी" बताया गया हो किन्तु यह तथ्य है कि दोनो प्रकार के श्रमण भगवान महावीर द्वारा उपदेशित "अहिंसा धर्म" को देश भर मे फैलाने के भगीरथ-प्रयत्न मे जुटे हुए थे। भगवान महावीर के कुछ सौ वर्ष के पश्चात् तक आचार्य परम्परा रही। कहा जाता है कि भगवान महावीर के पश्चात् बारह वर्षीय दुष्काल मे कुछ श्रमण दक्षिण दिशा चले मे गये तथा कुछ उत्तर मे रह गये। दुष्काल समाप्ति के पश्चात् उत्तर-दक्षिण का मिलन हुआ तो सचेल, अचेल का प्रश्न महत्वपूर्ण बन गया। सचेल श्रमणो ने सचेलत्व का तथा अचेल श्रमणो ने नग्नत्व का एकान्त आग्रह किया।

परिणामस्वरूप विश्व की प्रत्येक समस्या का हल—अनेकान्त विचार-पद्धति से कर देने वाले दर्शन के अनुयायी स्वय श्वेताम्बर, दिगम्बर परम्परा मे विभाजित हो गये। यह एक आश्चर्य का विषय रहेगा कि इस प्रकार के उदार-विचारमना जैनाचार्य परस्पर के इस सचेलत्व तथा अचेलत्व के विचार का समन्वय क्यो नही कर पाये ? मेरी यह निश्चित मान्यता है कि यदि इस विचार-भेद का समन्वय तत्कालीन जैनाचार्य कर पाते तो उनके द्वारा 'जैन दर्शन' की अधिक सेवा हुई होती।

जैन दर्शन के रहस्यविद, शान्तिप्रिय जैनाचार्यों ने समय-समय पर दोनो परम्परा मे शान्ति स्थापनार्थ यह उद्घोष किया कि —

न श्वेताम्बरत्वे, न दिगम्बरत्वे। न तत्व वादे न च तर्क वादे ॥
न पक्ष सेवाऽऽश्रयेण मुक्ति। कषाय मुक्ति किल मुक्ति रेव ॥

उन्होने मुक्ति श्वेताम्बर अथवा दिगम्बरत्व मे नही माना, न तत्ववाद मे, न तर्कवाद में। उन्होने यह भी कहा कि पक्षपाती दृष्टिकोण से मुक्ति प्राप्ति नही हो सकती। मुक्ति तो केवल कषाय मुक्तता से ही प्राप्त होती है। मै नही जानता कि हमारे प्राचीन जैनाचार्यों ने जैन समाज के दोनो जैन श्वेताम्बर, दिगम्बर समाज मे परस्पर ऐक्य, सौहार्द, स्थापना के क्या-क्या प्रयत्न किये ? मेरी यह मान्यता है कि कई ऐसे जैनाचार्य हुए है जिन्होने शान्ति स्थापना मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। किन्तु यह भी एक तथ्य है कि आज दो सहस्र वर्ष से अधिक के काल मे दोनो परम्पराओ के पृथक् हो जाने के कारण अत्यन्त हानि हुई है। यह एक तथ्य है कि इन दोनो परम्पराओ में आपस मे कितना कलह, कितना वैमनस्य हुआ। परिणामस्वरूप तीर्थ-मन्दिरो, अन्य कई धार्मिक स्थानो के सम्बन्ध मे कितनी मुकद्दमेबाजी हुई कि जिसमें समाज की शक्ति, धन का विपुल परिमाण मे अपव्यय हुआ। मेरी यह निश्चित मान्यता है कि यदि हमारे तत्कालीन जैनाचार्यों ने इस पृथक्ता के विचार को प्रारम्भ से ही न पनपने दिया होता, कोई माध्यम, समन्वयात्मक मार्ग निकाला होता तो आज जैन समाज अधिक सगठित, बलशाली होता। उसकी वाणी अधिक प्रभावशाली होती। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा नही हो पाया। दो सहस्र वर्ष मे अधिक के इस लम्बे काल से दोनो परम्पराओ के मत वैभिन्य के कारण जैन धर्म का अनुयायी जैन समाज को हम छिन्न-भिन्न अवस्था मे पाते है तो हृदय को बडी ही ठेस लगती है। आज इसकी बडी आवश्यकता है कि हम सगठित हो तथा जैन धर्म के व्यापक प्रचार, प्रसार के लिए प्रयत्न करे। सब कोई जानते है कि आज जैनधर्म, श्रमण सस्कृति के प्राण अहिंसा के विचार को देश मे कितना कम महत्व दिया जाता है। भारतीय शासन, अहिंसा तत्व की कितनी उपेक्षा करता है किन्तु हम अपनी पृथक्ता के कारण सामान्य प्रश्नो पर भी एक नही हो पाते। न सम्मिलित प्रयत्न कर पाते है। मैं इसी आशा, विश्वास को अपने हृदय मे सजोए हुए हूँ कि समाज मे कोई ऐसा महाभाग उत्पन्न हो जो जैन धर्म की एक-दो परम्पराओ को एक सूत्र मे आबद्ध कर सके।

काश, यह स्वप्न साकार हो तथा हम सगठित अविरल जैन समाज का निर्माण करके श्रमण सस्कृति के प्रचार, प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान कर सके ताकि देश मे अहिंसात्मक विचार, आचार की प्रतिष्ठा हो और देश पुनः एक बार "जीओ और जीने दो" का मन्त्र उद्घोष करते हुए अपने आचार मे उतार सके।

डा० हर्मन जैकोबी और जैन-साहित्य

डा० देवेन्द्रकुमार जैन
एम. ए पी एच-डी.

आदि काल से ही भारतीय श्रमण-सस्कृति अत्यन्त समृद्ध तथा व्यापक रही है। भारतीय तत्व-चिन्तन तथा साहित्य-रचना मे इस प्रजा का महत्वपूर्ण योग-दान रहा है। समाज, राजनीति तथा जीवन-दर्शनो के विविध पक्षो पर श्रमण-सस्कृति के पुरोहित जैनमनीषियो एव आचार्यो ने जिस प्रकाश को आलोकित किया है वह आज भी अपनी ज्योति से ज्योतिर्मान है। समय-समय पर प्रवल झझाओ के आघात से, काल के क्रूर थपेडो से तथा जाति, समाज और सम्प्रदायो के सघर्षों मे अविचल रह कर जिन-वाणी ने जिस सत्य और अहिसा का प्रकाश विकीर्ण किया वह आज तक विश्व के इतिहास-पटल पर स्वर्णाक्षरो से जाज्वल्यमान है।

प्राचीनकाल मे इस देश मे भाषा, साहित्य, आयुर्वेद, ज्योतिष, कला आदि वाड्मय के विविध अंगो में उत्तरोत्तर उन्नति होती रही। सभी प्रजाओ ने मिलकर विभिन्न रूपो मे उनका विकास किया। जैनाचार्यो ने प्रत्येक विषय पर मौलिक चिन्तन कर साहित्य-श्री एव वाड्मय को भलीभांति समृद्ध बनाया। आज भी जैन भाण्डागारो मे जो विपुल जैन-अजैन साहित्य तथा वाड्मय उपलब्ध होता है उसे देखकर दातो तले उगली दबानी पडती है। साहित्य-रचना तथा सरक्षण का जो कार्य जैन साधुओ तथा मनीषियो ने किया है वस्तुतः वह इतिहास की अविस्मरणीय तथा गौरव-गाथा ही बन गई है।

भारतीय वाड्मय के सभी प्रकार से सम्पन्न और समृद्ध होने पर भी युग के युग ऐसे अन्धकाराच्छन्न प्रतीत होते हैं जिनमे विभिन्न जातियो के सघर्ष तथा उत्थान-पतन मे, राजनैतिक उथल-पुथल मे और सामाजिक एव सास्कृतिक विघटन मे प्रचुर साहित्य विलुप्त हो गया। विभिन्न आक्रान्ताओ से पद्दलित यह देश धीरे-धीरे अपनी गौरव-गरिमा को धूमिल बनाता रहा और साहित्य के विभिन्न अगो की प्राय उपेक्षा-सी होती रही। जातीय-सकीर्णता तथा विभिन्न समाजो के दृष्टिकोण दिनोदिन सीमित होते गये। परिणाम यह हुआ कि हम अपने साहित्य और दर्शन से दूर होते गये। हमारी हताश और निराश भावना ने हमे दिनोदिन दुर्बल और चिन्तनीय बना दिया। अतएव उस युग मे लिखा जाने वाला साहित्य भी जीवन्त समस्याओ से हट कर वास्तविक लोक-जीवन का आकलन न कर कल्पनाओ तथा पौराणिक जड़ आकृतियो पर निर्भर रहने लगा। स्पष्ट शब्दो मे हमारी मान्यताएँ दिनोदिन रूढियो मे बधती गई और हम वास्तविक बातो से तथा सच्चे जीवन से बहुत कुछ दूर होते गये। इस मध्यकालीन युग के उत्तरकाल मे (मुगल काल मे) हमे अधिकतर ऐसे ही साहित्य का परिचय मिलता है। इस युग मे मुख्य रूप से भारतीय पौराणिक साहित्य अधिक लिखा गया, जिसका प्रारम्भ गुप्त युग से हुआ प्रतीत होता है। गुप्त युग के पूर्व का साहित्य अत्यन्त अल्प तथा विरल प्राप्त होता है। भारतीय साहित्य के इतिहास मे वह अन्धकारपूर्ण युग कहा जाता है जिसका आज तक कोई क्रमबद्ध रूप उपलब्ध नही हो सका

है। इतिहास मे ऐसे कई वर्षो के छोटे-छोटे युग लक्षित होते है जिनमें भारतीय सस्कृति और साहित्य का कोई स्पष्ट चित्र हमें नही मिलता।

अतीत काल मे भारतवर्ष में धर्म, कला और साहित्य की जो प्रतिष्ठा एव उन्नति हुई वह आज इतिहास की वस्तु बन गई है। आधुनिक युग मे इसे प्रकाशित करने और विश्व के सामने गौरव के साथ रखने का श्रेय वस्तुत योरोपीय विद्वानो को है। योरोपीय विद्वानो मे भी विशेषकर यह श्रेय जर्मन विद्वानो को प्राप्त है, जिन्होने सुदीर्घ काल से प्राचीन भारतीय आर्य भाषाओ तथा उनमें लिखित साहित्य का अध्ययन कर ससार का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट किया। कहा जाता है कि अब्राहम रोजर नाम के विद्वान के सन् १६५१ मे भर्तृहरि के कुछ मधुर श्लोको का पुर्तगाली भाषा में अनुवाद किया था, जिसे देखकर विदेशी विद्वानो का ध्यान सस्कृत भाषा के प्रति आकृष्ट हुआ था। उसके बाद ही सस्कृत भाषा के प्रति जर्मन विद्वानो का विशेष रूप से ध्यान गया और उन्होने उसका अध्ययन किया।

आधुनिक युग में भाषा-विज्ञान का प्रमुख केन्द्र प्रमुख रूप से दो-तीन दशको में जर्मन ही बना रहा। बाद मे यह फ्रास मे भी स्थापित हुआ। फ्रास से इगलैंड होता हुआ आज यह अमेरिका में प्रगतिशील दिखाई पड रहा है। यद्यपि भाषा वैज्ञानिक प्रथम अध्ययन फ्रासीसी पादरी कोर्दो (Coeurdoux) से माना जाता है, जिन्होने सन् १७६७ में ग्रीक, लैटिन तथा फ्रेंच आदि भाषाओ का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया था। परन्तु तुलनात्मक भाषाविज्ञान की नीव डालने वाले सर विलियम जोन्स माने जाते है, जिन्होने १७९६ ई० मे इस बात की घोषणा की थी कि संस्कृत भाषा बनावट मे ग्रीक से, समृद्धि में लैटिन से—और परिष्कार में सभी भाषाओ से बढ-चढकर है। शब्द, धातु तथा व्याकरण की दृष्टि से ग्रीक, लैटिन, गाथिक, केल्टिक तथा प्राचीन फारसी किसी एक मूल स्रोत से निकल हुई जान पडती है। यद्यपि सस्कृत भाषा का कई

कुशल प्रचारक

श्री महावीरसिह जैन जौहरी
प्रधानमन्त्री
जैन मित्र-मण्डल, धर्मपुरा, दिल्ली

लाला तनसुखराय जैन समाज के ऐसे कर्मवीर समाज-सेवी थे जो धार्मिक जागृति के कार्य में सदा आगे रहते थे। विश्वोद्धार म० महावीर स्वामी का जयन्ती महोत्सव सर्वप्रथम जैन-मित्र मडल के तत्वावधान में मनाना प्रारम्भ हुआ। उन्होने मित्र-मण्डल के अध्यक्ष पद पर रह कर जयन्ती उत्सव को सफल बनाने में कोई कसर नही रक्खी। मै उनके प्रति श्रद्धाजलि अर्पित करता हूँ।

विद्वानो ने अध्ययन, चिन्तन और मनन किया, परन्तु जर्मन विद्वान मैक्समूलर ने जिस तमन्यता और मनोयोग के साथ वेदो का तथा सस्कृत का अनुशीलन किया वह वास्तव मे विलक्षण ही था। मैक्समूलर ने अपने जीवन के लगभग छप्पन वर्ष सस्कृत साहित्य के अध्ययन मे विशेषकर ऋग्वेद के अध्ययन मे विताये थे। इस साहित्य पर जितना अधिक मैक्समूलर ने कार्य किया है संभवत किसी विद्वान ने आज तक नहीं किया होगा।

वास्तव मे प्राच्यविद्याविशारदो मे भारतीय साहित्य और सस्कृति पर शोध एव अनुसधान-कार्य करने वाले आधुनिक युग मे विशेष रूप से जर्मन विद्वान् उल्लेखनीय हैं। जार्ज फोर्स्टर, गेटे, ग्रासमान, लुगविग्, वान हम्वोल्ट, फ्रेडरिक श्लेगल, कान्ट और शिलर, राथ, बूलर आदि। ऐसे ही विशिष्ट जर्मन विद्वान् थे जिन्होंने भारतीय साहित्य का विशेष रूप से आलोडन किया था। १८८७ ई० मे डा० जे० जी० बूलर ने लगभग पाच सौ जैन ग्रथो के आधार पर जर्मन भाषा मे जैनधर्म विषयक एक ग्रथ लिखा था, जो अत्यन्त प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि इसके पूर्व ही जर्मन विद्वानो ने प्राकृत भाषाओ का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया था, किन्तु धर्म और सिद्धान्तो पर प्रकाश डालने वाली कदाचित् यह पहली ही पुस्तक थी। प्रो० रिचर्ड पिशेल ने सन् १८७७ मे आ० हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण का एक सुसम्पादित-सस्करण प्रकाशित किया था। पिशेल महोदय वास्तव मे प्राकृत के पाणिनि थे। उन्होने लगभग २५-३० वर्षों के अथक श्रम से सैकडो प्राकृत ग्रान्थो का अनुशीलन कर समग्र प्राकृतो का व्याकरण तैयार किया, जो १९००ई० मे जर्मनी के स्ट्रास्वर्ग नगर से प्रकाशित हुई। रिचर्ड पिशेल की पहली पुस्तक 'डी कालिदासी काकुन्तली रिकेन्सियोनिवस" सन् १८७० ई० मे ब्रेजला विश्वविद्यालय से डाक्टरेट के लिए स्वीकृत हुई थी, जिसका प्रकाशन १८७७ ई० मे "कालिदासाज शकुन्तला, द बेंगाली रिसेन्शन विद क्रिटिकल नोट्स" के रूप मे कील से हुआ। उन्ही दिनो "हेमचन्द्राज ग्रेमेटिक डेर प्राकृतश्प्राखन" लिखी गई, जो हाल नाम के नगर से सन् १८७७-१८८० ई० मे दो जिल्दो मे प्रकाशित हुई। इसी प्रकार १८८० ई० मे कील से 'देशीनाममाला' प्रकाशित हुई। "ग्रेमेटिक डेर प्राकृतश्प्राखन" नामक पुस्तक स्ट्रासवर्ग से सन् १९०० ई० मे प्रकाशित हुई। इस पुस्तक का अग्रेजी अनुवाद डा० सुभद्र झा ने "कम्पेरेटिव ग्रामर आव द प्राकृत लेंग्वेज" नाम से किया है और हिन्दी मे डा० हेमचन्द्र जोशी ने "प्राकृत भाषाओ का व्याकरण" नाम से प्रस्तुत किया है, जो विहार-राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित हो चुका है। वास्तव मे पिशेल महोदय ने उपलब्ध प्राकृतो के व्याकरण और अनेक हस्तलिखित ग्रन्थो के आधार पर प्राकृत-भाषाओ का व्याकरण जिस रूप मे प्रस्तुत किया है उससे वह एक अद्भुत ग्रथ ही बन गया है। वैदिक भाषाओ के मूल उत्स से लेकर नव्य भारतीय आर्यभाषाओ की प्रकृति तथा शब्द रूपो का उन्होने विशेष रूप से अनुशीलन किया। उन्होने वैदिक साहित्य का भी यथेष्ट अध्ययन और अध्यापन किया था। प्राकृत भाषाओ के व्याकरण की पूर्ति के रूप मे उन्होने "माटेरिआलिएन् त्सुर् केन्टनिस् डेस् अपभ्रंश" एक छोटी सी पुस्तक भी लिखी, जिसमे अपभ्रंश का पहली वार स्वतन्त्र रूप से विचार किया गया और जिसका प्रकाशन सन् १९०२ ई० में वर्लिन से हुआ। प्राध्यापक पिशेल महोदय के ये दोनो ही ग्रन्थ मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषाओ के स्वरूप को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी तथा महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए है।

डा० हर्मन जेकोवी भी एक जर्मन विद्वान् थे। पिछले की भाँति भारतीय विद्या के विशेप प्रेमी तथा अध्ययन-अध्यापन मे रत रहते थे। जर्मन की वॉन युनिवर्सिटी मे डा० जेकोवी भारतीय विद्या के प्राध्यापक थे। प्रो० पिशेल ने प्राकृतो के अध्ययन-अध्यापन की जिस नीव को प्रस्थापित किया था डा० जेकोवी ने उसी परम्परा को अग्रसर किया। मुख्य रूप से प्राध्यापक जेकोवी ने जैनागमो का गम्भीर अध्ययन किया। सूत्र ग्रन्थो का अध्ययन और सशोधन तथा सम्पादन ही उनका प्रारम्भिक उद्देश्य था। परन्तु धीरे-धीरे जैन-साहित्य मे उनकी रुचि विशेप रूप से आकृष्ट होती गई। उन्होने सवसे पहले "उत्तराध्ययनसूत्र" का अध्ययन किया। उस पर उन्होने एक टीका भी लिखी। टीकाओ मे अनेक कथाओ का उल्लेख देख कर उन्होने कथाओ का एक सग्रह तैयार किया, जो पाठ्यपुस्तक के रूप मे (महाराष्ट्री से चुनी हुई कहानियाँ) त्सूर आव-फ्यूरुग इन डास स्टूडियम डेस प्राकृत ग्रामीटीक टैक्स्ट वोएरट वुस प्रकाशित हुआ। सन् १८८६ ई० मे लिपजिक नाम के नगर से "औसगेवैल्ते एर्त्सेलुगन इन महाराष्ट्री" नाम से वह सग्रह प्रकाशित हुआ। इसके इन्ट्रोडक्शन मे महाराष्ट्री प्राकृत के सम्बन्ध मे विशद विवेचन किया गया है, जिसका अग्रेजी अनुवाद डा० ए० एम० घाटगे ने किया है और जो "द जैन एन्टिक्वेरी" के अक मे प्रकाशित हो चुका है। अपने इस प्राथमिक वक्तव्य मे प्रो० जेकोवी ने वैदिक भाषाओ से लेकर आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ तक के विकास की जिस धारा का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया था और जिस वात को पिशेल महोदय पहले ही अपने "प्राकृतो के व्याकरण" मे लिख चुके थे उसी आधार पर उन्होने अपभ्रंश के वहुविध रूपो की तथा वोलियो की कल्पना की। उन्होने अपने विचारो को स्पष्ट करते हुए कहा कि भारतीय भाषाएँ तीन अवस्थाओ को पार कर चुकी है। वे तीन अवस्थाएँ है—संस्कृत (वैदिक, इपिक और क्लासिकल), मध्यभारतीय या प्राकृत (पाली, प्राकृत महाराष्ट्री और अपभ्रश) तथा आधुनिक भारतीय या भाषा। उत्तर बौद्धो की गाथा वोलियो का विचार करते हुए वे कहते है कि जिस प्रकार उच्च जर्मन के लोग अपनी प्रवृत्ति के अनुसार निम्न जर्मन की भाषा मे वोलते और सोचते हैं उसी प्रकार गाथाओ की प्राकृत भी सस्कृत के अनुरूप लिखी गई, जिससे उस पर सस्कृत का प्रभाव दिखाई पडता है। वास्तव मे महाराष्ट्री अपने युग की साहित्यिक भाषा रही है। पाली, प्राकृत और अपभ्रश ध्वनि, वाक्य-रचना एव वनावट मे एक-दूसरे से भिन्न हैं। प्राकृत अलग है और अपभ्रश अलग। प्राकृत से अपभ्रश मे जटिलता और रूपो की कमी है। महाराष्ट्री प्राकृत का भी अधिकतर प्रयोग जैन-साहित्य मे हुआ है। इस प्रकार कई महत्त्वपूर्ण वातो की चर्चा उन्होने इस ग्रन्थ की भूमिका मे की है।

डा० जेकोवी ने प्राकृत वाङ्मय का विशेप रूप से अनुशीलन किया। अतएव आचारांग-सूत्र, उत्तराध्ययनसूत्र, कल्पसूत्र, कालकाचार्यकथानक, पउमचरिय और समराइच्चकहा आदि प्राकृत-ग्रन्थो के उत्तम रीति से सम्पादित तथा सशोधित सस्करण प्रकाशित किए। "आयाराग सुत्त" का प्रथम सस्करण हर्मन जेकोवी ने लन्दन से १८८२ ई० मे प्रकाशित कराया था। "कालकाचार्यकथानकम्" लायमन द्वारा प्रकाशित "त्साईटुग डेर मौर्गेन लैण्डिशन गेजेल शाफ्ट" मे सर्वप्रथम प्रकाशित हुआ था। वस्तुत सम्पादन और प्रकाशन की दृष्टि से इनका विशेप महत्त्व है। परन्तु प्राकृतो का महत्त्व और स्वरूप निर्धारण मे जो निष्पक्ष और सूक्ष्म दृष्टि रिचर्ड पिशेल

में लक्षित होती है वह इनमें नहीं है। इनका महत्व अपभ्रंश-साहित्य की खोज करने मे ही विशेष रूप से समाहित है।

पिशेल महोदय के पूर्व देशी-विदेशी विद्वान् यही समझते थे कि प्राकृतो का विकास-निकास संस्कृत से हुआ। सस्कृत को प्राकृत का मूल मानने वाले विद्वानो मे होएफर, लास्सन, भण्डारकर, और जेकोवी भी सम्मिलित थे[1]। परन्तु पिशेल इसे भ्रमपूर्ण बतलाते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि प्राकृत सस्कृत से प्राचीन बोली जाने वाली भाषा है। भाषा की भाँति ही बीम्स आदि कई भाषाविद् वर्षों तक इस बात को दुहराते रहे कि प्राकृत भाषाएँ कृत्रिम तथा साहित्य की भाषाएँ हैं। इसी प्रकार का मत अपभ्रंश के सम्बन्ध मे भी प्रचलित रहा। स्वयं पिशेल महोदय के सामने अपभ्रंश का कोई स्वतन्त्र ग्रन्थ न होने से वे इसका विशेष विचार नहीं कर सके। परन्तु प्राकृतो की अनेक बोलियो का उल्लेख और उनके विविध रूपो का उन्होंने विस्तृत विवेचन किया तथा उनका महत्व प्रतिष्ठित किया। उनके विचार में अपभ्रंश का साहित्य अवश्य था, परन्तु वह लुप्त हो चुका था। कई विद्वानो की राय मे अपभ्रंश बनावटी भाषा थी, जो सस्कृत को तोड-मरोड कर बनाई गई थी। कीथ महोदय इसी मत को बहुत दिनों तक पुष्ट करते रहे। और जब तक अपभ्रंश का साहित्य प्रकाश में नही आया तब तक इसी प्रकार की अनेक अटकलें और अनुमान लगाये जाते रहे। यथार्थ में अपभ्रंश-साहित्य को प्रकाश में लाने का श्रेय डा० हर्मन जेकोवी को है।

यद्यपि पिशेल महोदय के पूर्व ही हर्मन जेकोवी जैन-साहित्य का महत्व प्रतिपादित कर चुके थे, परन्तु "प्राकृत भाषाओ के व्याकरण" से प्रभावित एव प्रेरित होकर उन्होंने प्राकृत साहित्य की प्रचुरता और अपभ्रंश-साहित्य के अस्तित्व का अनुमान लगा लिया था। और यही धारणा लेकर उन्होने सन् १९१३-१४ मे भारतवर्ष का प्रवास किया। मार्च, १९१४ में अहमदाबाद में एक जैन साधु के पास उन्होने जीर्ण हस्तलिखित प्रति को देखा। उस कथा की चार-छह पंक्तियों को पढकर जेकोवी अत्यन्त चमत्कृत हुआ। वह हर्ष से उछल पडा। उसे उस समय उतना ही आनन्द प्राप्त हुआ जितना कि पुत्र-रत्न प्राप्ति के समय होता है। वह कथाग्रन्थ अपभ्रंश भाषा में महाकवि धनपाल का लिखा हुआ "भविसयत्तकहा" था। अपभ्रंश के इस महत्वपूर्ण ग्रथ की प्रथम परि-चिति डा० जेकोवी को मिली। उन्होंने बड़ी कठिनाई से इस कथाकाव्य के कुछ पत्रों की अपने हाथ से प्रतिलिपि की और कुछ की फोटोकापी तैयार करवाई। कुछ दिनो के बाद सौराष्ट्र के प्रवास मे एक दूसरा कथाग्रथ प्राप्त हुआ। यह राजकोट के एक साधु के पास से प्राप्त हुआ। इसका नाम "नेमिनाथचरित" था। इसकी हस्तलिखित प्रति ही जर्मन विद्वान् को मिल गई। इस प्रकार अपभ्रंश ग्रथो की पहली जानकारी डा० जेकोवी को प्राप्त हुई।

उन दिनों प्रथम महायुद्ध के विप्लव-बादल चारो ओर मडराने लगे थे। विश्वव्यापी महायुद्ध प्रारम्भ हो गया था। इसलिए लगभग चार वर्षो तक जेकोवी महोदय कुछ भी नहीं प्रकाशित कर सके। सन् १९१८ ई० मे म्युनिक रायल एकेडेमी की ओर से "भविसयत्तकहा" का

---

१ देखिए, "प्राकृत भाषाओ का व्याकरण", पृष्ठ ८

प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ, जो व्याकरण, शब्द-रचना, शब्द-कोष आदि से भलीभाँति अलकृत था। एक ही प्रति पर आधारित होने के कारण ग्रन्थ मे अशुद्धियो का रह जाना स्वाभाविक ही था। परन्तु परिश्रम बहुत अधिक किया गया था। अपभ्रश का सर्वप्रथम प्रकाशित होने वाला यही साहित्यिक ग्रन्थ था। इसके तीन वर्षो के पीछे सन् १९२१ ई० मे डा० जेकोवी ने आ० हरिभद्रसूरि कृत "नेमिनाथचरित" के अन्तर्गत "सनत्कुमारचरित" का सुसम्पादित सस्करण प्रकाशित किया। बाद मे "भविष्यदत्तकथा" गायकवाड़ ओरियन्ट सीरिज, बड़ौदा से १९२३ ई० मे सी०डी० दलाल और पी० डी० गुणे के सम्पादकत्व मे प्रकाशित हुई। उसके बाद अनेक अपभ्रंश ग्रन्थो का पता लग गया। भारतीय विद्वान् जिन्हे प्राकृत भाषा का समझते रहे वे अपभ्रश के ग्रन्थ निकले। और तब से कई भारतीय विद्वानो ने अपभ्रश पर बहुत कार्य किया। परिणामस्वरूप लगभग पचास ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं। परन्तु अभी तक लगभग तीन सौ ग्रन्थ अप्रकाशित पडे हुए है। और कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ अज्ञात तथा अनुपलब्ध है। वस्तुत मध्ययुगीन भारतीय आर्यभाषा और साहित्य के प्रतिष्ठापक और पुरस्कर्त्ता के रूप मे पिशेल और डा० हर्मन जेकोबी का नाम सदा स्मरणीय रहेगा। अपभ्रश के जिस अजान, अज्ञात और उपेक्षित क्षेत्र का उन्होने उद्घाटन किया वह यथार्थ मे चिर अविस्मरणीय रहेगा। और मध्ययुगीन भारतीय साहित्य के इतिहास मे उनका नाम स्वर्णाक्षरो से अकित रहेगा।

जैन दर्शन में सत्य की मीमांसा

मुनिश्री नथमलजी महाराज

सत्य क्या है? इस प्रश्न पर मनुष्य अनादि काल से चिन्तन करता आ रहा है। उसने सत्य का साक्षात् करने का यत्न किया है और वह उसमे सफल भी हुआ है। चिर अतीत मे अनेक मनुष्यो ने अनेक प्रयत्न किए है, इसलिए सत्य शोध की अनेक धाराएँ बन गयी हैं। उनमे एक धारा है जैनदर्शन। उसके अनुसार जो सत् है, वही सत्य—जो है वही सत्य है, जो नही है वह सत्य नही है। यह अस्तित्व-सत्य, वस्तु-सत्य, स्वरूप-सत्य या ज्ञेय-सत्य है। जिस वस्तु का जो सहज शुद्ध रूप है, वह सत्य है। परमाणु, परमाणु रूप मे सत्य है। आत्मा, आत्मा रूप मे सत्य है। धर्म, अधर्म, आकाश भी अपने रूप मे सत्य है। "एक वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श वाला अविभाज्य पुद्गल"—यह परमाणु का सहज रूप-सत्य है। बहुत सारे परमाणु मिलते है, स्कन्ध बन जाता है, इसलिए परमाणु पूर्ण-सत्य (त्रैकालिक-सत्य) नही है। परमाणु-दशा मे परमाणु सत्य है। भूत-भविष्यत् कालीन स्कन्ध की दशा मे उसका विभक्त रूप सत्य नही है।

आत्मा शरीर-दशा मे अर्ध सत्य है। शरीर, वाणी, मन और श्वास उसका स्वरूप नही है। आत्मा का स्वरूप है—अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य (शक्ति) अरूप। सरूप (सशरीर) आत्मा वर्तमान पर्याय की अपेक्षा सत्य है (अर्ध-सत्य है) अरूप (अशरीर, शरीर मुक्त) आत्मा पूर्ण सत्य (परम सत्य या त्रैकालिक सत्य) है। धर्म, अधर्म और आकाश (इन तीन तत्वो का त्रैकालिक रूपान्तर नही होता। ये सदा अपने सहज रूप मे ही रहते है—इसलिए) पूर्ण सत्य है।

साध्य-सत्य

साध्य-सत्य स्वरूप-सत्य का ही एक प्रकार है। वस्तु-सत्य व्यापक है। परमाणु मे ज्ञान नही होता, अत उसके लिए कुछ साध्य भी नही होता। वह स्वाभाविक काल मर्यादा के अनुसार कभी स्कंध में जुड जाता है और कभी उससे विलग हो जाता है।

आत्मा ज्ञानशील पदार्थ है। विभाव-दशा (शरीर-दशा) में स्वभाव (अशरीर-दशा या ज्ञान, आनन्द और वीर्य का पूर्ण प्रकाश) उसका साध्य होता है। साध्य न मिलने तक यह सत्य होता है और उसके मिलने पर (सिद्धि के पश्चात्) वह स्वरूप-सत्य के रूप मे बदल जाता है।

साध्य-काल मे मोक्ष पूर्ण-सत्य होता है और आत्मा अर्ध-सत्य। सिद्धि-दशा मे मोक्ष और आत्मा का अद्वैत (अभेद) हो जाता है, फिर कभी भेद नही होता। इसलिए मुक्त आत्मा का स्वरूप पूर्ण-सत्य है (त्रैकालिक है, अपुनरावर्तनीय है)।

जैन-तत्त्व-व्यवस्था के अनुसार चेतन और अचेतन—ये दो सामान्य सत्य हैं। ये निरपेक्ष स्वरूप-सत्य है। गति-हेतुकता, स्थिति-हेतुकता, अवकाश-हेतुकता, परिवर्तन-हेतुकता और ग्रहण (सयोग-वियोग) की अपेक्षा—विभिन्न कार्यों और गुणों की अपेक्षा धर्म, अधर्म, आकाश, काल, और पुद्गल—अचेतन के ये पाच रूप (पाच-द्रव्य) और जीव, ये छह सत्य है। ये विभाग-सापेक्ष-स्वरूप सत्य हैं।

आस्रव (बन्ध-हेतु), सवर (बन्धन-निरोध), निर्जरा (बन्धन-क्षय हेतु)—ये तीनो साधन सत्य है। मोक्ष साध्य-सत्य है। बन्धन-दशा मे आत्मा के ये चारो रूप सत्य हैं। मुक्त-दशा मे आस्रव भी नही होता, सवर भी नही होता, निर्जरा भी नही होती, साध्य-रूप मोक्ष भी नही होता, इसलिए वहा आत्मा का केवल आत्म-रूप ही सत्य है।

आत्मा के साथ अनात्मा (अजीव-पुद्गल) का सम्बन्ध रहते हुए उसके बन्ध, पुण्य और पाप मे तीनो रूप सत्य है। मुक्त-दशा मे बन्धन भी नही होता, पुण्य भी नही होता, पाप भी नही होता। इसलिए जीव विमुक्त-दशा मे केवल अजीव (पुद्गल) ही सत्य है। तात्पर्य कि जीव-अजीव की सयोग-दशा मे नव सत्य है। उनकी वियोग-दशा मे केवल दो ही सत्य है।

व्यवहार नय से वस्तु का वर्तमान रूप (वैकारिक रूप) भी सत्य है। निश्चय नय से वस्तु का त्रैकालिक (स्वाभाविक रूप) सत्य है।

उपयोगिता की दृष्टि से सत्य का विचार निम्न चार विषयो के आस-पास चलता है—

१. बन्ध, २ बन्ध-हेतु (आस्रव), ३ मोक्ष, ४. मोक्ष हेतु (सवर-निर्जरा)।

सक्षेप मे दो है—आस्रव और सवर। इसीलिए काल-क्रम के प्रवाह मे बार-बार यह वाणी मुखरित हुई है।

> आस्रवो भवहेतु स्यात् सवरो मोक्ष कारणम्।
> इतीयमार्हती दृष्टि रन्यदस्या प्रपचनम्॥

यही तत्त्व वेदान्त मे अविद्या और विद्या शब्द के द्वारा कहा गया है। बौद्ध-दर्शन के चार आर्य-सत्य और क्या हैं? यही तो है—

१. दु ख-हेतु ।

२. समुदय-हेयहेतु ।

३ मार्ग—हनोपाय या मोक्ष उपाय ।

४ निरोध— हान या मोक्ष ।

यही तत्व हमे पातजल-योग-सूत्र और व्यास-भाष्य मे मिलता है। योग-दर्शन भी यही कहता है—विवेकी के लिए यह सयोग दु ख है और दु ख हेय है। त्रिविध दु ख के थपेडो से थका हुआ मनुष्य उनके नाश के लिए जिज्ञासु बनता है।

"नृणामेकोगम्य स्त्वमसि खलु नानापथ जुषाम्"—गम्य एक है—उसके मार्ग अनेक। सत्य एक है—शोध-पद्धतिया अनेक। सत्य की शोध और सत्य का आचरण धर्म है। सत्य-शोध की सस्थाए, सम्प्रदाय या समाज है, वे धर्म नही है। सम्प्रदाय अनेक बन गए पर सत्य अनेक नही बना। सत्य शुद्ध-नित्य और शाश्वत होता है। साधन के रूप मे वह है अहिंसा और साध्य के रूप में वह मोक्ष है।

सत्य की व्याख्या के दो पहलू

सत्य की व्याख्या एकान्त दृष्टि से नही की जा सकती। उसके दो पहलू है—वस्तु सत्य और व्यवहार सत्य। वस्तु सत्य के द्वारा पारमार्थिक सत् या ध्रुवता की व्याख्या की जा सकती है और व्यवहार सत्य के द्वारा दृश्य सत्य या परिवर्तनाश की व्याख्या की जा सकती है।

वस्तु सत्य

एक ओर यह अखण्ड विश्व की अविभक्त सत्ता है और दूसरी ओर यह खण्ड का चरम रूप व्यक्ति है। व्यक्ति का आक्षेप करने वाली सत्ता और सत्ता का आक्षेप करने वाला व्यक्ति—दोनो भटके हुए है। सत्ता का स्व व्यक्ति है। व्यक्ति की विशाल शृ खला सत्ता है। सापेक्षता मे दोनो का रूप निखर उठता है।

यह व्यक्ति और समष्टि की सापेक्ष-नीति जैन-दर्शन का नय है। इसके अनुसार समष्टि सापेक्ष व्यक्ति और व्यक्ति-सापेक्ष समष्टि-दोनो सत्य हैं। समष्टि-निरपेक्ष-व्यक्ति और व्यक्ति निरपेक्ष-समष्टि—दोनो मिथ्या है।

व्यवहार-सत्य

नय-वाद ध्रुव सत्य की अपरिहार्य व्याख्या है। यह जितना दार्शनिक सत्य है, उतना ही व्यवहार-सत्य है। हमारा जीवन वैयक्तिक भी है और सामुदायिक भी। इन दोनो कक्षाओ में नय की अर्हता है।

सापेक्ष नीति से व्यवहार मे सामजस्य आता है। उसका परिणाम है मैत्री, शान्ति और व्यवस्था। निरपेक्ष-नीति अवहेलना, तिरस्कार और घृणा पैदा करती है। परिवार, जाति, गाँव, राज्य, राष्ट्र और विश्व—ये क्रमिक विकाशशील सगठन है। सगठन का अर्थ है सापेक्षता। सापेक्षता का नियम दो के लिए है, वही अन्तर्राष्ट्रीय जगत् के लिए है।

एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र की अवहेलना कर अपना प्रभुत्व साधता है, वहा असमजसता खड़ी हो जाती है। उसका परिणाम है—कटुता, सघर्ष और अशाति।

निरपेक्षता के पाच रूप बनते है—१. वैयक्तिक, २. जातीय, ३. सामाजिक, ४. राष्ट्रीय, ५ अतर्राष्ट्रीय।

इसके परिणाम है—समता प्रधान जीवन, सामीप्य, व्यवस्था, स्नेह शक्ति-सवर्धन, मैत्री और शान्ति।

बहुता और और अल्पता, व्यक्ति और समूह के एकान्तिक आग्रह पर असन्तुलन बढता है, सामजस्य की कड़ी टूट जाती है।

अधिकतम मनुष्यो का अधिकतम हित—यह जो सामाजिक उपयोगिता का सिद्धान्त है वह निरपेक्ष नीति पर आधारित है। इसी के आधार पर हिटलर ने यहूदियो पर मनमाना अत्याचार किया। बहुसख्यको के लिए अल्पसख्यको तथा बडो के लिए छोटो के हितो का बलिदान करने के सिद्धात का औचित्य एकान्तवाद की देन है।

सामन्तवादी युग मे बडो के लिए छोटो के हितो का न्याय उचित माना जाता था। बहुसख्यको के लिए अल्पसख्यको तथा बडे राष्ट्रो के लिए छोटे राष्ट्रो की उपेक्षा आज भी होती है। यह अशान्ति का हेतु बनता है। सापेक्ष नीति के लिए किसी के लिए भी अनिष्ट नही किया जा सकता।

बड़े राष्ट्र छोटे राष्ट्रो को नगण्य मान उन्हे आगे आने का अवसर नही देते। इस निरपेक्ष-नीति की प्रतिकिया होती है। फलस्वरूप छोटे राष्ट्रो मे बडो के प्रति अस्नेह-भाव उत्पन्न हो जाता है। वे सगठित हो उन्हे गिराने की सोचते है। घृणा के प्रति घृणा और तिरस्कार के प्रति तिरस्कार तीव्र हो उठता है।

मैत्री की पृष्ठ-भूमि सत्य है, वह ध्रुवता और परिवर्तन दोनो के साथ जुडा हुआ है। अपरिवर्तन जितना सत्य है, उतना ही सत्य है परिवर्तन। अपरिवर्तन को नही जानता वह चक्षुष्मान् नही है, वैसे ही वह भी अचक्षुष्मान् है जो परिवर्तन को नही समझता।

वस्तुए बदलती है, क्षेत्र बदलता है, काल बदलता है, विचार बदलते है, इनके साथ स्थितियाँ बदलती है। बदलते सत्य को जो पकड लेता है, वह सामजस्य की तुला मे चढ दूसरो का साथी बन जाता है।

❀ ❀ ❀

श्रीमद्भगवद्गीता और जैन-धर्म

श्री दिगम्बरदास जैन, मुख्तार

जैनधर्म एक आध्यात्मिक धर्म है और गीता एक आध्यात्मिक ग्रन्थ। जैनधर्म आत्मा को शरीर से भिन्न बता कर आत्मा को नित्य और शरीर को नाशवान मानता है, यही बात श्रीकृष्णजी गीता के अध्याय २ श्लोक २१ मे कहते है। आगे २२वे श्लोक मे तो जैनधर्मानुसार यह भी कह दिया कि जैसे पुराने वस्त्र त्याग कर नये पहने जाते है, वैसे ही आत्मा शरीर का पुराना चोला त्याग कर कर्मानुसार नया शरीर धारण कर लेता है। जैनधर्म राग-द्वेष को कर्म-बन्धन का कारण कह कर इनके त्याग की शिक्षा देता है, इसी सिद्धान्त को गीता के अध्याय २

के श्लोक ५२, ५७, ६१ और ६४ मे स्वीकार किया है। जैनधर्म आवागमन को मानता है, गीता के अध्याय ४ श्लोक ५ से भी यही बात सिद्ध है। जैनधर्म बताता है कि जो राग-द्वेष से रहित होता है वह वीतरागी कर्म-बन्धन से मुक्त हो शीघ्र मोक्ष प्राप्त कर लेता है, जैनधर्म के इसी मूल-मन्त्र का गीता के अध्याय ५ श्लोक, ३ मे वर्णन है। जैनधर्म फल की इच्छा न रखते हुए कार्य करने को कहता है इसी बात को गीता के अध्याय ६ के श्लोक १ मे कहा है कि जो फल न चाहते हुए योग्य कार्य करता है वही योगी तथा सन्यासी है जैनधर्म ससार को अनादि और अनन्त मानता है, यही बात गीता मे स्वीकार करते हुए ससार-रूपी अश्वत्थ वृक्ष अनादि और अनन्त बताया है। जैनधर्म का कहना है कि यह ससार अकृतमय है इसे किसी ईश्वर या भगवान ने नही बनाया, यह जीव स्वय कर्म करता है और स्वय कर्मो का फल प्राप्त करता है। ईश्वर कर्मो के करने और उसका फल देने वाला नही है, यही बात श्रीकृष्ण जी ने गीता के अध्याय ५ के श्लोक १४-१५ मे इस प्रकार कही है:—

न कर्तृत्व न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभु। न कर्म-फल संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते ॥१४॥
नादत्ते कस्यचित्पापं न चैव सुकृतं विभुः। अज्ञानेनावृत ज्ञानं तेनुमह्यन्ति जन्तवः ॥१५॥

महान नैय्यायिक विद्वान श्री हरिवश शर्मा न्यायशास्त्री ने कई बार इस बात को स्पष्ट स्वीकार किया कि ईश्वर मे कर्म दायतत्व की मानता सर्वथा असगत है, अस्तु हम लोग पुरातन सस्कारो से इतने जकडे हुए हुए है कि जानबूझकर भी सबके सामने स्वीकार करने मे असमर्थ है।[1] वाराणसी के सुप्रसिद्ध तार्किक विद्वान स्व० प० अम्बादास शास्त्री जी का भी यही मत है और ऐसा ही कहा करते थे।[2] वास्तव में बात यह है कि ससार का प्राणी कुकर्म करता हुआ उसके फल की ओर नही देखता और जब उन कर्मों का फल मिलता है तो उस समय उसे यह ज्ञात नही होता कि मुझे किस कर्म का फल मिल रहा है। तब वह सारा भार ईश्वर पर ही डाल देता है और कहता है कि यह सब कुछ भगवान ने किया। कुछ कह कर तो मानव सन्तोष कर ले। इस प्रकार वह अपने सन्तोप की सीमा ईश्वर को बना लेता है। अनासक्त होकर कर्म करने पर जैन धर्म के समान गीता मे जो अधिक जोर दिया है, श्री ताराचन्द पाड्या के शब्दो में यह भी जैनधर्म का ही प्रभाव है।[3] गौतम स्वामी ने मगधपति महाराज श्रेणिक के प्रश्नो का उत्तर देते हुए पद्मपुराणजी मे बताया कि जब-जब धर्म की हानि और पाप की बढ़ोतरी होती है तो पाप अन्धकार का नाश करके धर्म का विकास करने को तीर्थंकर प्रगट होते है।[4] गीता के अध्याय ४ का सर्वप्रसिद्ध श्लोक ७ भी इसी प्रकार कहता है:—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानम धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
(अ० ४, श्लोक ७)

कहाँ तक दृष्टान्त दिये जावे? वैदिक विद्वान श्री माधव कृष्णजी भूतपूर्व प्रिंसिपल

१-२ "अहिंसा" जयपुर (१६ मई १९५६) पृ० ३

३. अहिंसा जयपुर (१ फरवरी १९५६) पृ० ७

४. श्री रविसेनाचार्य रचित पद्मपुराण जी की प० दौलतराम जी की टीका, पृ० ४८

गवर्नमेंट कालिज, जयपुर का स्वय कहना है कि, "गीताजी जैन धर्म के सिद्धान्तो मे प्रमाणित ग्रन्थ है।[5]"

हिन्दुओ का दूसरा प्रसिद्ध और प्रामाणिक ग्रन्थ भागवत पुराण कहता है कि जैनियो के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव इक्ष्वाकु वंशी थे। जो नाभिराय मनुजी के पुत्र और प्रथम सम्राट थे, जिनका वर्णन ऋग्वेद तक मे आता है।[6] अनेक विद्वानो का मत है कि नाभिराय मनुजी ने जो उपदेश अपने पुत्र आदि महापुरुष श्री ऋषभदेव को इस युग के प्रारम्भ मे दिया और फिर श्री ऋषभदेवजी ने दिया, फिर दूसरे तीर्थंकर श्री अजितजी ने और फिर इसी प्रकार २२वें तीर्थंकर श्री नेमिनाथजी ने अपने समयकालीन श्री कृष्णजी को दिया वही कृष्णजी ने महाभारत के समय श्री अर्जुन को दिया वही उपदेश गीता के नाम से पुकारा जाता है और यही कारण है कि गीता मे अनेक जैन सिद्धान्त भरे हुए हैं।[7] आज के विद्वान श्री नेमिनाथजी को श्री कृष्णजी समान ऐतिहासिक पुरुष स्वीकार करते है।[8] डा० श्री राधाकृष्णजी के अनुसार श्री नेमिनाथजी का वर्णन वेदो मे भी मिलता है।[9] श्री कृष्णजी के पिता श्री वसुदेवजी और श्री नेमिनाथजी के पिता श्री समुद्रविजयजी सगे भाई थे।[10] श्रीकृष्णजी अनेक बार अपने परिवार सहित भगवान नेमिनाथजी के समोशर्ण मे उनका उपदेश सुनने के लिए गए।[11] श्री कृष्णजी के पुत्र श्री प्रद्युम्नकुमारजी तो तीर्थंकर महाराज के उपदेश से इतने प्रभावित हुए कि सब राजसुख त्यागकर भरी जवानी मे जैन साधु उनके समोशर्ण मे ही हो गये थे।[12] गीता पर भगवान नेमिनाथजी का प्रभाव होना कुदरती बात है। स्वय कृष्णजी ने भी गीता अध्याय ४ के श्लोक १-२ मे इस बात को इस प्रकार स्वीकार किया :—

इम विवस्वते योग प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ॥१॥
एव परम्पराप्राप्तमिम राजर्षयोविदुः। स कालेनेह महता योगो नष्ट परतप ॥२॥

(अध्याय ४)

अर्थात् (गीता प्रेस गोरखपुर के अनुसार) इस अविनाशी योग को कल्प के आदि (इस युग के आरम्भ) मे सूर्य के प्रति कहा गया था और सूर्य ने अपने पुत्र मनु (नाभीराय मनु) के प्रति कहा और मनुजी ने अपने पुत्र राजा इक्ष्वाकु (ऋषभदेव) के प्रति कहा। इस प्रकार परपरा से प्राप्त हुए इस योग को राजर्षियो ने जाना। यह पुरातन योग अब मैं तुम्हारे (अर्जुन) के लिए कहता हूँ।

---

५. अहिंसा, जयपुर (१६ मई १९५९) पृ० २
६ विस्तार के लिए हमारा वर्धमान महावीर, पृ० ४०
७ Glimpses of Jainism, page 3
८. विस्तार के लिए हमारा वर्धमान महावीर, पृ० ४२६
९ Indian Philosophy, Vol. II, p 287.
१० Prof. Dr. H. S Bhattacharya Lord Arishta Nemi, page 5.
११-१२ हरिवंश पुराण पृ० ३८५

जैन धर्म और कर्म-सिद्धांत

श्री हीरालाल पांडे, प्राचार्य
एम० ए० पी० एच० डी
बिलासपुर

"श्री हीरालालजी पाडे, प्राचार्य जैन समाज के उद्‌भट विद्वान है। जैनधर्म और कर्म-सिद्धात पर अपने रोचक ढग से यह लेख प्रस्तुत किया है। जैनधर्म मे कर्म का जैसा सुन्दर विवेचन किया गया है, वैसा अन्यत्र नही है। जैनधर्म आत्मा का धर्म है। आत्मा के साथ कर्मरूपी मैल अनादि काल से इस प्रकार लगा हुआ है जैसे खान से निकले स्वर्ण के साथ कालिमा लगी हुई है। जैसे अग्नि मे डालकर स्वर्ण शुद्ध हो जाता है वैसे ही तप रूपी अग्नि के प्रताप से आत्मा शुद्ध होकर परमात्मा बन जाता है। इस सम्बन्ध मे श्रीमद्‌भगवतगीता का उदाहरण देकर जैनधर्म के कर्म सिद्धान्तो से उसकी साम्यता दिखाई देती है। कर्मसिद्धात संसार के प्रत्येक प्राणी को कर्मठ बनाता है। उसके जीवन को आशा की सुनहली किरणो से आलोकित करता है।

मनुष्य के जीवन की सम्पूर्ण सफलता पुरुषार्थ और आशावाद पर निर्भर है जो कर्मसिद्धात से आती है। लेख मौलिक और पठनीय है।"

"जैनधर्म" आत्मा का धर्म है। "जैन" वह आत्मा है जो "जयति कर्मशत्रून् इति जिनः" के अनुसार कर्मशत्रुओ को जीतने वाले देव को या परमात्मा को अपना उपास्य या आराध्य माने। आत्मा का धर्म जैन मात्र का उपास्य है। वह तो आत्मा का धर्म है और आध्यात्मिक देश मे वह सभी का उपास्य होना चाहिए। हमारे देश का गौरव आध्यात्मिक धर्म और सस्कृति की उपासना मे है।

"जैनधर्म" में आराध्य देव सम्पूर्ण कर्मशत्रुओ को या सासारिक और आत्मिक बुराइयो को जीतने वाले है। अत "जैनधर्म" की नीव कर्मसिद्धात है। बिना कर्मो को जीते कोई विशुद्ध आत्मा या परमात्मा नही बन सकता। ससार में श्रेष्ठ मानव जीवन को पाकर कर्मो को जीत अच्छे कार्यो द्वारा मुक्ति या मोक्ष प्राप्त करना चार पुरुषार्थो मे श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारो पुरुषार्थ लौकिक जीवन के साथ पारमार्थिक जीवन की ओर सकेत करते है। जीवन की नीव धर्म है। आत्मा का धर्म सब सकटो को टालता है। आत्मवीर ही सच्चा वीर विश्व में बन सकता है। आत्मवीर बनने के लिए जीवन भर शांति और सहिष्णुता के साथ विपत्तियो का सामना करना पडता है। वह जानता है कि आत्मा अनादिकाल से कर्मो से लिप्त है। उसे हम आत्मिक गुणो के विकास द्वारा कर्मनिर्लिप्त या मुक्त बना सकते है।

"जैनधर्म" यह विश्वास रखता है कि प्रत्येक सासारिक आत्मा चाहे तो अपने कर्मो द्वारा अपनी आत्मा को परमात्मा बना सकता है अत वह प्रत्येक आत्मा को देव या परमात्मा बनने का पात्र मानता है। उसके विश्वास मे प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है। अतएव जैनधर्म अपने भविष्य-निर्माण का अधिकार आत्मा या व्यक्ति को सौंपता हे। अतः जैनधर्म मे परमात्मा-विशेष को ससार के प्राणियो को अच्छा-बुरा फल देने वाला नही माना है।

गीता मे कहा गया है—'

न कर्तृत्व न कर्माणि, लोकस्य सृजति प्रभु ।
न कर्मफलसयोग, स्वभावस्तु प्रवर्तते ।।

"भगवान ससार के न कर्तृत्व को करता है, न कर्मो को रचता है और न ही कर्मो के फल को देता है। किन्तु यह सब स्वभाव है—स्वत होता है।"

पूर्वोक्त कथन से स्पष्ट है कि परमात्मा ससार के प्राणी के अच्छे-बुरे कर्मो का कर्ता-धर्ता नही है। प्रत्येक आत्मा अपने कर्मों के लिए उत्तरदायी है। भारत देश कर्मभूमि है। कर्मभूमि मे प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए कर्म करता है। कृपक की तरह अच्छे बीज बोकर, परिश्रम के साथ भाग्य निर्माण कर अच्छा-बुरा फल पाता है। अत परमात्मा को किसी भी प्रकार दोषी बनाना उचित नही है। तुलसीदासजी ने ठीक ही कहा है—"जो जस करहि सो तसु फल चाखा।"

ससार मे दो तत्व है—आत्मा और जड या चेतन और अचेतन। ससार इन तत्वो का सयोग है। सभी दर्शन इन दोनो के अस्तित्व को किसी-न-किसी रूप मे स्वीकारते है—निबन्ध नही। अन्यथा ब्रह्म की प्राप्ति या मुक्ति सभी का अस्तित्व खतरे मे पड जाता है। हमे प्रत्येक प्राणी मे आत्म-तत्व के दर्शन करता है और उसे पाने के लिए प्रत्येक को प्रोत्साहित करता है।

अथर्ववेद मे कहा है –

'पुरुषे ब्रह्म ये विदुः ते विदु. परमेष्ठितम् ।'

'अर्थात् आत्मा मे जो ब्रह्म का दर्शन करते है वे परमात्मा को जानते है।" परमात्मा आत्मा से पृथक् नही है। अतः आत्मा की अनादिता, अमरता, अविनश्वरता आदि की घोषणा की गई। ससार का कोई भी पदार्थ या तत्व नष्ट नही होता केवल उसकी पर्याये या अवस्थाएँ बदलती है। प्रत्येक तत्व मे तीन गुण पाये जाते है—उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य।

ससार मे चेतन और अचेतन, आत्मा और जड दो तत्व है—द्रव्य है। दोनो का अस्तित्व अमर है। दोनो मे अपनापन हमेशा रहता है। अत "मोक्षशास्त्र" ग्रन्थ मे—आचार्य उमास्वामी ने कहा—"उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्त सत्", "सद् द्रव्य लक्षणम्" अर्थात् प्रत्येक द्रव्य के—अस्तित्व मे उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रहता है और उसी को द्रव्य कहा जाता है। द्रव्य मे गुण और पर्यायें होती है।

दोनो तत्वो मे अनुरूप उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य रहता है। जड मे जड के अनुरूप और चेतन मे चेतन के अनुरूप। जड से चेतन और चेतन से जड की क्रिया असम्भव है। जिसमे ज्ञान, दर्शन की शक्ति या जानने, सोचने-विचारने की शक्ति हो वह चेतन है। चेतन मे दूसरे शब्दो मे अनतदर्शन, अनतज्ञान, अनतसुख और अनतवीर्य—अनतशक्ति होती है। अनतशक्ति तो जड मे भी है परन्तु उतनी नही जितनी, आत्म-चेतन मे। शेष चेतन की तीन शक्तिया आत्मा मे ही होगी जड मे नही। अत चारो, अनत चतुष्टय आत्मा मे ही पाये जा सकते है।

सोना, चादी, लोहा, ताम्रादि की अनेक चीजे बनती है। उनमे कगन, अगूठी, थाली, लोटा, आदि बनने की क्षमता है। इनमे नई अवस्था आई, उत्पाद हुआ। पूर्वावस्था का रूप बन गया अतः व्यय हुआ और धातु अचेतन की अचेतन, जड की जड रही। पर ये चेतन नही हो सकती। इसी प्रकार आत्मा-चेतन अनेक रूप धारण कर सकता है—जन्म-मरण कर सकता है पर जड-अचेतत नही हो सकता। इस प्रकार प्रत्येक द्रव्य अपने रूप परिणमन करता है।

"जैनदर्शन" मानता है कि प्रत्येक द्रव्य स्वतत्र है। वह अपने रूपो का, परिणमनो का उत्तरदायी है। कोई द्रव्य किसी का कुछ बिगाड नही सकता। अन्यथा—कर्ता-धर्तापन की भावना यहाँ भी बनी रहेगी जो सच्चे विश्वास को डगमगा देगी। जब सच्चा विश्वास-सम्यग्-दर्शन न होगा तो सच्चा ज्ञान और सच्चा चरित्र कहाँ रहेगा। इन तीनो के बिना मुक्ति भी न होगी। अत जैन-दर्शन ने प्रत्येक द्रव्य को अपने परिणमन मे स्वतत्र माना है। इसी विश्वास मे आत्मा की विजय है —"अहमिन्द्रो न पराजिग्ये"—ऋग्वेद। आत्मा को अनतशक्ति का आभास भी यही होता है।

यह ससार सदा से आत्मा और अनात्मा, चेतन या अचेतन के सयोग से अभिन्न रहा है। इन दोनो के सयोग का नाम ही ससार है। इस ससार में हमे अचेतन जड-द्रव्यो का सहारा तो लेना ही पडता हैं। इसमे जो भी सुख-दु ख मिलता है उसमें अचेतन का भी योग रहता है। यह योग तब तक है जब तक ससार है—सासारिक बुद्धि है। इसे हम अनुभव भी करते है। इसी-लिए "जैनदर्शन" कहता है कि हमारे क्रियाकलापो के अनुरूप "कार्माणवर्गणा" (जड-द्रव्य कर्म-समूह) हमारी आत्मा से सबद्ध हो जाती है तथा तदनुरूपेण (प्रकृतिबध, प्रदेशबध, स्थिति और अनुभागबध द्वारा) फलदान करती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि जड पदार्थ "कार्माण वर्गणा" मे आत्म-चेतन के क्रियाकलापो या विचारो आदि के कारण फल देने की शक्ति प्रकट हो जाती है। कौन कर्म जड कब उदय मे आकर फल देंगे यह भी निश्चित हो जाता है। "कार्माण वर्गणा"ओ से आकृष्ट होकर आये, जडकर्मपरमाणु आत्मा से सम्बद्ध हो जाते है। वे ही समया-नुसार फल देते है।

"एकीभावस्तोत्र" मे आचार्य श्री वादिराज ने कहा है—

एकीभाव गत इव मया य स्वय कर्मबन्धो,
घोर दु ख भवभवगतो दुर्निवार. करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिनरवे। भक्तिरुन्मुक्तये चेत्,
जेतु शक्यो भवति न तया कोऽपरस्ताप हेतु ॥

"हे भगवान् जिनेन्द्र सूर्य! अनेक भवो मे सचित दुर्निवार तथा मेरे साथ स्वय एकी-भाव को प्राप्त कर्मबन्ध घोर दु ख देता है। उस कर्मबध से (जो अनादि कालीन है) आपकी भक्ति छुटकारा दिलाती है तो फिर वह भक्ति दु ख देने वाले अन्य किससे छुटकारा न दिलावेगी।"

पूर्वोक्त भक्तिपद्य मे आत्मा को अनादिकाल से कर्मवद्ध बताया है। साथ मे जिनेन्द्र भगवान् की भक्ति का माहात्म्य भी बताया है। जैनदर्शन—कर्म से आत्मा का सवध अनादि

मानता है। यह सम्बन्ध सयोग सम्बन्ध है। सयोग सम्बन्ध छूट जाता है किन्तु तादात्म्य सम्बन्ध नही छूटता। वह यह मानने को तैयार नही कि किसी के कारण आत्मा कर्मबन्ध से मुक्त होने पर भी जन्म धारण कर सकता है। न वह यह मानने को तैयार है कि आत्मा किसी शक्ति का अग है। कर्मबंध से बधा हुआ आत्मा जन्म-मरण के दु:ख सहता है। ससार मे प्रत्येक प्राणी की आत्मा स्वतत्र है—पृथक्-पृथक् है। प्रत्येक आत्मा की शक्ति अनत है। शक्ति-दृष्टि से आत्माओ मे कोई अंतर नही है। इसी को विशुद्ध आत्मदृष्टि कहते है।

अत जैनदर्शन ने प्राणी दो प्रकार के माने हैं—ससारी और मुक्त। ससारी जन्म-मरण के दु ख तब तक उठाते है जब तक कि वे कर्मबध से छूट नही जाते और मुक्त वे हैं जो जन्म-मरण के दु ख से सदा को दूर हो जाते है। मुक्त पुन कभी भी इस ससार मे जन्म नही लेते। मैं खाता हू, मैं अनुभव करता हू, मैं पढा-लिखा हू इत्यादि वाक्यो मे, "मै" शब्द शरीर में रहने वाली एक अदृश्य शक्ति का सकेत करता है, उसे ही जैनदर्शन ने आत्मा माना है। वह अनादि से कर्मबद्ध है—ससारी है अतएव जन्म-मरण करता है और नये-नये शरीर धारण करता है जब तक कि मुक्त नही हो जाता।

गीता मे कहा है—

> वासासि जीर्णानि यथा विहाय,
> नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि।
> तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
> न्यन्यानि सयाति नवानि देही॥

"जिस प्रकार मनुष्य पुराने जीर्ण-शीर्ण वस्त्रो को त्याग कर नये दूसरे वस्त्रो को—पहिनता है—धारण करता है उसी प्रकार आत्मादेही—संसारी जीर्ण शरीरो को छोडकर अन्य शरीर धारण करता है।"

गीता ने भी आत्मा को अनादि और जन्म-मरण धारण करने वाला माना है। जैनदर्शन प्रत्येक ससारी आत्मा को अपना हित और अहित करने वाला मानता है। प्रत्येक ससारी विवेक से अच्छे-से-अच्छा—उन्नत-से-उन्नत—श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ बन सकता है और अविवेक से बुरे-से-बुरा, हीन-से-हीन और नीच-से-नीच बन सकता है। जो अच्छा कार्य करता है वह उच्च है और जो बुरा कार्य करता है वह नीच है। अत यह स्पष्ट है कि ससार और धर्म-दर्शन के क्षेत्र मे सुकर्मों को ही महत्व दिया जाता है। सुकर्मों से ही मुक्ति मिलती है। कर्मो का फल सबको भोगना पड़ता है यह सर्वमान्य सिद्धात है। ससारी प्राणी को कर्मो का फल स्वत कर्मो के द्वारा मिलता है। कर्मोदय मे कोई अन्य कारण नही है।

"भावना द्वात्रिंशत्का" मे कहा है—

> पुराकृत कर्मयदात्मना स्वय,
> फल तदीय लभते शुभाशुभम्।
> परेण दत्त यदि लभ्यते स्फुट,
> स्वय कृत कर्म निरर्थकं तदा॥

आत्मा ने स्वय पहिले जो कर्म किए है। उनका ही अच्छा-बुरा फल उसे भोगना पडता है। यदि यह मानें कि दूसरे के द्वारा दिए गए कर्मफल को भोगना पडता है तो अपने द्वारा किया गया कर्म निरर्थक हो जावेगा—आत्मा दूसरे के कर्मो का गुलाम हो जावेगा—उसकी स्वतन्त्रता छिन जावेगी।

अत यह मानना होगा—

निजार्जित कर्म विहाय देहिनो,
न कोऽपि कस्यापि ददाति किंचन।
विचारयन्नेवमनन्यमानसो,
परो ददातीति विमुच्य शेमुषीम् ॥

"देही आत्मा को अपने अर्जित कर्म का फल मिलता है। कोई किसी को कुछ नही देता। अत आत्मदृष्टि मे लीन हो पूर्वोक्त प्रकार से विचारते हुए दूसरा देता है (कर्मों को या कर्मफल को) यह पर-बुद्धि छोड देना चाहिए अन्यथा कल्याण नही हो सकता।] पर-बुद्धि के कारण ही ससारी बना रहता है। परबुद्धि मिथ्याबुद्धि है और स्वबुद्धि या आत्मबुद्धि सच्ची बुद्धि है—सच्ची दृष्टि है।

अरिस्टाटिल कहते है—

"Riches, and authority and all things else that come under the heading of potentialities are the gift of fortune Among feelings we have angar, fear, hatred, longing, envy, pity and the like—these are all accompained by pain or peasulre. Faculties are the potentialities of anger, grief pity and the like To do well and to do ill are alike within owr powers Every natural growth whether plant or anlmal has the power of producing its like. It is who has the power of originating action, our changes of action are under contiol af our will."

"धन, अधिकार और वे सर्व वस्तुए जो अदृष्ट है—भाग्य का फल है। क्रोध, भय, इच्छा, ईर्ष्या दया आदि भाव दु ख या सुख देते है। इन सब के होने का कारण अदृष्ट शक्तियाँ हैं; अच्छा या बुरा करना हमारा पुरुषार्थ है। वृक्ष या पशु अपनी प्रकृति के अनुसार बनने की की शक्ति रखते है। मानव अपने पुरुषार्थ से अनेक विचित्र कामो को अदल-बदल के कर सकता है।"

अत स्पष्ट है कि अरिस्टाटल भी अपने कर्मों के फल को भोगने की बात मानते हैं। यहां यह कहना अनुचित न होगा कि वे ईश्वर को जगत् का कर्ता मानने को तैयार नही और पाप-पुण्य का फल देने वाला भी। ये विचार जैन दर्शन से मेल खाते है। अरिष्टाटल के दार्शनिक सिद्धान्तो में जैन दर्शन के सिद्धान्तो की विशेष झलक मिलती है।

आचार्यो ने आत्मा और कर्मो के सम्बन्ध का वैज्ञानिक विश्लेषण मनोविज्ञान के धरातल पर किया है। वे जिस नतीजे पर पहुँचे उसी आधार पर कर्मो के आठ भेद माने हैं—(१) ज्ञानावरण, (२) दर्शनावरण, (३) वेदनीय, सातावेदनीय, असातावेदनीय, (४) मोहनीय, (५) आयु कर्म, (६) नामकर्म, (७) गोत्रकर्म, (८) अन्तराय कर्म।

इन आठो कर्मो के पृथक-पृथक कार्य हैं। ज्ञानावरण आत्मा के ज्ञान गुण को प्रकट नही होने देता। ज्ञान का आवरण जितना हटेगा उतना ही ज्ञान प्रकट होगा। सम्पूर्ण आवरण हटने पर पूर्ण ज्ञान—केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है। आत्मा का ज्ञान अभिन्न गुण है। दर्शनावरण आत्मा के दर्शन गुण को ढाँकता है। दर्शनावरण जितने अंशो मे हटता है उतना ही दर्शनगुण प्रकट होता है। आत्मा की अनन्त दर्शन शक्ति है। वेदनीय कर्म के दो भेद हैं—सातावेदनीय और असातावेदनीय। सातावेदनीय सुख देता है और असातावेदनीय दुःख देता है। मोहनीय कर्म राग, द्वेष, क्रोध, मोह, लोभ आदि पैदा करता है। आयु कर्म देही आत्मा को निश्चित समय तक जीवित रखता है। नामकर्म शरीर की पूर्णतया रचना करने मे स्वाधीन है। गोत्रकर्म प्राणी को उच्च कुल या नीच कुल मे जन्म देता है। अतः गोत्रकर्म के दो भेद हैं—उच्च गोत्र तथा नीच गोत्र। गोत्र का कार्य जन्म से सम्बद्ध है।

जन्म उच्च कुल या नीच कुल मे लेने के बाद प्राणी अच्छे या बुरे कर्म करने के लिए स्वतन्त्र है। कर्म के क्षेत्र मे सच्चा जनतन्त्र है। अच्छा कर्म करने वाला अच्छा और बुरा कर्म करने वाला बुरा। उच्चता और नीचता, कुलीनता और अकुलीनता कर्मो पर आधारित है। चार वर्णो की व्यवस्था जन्म और कर्म के एक से सयोग होने पर श्रेष्ठ मानी जाती रही है। अन्तराय कर्म अच्छे-बुरे कर्मो मे विघ्न डालता है।

कर्मवाद के सिद्धान्त मे उपादान कारण (मुख्य कारण) और निमित्त कारण (गौण या सहायक कारण) दोनो का ध्यान रखना पड़ता है। जिस कर्म का उदय है वह उपादान कारण तथा अन्य सहयोगी निमित्त कारण कहा जावेगा। उपादान कारण मुख्य शक्ति रूप है। निमित्त कारण तो ससार मे भरे पड़े है। आत्मा की दो शक्ति है—स्वाभाविक और वैभाविक। स्वाभाविक शक्ति आत्मा के गुण या स्वभाव रूप परिणमन कराती है। स्वभाव रूप परिणमन ही धर्म है। विभावरूप परिणमन करना वैभाविक शक्ति का काम है। आत्मा अन्य द्रव्यो के समान अपने परिणमन मे स्वतन्त्र है। आत्मा अपने गुणो को जितने अंशो मे प्रकट करता जाता है वह उतना ही स्वाभाविक शक्ति के निकट पहुँचता जाता है। स्वाभाविक शक्ति के पूर्ण प्रकट होने पर मुक्ति होती है—आत्मा कर्म सयोग से मुक्त होकर मुक्त जीव बनता है। मोह कर्म कर्मो का राजा है। क्रोध, मान, माया लोभ उसी के है। इनसे ही आत्मा और कर्म का बध सायोगिक होता है। यह बध चार प्रकार का होता है—प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग।

प्रकृति बध कर्म के नामरूप होता है। प्रदेशबंध मे आत्मा के प्रदेशो—अंशो के साथ कर्म का बध और कर्मपरमाणुओ की मात्रा का बध होना है। स्थितिबध समय निर्धारित करता है और अनुभागबध फलदान शक्ति प्रदान करता है। क्रोध, मान, माया और लोभ कषाये हैं। इनकी तरतमता के ऊपर बध निर्भर है। इन पूर्वोक्त कर्मो से मुक्त होने के लिए प्रयत्न करना ही

सच्चा पुरुषार्थ है। मन और कषायों के संपर्क से उत्पन्न चौदह अवस्थाओं—गुणस्थानों को पार कर आत्मा मुक्त बन सकता है। अत: प्रत्येक आत्मा को कर्मबंध से मुक्त होने के लिए सच्चा दर्शन, सच्चा ज्ञान और सच्चा चरित्र पाने की कोशिश करना चाहिए। क्योंकि इन तीनों की प्राप्ति से ही मुक्ति मिलेगी—अनंत आनंद की प्राप्ति होगी। सच्चा दर्शन—विश्वास—"जीवाजीवाश्रवबंध संवर निर्जरा मोक्षास्तत्वम्"—'जीव, अजीव, आश्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन तत्वों के सच्चे ज्ञान पर निर्भर है।

जीव आत्मा है। आत्मा द्रव्य है। वह अजर-अमर भी है। आत्मा के ज्ञान, दर्शन, सुख और शक्ति गुण हैं। प्रत्येक के साथ अनंत जोड़ने पर ये अनंत चतुष्टय बन जाते हैं। अजीव द्रव्य में आत्मा के गुण नहीं अत: जीव से विपरीत अजीव कहा गया है। अजीव द्रव्य पांच हैं—धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल—जड़। धर्म द्रव्य एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने में सहायक होता है। अधर्म द्रव्य ठहरने में सहायक होता है। आकाश जगह देता है रहने के लिए। आकाश के दो भेद हैं—लोकाकाश तथा अलोकाकाश। लोकाकाश में छह द्रव्यें रहती हैं किन्तु अलोककाश में केवल आकाश ही है शेष द्रव्यें नहीं। काल समय बताता— और पुद्गल जड़ है इसमें कठोरता, कोमलता, रूक्षता आदि गुण होते हैं।

गुणस्थानों के सहारे आठों कर्मों में से मोहनीय कर्म के साथ-साथ ज्ञानवरण, दर्शनावरण और अंतराय कर्मों का क्षय कर संसारी आत्मा अरहंत पद पाता है। इस अवस्था में वह सशरीर रहता है और संसार के प्राणियों के कल्याणार्थ सदुपदेश देता है। यह सदुपदेश दिव्यध्वनि कहलाती है। अत: पांच परमेष्ठियों में प्रथम स्थान अरहंत को दिया। शेष वेदनीय, आयु, नाम और गोत्र कर्मों को नष्ट कर अरहंत सिद्ध हो जाते हैं। सिद्ध आकाश के दूसरे भेद अलोकाकाश में जा विराजते हैं। ये सिद्ध कर्मबन्धनों से मुक्त हो पुन: संसार में जन्म नहीं लेते। शेष परमेष्ठी आचार्य, उपाध्याय और सर्वसाधु हैं।

इस प्रकार जैनधर्म-दर्शन में कर्मसिद्धान्त मुख्य सिद्धान्त है। कर्मसिद्धान्त का विवेचन स्याद्वाद के सहारे होता है। स्याद्वाद—अनेकान्तवाद ही वस्तुस्वरूप का सच्चा एवं पूर्ण विवेचन करता है। कर्मभूमि में कर्मसिद्धांत कर्म को गौरव देता है। कर्मसिद्धांत संसार के प्रत्येक प्राणी को कर्मठ बनाता है। उसके जीवन को आशा की जगमगाती सुनहली किरणों से आलोकित करता है। क्योंकि कहा है—

> निराशाया: समं पापं मानवस्य न विद्यते।
> समुत्सार्य समूलं तामाशावादपरो भव॥

"निराशा के समान पाप नहीं है। अत: मानव को इसे समूल नष्ट कर आशावादी—अपने जीवन को उन्नत बनाने की भावना वाला होना चाहिए।"

> मानवस्योन्नति: सर्वा साफल्यं जीवनस्य च।
> चारित्रार्थ्यं तथा सृष्टेराशावादे प्रतिष्ठितम्॥

"मनुष्य की सम्पूर्ण उन्नति, जीवन की सफलता एवं सृष्टि की सार्थकता आशावाद पर निर्भर है।"

विश्व-शांति के अमोघ उपाय

सुप्रसिद्ध लेखक श्री अगरचन्द
नाहटा, बीकानेर

विश्व का प्रत्येक प्राणी शान्ति का इच्छुक है। जो कतिपय पथ-भ्रान्त प्राणी अशांति की सृष्टि करते है वे भी अपने लिए तो शान्ति की इच्छा करते है। अशात जीवन भला किसे प्रिय है ? प्रतिपल शाति की कामना करते रहने पर जो विश्व मे अशाति बढ़ रही है। इसका कुछ कारण तो होना चाहिए। उसी की शोध करते हुए शाति को पाने के उपायो पर प्रस्तुत लेख मे विचार किया जाता है। आशा है कि विचारशील व विवेकी मनुष्यो को आशा की एक किरण मिलेगी, जितनी यह किरण जीवन में व्याप्त होगी उतनी ही शान्ति (विश्व-शान्ति) की मात्रा बढ़ती जाएगी।

व्यक्तियो का समूह ही 'समाज' है और अनेक समाजो का समूह एक देश है। अनेको देशो के जन-समुदाय को 'विश्व-शान्ति' कहते है और इसी 'विश्व-जनता' के धार्मिक, नैतिक, दैनिक जीवन के उच्च और नीच जीवन-चर्या से विश्व मे अशाति व शांति का विकास और ह्रास होता है। अशाति सर्वदा अवाछनीय व अग्राह्य है। इसलिए इसका प्रादुर्भाव कब कैसे किन-किन कारणो से होता है—इस पर विचार करना परमावश्यक है।

प्रथम प्रत्येक व्यक्ति के शान्ति व अशाति के कारणो को जान लेना जरूरी है इसीसे विश्व की शाति व अशाति के कारणो का पता लगाया जा सकेगा। व्यक्ति की अशान्ति की समस्याओ को समझ लिया जाय और उसका समाधान कर लिया जाय तो व्यक्तियो के सामूहिक रूप 'विश्व' की अशान्ति के कारणो को समझना बहुत आसान हो जायगा। ससार का प्रत्येक जीवधारी व्यक्ति यह सोचने लग जाय कि अशान्ति की इच्छा न रखने पर भी यह हमारे बीच कैसे टपक पड़ती है, एव शान्ति की तीव्र इच्छा करते हुए भी वह कोसो दूर क्यो भागती है ? तो उसका कारण ढूढ़ते देर न लगेगी। विश्व के समस्त प्राणियो की बुद्धि का विकास एकसा नही होता, अत विचारशील व्यक्तियो की जिम्मेदारी बढ जाती है। जो प्राणी समुचित रीति से अशाति के कारणो को जान नही पाता, उसके लिए विचारशील पुरुष ही मार्ग-प्रदर्शक होते है।

दुनिया के इतिहास के पन्ने उलटने पर सर्वदा विचारशील व्यक्तियो की ही जिम्मेदारी अधिक प्रतीत होती है। विश्व के थोडे से व्यक्ति ही सदा दुनिया की अशाति के कारणे को ढूढने मे आगे बढे, नि स्वार्थ भाव से मनन कर उनका रहस्योद्घाटन किया और समाज के समक्ष उन कारणो को रखा। परन्तु उन्होने स्वय अशान्ति के कारणो से दूर रहकर सच्ची शान्ति प्राप्त की।

हाँ ! तो व्यक्तियो की अशान्ति का कारण होता है अज्ञान, अर्थात् व्यक्ति अपने वास्तविक स्वरूप को न समझकर काल्पनिक स्वरूप को सच्चा समझ लेता है और उसी व्यक्ति की प्राप्ति के लिए लालायित होता है, सतत् प्रयत्नशील रहता है इससे गलत व भ्रामक रास्ता पकड़ लिया जाता है और प्राणी को अनेक कष्ट सहने पडते है। उन कष्टो के निवारणार्थ वह स्वार्थान्ध हो ऐसी धार्मिक तथा नीति विरुद्ध क्रियायें करता है कि जिनसे जन-समुदाय मे हलचल मच जाती है और अशान्ति आ खड़ी होती है। यह स्वरूप का अज्ञान जिसे जैन परिभाषा मे

'मिथ्यात्व कहते है, क्या है ? यही कि जो वस्तु हमारी नही है उसे अपनी मान लेना और जो वस्तु अपनी है उसे अपनी न समझकर छोड देना या उसके प्रति उदासीन रहना। उदाहरणार्थ जड़ पदार्थ जैसे वस्त्र, मकान, धन इत्यादि नष्ट न होने वाली चीजो को अपनी न समझकर प्राप्ति व रक्षा का सर्वदा इच्छुक रहना और चेतनामयी आत्मा जो इनकी सच्ची सम्पत्ति है उसे भुला डालना सच्चे दु खो का जन्म इन्ही क्षणभगुर वस्तुओ की प्राप्ति में लगे रहने से ही होता है। दृश्यमान सारे पदार्थ पौद्गलिक है, जड है। आत्मा तो हमे दिखाई देती ही नही, अत, शरीर ही हमने सब कुछ मान लिया है। उसी को सुखी रखने के लिए धन-सम्पत्ति इत्यादि को येन-केन-प्रकारेण जुटाने मे सलग्न रहते हैं। इस तरह हम वस्तुओ की प्राप्ति की तृष्णा मे ही जीवन-यापन करते हुए अपनी वस्तु अर्थात् आत्म-भाव आत्मानुभव से पराङ्मुख हो रहे है, यही अशान्ति का सबसे प्रधान, मूल और प्रथम कारण है।

जब पदार्थ सीमित है और मानव की इच्छाएँ अनन्त है। अतः ज्योही एक वस्तु की प्राप्ति हुई कि दूसरी वस्तु को ग्रहण करने की इच्छा जागृत हो उठती है। इस तरह तृष्णा बढती चली जाती है और उत्तरोत्तर अधिक सग्रह की कामना मन मे उद्वेलित हो उठती है जिससे हम व्यग्र व अशान्त हो जाते है। इसी प्रकार अन्यान्य व्यक्ति भी सग्रह की इच्छा करते है और प्रतिस्पर्धा बढ जाती है। अशान्ति की चिनगारियाँ छूटने लगती है। व्यक्तित्व देश की अशान्ति रूप ज्वाला धधक उठती है कि वह सारे विश्व मे फैल जाती है और एक विश्वव्यापी युद्ध का अग्निकुण्ड प्रज्वलित हो उठता है जिससे सारे विश्व का साहित्य, जनसमूह, सम्पत्ति जलकर राख हो जाती है। यही दुनिया की अशान्ति की राम-कहानी है। इसके लिए समय-समय पर विभिन्न देशो मे उत्पन्न हुए महापुरुष यही उपदेश दिया करते है कि 'अपने को पहचानो, पराये को पहचानो' फिर अपने स्वरूप मे 'रहो, और अपनी आवश्यकताओ को सीमित करो, तृष्णा नही रहेगी तो सग्रह अति सीमित होगा जिससे वस्तुओ की कमी न रहेगी। अत वे आवश्यकतानुसार सभी को सुलभ हो सकेगी। फिर यह जन-समुदाय शान्त और सतुष्ट रहेगा। किसी भी वस्तु की कमी न रहेगी। जन-समुदाय भौतिक वस्तुओ की प्राप्ति सुलभ होने पर उन पर कम आसक्त होगा और आत्मज्ञान की ओर झुकेगा। मानव ज्यो-ज्यो अपने आत्म-स्वरूप को समझने का प्रयत्न करेगा, त्यो-त्यो वह समझता जायगा कि भौतिक वस्तुए जिनके लिए वह मारा-मारा फिर रहा है, जल्द नष्ट होने वाली है, पर उसमे मोह रखना मूर्खता है। इन विचारो वाला आवश्यकता से अधिक सग्रह (परिग्रह) न करेगा और अन्त मे उसे आत्मा ही ग्रहण करने योग्य है--यह स्पष्ट मालूम हो जाएगा। इस तरह एक दिन वह भली-भाति समझ लेगा कि आत्मा मे मग्न रहना ही सच्ची शान्ति है। यदि इस प्रकार विश्व का प्रत्येक प्राणी समझले तो फिर विश्व की अशान्ति का कोई कारण ही नही रहेगा। परिग्रह सग्रह और ममत्व बुद्धि ही अशान्ति का दूसरा कारण है।

आजका विश्व भौतिक विज्ञान की तरफ आँख मू दकर बढता चला जा रहा है। योरोप की बाते छोडिये। पर वह तो भौतिक विज्ञान के अतिरिक्त आध्यात्मिक विज्ञान को जानता तक नही। सब भौतिक विज्ञान के अधिकाधिक विकास मे ही मनुष्यो की पराकाष्ठा मानता है।

फलत अणुबम जैसे सर्वसंहारक शस्त्र का आविष्कार करता है। केवल भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है कि जहाँ अनादि काल से आध्यात्मिक धारा अजस्र गति के प्रवाहित होती आ रही है। और समय-समय पर देश के महापुरुषो, ऋषियों ने इसे और भी निर्मल तथा सचेत बनाया और इस धारा का पीयूष सम जल पीकर अनेक मानव सन्तुष्ट हुए। अब योरोप भी भारत की ओर आशा की दृष्टि लगाये देख रहा है क्योंकि उसे इस देश की अहिंसा-मूर्ति महात्मा गाधी की आत्मिक शान्ति का आभास मिल चुका है। वह समझ गया कि अहिंसा की कितनी बडी शक्ति है जिसके द्वारा भारतवासी अग्रेजो के शक्तिशाली साम्राज्य से बिना शस्त्रो को लिए भी समर्थ तथा सफल हुए। उन्होने बडी सफलतापूर्वक अपनी चिरभिलषित स्वतन्त्रता प्राप्त की। वे समझने लगे है कि भारत ही अपने आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा विश्व-कल्याण कर सकता है और आत्मानुभव से ही अखण्ड शान्ति प्राप्त हो सकती है। 'यह मेरा है' वह व्यक्ति या देश मेरा नही है, इस भेद-भाव के कारण प्राणी अन्य 'प्राणियो' के विनाश मे उद्यत होता है। इस भेदभाव से अधिक और कोई बुरी बात हो ही नही सकती। दूसरे के दु.ख को अपना मानकर दु.ख अनुभव कर उसके दु ख निवारण मे ही सहयोग देना मानवता है। पराया कोई है ही नही, सभी अपने ही है ऐसा भाव जहाँ आया कि किसी को कष्ट पहुचाने की प्रवृत्ति फिर हो ही नही सकेगी फिर पराया कष्ट अपना ही कष्ट प्रतीत होने लगेगा।

भारत एक आध्यात्मिक विद्याप्रधान देश है। इस देश मे बडे-बड़े आध्यात्मवादियों ने जन्म ग्रहण किया है। उनमे प्राय ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीर और बुद्ध अवतीर्ण हुए थे। अहिंसा उनका प्रधान सदेश था। महात्मा गाँधी की 'अहिंसा' व विश्व-प्रेम, भारत के लिए कोई नवीन वस्तुए नही थी, सिर्फ उसकी अपार शक्ति को हम भूल-से गये थे। इन्ही अहिंसा, सत्य आदि को भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध ने अपने पवित्र उपदेशो द्वारा भारत के कौने-कौने मे प्रचलित किया था। भगवान् महावीर ने ही 'अहिंसा' यानी 'विश्व-प्रेम' का इतना सुन्दर और सूक्ष्म विवेचन किया है कि जिसकी मिसाल मिल सकती। उनका कथन था, " मनुष्य को अपनी आत्मा को पहिचानना चाहिये, मैं स्वय शुद्ध हू, बुद्ध हू, चैतन्य हू, सर्वशक्ति सम्पन्न एव वांछा-रहित हू, मुझे किसी भी भौतिक पदार्थ मे आसक्ति नही रखनी चाहिए, उनसे मेरा कोई चिर-स्थायी सबध नही। अगर मानव इन उपदेश को ग्रहण करे, तो उसमें अनावश्यक वस्तुओं के सग्रह की वृत्ति (परिग्रह) ही न रहेगी। उसमे मूर्छा व तीव्र आरम्भ वैमनस्य, और कलह न रहेगा। जब यह सब नही रहेगे तो फिर जन-समुदाय से अशान्ति का काम ही क्या है ? सर्वत्र शान्ति छा जायेगी और विश्व मे फिर अशाति के बादल और युद्ध की भयकर आशका छा रही है वह न रहेगी। सर्वत्र मानव महान सुखी दिखाई पडेगा। उपर्युक्त विवेचना से विश्व-शान्ति के निम्नलिखित कारण सिद्ध हुए —

१ आत्म-बोध—चेष्टा और भौतिक वस्तुओ मे विराग अर्थात् आत्म-ज्ञान।

२ अनावश्यक अन्न वस्त्रादि का सग्रह नही करना अर्थात् अपरिग्रह।

३. 'आत्मवत् सर्वभूतेषु य पश्यति स पण्डित' अपनी आत्मा के समान विश्व के प्राणियो को समझना। अर्थात् 'अहिंसा-आत्मीयता का विस्तार'।

४. विचार सघर्ष मे समन्वय का उपाय—अनेकान्त।

आज मनुष्य का एक दम ह्रास हो चुका व हो रहा प्रतीत होता है। पारस्परिक प्रेम और मैत्रीभाव की कमी परिलक्षित हो रही है। पुराने व्यक्ति आज भी मिलते है तो आत्मीयता का अनुपम दर्शन होता है, वे खिल जाते है, हरे भरे हो जाते है। चेहरे पर उनके प्रसन्नता, प्रफुल्लता के भाव दृष्टिगोचर होने लगते है, पर आज के नवयुवको के पास बनावटी दिखावे की मैत्री व प्रेम के सिवाय कुछ है ही नही। बाहर के सुहावने, चिकनी-चुपड़ी बातें, भीतर से घोखापन अनुभव होता है। इसलिए परदुःख-कातर विरले व्यक्ति ही मिलते हैं। अपना स्वार्थ ही प्रधान होता है। एक-दूसरे के लगाव से ही स्वार्थ टकराते है और अशान्ति बढती है। आत्मीयता के प्रभाव मे ही यह महान् दु ख हट सकता है। हमारा प्राचीन भारतीय आदर्श तो यही रहा है —

अय निज परोवेत्ति, गणना हि लघुचेतसाम् ।
उदार चरिताना तु 'वसुधैव कुटुम्बकम्' ॥

इस आदर्श को पुन प्रतिष्ठापित करना है।

× × × ×

जयपुर का हिन्दी जैन-साहित्य और साहित्यकार

श्री गंगारामजी गर्ग, एम०ए०
रिसर्च स्कालर, जयपुर

"श्री गगारामजी गर्ग एम० ए० रिसर्च स्कालर ऐसे उदीयमान अजैन बन्धु है जिन्हे जैनधर्म से अत्यन्त प्रीति है। उन्होने जैन विषयो पर अनेक स्वतन्त्र गवेषणात्मक लेख लिखे हैं। 'जयपुर के जैन विद्वानो की हिन्दी सेवा इस विषय पर आपका सारगर्भित खोजपूर्ण निबन्ध सक्षिप्त और मौलिक ढग से लिखा गया है। इस लेख को पढकर आप भली प्रकार जान सकेंगे कि जयपुर मे जैन विद्वानो ने किस प्रकार हिन्दी साहित्य की सेवा की। आपके लेख पठनीय और ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।"

जयपुर चिरकाल से जैन सस्कृति और साहित्य का केन्द्र रहा है। यहाँ विमलदास, कृपाराम, बालचन्द, बखतराम आदि कई जैन धर्मावलम्बी प्रमुख राज्य-पदो पर आसीन होते रहे, अनेक श्रेष्ठि-जन सुन्दर जिन-चैत्यालयो का निर्माण करवाते रहे जिससे यहां की भूमि मे जैन धर्मवल्लरी पर्याप्त पुष्पित और पल्लवित हुई। जैन धर्म के व्यापक प्रचार ने जैन साहित्य को भी बड़ी गति दी। मनुष्यो ने जैन धर्म व साहित्य का अध्ययन किया। शास्त्रो के अध्ययन ने क्लिष्ट व दुरूह ग्रन्थो के अनुवाद तथा तन्निहित गूढ दार्शनिक तत्वो के विवेचन की प्रेरणा उनको दी एव भाव-भरी अपभ्र श रचनाओ के पारायण ने उनमे कवि-बुद्धि जागृत की, अतः जयपुर में विपुल साहित्यिक रचनाओ का निर्माण हुआ। जयपुर के समग्र जैन साहित्य का अध्ययन कर लेने पर हमको उसमे निम्नलिखित विशेषताएँ मिलती हैं :—

१. जयपुर के जैनेतर साहित्यकारो का केवल पद्य साहित्य ही है किन्तु जैन लेखको का पर्याप्त गद्य भी।

२. जयपुर मे जैनो की दिगम्बर-शाखा का बोलबाला रहा अत यहा सभी जैन साहित्यकार प्राय दिगम्बर है। श्वेताम्बर जैनो ने गद्य तो बिल्कुल लिखा ही नही, कविता अवश्य की है वह भी केवल दो-तीन कवियो ने।

३ ब्रह्मरायमल्ल, सुजानमल आदि को छोडकर जयपुर के सभी साहित्यकार प्राय गृहस्थ है।

४ महावीर स्वामी ने अपने उपदेश लोक-भाषाओ मे दिये थे जिससे जन-जन उन्हें समझ सके। जैन साहित्यकार भी अपने साहित्य को सर्वदा लोक-भाषाओ मे व्यक्त करते रहे है। जयपुर के जैन साहित्यकारो पर भी यहा की स्थानीय बोली ढूंढाड़ी का पर्याप्त प्रभाव है।

जैन गद्य—गद्य-साहित्य का प्रसार और वैभव आधुनिक काल मे ही अधिक देखा और माना जाता है किन्तु जयपुर के जिन-मन्दिरो मे उपलब्ध अनेक गद्य-कृतियो के अध्ययन से मालूम होता है कि गद्य-लेखव का प्रचलन सत्रहवी-अठारहवी शताब्दी से ही अच्छा होने लग गया था। जयपुर के जैन लेखको का गद्य चाहे टीका के रूप में ही अधिक क्यो न हो, किन्तु शैली, तत्त्व-विवेचन की क्षमता तथा वर्तमान गद्य के उद्‌भव और विकास की दृष्टि से उसका अपना वड़ा महत्त्व है। यहाँ की हिन्दी गद्य-कृतियो मे अनुवाद के टब्बा, बालावबोध और वचनिका तीनो रूप पाये जाते है जिनमे अन्तिम दो शैली की दृष्टि से राजस्थानी बालावबोध और वचनिका से भिन्न है टब्बा का स्वरूप राजस्थानी और हिन्दी दोनो मे समान है। जैन गद्यकारो की स्वतन्त्र रचनाएँ भी आध्यात्मिक हैं यथा-टोडरमल का मोक्ष—मार्ग प्रकाशक और दीपचन्द के आत्मावलोकन चिद्विलास आदि ग्रन्थ।

जैन काव्य—काव्य के दो भेद माने जाते है—प्रवन्ध और मुक्तक। जयपुर के जैन कवियो मे मुक्तककार अधिक हैं, प्रबन्धकार के रूप में तो केवल ब्रह्मरायमल्ल का ही नाम उल्लेखनीय है जिन्होने स्वतन्त्र काव्य-ग्रन्थो की रचना की है। हाँ, जैन पुराण और चरित्रो के पद्यानुवाद यहाँ अवश्य बहुलता से मिलते है जिनमे कही-कही मूल का सा काव्यानन्द उपलब्ध होता है। जैन मुक्तको के प्रधान विषय भक्ति और नीति है। जैन कवियो के आराध्य तीर्थङ्कर है जिनकी अगम्यता, अगोचरता, अपारता, दया, निष्कामता, शोभा, शान्तस्वरूप वीतरागता आदि का जी खोलकर गान किया गया है। जैन कवियो ने अपने आराध्य को पतित-तारक भी कहा है। जिस प्रकार वैष्णव भक्तो मे आराध्य के द्वारा वाल्मीकि, अहिल्या, अजामिल, गज आदि के उद्धार की चर्चा है उसी प्रकार जैन भक्तो मे भील, अजन चोर, शृगाल व नाग-दम्पती के कल्याण की। भक्त हृदय की निष्कामता, अनन्यता, आत्म-निवेदन की प्रवृत्ति आदि सभी विशेषताएँ जैन-काव्य मे प्रचुर मात्रा मे मिलती है। जैन धर्म आचार-प्रधान धर्म है; अत जैन काव्य मे भी सत्य, वीतरागता को प्रधानता दी है। द्यूत, आमिष-आहार, मदिरा-पान, वैश्या-सेवन, पर नारी-

गमन, अस्तेय, शिकार आदि सप्तव्यसन, कुवचन, क्रोध, अहंकार, परनिन्दा त्याग सम्बन्धिनी अनेक नीति-उक्तियां बहुलता से दृष्टिगोचर होती हे।

जयपुर के प्रमुख जैन साहित्यकार

१ ब्रह्मरायमल्ल —जैन काव्य मे ब्रह्मरायमल्ल नामक दो व्यक्ति हुए हैं। एक जयपुर में, दूसरे गुजरात मे। जयपुर के ब्रह्मरायमल्ल का समय सत्रहवी शताब्दी का पूर्वार्द्धकाल है। ब्रह्मचारी होने के कारण ब्रह्मरायमल्ल इधर-उधर भी पर्याप्त रहे, किन्तु इनका मुख्य काव्य-क्षेत्र साँगानेर (जयपुर) ही रहा। ब्रह्मरायमल्ल जयपुर के अकेले मौलिक प्रबन्ध-रचयिता है। इनके ग्रन्थ हैं—नेमिनाथ रासो, प्रद्युम्न रासो, श्रीपाल रासो, भविष्यदत्त कथा, हनुवन्त कथा, निर्दोष सप्तमी की कथा, चन्द्रगुप्त चौपई, परमहंस चौपई इन सभी ग्रन्थों मे शान्त, शृंगार, वीभत्स, वीर, रौद्र, वात्सल्य, करुण आदि सभी रसो की व्यजना हुई है। युद्ध, विवाह, उपवन आदि के वर्णन अच्छे हैं। ब्रह्मरायमल्ल के ग्रन्थो मे यत्र-तत्र उद्यम, धैर्य, परनारी-गमन सम्बन्धिनी नीति उक्तियाँ भी दृष्टिगत होती है। ब्रह्मरायमल्ल की भाषा यथावसर मधुरव ओजस्वी तथा मुहावरेदार है।

२. राजमल्ल पाण्डे—हिन्दी के जैन गद्यकारों मे पाण्डे राजमल्ल का नाम अग्रणी हैं। इनकी पचाध्यायी, लाटी-सहिता, जम्बू स्वामी चरित्र, अध्यात्म कमल, मार्तण्ड व समयसार कलश टीका ५ रचनाएँ मिलती हैं जिनमे केवल अन्तिम कृति हिन्दी की है। आमेर शास्त्र भंडार में प्राप्त समयसर कलश टीका की सवत् १६५३ की प्रतिलिपि के आधार पर डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल ने राजमल को १६वी-१७वी शताब्दी का साहित्यकार माना है। डा० कासलीवाल के अनुसार राजमल्ल का जन्म जयपुर नगर के वैराठ कस्बे मे हुआ था। डा० जगदीशचन्द्र के मत से ये जैनागमो के भारी वेत्ता, आचार-शास्त्र के पण्डित तथा अध्यात्म और न्याय मे बड़े कुशल थे। समयसार कलश पर इनकी बालावबोध टीका बड़ी सरल और व्याख्यात्मक है।

३. हेमराज—हेमराज ने कवि और गद्यकार दोनो ही रूपो मे जैन साहित्य में ख्याति उपलब्ध की है। इनका आविर्भाव सत्रहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में सागानेर मे हुआ। हेमराज के गुरू पाण्डे रूपचन्द थे। हेमराज का 'दोहा-शतक', नीतिपरक, काव्य-ग्रन्थ है। हेमराज की बालावबोध टीकाएँ नयचक्र, प्रवचन सार, कर्मकाण्ड, पचास्तिकाय, परमात्मप्रकाश व गोम्मट सार ग्रन्थो पर मिलती हैं।

४. जोधराज—कवि जोधराज सागानेर के निवासी तथा हेमराज के समकालीन थे। इनके पिता अमरचन्द गोदीका बडे रईस महाजन थे। जोधराज ने पडित हरिनाम मिश्र को अपना मित्र बनाकर उनकी सगति से ज्ञान उपलब्ध किया; तदुपरान्त साहित्य-रचना मे प्रवृत्त हुए। सम्यकत्व कौमुदी, प्रवचन सार, कथाकोष प्रीतकर चरित्र पर इनके पद्यानुवाद हैं। ज्ञान समुद्र और धर्म सरोवर इनकी मौलिक कृतिया है। दोनो मे क्रमशः १४७ व ३८७ विविध प्रकार के छन्द है। दोनो ही रचनाओ का प्रतिपाद्य नीति है। सत्य के विषय मे कवि के विचार देखिए—

सत्य वचन परतीति करावै । सत्य वचन अमृत सम पावै ॥
सत्य वचन सम नहिं तप कोई । सत्य वचन उत्तिम जग होई ॥

५. खुशालचन्द्र—इनका जन्म सागानेर वासी सुन्दरदास काला के यहाँ हुआ था। इनकी माता सुजाणदे और विद्यागुरु लिखमीदाम (लक्ष्मीदास) थे। खुशालचन्द्र जयसिंह पुरा भी रहे। खुशालचन्द्रजी श्रेष्ठ अनुवादक है। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थो के पद्यानुवाद किये—

(१) उत्तर पुराण, (२) राम पुराण, (३) हरिवंश पुराण, (४) व्रतकथा कोष, (५) यशोधर चरित्र, (६) धन्यकुमार चरित्र, (७) जम्बू स्वामी चरित्र।

६. दौलतराम—बसवा निवासी दौलतराम कासलीवाल के पद्मपुराण, हरिवंश पुराण, आदि पुराण, श्रीपाल चरित्र, परमात्मप्रकाश, पुरुषार्थ सिध्युपाय, उपासकाध्ययन, पुण्याश्रव कथाकोष व क्रियाकोष के टीकाकार के रूप मे प० रामचन्द्र शुक्ल, कामताप्रसाद जैन आदि इतिहास-लेखको ने अच्छे गद्यकार का स्थान दिया है, किन्तु दौलतराम कवि भी थे। चौबीस दण्डक, आदि छोटी रचनाओ के अतिरिक्त अध्यात्म बारहखड़ी उनका महत्वपूर्ण और विशाल ग्रंन्थ है। अध्यात्म बारहखड़ी के आठ अध्यायो के ५१५५ छन्दो मे जैन दर्शन व उपासना के अतिरिक्त नीति और भक्ति भी कवि का प्रतिपाद्य विषय है। दुर्गुणो से आक्रान्त भक्त दौलतराम की स्व-उद्धारार्थ जिनेन्द्र से भाव-भरी प्रार्थना यहाँ दृष्टव्य है—

पागेउ मोह तनौ जिनको अति काम जु क्रोध महा मद लोभा।
वचकता अरु मत्सर आदि सबै जु दुरातम कारन क्षोभा ॥
मोहि जु देव महादुप दीयउ नाहिं प्रभू कछु मो महि सोभा।
पोट अपावन टारहि नेंकु न कूक सुनौ जगदेव अक्षोभा ॥

७ टोडरमल्ल—मोक्षमार्ग प्रकाशक के प्रणेता के रूप मे टोडरमल्ल भारत के सम्पूर्ण दिगम्बर समाज मे प्रख्यात व समादृत है। ये जयपुर मे जोगीदास गोदीका के यहाँ सं० १७९७ में उत्पन्न हुए। टोडरमल बडे धर्मात्मा, दार्शनिक व उपदेशक थे। खेद है कि स० १८२३-२४ में अल्पायु में ही इनकी साम्प्रदायिक झगडो के कारण मृत्यु हो गई। सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका, पुरुषार्थ सिद्धयुपाय, आत्मानुशासन टोडरमल की अनूदित कृतिया हैं तथा रहस्यपूर्ण चिट्ठी व मोक्षमार्ग प्रकाशक स्वतन्त्र रचनाएँ। अनूदित ग्रथो मे टोडरमल्ल के जैनागमो के विस्तृत ज्ञान, विवेचन की शक्ति का ज्ञान होता है। मोक्षमार्ग प्रकाशक का लेखक विभिन्न मतो का ज्ञाता है तथा हार्दिक और स्वतन्त्र विचारक भी। इस ग्रन्थ मे टोडरमल साम्प्रदायिक आडम्बरो के विरोधी और जैन-दर्शन की श्रेष्ठता के हामी प्रतीत होते है।

८ दीपचन्द—टोडरमल के अलावा जयपुर मे दूसरे स्वतन्त्र गद्यकार दीपचन्द कासलीवाल ही हुए हैं। इनका जन्म तो सागानेर मे हुआ किन्तु बाद मे ये आमेर आ गए। दीपचन्द वीतरागी आध्यात्मिक ग्रन्थो के मर्मज्ञ थे। चिद्विलास, अनुभव प्रकाश, आत्मावलोकन,

परमात्म पुराण इनकी स्वतन्त्र गद्य-रचनाएँ हैं, जिनमे आत्म-तत्व का निरूपण है। दीपचन्द की शैली उपदेश-प्रधान है। वाक्य छोटे-छोटे है। भाषा मुहावरेदार तथा आलकारिक है।

९. बुधजन—दास्य भक्त के रूप मे वैष्णव भक्ति काव्य मे जो स्थान तुलसी का है वही जैन काव्य मे बुधजन का; जिस प्रकार नीतिपरक उक्तियाँ कहने से जो प्रसिद्धि रहीम व वृन्द को मिली है उसी के अधिकारी कवि बुधजन भी हैं। परम भक्त और नीतिकार बुधजन जयपुर में निहालचन्द्र बज के यहाँ उत्पन्न हुए थे। इनके गुरु मागीलाल थे। बुधजन दीवान अमरचन्द के यहा मुख्य मुनीम थे। कवि के दूसरे नाम 'भदीचन्द्र' के नाम पर दीवानजी ने जयपुर मे एक जैन मन्दिर बनवाया जो अब तक विद्यमान है। बुधजन के मुख्य काव्य-ग्रन्थ 'बुधजन सतसई' और 'पद सग्रह' है। अन्य रचनाएँ जैन दर्शन सम्बन्धी तथा पचास्तिकाय, योगसार, तत्वार्थ सूत्र के अनुवाद आदि हैं। बुधजन के २४३ पदो मे भक्ति प्रधान है तथा बुधजन सतसई के दोहों में नीति।

१०. जयचन्द्र—जयचन्द्र का जन्म फागी ग्राम के मोतीराम छावड़ा के यहाँ हुआ। ११वर्ष की अवस्था मे ही जिन-शासन मे चलने की सुबुद्धि पाकर ये जयपुर आ गये जहाँ इन्होने अनेक विद्वानो का सत्सग एव जैन शास्त्रो का गम्भीर अध्ययन व मनन किया। जयचन्द ज्ञानी, उपदेशक, चरित्रवान तथा आध्यात्मिक पुरुष थे। संवत् १८८१-८२ मे इनकी मृत्यु हुई। जयचन्द्र गद्यकार और कवि दोनो है। जयचन्द ने सर्वार्थसिद्धि, प्रमेय रत्नमाला, द्रव्य सग्रह, स्वामि कार्तिकेयानुप्रेक्षा, समयसार, अष्ट पाहुड, आप्तमीमासा, परीक्षामुख, ज्ञानार्णव आदि १७ ग्रन्थो की वचनिकाए लिखी। जयचन्द्र के २४६ भक्तिपरक पदो में तीर्थङ्करो की महिमा का गान अधिक है तथा अपने अवगुण व सासारिक कष्टो का वर्णन अपेक्षाकृत थोडा।

११. सदासुखदास—इनका जन्म जयपुर के प्रसिद्ध 'डेडराज' घराने मे सवत् १८५२ में हुआ। इनके पिता दुलीचन्द कासलीवाल थे। सदासुखदास बडे सत्सगी, ज्ञानी, धर्मात्मा व निस्वार्थ उपकारी थे। इनकी मृत्यु पुत्र-वियोग के कारण सवत् १९२३-२४ मे हुई। सदासुखदास ने सात ग्रन्थो की वचनिकाएँ लिखी—भगवती आराधना, तत्त्वार्थसूत्र, मृत्यु-महोत्सव, रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अलकार स्तोत्र, समयसार नाटक, नित्य नियम पूजा।

१२ सुजानमल—ये जयपुर नगर के प्रसिद्ध जौहरी ताराचन्द सेठिया के यहा स० १८९६ को उत्पन्न हुए थे। इनके तीन छोटे भाई व एक दत्तक पुत्र जवाहरमल थे। सुजानमल ने श्वेताम्बर मुनि विनयचन्द महाराज से स० १९५१ मे दीक्षा ग्रहण की। सुजानमल की मृत्यु स० १९६८ मे हुई। सुजानमल के ४०० पद सुने जाते है किन्तु अभी तक उपलब्ध केवल १६५ पद ही 'सुजान पद वाटिका' के नाम से प्रकाशित है। इनका पद सग्रह तीन भागो मे विभाजित किया गया है। स्तुतियाँ, उपदेश और चरित्र कथाएँ। सुजानमल ने यद्यपि सभी तीर्थङ्करो के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त की है किन्तु पार्श्वनाथ के प्रति उनका अधिक अनुराग है—

मेरे प्रभु पार्श्वनाथ दूसरो न कोई।
अश्वसेन तात वामा सुत सोई।

१३. जडावकुंवारि—हिन्दी काव्य के विकास मे अन्य कवियित्रियो की तरह जैन कवियित्रियो ने भी महत्वपूर्ण योग-दान किया। यद्यपि कुशलाजी भूरि सुन्दरी आदि कई जैन कवियित्रियाँ हुई किन्तु उनमे जडावकुवरि का स्थान सर्वोच्च है। बाल्यावस्था मे विधवा हो जाने के कारण संसार से विरक्ति अनुभव कर २४ वर्ष की अवस्था मे स० १६२२ मे इन्होने श्री रंभाजी से दीक्षा ग्रहण की। जडावकुवरि यद्यपि जोधपुर, बीकानेर आदि स्थानो मे भी रही किन्तु सवत् १६५० के बाद नेत्र-ज्योति क्षीण हो जाने के कारण इन्होने अपना स्थान जयपुर ही बना लिया। सं० १६७२ मे इनकी मृत्यु हुई। जडावकुंवरि के पद 'स्तवनावली' के नाम से प्रकाशित है। इनमे कथा, अध्यात्म के अतिरिक्त जिन-स्तवन और उपदेश की अच्छी रचनाएँ है।

यहा जयपुर के जैन साहित्य का सक्षिप्त परिचय देते हुए स्थानाभाव के कारण प्रतिनिधि साहित्यकारो की चर्चा हुई है। नवल, माणिक, उदयचन्द, मन्नालाल, पन्नालाल अनेक साहित्यकार ऐसे हैं जिन्होने जयपुर की धरा पर अवतीर्ण होकर अपने ग्रथ-रत्नो से मां भारती के विशाल भण्डार को भरा है।

जैन दर्शन में सर्वज्ञता की संभावनाएँ

प्रो० दरबारीलाल जैन कोठिया

एम० ए०, न्यायाचार्य, प्राध्यापक, काशी विश्वविद्यालय, काशी

तज्जयति पर ज्योति सम समस्तैरनन्तपर्यायैं।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिका यत्र॥

—अमृतचन्द्र, पुरुपार्थसिद्‌युपाय[1]

पृष्ठभूमि :

भारतीय दर्शनो मे चार्वाक और मीमासक इन दो दर्शनो को छोडकर शेष सभी (न्याय-वैशेषिक, साख्य-योग, वेदान्त, बौद्ध और जैन) दर्शन सर्वज्ञता की सम्भावना करते तथा युक्तियो द्वारा उसकी स्थापना करते है। साथ ही उसके सद्‌भाव मे आगम-प्रमाण भी प्रचुर मात्रा मे उपस्थित करते है।

सर्वज्ञता के निषेध में चार्वाकदर्शन का दृष्टिकोण :

चार्वाकदर्शन का दृष्टिकोण है कि 'यद्‌दृश्यते तद् अस्ति, यन्न दृश्यते तन्नास्ति' अर्थात् इन्द्रियो से जो दिखे वह है और जो न दिखे वह नही है। पृथिवी, जल, अग्नि और वायु ये चार भूत-तत्त्व ही दिखाई देते है, अत वे है। पर उनके अतिरिक्त कोई अतीन्द्रिय पदार्थ दृष्टि-गोचर नही होता। अत वे नही है। सर्वज्ञता किसी भी पुरुष मे इन्द्रियो द्वारा ज्ञात नही है और अज्ञात

१. तथा वेदेतिहासादिज्ञानातिशयवानपि।
न स्वर्ग-देवताऽपूर्व-प्रत्यक्षीकरणे क्षम.॥

—भट्ट कुमारिल के नाम से बृहत्सर्वज्ञसिद्धि मे उद्धृत

पदार्थ का स्वीकार उचित नही है। स्मरण रहे कि चार्वाक प्रत्यक्ष प्रमाण के अलावा अनुमानादि कोई प्रमाण नही मानते। इसलिए इस दर्शन मे अतीन्द्रिय सर्वज्ञ की सम्भावना नही है।

मीमासक दर्शन का मन्तव्य :

मीमासको का मन्तव्य है कि धर्म, अधर्म, स्वर्ग, देवता, नरक, नारकी आदि अतीन्द्रिय पदार्थ तो हैं, पर उनका ज्ञान वेद द्वारा ही सम्भव है, किसी पुरुष के द्वारा नही। पुरुष रागादि-दोषो से युक्त है और रागादि दोष पुरुष मात्र का स्वभाव हैं तथा वे किसी भी पुरुष से सर्वथा दूर नही हो सकते। ऐसी हालत मे, रागी-द्वेषी-अज्ञानी पुरुषो के द्वारा उन धर्मादि अतीन्द्रिय पदार्थों का ज्ञान सम्भव नही है। शावर स्वामी अपने शावर-भाष्य (१-१-५) मे लिखते है :

'चोदना हि भूत भवन्त भविष्यन्त सूक्ष्म व्यवहित विप्रकृष्टमित्येवजातीयकमर्थमवगम-यितुमल, नान्यत् किञ्चनेन्द्रियम्।'

इससे विदित है कि मीमासकदर्शन सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थो का ज्ञान चोदना (वेद) द्वारा स्वीकार करता है, किसी इन्द्रिय के द्वारा उनका ज्ञान सम्भव नही मानता। शबरस्वामी के परवर्ती प्रकाण्ड विद्वान भट्ट कुमारिल भी किसी पुरुष मे सर्वज्ञता की सम्भावना का अपने मीमासा-श्लोकवार्तिक मे विस्तार के साथ पुरजोर खण्डन करते है।[1] पर वे इतना स्वीकार कर लेते है कि

---

१. यज्जातीयै प्रमाणैस्तु यज्जातीयार्थदर्शनम्।
दृष्ट सम्प्रति लोकस्य तथा कालान्तरेऽप्यभूत्॥
यत्राऽप्यतिशयो दृष्ट स स्वार्थानतिलघनात्।
दूरसूक्ष्मादिदृष्टौ स्यान्न रूपे श्रोत्रवृत्तिता॥
येऽपि सातिशया दृष्टा प्रज्ञा-मेधादिभिर्नरा।
स्तोकस्तोकान्तरत्वेन त्वतीन्द्रियदर्शनात्॥
प्राज्ञोऽपि हि नर सूक्ष्मानर्थान् द्रष्टु क्षमोऽपि सन्।
स्वजातीरनतिक्रामान्नतिशेते परान्नरान्॥
एकशास्त्रविचारे तु दृश्यतेऽतिशयो महान्।
न तु शास्त्रान्तर ज्ञान तन्मात्रेणैव लभ्यते॥
ज्ञात्वा व्याकरण दूर बुद्धि शब्दापशब्दयो.।
प्रकृष्यति न नक्षत्र-तिथि-ग्रहणनिर्णये॥
ज्योतिर्विच्च प्रकृष्टोऽपि चन्द्रार्क-ग्रहणादिषु।
न भवत्यादिशब्दाना साधुत्वं ज्ञातुमर्हति॥
दशहस्तान्तरे व्योम्नि यो नामोत्प्लुत्य गच्छति।
न योजनमसौ गन्तु शक्तोऽभ्यास शतैरपि॥
तस्मादतिशयज्ञानैरति दूर गतैरपि।
न किञ्चिदेवाधिक ज्ञातु न त्वतीन्द्रियम्॥

—अनन्तकीर्ति द्वारा बृहत्सर्वज्ञसिद्धि में उद्धृत

कि हम केवल धर्मज्ञ का अथवा धर्मज्ञता का निषेध करते है। यदि कोई पुरुष धर्मातिरिक्त अन्य सबको जानता है तो जाने, हमे उसमे कोई विरोध नही है। यथा—

धर्मज्ञत्व-निषेधस्तु केवलोऽत्रोपयुज्यते।
सर्वमन्यद्विजानस्तु पुरुष कैन वार्यते ॥
सर्व प्रमातृ-सवन्धि-प्रत्यक्षादिनिवारणात्।
केवलागम-गम्यत्व लप्स्यते पुण्यपापयो ॥[1]

किसी पुरुष को धर्मज्ञ न मानने मे कुमारिल का तर्क यह है कि पुरुषो का अनुभव परस्पर विरुद्ध एव बाधित देखा जाता है[2]। अत वे उसके द्वारा धर्माधर्म का यथार्थ साक्षात्कार मे नही कर सकते। वेद नित्य, अपौरुषेय और त्रिकालाबाधित होने से उसका ही धर्माधर्म के मामले मे प्रवेश है ('धर्मे चोदनैव प्रमाणम्')। ध्यान रहे कि बौद्धदर्शन में बुद्ध के अनुभव-योगिज्ञान को जैनदर्शन मे अर्हत् के अनुभव—केवल ज्ञान—को धर्माधर्म का यथार्थ साक्षात्कारी बतलाया गया है। जान पडता है कि कुमारिल को इन दोनो की धर्मज्ञता का निषेध करना इष्ट है। उन्हे त्रयीविद् मन्वादि का धर्माधर्मादिविषयक उपदेश तो मान्य है, क्योकि वे उसे वेदप्रभव बतलाते है[3]। कुछ भी हो, वे किसी पुरुष को स्वय सर्वज्ञ स्वीकार नही करते। मन्वादि को भी वेद द्वारा ही धर्माधर्मादि का ज्ञाता और उपदेष्टा मानते हैं।

बौद्ध दर्शन में सर्वज्ञता की सम्भावना

बौद्धदर्शन मे अविद्या और तृष्णा के क्षय से प्राप्त योगी के परम प्रकर्षजन्य अनुभव पर बल दिया गया है और उसे समस्त पदार्थों का, जिनमे धर्माधर्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ भी सम्मिलित हैं, साक्षात्कर्ता कहा गया है। दिग्नाग आदि बौद्ध-चिन्तको ने सूक्ष्मादि पदार्थों के साक्षात्करण रूप

---

१ इन दो कारिकाओ में पहली कारिका को बौद्ध विद्वान् शान्तरक्षित ने तत्त्व सग्रह (का० ३१२८) मे और दूसरी तथा पहली दोनो कारिकाओ को अनन्तवीर्य ने बृहत्सर्वज्ञसिद्धि (पृ० १३९) ने उद्धृत किया गया है।

२. सुगतो यदि सर्वज्ञ कपिलोनेति का प्रमा।
तावुभौ यदि सर्वज्ञौ मतभेद कथ तयो ॥
—विद्यानन्द, अष्ट स०, पृ० ३ पर उद्धृत

३. उपदेशो हि बुद्धादेर्धर्माधर्मादिगोचर ।
अन्यथा चोपपद्येत सर्वज्ञो यदि नाभवत् ॥
बुद्धादयो ह्यवेदज्ञास्तेषा वेदादसभव ।
उपदेश कृतोऽतस्तैर्व्यामोहादेव केवलात् ॥
येऽपि मन्वादय सिद्धा प्राधान्येन त्रयीविदाम्।
त्रयीविदाश्रितग्रन्थास्ते वेदप्रभवोक्तय ॥
नर कोऽप्यस्ति सर्वज्ञ स च सर्वज्ञ इत्यपि।
साधन यत्प्रयुज्येत प्रतिज्ञामात्रमेव तत् ॥

[शेष अगले पृष्ठ पर]

अर्थ में सर्वज्ञता को निहित प्रतिपादन किया है। परन्तु बुद्ध ने स्वय अपनी सर्वज्ञता पर जोर नही दिया है। उन्होने कितने ही अतीन्द्रिय पदार्थो को अव्याकृत (न कहने योग्य) कहकर उनके विषय मे मौन ही रखा[1]। पर उनका यह स्पष्ट उपदेश था कि धर्म जैसे अतीन्द्रिय पदार्थ का साक्षात्कार या अनुभव हो सकता है। उसके लिए किसी धर्म-पुस्तक की शरण मे जाने की आवश्यकता नही है। बौद्धतार्किक धर्मकीर्ति ने भी बुद्ध को धर्मज्ञ ही बतलाया है और सर्वज्ञता को मोक्षमार्ग मे अनुपयोगी कहा है :

तस्मादनुष्ठानगत ज्ञानमस्य विचार्यताम् ।
कीट-सख्या-परिज्ञाने तस्य न क्वोपयुज्यते ।।
हेयोपादेयतत्त्वस्य साभ्युपायस्य वेदक ।
य प्रमाणमसाविष्टो न तु सर्वस्य वेदक ।।

—धर्मकीर्ति, प्रमाणवार्त्तिक २-३१, ३२

'मोक्षमार्ग मे उपयोगी ज्ञान का ही विचार करना चाहिए। यदि कोई जगत् के कीड़े-मकोड़ो की सख्या को जानता है तो उससे हमे क्या लाभ ? अत जो हेय और उपादेय तथा उनके उपायों को जानता है वही हमारे लिए प्रमाण-आप्त है, सबका जानने वाला नही।'

यहाँ उल्लेखनीय है कि कुमारिल ने जहा धर्मज्ञ का निषेध करके सर्वज्ञ के सद्भाव को इष्ट प्रकट किया है वहा धर्मकीर्ति ने ठीक उसके विपरीत धर्मज्ञ को सिद्ध कर सर्वज्ञ का निषेध मान्य किया है। शान्तरक्षित और उनके शिष्य कमलशील बुद्ध में धर्मज्ञता के साथ ही सर्वज्ञता की भी सिद्धि करते हुए देखे जाते है[2]। पर वे भी धर्मज्ञता को मुख्य और सर्वज्ञता को प्रासगिक

सिसाधयिषितो योऽर्थ सोऽनया नाभिधीयते ।
यस्तूच्यते न तत्सिद्धौ न किञ्चदस्ति प्रयोजनम् ।।

यदीयागमसत्यत्वसिद्धौ सर्वज्ञतेष्यते ।
न सा सर्वज्ञसामान्यसिद्धिमात्रेण लभ्यते ।।

यावद्बुद्धो न सर्वज्ञस्तावत्तद्वचन मृषा ।
यत्र क्वचन सर्वज्ञे सिद्धे तत्सत्यता कुत' ।।

अन्यस्मिन्न हि सर्वज्ञे वचसोऽन्यस्य सत्यता ।
समानाधिकरण्ये हि तयोरगागिभावता भवेत् ।।

ये कारिकाये अनन्तकीर्ति ने अपनी बृहत्सर्वज्ञसिद्धि मे कुमारिल के नाम से उद्धृत की है।

१. देखिए, मज्झिमनिकाय २-२-३ के चूलमालुक्यसूत्र का सवाद।

२. स्वर्गापवर्गसम्प्राप्ति हेतुज्ञोऽस्तीति गम्यते ।
साक्षान्न केवल किन्तु सर्वज्ञोऽपि प्रतीयते ।।

—तत्व स० का० ३३०६

वतलाते है[1] । इस तरह हम बौद्धदर्शन मे सर्वज्ञता की सिद्धि देखकर भी वस्तुत. इसका विशेष वल हेयोपादेय तत्वज्ञता पर ही है, ऐसा निष्कर्ष निकाल सकते है ।

न्यायवैशेषिक दर्शन मे सर्वज्ञता की सम्भावना :

न्याय-वैशेपिक ईश्वर मे सर्वज्ञत्व मानने के अतिरिक्त दूसरे योगी-आत्माओ मे भी उसे स्वीकार करते है[2] । परन्तु उनका वह सर्वज्ञत्व अपवर्ग-प्राप्ति के वाद नप्ट हो जाता है, क्योकि वह योग तथा आत्ममन, सयोगजन्य गुण अथवा अणिमा आदि ऋद्धियो की तरह एक विभूतिमात्र है । मुक्तावस्था मे न आत्ममन सयोग रहता है और न योग । अत ज्ञानादि गुणो का उच्छेद हो जाने से वहा सर्वज्ञता भी समाप्त हो जाती है । हा, वे ईश्वर की सर्वज्ञता अनादि अनन्त अवश्य मानते हैं ।

सांख्य-योगदर्शन मे सर्वज्ञता की सभावना

निरीश्वरवादी सास्य प्रकृति मे और ईश्वरवादी योग ईश्वर मे सर्वज्ञता स्वीकार करते है । सास्यको का मन्तव्य है कि ज्ञान बुद्धितत्व का परिणाम है और बुद्धितत्व महत्तत्व तथा महत्-तत्व प्रकृतितत्व का परिणाम है । अत. सर्वज्ञता प्रकृति मे पर्यवसित है और वह अपवर्ग हो जाने पर समाप्त हो जाती है । योगदर्शन का दृप्टिकोण है कि पुरुप विशेप रूप ईश्वर मे[3] नित्य सर्वज्ञता है और योगियो की सर्वज्ञता, जो सर्वविपयक 'तारक' विवेक ज्ञान रूप है, अपवर्ग के वाद नप्ट हो जाती है । अपवर्ग अवस्था मे पुरुप चैतन्य मात्रा मे, जो ज्ञान से भिन्न है, अवस्थित रहता है[4] । यह भी आवश्यक नही कि हर योगी को वह सर्वज्ञता प्राप्त हो । तात्पर्य यह कि इनके यहां सर्वज्ञता की सम्भावना तो की गई है पर वह योगज विभूतिजन्य होने से अनादि अनन्त नहीं है, केवल सादिसान्त है ।

वेदान्तदर्शन मे सर्वज्ञता :

वेदान्तदर्शन मे सर्वज्ञता को अन्त करणनिष्ठ माना गया है और उसे जीवन्मुक्त दशा तक स्वीकार किया गया है । उसके वाद वह छूट जाती है । उस समय अविद्या से मुक्त होकर विद्या रूप शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म का रूप प्राप्त हो जाता है और सर्वज्ञता आत्मज्ञता में विलीन हो जाती है । अथवा उसका अभाव हो जाता है ।

---

१ 'मुख्य हि तावत् स्वर्गमोक्ष सम्प्रापक हेतुज्ञत्वसाधन भगवतोऽस्माभि क्रियते । यत्पुन. अशेपार्थ परिज्ञातृत्व साधनमस्य तत् प्रासगिकम् ।'

— तत्व स० प० पृ० ८६३

२ 'अस्मद्विशिष्टाना तु योगिना युक्ताना योगजधर्मानुगृहीतेन मनसा स्वात्मान्तराकाश-दिक्काले परमाणुवायुमनस्सु तत्समवेत गुणकर्म सामान्य विशेपु समवाये चावितथ स्वरूप दर्शनमुत्पद्यते, वियुक्ताना पुनः · ·········।'

—प्रशस्तपाद भाप्य, पृ० १८७

३ 'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुपविशेप ईश्वर ।'

—यो० सू०

४. 'तदा द्रष्टु स्वरूपेऽवस्थानम् ।' —यो० सू-१-१-३

जैनदर्शन में सर्वज्ञता की सभावनाएँ

जैनदर्शन मे ज्ञान को आत्मा का स्वरूप अथवा स्वाभाविक गुण माना गया है[1] और उसे स्वपर प्रकाशक वतलाया गया है[2]। यदि आत्मा का स्वभाव ज्ञत्व (जानना) न हो तो वेद के द्वारा भी सूक्ष्मादि ज्ञेयो का ज्ञान नही हो सकता। भट्ट अकलङ्क ने लिखा है[3] कि ऐसा कोई ज्ञेय नही, जो ज्ञस्वभाव आत्मा के द्वारा जाना न जाय। किसी विषय मे अज्ञता का होना ज्ञानावरण तथा मोहा दिदोषो का कार्य है। जव ज्ञान के प्रतिवन्धक ज्ञानावरण तथा मोहा दिदोषो का क्षय हो जाता है तो विना रुकावट के एक साथ समस्त ज्ञेयो का ज्ञान हुए विना नही रह सकता। इसी को सर्वज्ञता कहा गया है। जैन मनीषियो ने प्रारम्भ से त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थों के प्रत्यक्ष ज्ञान के अर्थ मे इस सर्वज्ञता को पर्यवसित माना है। आगम ग्रथो व तर्क ग्रथो मे हमें सर्वत्र सर्वज्ञता का प्रतिपादन एव उपपादन मिलता है। पट्खण्डागम सूत्रोमे कहा गया है[4] कि 'केवली भगवान समस्त लोको, समस्त जीवो और अन्य समस्त पदार्थो को सर्वथा एक साथ जानते व देखते है।'

आचाराग सूत्रो मे भी यही कथन किया गया है[5]। महान् चिन्तक और लेखक कुन्दकुन्द ने भी लिखा है[6] कि आवरणो के अभाव से उद्भूत केवल ज्ञान वर्तमान, भूत, भविष्यत् सूक्ष्म, व्यवहित आदि सव तरह के ज्ञेयो को पूर्णरूप मे युगपत् जानता है। जो त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती सम्पूर्ण पदार्थों को नहीं जानता वह अनन्त पर्यायो वाले एक द्रव्य को भी पूर्णतया नहीं

---

१. 'उपयोगो लक्षणम्।' —तत्वार्थ सू० २-८

२. 'न खलु ज्ञस्वभावस्य कश्चिद्गोचरोऽस्ति यन्न क्रमेत, तत्स्वभावान्तर प्रतिपेधात्।' —अष्ट श० अष्ट स० पृ० ४६

३. 'णाण सपरपयासय।'—कुन्दकुन्द, प्रवचन सा० १

४. 'सय भयव उप्पण्णणाणदरिसी······· सव्वलोए सव्वलोए वे सव्वभावे सव्वं सम जाणदि पस्सदि विहरदि त्ति।' —पट्ख० पयदि० सू० ७८

५. 'से भगव अरिह जिणो केवली सव्वन्नू सव्वभावदरिसी ·····।
सव्वलोए सव्वजीवाण सव्वभावाइ जाणमाणे पासमाणे एव च ण विहरइ।'
—आचाराग सू० २-३

६ ज तक्कालियमिदर जाणदि जुगव समत दो सव्व।
अत्थ विचित्तविसम त णाण खाइय भणिय॥
जो ण विजाणदिजुगव अत्थे ते कालिगे तिहुवणत्थे।
णादु तस्सण सक्कं सपज दव्वमेक वा॥
दव्वमणतप्पजयमेकमणं ताणि दव्व जाणादि।
ण विजाणदि जदि जुगवं कय सो दव्वाणि जाणादि॥
—प्रव० सा० १-४७, ४८, ४६

जान सकता और जो अनन्त पर्यायवाले एक द्रव्य को नहीं जानता, वह समस्त द्रव्यों को कैसे एक साथ जान सकता है ?'—प्रसिद्ध विचारक भगवती आराधनाकार शिवार्य[1] और आवश्यक निर्युक्तिकार भद्रबाहु[2], बड़े स्पष्ट और प्राञ्जल शब्दो मे सर्वज्ञता का प्रबल समर्थन करते हुए कहते है कि 'वीतराग भगवान तीनो कालो, अनन्त पर्यायो से सहित समस्त ज्ञेयो और समस्त लोको को युगपत् जानते व देखते हैं।'

आगमयुग के बाद जब हम तार्किक युग मे आते है तो हम स्वामी समन्तभद्र, सिद्धसेन अकलक, हरिभद्र, पात्रस्वामी, वीरसेन, विद्यानन्द, प्रभाचन्द्र, हेमचन्द्र प्रभृति जैन तार्किको को भी सर्वज्ञता का प्रबल समर्थन एव उपपादन करते हुए पाते है। इनमे अनेक लेखकों ने तो सर्वज्ञता की स्थापना मे महत्वपूर्ण स्वतत्र ग्रथ ही लिखे है। उनमे समन्तभद्र (वि० स० दूसरी, तीसरी शती) की आप्तमीमासा, सर्वज्ञ विशेष परीक्षा कहा गया है[3], अकलकदेव की सिद्धिविनिश्चयगत सर्वज्ञसिद्धि विद्यानन्द की आप्त परीक्षा, अनन्तकीर्ति की लघु व बृहत्सर्वज्ञ सिद्धियां, वादीभसिंह की स्याद्वाद-सिद्धिगत सर्वज्ञसिद्धि आदि कितनी ही रचनाएँ उल्लेखनीय है। यदि कहा जाय कि सर्वज्ञता पर जैन दार्शनिको ने सबसे अधिक चिन्तन और साहित्य-सृजन करके भारतीय दर्शनशास्त्र को समृद्ध बनाया है तो अत्युक्ति न होगी।

सर्वज्ञता की स्थापना मे समन्तभद्र ने युक्ति दी है वह बडे महत्व की है। वे कहते है कि सूक्ष्मादि अतीन्द्रिय पदार्थ भी किसी पुरुष विशेष के प्रत्यक्ष है, क्योकि वे अनुमेय है। जैसे अग्नि। उनकी वह युक्ति यह है

सूक्ष्मान्तरितदूरार्था, प्रत्यक्षा कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञ सस्थिति ॥ —आ० मी० का० ४

समन्तभद्र एक दूसरी युक्ति के द्वारा सर्वज्ञता के रोकने वाले अज्ञानादि दोषो और ज्ञानावरणादि आवरणो का किसी आत्मविशेष मे अभाव सिद्ध करते हुए कहते हैं 'किसी पुरुषविशेष मे ज्ञान के प्रतिबन्धको का पूर्णतया क्षय हो जाता है, क्योकि उनकी अन्यत्र न्यूनाधिकता देखी जाती है। जैसे स्वर्ण मे बाह्य और आभ्यन्तर दोनो प्रकार के मलो का अभाव दृष्टिगोचर होता है।' प्रतिबधको के हट जाने पर ज्ञस्वभाव आत्मा के लिए कोई ज्ञेय-अज्ञेय नही रहता। ज्ञेयो का अज्ञान या तो आत्मा मे उन सब ज्ञेयो को जानने की सामर्थ्य न होने से होता है और या ज्ञान के प्रतिबन्धको के रहने से होता है। चूँकि आत्मा ज्ञ है और तप, सयमादि की आराधना द्वारा प्रतिबन्धको का अभाव पूर्णतया सभव है। ऐसी स्थिति मे उस वीतराग महायोगी को, कोई कारण नही कि अशेष

---

१. पस्सदि जाणदि ण तहा तिण्णि वि काले सपज्ज ए सव्वे।
तह वा लोगमसेस पस्सदि भयव विगय-मोहो ॥ —भ० आ० गा० ११४१

२ सभिण्ण पासतो लोगमलोग च सव्वओ सव्व।
त णत्थि ज न पासइ भूय भव्व भविस्स च ॥ —आवश्य० नि० गा० १२७

३ अकलक, अष्टश०-अष्टस०

ज्यो का ज्ञान न हो।[1] उनका वह प्रतिपादन निम्न प्रकार है

दोषावरणयोर्हानिर्निश्शेषाऽस्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्वहेतुभ्यो बहिरन्तर्मलक्षय ॥
स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्रविरोधिवाक्।
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते ॥

- आप्तमी० का० ५, ६

समन्तभद्र के उत्तरवर्ती सूक्ष्म चिन्तक अकलंकदेव ने सर्वज्ञता की सभावना मे जो महत्व पूर्ण युक्तिया दी हैं उनका भी यहा उल्लेख कर देना आवश्यक है। अकलक की पहली युक्ति यह है कि आत्मा मे समस्त पदार्थो को जानने की सामर्थ्य है। इस सामर्थ्य के होने से ही कोई पुरुषविशेष वेद के द्वारा भी सूक्ष्मादि ज्ञेयो को जानने मे समर्थ हो सकता है, अन्यथा नही। हा, यह अवश्य है कि ससारी-अवस्था मे ज्ञानावरण से आवृत होने के कारण ज्ञान सब ज्ञेयो को नही जान पाता। जिस तरह हम लोगो का ज्ञान सब ज्ञेयो को नही जानता, कुछ सीमितो को ही जान पाता है। पर जब ज्ञान के प्रतिबन्धक कर्मो (आवरणो) का पूर्ण क्षय हो जाता है तो उस विशिष्ट इन्द्रियानपेक्ष और आत्ममात्र सापेक्ष ज्ञान को, जो स्वय अप्राप्यकारी भी है, समस्त ज्ञेयो को जानने मे क्या बाधा है।[2]

उनकी दूसरी युक्ति यह है कि यदि पुरुषो को धर्माधर्मादि अतीन्द्रिय ज्ञेयो का ज्ञान न

---

१ यहाँ ध्यान देने योग्य है कि समन्तभद्र ने आप्त के आवश्यक ही नही, अनिवार्य तीन गुणो (वीतरागता, सर्वज्ञता और हितोपदेशकता) मे सर्वज्ञता को आप्त की अनिवार्य विशेषता बतलाया है—उसके बिना वे उसमे आप्त का असम्भव बतलाते हैं :

आप्तेनोच्छिन्न दोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्य नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥

—रत्न क० श्लोक ५

२. कथञ्चित् स्वप्रदेशेषु स्यात्कर्म-पटलाच्छता।
ससारिणा तु जीवना यत्र ते चक्षुरादय ॥
साक्षात्कर्तुं विरोध क सर्वथावरणात्यये।
सत्यमर्थं तथा सर्वं यथाऽभूद्वा भविष्यति ॥
सर्वार्थग्रहण सामर्थ्याच्चैतन्यप्रतिबन्धिनाम्।
कर्मणा विगमे कस्मात् सर्वानर्थान् न पश्यति ॥
ग्रहादि गतयः सर्वा सुखदुखादि हेतव ।
येन साक्षात्कृतास्तेन किन्न साक्षात्कृत जगत् ॥
ज्ञस्यावरण विच्छेदे ज्ञेय किम वशिष्यते।
अप्राप्यकारिणस्तस्माद् सर्वार्थविलोकनम् ॥

—न्यायविनिश्चय का० ३६१, ३६२, ४१०, ४१४, ४६५

हो तो सूर्य, चन्द्र आदि ज्योतिर्ग्रहो की ग्रहण आदि भविष्यत् दशाओ और उनसे होने वाले शुभा-शुभ का अविसवादी उपदेश कैसे हो सकेगा ? इद्रियो की अपेक्षा लिए विना ही उनका अतीन्द्रियार्थ विषयक उपदेश सत्य और यथार्थ स्पष्ट देखा जाता है। अथवा जिस तरह सत्य स्वप्न-दर्शन इन्द्रियादि की सहायता के बिना ही भावीराज्यादि लाभ का यथार्थ बोध कराता है उसी तरह सर्वज्ञ का ज्ञान भी अतीन्द्रिय पदार्थों मे सवादी और स्पष्ट होता है। और उसमे इद्रियो को आंशिक भी सहायता नही होती। इद्रिया तो वास्तव मे कम ज्ञान को ही कराती है। वे अधिक और सर्वविषयक ज्ञान मे उसी तरह बाधक है जिस तरह सुन्दर प्रासाद मे वनी हुई खिडकिया कम प्रकाश को ही लाती है और सब ओर के प्रकाश को रोकती है।

अकलक की तीसरी युक्ति यह है कि जिस प्रकार परिमाण अणु-परिमाण से वढता-वढता आकाश मे महापरिमाण या विभुत्व का रूप ले लेता है, क्योकि उसकी तरतमता देखी जाती है। उसी तरह ज्ञान के प्रकर्ष मे भी तारतम्य देखा जाता है। अत जहा वह ज्ञान सम्पूर्ण अवस्था (निरतिशयपने) को प्राप्त हो जाय वही सर्वज्ञता आ जाती है। इस सर्वज्ञता का किसी व्यक्ति या समाज ने ठेका नही लिया। वह तो प्रत्येक साधक को प्राप्त हो सकती है।

उनकी चौथी युक्ति यह है कि सर्वज्ञता का कोई बाधक नही है। प्रत्यक्ष आदि पांच प्रमाण तो इसलिए बाधक नही हो सकते, क्योकि वे विधि (अस्तित्व) को विषय करते है। यदि वे सर्वज्ञता के विषय मे दखल दें तो उनसे उनका सद्भाव ही सिद्ध होगा। मीमासको का अभाव प्रमाण भी उसका निषेध नही कर सकता। क्योकि अभाव प्रमाण के लिए यह आवश्यक है[1] कि जिसका अभाव करना है उसका स्मरण और जहाँ उसका अभाव करना है उसका प्रत्यक्ष दर्शन आवश्यक ही नही, अनिवार्य है। जब हम भूतल मे घड़े का अभाव करते है तो वहाँ पहले देखे गए घड़े का स्मरण और भूतल का दर्शन होता है तभी हम यह कहते है कि यहाँ घड़ा नही है। किन्तु तीनो (भूत, भविष्यत् और वर्तमान) कालो तथा तीनो (ऊर्ध्व, मध्य और अधो) लोको के अतीत, अनागत और वर्तमान कालीन अनन्त पुरुषो मे सर्वज्ञता नही थी, नही है और न होगी इस प्रकार का ज्ञान उसी को हो सकता है जिसने उन तमाम पुरुषो का साक्षात्कार किया है। यदि किसी ने किया है तो वही सर्वज्ञ हो जावेगा। साथ ही सर्वज्ञता का स्मरण सर्वज्ञता के प्रत्यक्ष अनुभव के बिना सम्भव नही और जिन त्रैकालिक और त्रिलोकवर्ती अनन्तपुरुषो (आधार) में सर्वज्ञता का अभाव करना है उनका प्रत्यक्ष-दर्शन भी सम्भव नही। ऐसी स्थिति मे सर्वज्ञता का अभाव प्रमाण भी बाधक नही है। इस तरह जब कोई बाधक नही है तो कोई कारण नही कि सर्वज्ञता का सद्भाव सिद्ध न हो।

निष्कर्ष यह है कि आत्मा 'ज्ञ' ज्ञाता है और उसके ज्ञान-स्वभाव को ढकने वाले आवरण दूर होते है। अत आवरणो के विच्छिन्न हो जाने पर ज्ञस्वभाव आत्मा के लिए फिर शेप

---

१ गृहीत्वा वस्तु सद्भाव स्मृत्वा च प्रतियोगिनम्।
मानस नास्तिताज्ञान जायतेऽक्षानपेक्षया।।

"अस्ति सर्वज्ञ सुनिश्चितासम्भवद्बाधकप्रमाणत्वात्, सुखादिवत्"

—सिद्धि वि० वृ० ८-६ तथा ४२८

जानने योग्य क्या रह जाता है ? अर्थात् कुछ भी नहीं। अप्राप्यकारी ज्ञान से सकलार्थ-विषयक ज्ञान होना अवश्यम्भावी है। इद्रिया और मन सकलार्थ परिज्ञान मे साधक न होकर बाधक है। वे जहाँ नही है और आवरणो का पूर्णत अभाव है वहा त्रैकालिक और त्रिलोकवर्ती यावत् ज्ञेयो का साक्षात् ज्ञान होने मे कोई बाधा नही है।

आ० वीरसेन और आ० विद्यानन्द ने भी इसी आशय का एक महत्वपूर्ण श्लोक प्रस्तुत करके उसके द्वारा ज्ञस्वभाव आत्मा मे सर्वज्ञता की सम्भावना की है। वह श्लोक यह है :

ज्ञो ज्ञेये कथमज्ञ स्यादसति प्रतिबन्धने।
दाह्येऽग्निर्दाहको न स्यादसति प्रतिबन्धने ॥

—जयधवला, पृ० ६६, अष्ट स० पृ० ५०

अग्नि मे दाहकता हो और दाह्य-ईंधन सामने हो तथा बीच मे कोई रुकावट न हो तो अग्नि अपने दाह्य को क्यो नही जलावेगी ? ठीक उसी तरह आत्मा ज्ञ (ज्ञाता) हो, और ज्ञेय सामने हो तथा उनके बीच मे कोई रुकावट न रहे तो ज्ञाता उन ज्ञेयो को क्यो नही जानेगा ? आवरणो के अभाव मे ज्ञस्वभाव आत्मा के लिए आसन्नता और दूरता ये दोनो भी निरर्थक हो जाती है।

अन्त मे यह कहते हुए अपना निबन्ध समाप्त करते है कि जैनदर्शन मे प्रत्येक आत्मा में आवरणो और दोषो के अभाव मे सर्वज्ञता का होना अनिवार्य माना गया है। वेदान्तदर्शन मे मान्य आत्मा की सर्वज्ञता से जैनदर्शन की सर्वज्ञता मे सिर्फ इतना ही अन्तर है कि जैनदर्शन मे सर्वज्ञता को आवृत करने वाले आवरण और दोष मिथ्या नही हैं, जबकि वेदान्तदर्शन में उसी को मिथ्या कहा गया है। इसके अलावा जैनदर्शन की सर्वज्ञता जहा सादि अनन्त है और प्रत्येक मुक्त आत्मा में वह पृथक्-पृथक् विद्यमान रहती है, अतएव अनन्त सर्वज्ञ हैं वहाँ वेदान्त मे मुक्त आत्माएँ अपने पृथक् अस्तित्व को न रखकर एक अद्वितीय सनातन ब्रह्म मे विलीन हो जाते हैं और उनकी सर्वज्ञता अन्त करण-सम्बन्ध तक रहती है, बाद को वह नष्ट हो जाती है या ब्रह्म मे ही उसका समावेश हो जाता है।

श्री सम्पूर्णानन्दजी ने[1] जैनो की सर्वज्ञता का उल्लेख करते हुए उसे आत्मा का स्वभाव न होने की बात कही है। उसके सम्बन्ध मे इतना ही निवेदन कर देना पर्याप्त होगा कि जैन मान्यतानुसार सर्वज्ञता आत्मा का स्वभाव है और अर्हत् (जीवन्मुक्त) अवस्था मे पूर्णतया प्रकट हो जाती है तथा वह मुक्तावस्था मे भी अनन्तकाल तक विद्यमान रहती है। "सत् का विनाश नहीं और असत् का उत्पाद नही" इस सिद्धात के अनुसार आत्मा का कभी भी नाश न होने के कारण उसकी स्वभावभूत सर्वज्ञता का भी विनाश नही होता। अतएव अर्हत् अवस्था मे प्राप्त अनन्त चतुष्टय (अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य) के अन्तर्गत अनन्तज्ञान द्वारा इस सर्वज्ञता को जैनदर्शन मे शाश्वत (शक्ति की अपेक्षा अनादि अनन्त और व्यक्ति की अपेक्षा सादि अनन्त) स्वीकार किया गया है।

---

१. ६ अक्तूबर १९६४ को राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर मे आयोजित अ० भा० दर्शन परिषद् का उद्घाटन करते हुए दिया गया भाषण।

मध्यकालीन जैन हिन्दी काव्य में प्रेममूला भक्ति

डा० प्रेमसागर जैन एम० ए०, पी-एच० डी०, जैन कालेज, बड़ौत

डा० प्रेमसागर जैन, समाज के उदीयमान सिद्धहस्त लेखक है। जैनभक्ति काव्य पर उच्चकोटि का निबन्ध प्रस्तुत करने के कारण आप डाक्टरेट की उपाधि से विभूषित हुए है। जैन कवियो ने विभिन्न विषयो पर रचनाए की है। जन-साधारण की बोली मे काव्य-रचना करना जैन साहित्यकार अपना गौरव समझते थे। यही कारण है कि जैन कवियो ने हिन्दी मे अपार जैन-साहित्य की रचना की है। प्रस्तुत निबन्ध मे इस भाव को सुन्दर ढग से दर्शाया है कि नारिया प्रेम की प्रतीक होती है, उनका हृदय कोमल और सरस होता है। उसमे प्रेम-भाव को लहलहाने मे देर नही लगती। इसी प्रकार भक्त कान्ता भाव से और भगवान प्रिय रूप से। यह दाम्पत्य भाव का प्रेम जैन कवियो की रचना मे भी पाया जाता है। विद्वान लेखक ने इस भाव का विस्तार से प्रतिपादन किया है।

भक्तिरस का स्थायी-भाव भगवद्विषयक अनुराग है। इसीको शाण्डिल्य ने 'परानुरक्ति.' कहा है।[1] परानुरक्तिः गभीर अनुराग को कहते है। गम्भीर अनुराग ही प्रेम कहलाता है। चैतन्य महाप्रभु ने रति अथवा अनुराग के गाढे हो जाने को ही 'प्रेम' कहा है।[2] भक्तिरसामृत सिन्धु मे लिखा है, "सम्यड मसृणित स्वान्तो ममत्वातिशयोक्ति। भाव स एव सान्द्रात्मा बुधैः प्रेम निगद्यते।"[3]

प्रेम दो प्रकार का होता है—लौकिक और अलौकिक। भगवद्विषयक अनुराग अलौकिक प्रेम के अन्तर्गत आता है। यद्यपि भगवान का अवतार मानकर, उसके प्रति लौकिक प्रेम का भी आरोपण किया जाता है, किन्तु उसके पीछे अलौकिकत्त्व सदैव छिपा रहता है। इस प्रेम मे समूचा आत्म-समर्पण होता है और प्रेम के प्रत्यागमन की भावना नही रहती। अलौकिक प्रेम-जन्य तल्लीनता ऐसी विलक्षण होती है कि द्वैध भाव ही मृत हो जाता है, फिर प्रेम के प्रतीकार का भाव कहा रह सकता है।

नारिया प्रेम की प्रतीक होती है। उनका हृदय एक ऐसा कोमल और सरस स्थल है, जिसमे प्रेम भाव को लहलहाने मे देर नही लगती। इसी कारण भक्त भी कान्ता-भाव से भगवान की आराधना करने मे अपना अहोभाग्य समझता है। भक्त 'तिया' बनता है और भगवान 'पिय'। यह दाम्पत्य भाव का प्रेम जैन कवियो की रचनाओ मे भी उपलब्ध होता है। बनारसीदास ने अपने 'अध्यात्म गीत' मे आत्मा को नायक और 'सुमति' को उसकी पत्नी बनाया है। पत्नी पति के वियोग मे इस भाति तडफ रही है, जैसे जल के बिना मछली। उसके हृदय मे पति

१ शाण्डिल्य भक्ति सूत्र, १।२, पृ० १

२ चैतन्य चरितामृत, कल्याण, भक्ति अक, वर्ष ३२, अक १, पृ० ३३३

३ श्री रूप गोस्वामी, हरिभक्ति रसामृत सिन्धु, गोस्वामी दामोदर शास्त्री सपादित, अच्युत ग्रथमाला कार्यालय, काशी, वि० स० १९८८, प्रथम सस्करण, १।४।१

से मिलने का चाव निरन्तर बढ रहा है। वह अपनी समता नाम की सखी से कहती है कि पति के दर्शन पाकर मैं उसमे इस तरह मग्न हो जाऊगी जैसे बूद दरिया मे समा जाती है। मैं अपनपा खोकर पिय से मिलूगी, जैसे ओला गल कर पानी हो जाता है।[1] अन्त मे पति तो उसे अपने घट मे ही मिल गया, और वह उससे मिलकर इस प्रकार एकमेक हो गई कि द्विविधा तो रही ही नही। उसके एकत्व को कवि ने अनेक सुन्दर दृष्टान्तो से पुष्ट किया है। वह करतूति है और पिय कर्त्ता, वह सुख-सीव है और पिय सुख-सागर, वह शिव-नीव है और पिय शिव-मदिर, वह सरस्वती है और पिय ब्रह्मा, वह कमल है और पिय माधव, वह भवानी है और पति शकर, वह जिनवाणी है और पति जिनेन्द्र।[2]

कवि ने सुमति रानी को 'राधिका' माना है। उसका सौन्दर्य और चातुर्य सब कुछ राधा के ही समान है। वह रूप-सी रसीली है और भ्रम रूपी ताले को खोलने के लिए कीली के समान है। ज्ञान-भानु को जन्म देने के लिए प्राची है और आत्म-स्थल मे रमने वाली सच्ची विभूति है। अपने धाम की खबरदार और राम की रमनहार है। ऐसी सन्तो की मान्य, रस के पथ और ग्रन्थो मे प्रतिष्ठित और शोभा की प्रतीक राधिका सुमति रानी है।[3]

---

१. मैं विरहिन पिय के आधीन
त्यो तलफौं ज्यो जल बिन मीन ॥८॥
होहुँ मगन मै दरशन पाय
ज्यौ दरिया मे बूद समाय ॥९॥
पिय को मिलो अपनपो खोय
ओला गल पाणी ज्यो होय ॥१०॥
—बनारसी विलास, अध्यात्म गीत, पृ० १६१

२ पिय मोरे घट मै पिय माहि, जलतरग ज्यो दुविधा नाहि।
पिय मो करता मै करतूति, पिय ज्ञानी मैं ज्ञान विभूति ॥
पिय सुखसागर मै सुख-सीव, पिय शिवमदिर मैं शिवनीव।
पिय ब्रह्मा मै सरस्वति नाम, पिय माधव मो कमला नाम ॥
पिय शकर मै देवि भवानि, पिय जिनवर मै केवल वानि ॥
—देखिए वही, अध्यात्म गीत, पृ० १६१

३. रूप की रसीली भ्रम कुलप की कीली
शील सुधा के समुद्र झीलि सीलि सुखदाई है।
प्राची ज्ञान-भान की अजाची है निदान की
सुराची निरवाची और साँची ठकुराई है।
धाम की खबरदार राम की रमनहार
राधा रस पथनि मे ग्रन्थन मे गाई है।
सतन की मानी निरवानी रूप की निसानी
यातै सुबुद्धि रानी राधिका कहाई है॥
—बनारसीदास, नाटक समयसार, प्राचीन हिन्दी जैन कवि, दमोह, पृ० ७९

सुमति अपने पति 'चेतन' से प्रेम करती है। उसे अपने पति के अनन्त ज्ञान, बल और वीर्य वाले पहलू पर एक निष्ठा है। किन्तु वह कर्मो की कुसगति मे पडकर भटक गया है। अत. बडे ही मिठास भरे प्रेम से दुलराते हुए सुमति कहती है, "हे लाल तुम किसके साथ कहा लगे फिरते हो। आज तुम ज्ञान के महल मे क्यो नही आते। तुम अपने हृदय-तल में ज्ञान-दृष्टि खोल कर देखो, दया, क्षमा, समता और शान्ति जैसी सुन्दर रमणियां तुम्हारी सेवा मे खड़ी हुई है। एक से एक अनुपम रूप वाली है। ऐसे मनोरम वातावरण को भूलकर आप कही न जाइए। यह मेरी सहज प्रार्थना है।[1]

बहुत दिन बाहर भटकने के बाद चेतन राजा आज घर आ रहा है। सुमति के आनन्द का कोई ठिकाना नही है। वर्षो की प्रतीक्षा के बाद पिय के आगमन की बात सुनकर भला कौन प्रसन्न न होती होगी। सुमति आह्लादित होकर अपनी सखी से कहती है, "हे सखी देखो आज चेतन घर आ रहा है। वह अनादि काल तक दूसरो के वश मे होकर घूमता फिरा, अब उसने हमारी सुध ली है। अब तो वह भगवान जिन की आज्ञा को मानकर परमानन्द के गुणो को गाता है। उसके जन्म-जन्म के पाप भी पलायन कर गये है। अब तो उसने ऐसी युक्ति रच ली है, जिससे उसे ससार मे फिर नही आना पडेगा। अब वह अपने मनभाये परम अखडित सुख का विलास करेगा।"[2]

पति को देखते ही पत्नी के अन्दर से परायेपन का भाव दूर हो जाता है। द्वैत हट जाता है और अद्वैत उत्पन्न हो जाता है। ऐसा ही एक भाव बनारसीदास ने उपस्थित किया है। सुमति चेतन से कहती है, "हे प्यारे चेतन! तेरी ओर देखते ही परायेपन की गगरी फूट गई, दुविधा का आँचल हट गया और समूची लज्जा पलायन कर गई। कुछ समय पूर्व तुम्हारी याद आते ही मैं तुम्हे खोजने के लिए अकेली ही राज-पथ को छोडकर भयावह कान्तार मे घुस पडी

---

१ कहा-कहा कौन सग लागे ही फिरत लाल, आवौ क्यो न आज तुम ज्ञान के महल मे।
नैंकहू विलोकि देखौ अन्तर सुदृष्टि सेती, कैसी-कैसी नीकी नारि ठाडी है टहल मे।
एक तें एक बनी सुन्दर सुरूप घनी, उपमा न जाय गनी वाम की चहल मे।
ऐसी विधि पाय कहू भूलि और काज कीजे, एतौ कह्यो मान लीजं बीनती सहल मे।
—'भैया' भगवतीदास, ब्रह्मविलास, जैनग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई,
द्वितीयावृत्ति, सन् १६२६ ई०, शतअष्टोत्तरी, २७वाँ पद्य, पृ० १४

२ देखो मेरी सखी ये आज चेतन घर आवै।
काल अनादि फिर्यो परवश ही, अब निज सुर्वाहि चितावै ॥१॥ दे०
जनम जनम के पाप किये जे, ते छिन माँहि बहावै।
श्री जिन आज्ञा सिर पर धरतो, परमनान्द गुण गावै ॥२॥ दे०
देत जलाजुलि जगत फिरन को ऐमी जुगति बनावै।
विलसै सुख निज परम अखडित, भैया सब मन भावे ॥३॥ दे०
—देखिये वही, परमार्थ पद पक्ति १४वाँ पद, पृ० ११४

थी। वहाँ काया नगरी के भीतर तुम अनन्त बल और ज्योति वाले होते हुए भी कर्मों के आवरण में लिपटे पड़े थे। अब तो तुम्हें मोह की नींद छोड़कर सावधान हो जाना चाहिए।"[3]

एक सखी सुमति को लेकर, नायक चेतन के पास मिलाने के लिए गई। पहले दूतियाँ ऐसा किया करती थीं। वहाँ वह सखी अपनी बाला सुमति की प्रशंसा करते हुए चेतन से कहती है, "हे लालन ! मैं अमोलक बाल लाई हूँ। तुम देखो तो वह कैसी अनुपम सुन्दरी है। ऐसी नारी तीनों ससार मे दूसरी नही है। और हे चेतन ! इसकी प्रीति भी तुमसे ही सनी हुई है। तुम्हारी इस राधे की एक-दूसरे पर अनन्त रीझ है। उसका वर्णन करने मे मैं पूर्ण असमर्थ हूँ।[4]

आध्यात्मिक विवाह

इसी प्रेम के प्रसग में आध्यात्मिक विवाहो को लिया जा सकता है। ये 'विवाहला', 'विवाह', 'विवाहलउ' और 'विवाहलो' आदि नामो मे अभिहित हुए हैं। इनको दो भागों मे विभक्त किया जा सकता है—एक तो वह जब दीक्षा ग्रहण के समय आचार्य का दीक्षाकुमारी अथवा संयमश्री के साथ विवाह सम्पन्न होना है, और दूसरा वह जब आत्मा रूपी नायक के साथ उसी के किसी गुणरूपी कुमारी की गाँठ जुडती है। इनमे प्रथम प्रकार के विवाहो का वर्णन करने वाले कई रास 'ऐतिहासिक काव्य संग्रह' में संकलित हैं। दूसरे प्रकार के विवाहो में सबसे प्राचीन जिनप्रभसूरि का 'अन्तरग विवाह' प्रकाशित हो चुका है। उपर्युक्त सुमति और चेतन दूसरे प्रकार के पति-पत्नी है। इसी के अन्तर्गत वह दृश्य भी आता है, जबकि आत्मारूपी नायक 'शिवरमणी' के साथ विवाह करने जाता है। अजयराज पाटणी के 'शिवरमणी विवाह' का उल्लेख हो चुका है।

---

३. वालम तुहु तन चितवन गागरि फूटि
अंचरा गौ फहराय सरम गै छूटि ॥१॥ वालम०
पिउ सुधि पावत वन मैं पैसिउ पेलि,
छाडत राज डगरिया भयउ अकेलि ॥३॥ वालम०
काय नगरिया भीतर चेतन भूप,
करम लेप लिपटा वल ज्योति स्वरूप ॥५॥ वालम०
चेतन बूझि विचार धरहु सन्तोष,
राग दोष दुइ बन्धन छूटत मोष ॥१३॥ वालम०
—बनारसी विलास, अध्यात्म पद पंक्ति पृ० २२८-२२९

४. लाई हौं लालन बाल अमोलक, देखहु तौ तुम कैसी बनी है।
ऐसी कहूँ तिहुँ लोक मे सुन्दर, और न नारि अनेक धनी हैं॥
याहि तें तोह कहूँ नित चेतन, याहू की प्रीति जु तो सौं सनी है।
तेरी और राधे की रीझि अनन्त जु मोपै कहूँ यह जात गनी है॥
—भैय्या भगवतीदास, ब्रह्मविलास, बम्बई, १९२६ ई०,
शत अष्टोतरी, २८वां पद्य, पृ० १४

वह १७ पद्यो का एक सुन्दर रूपक काव्य है। उन्होने 'जिनजी की रसोई' में तो विवाहोपरांत सुस्वादु भोजन और वन-विहार का भी उल्लेख किया है।[५]

बनारसीदास ने तीर्थंकर शातिनाथ का शिवरमणी से विवाह दिखाया है। शांतिनाथ विवाह मडप मे आने वाले है। होने वाली वधू की उत्सुकता दवाये नही दवती। वह अभी से उनको अपना पति मान बैठी है। वह अपनी सखी से कहती है, "हे सखी आज का दिन अत्यधिक मनोहर है, किन्तु मेरा मनभाया अभी तक नही आया। वह मेरा पति सुखकद है और चन्द्र के समान देह को धारण करने वाला है, तभी तो मेरा मन उदधि आनन्द से आन्दोलित हो उठा है। और इसी कारण मेरे नेत्र-चकोर सुख का अनुभव कर रहे हैं। उसकी सुहावनी ज्योति की कीर्ति ससार मे फैली हुई है। वह दुखरूपी अधकार के समूह को नष्ट करने वाली है। उनकी वाणी से अमृत झरता है। मेरा सौभाग्य है जो मुझे ऐसे पति प्राप्त हुए।"[६]

तीर्थंकर अथवा आचार्यो के सयमश्री के साथ विवाह होने के वर्णन तो बहुत अधिक है। उनमे से 'जिनेश्वर सूरि और जिनोदय सूरि विवाहला' एक सुन्दर काव्य है। इसमे इन सूरियो का संयमश्री के साथ विवाह होने का वर्णन है। इसकी रचना वि० स १३३१ में हुई थी। हिन्दी के कवि कुमुदचन्द का 'ऋषभ विवाहला' भी ऐसी ही एक कृति है। इसमे भगवान ऋषभनाथ का दीक्षा-कुमारी के साथ विवाह हुआ है। श्रावक ऋषभदास का 'आदीश्वर विवाहला' भी बहुत ही प्रसिद्ध है। विवाह के समय भगवान ने जिस चूनडी को ओढा था, वैसी चूनडी छपाने के लिए न जाने कितनी पत्नियाँ अपने पतियों से प्रार्थना करती रही हैं। १६वी शती के विनयचन्द्र की 'चूनड़ी' हिन्दी साहित्य की प्रसिद्ध रचना है। साधुकीर्ति की चूनडी मे तो सगीतात्मक प्रवाह भी है।

तीर्थंकर नेमीश्वर और राजुल का प्रेम

नेमीश्वर और राजुल के कथानक को लेकर जैन हिन्दी के भक्तकवि दाम्पत्य भाव प्रकट करते रहे है। राजशेखर सूरि ने विवाह के लिए राजुल को ऐसा सजाया है कि उसमें मृदुल काव्यत्त्व ही साक्षात् हो उठा है। किन्तु वह वैसी ही उपास्य बुद्धि से सचालित है, जैसे राधा-सुधानिधि मे राधा का सौन्दर्य। राजुल की शील-सती शोभा मे कुछ ऐसी बात है कि उससे

---

५ देखिए, 'हिन्दी के भक्तिकाव्य मे जैन साहित्यकारो का योगदान'
छठा अध्याय, पृ० ६५६

६ सहि एरी ! दिन आज सुहाया मुझ भाया आया नहिं घरे।
सहि एरी ! मन उदधि अनन्दा सुख, कन्दा चन्दा देह धरे ॥
चन्द जिवाँ मेरा वल्लभ सोहे, नैन चकोरहिं सुक्ख करै।
जग ज्योति सुहाई कीरति छाई, बहु दुख तिमर वितान हरै ॥
सहु काल विनानी अमृतवानी, अरु मृग का लच्छन कहिये।
श्री शान्ति जिनेश नरोत्तम को प्रभु, आज मिला मेरी सहिये ॥
—बनारसीदास, बनारसी विलास, श्री शान्तिनाथ जिन-स्तुति, प्रथम पद्य, पृ० १८९।

पवित्रता को प्रेरणा मिलती है, वासना को नही। विवाह मंडप मे विराजी वधू जिसके आने की प्रतीक्षा कर रही थी। वह मूक पशुओ के करुण-क्रन्दन से प्रभावित होकर लौट गया। उस समय वधू की तिलमिलाहट और पति को पा लेने की बेचैनी का जो चित्र हेमविजय ने खीचा है, दूसरा नही खीच सका। हर्षकीर्ति की 'नेमिनाथ राजुल गीत' भी एक सुन्दर रचना है। इसमे भी नेमिनाथ को पा लेने की बेचैनी है, किन्तु वैसी सरस नही जैसी कि हेमविजय ने अकित की है।

कवि भूधरदास ने नेमीश्वर और राजुल को लेकर अनेक पदो का निर्माण किया है। एक स्थान पर तो राजुल ने अपनी माँ से प्रार्थना की, "हे मा देर न करो। मुझे शीघ्र ही वहाँ भेज दो, जहाँ हमारा प्यारा पति रहता है। यहा तो मुझे कुछ भी अच्छा नही लगता, चारो ओर अधेरा ही अधेरा दिखाई देता है। न जाने नेमि रूपी दिवाकर का मुख कब दिखाई पड़ेगा। उनके बिना हमारा हृदय रूपी अरविन्द मुरझाया पडा है।"[७] पिय-मिलन की ऐसी विकट चाह है, जिसके कारण लडकी माँ से प्रार्थना करते हुए भी नही लजाती। लौकिक प्रेम-प्रसग मे लज्जा आती है, क्योकि उसमे काम की प्रधानता होती है, किन्तु यहाँ तो अलौकिक और दिव्य प्रेम की बात है। अलौकिक की तल्लीनता मे व्यावहारिक उचित-अनुचित का ध्यान नही रहता।

राजुल के वियोग मे 'सम्वेदना' की प्रधानता है। भूधरदास ने राजुल के अन्त.स्थ विरह को सहज स्वाभाविक ढग से अभिव्यक्त किया है। राजुल अपनी सखी से कहती है, "हे सखी! मुझे वहाँ ले चल, जहाँ प्यारे जादौपति रहते है। नेमिरूपी चन्द्र के बिना यह आकाश का चन्द्र मेरे सब तन-मन को जला रहा है। उसकी किरणे नाविक के तीर की भाँति अग्नि के स्फुलिगो को बरसाती है। रात्रि के तारे तो अगारे ही हो रहे है।"[८] कही-कही राजुल के विरह में 'ऊहा' के दर्शन होते है, किन्तु उसमें नायिका के 'पेडुलम' हो जाने की बात नही आ पाई है, इसी कारण वह तमाशा बनने से बच गया है। यद्यपि राजुल का 'उर' भी ऐसा जल रहा है कि हाथ उसके समीप नही ले जाया जा सकता। किन्तु ऐसा नही कि उसकी गर्मी से जड़काले मे लुये चलने लगी हो। राजुल अपनी सखी से कहती है, "नेमिकुमार के बिना मेरा जिय रहता नही है। हे सखी! देख मेरा हृदय कैसा बच रहा है, तू अपने हाथ को निकट लाकर देखती क्यो नही।

---

७. माँ विलब न लाव पठाव वहाँ री, जह जगपति पिय प्यारो।
और न मोहि सुहाय कछू अब, दीसे जगत अधारो री ॥१॥
मैं श्री नेमि दिवाकर कौ अब, देखौ बदन उजारो।
बिन पिय देखे मुरझाय रह्यो है, उर अरविंद हमारो री ॥२॥
—भूधरदास, भूधरविलास, कलकत्ता, १३वाँ पद, पृ० ८।

८ तहाँ लै चल री, जहाँ जादौपति प्यारो।
नेमि निशाकर बिन यह चन्दा, तन-मन दहत सकल री ॥१॥ तहाँ०
किरन किधौ नाविक शर तति के, ज्यो पावक की झलरी।
तारे हैं अगारे सजनी, रजनी राकस दल री ॥२॥ तहाँ०
—देखिए वही, ४५वा पद, पृ० २५

मेरी विरहजन्य उष्णता कपूर और कमल के पत्तो से दूर नहीं होगी। उनको दूर हटा दे । मुझे तो 'सियरा कलाधर' भी 'करूर' लगता है। प्रियतम प्रभु नेमिकुमार के बिना मेरा 'हियरा' शीतल नही हो सकता।[६] पिय के वियोग मे राजुल भी पीली पड गई है, किन्तु ऐसा नही हुआ कि उनके शरीर मे एक तोला मांस भी न रहा हो। विरह मे भरी नदी मे उनका हृदय भी बहा है, किन्तु उसकी आखो से खून के आसू कभी नही ढुलके। हरी तो वह भी भर्त्ता से भेंट कर ही होगी, किन्तु उसके हाड सूख कर सारगी कभी नही बने।[१०]

वारहमासा

नेमीश्वर और राजुल को लेकर जैन हिन्दी साहित्य मे वारहमासो की भी रचना हुई है। उन सब मे कवि विनोदीलाल का 'वारहमासा' उत्तम है। प्रिया को प्रिय के सुख के अनिश्चय की आशका सदैव रहती है, भले ही प्रिय सुख मे रह रहा हो। तीर्थंकर नेमीश्वर वीतरागी होकर निराकुलतापूर्वक गिरिनार पर तप कर रहे है, किन्तु राजुल को शका है, "जब सावन मे घनघोर घटायें जुड आयेंगी, चारो ओर से मोर शोर करेंगे, कोकिल कुहुक सुनावेगी, दामिनी दमकेगी और पुरवाई के झोके चलेंगे, तो वह सुखपूर्वक तप न कर सकेंगे।[११] पौष के लगने पर तो राजुल की चिन्ता और भी बढ गई है। उसे विश्वास है कि पति का जाडा बिना रजाई के नही कटेगा। पत्तो की धुवनी से तो काम चलेगा नही। उस पर भी काम की फौजे इसी ऋतु मे निकलती है, कोमल गात के नेमीश्वर उससे लड न सकेंगे।[१२] वैशाख की गर्मी को देखकर राजुल और भी अधिक व्याकुल है, क्योकि इस गर्मी मे नेमीश्वर को प्यास लगेगी, तो शीतल जल कहाँ मिलेगा, और तीव्र धूप से तचते पत्थरो से उनका शरीर दग जाएगा।[१३]

---

९ नेमि विना न रहे मेरो जियरा।
हेर री अली तपत उर कैसो, लावत क्यो निज हाथ न नियरा ॥१॥ नेमि०
करि करि दूर कपूर कमल दल, लगत करूर कलाधर सियरा ॥२॥ नेमि०
भूधर के प्रभु नेमि पिया बिन, शीतल होय न राजुल हियरा ॥३॥ नेमि०
—देखिए वही, २०वा पद, पृ० १२

१० देखिए वही, १४वा पद, पृष्ठ ६ और मिलाइये जायसी के नागमती के विरह वर्णन से।

११. पिया सावन मे व्रत लीजे नहीं, घनघोर घटा जुर आवैगी।
चहुँ ओर तैं मोर जु शोर करैं, वन कोकिल कुहक सुनावैगी॥
पिय रैन अधेरी मे सूझै नही, कछु दामिन दमक डरावैगी।
पुरवाई की झोक सहोगे नही, छिन मे तप तेज छुड़ावैगी॥
- कवि विनोदीलाल, वारहमासा नेमि राजुल का, वारहमासा संग्रह, जिनवाणी प्रचारक कार्यालय, कलकत्ता, ४था पद्य, पृ० २४,

१२. देखिए वही, १४वा पद्य, पृ० २७

१३. देखिए वही, २२वा पद्य, पृ० २६

कवि लक्ष्मीवल्लभ का 'नेमि राजुल वारहमासा' भी एक प्रसिद्ध रचना है। इसमें कुल १४ पद्य है। प्रकृति के रमणीय सन्निवान मे विरहिणी के व्याकुल भावो का सरस सम्मिश्रण हुआ है, "श्रावण का माह है, चारो ओर से विकट घटाये उमड रही हैं। मोर शोर मचा रहे है। आसमान मे दामिनी दमक रही है। यामिनी मे कुम्भस्थल जैसे स्तनो को धारण करने वाली भामिनियो को पिय का सग भा रहा है। स्वाति नक्षत्र की बूँदो से चातक की पीडा भी दूर हो गई है। शुष्क पृथ्वी की देह भी हरियाली को पाकर दिप उठी है। किन्तु राजुल का न तो पिय आया और न पतिया।[१४] "ठीक इसी भाति एक वार जायसी की नागमती भी विलाप करते हुए कह उठी थी, "चातक के मुख स्वाति नक्षत्र की बूँदे पड़ गई, और समुद्र की सब सीपें भी मोतियो से भर गई। हस स्मरण कर करके अपने तालावो पर आ गये। सारस वोलने लगे और खजन भी दिखाई पडने लगे। कासो के फूलने से वन मे प्रकाश हो गया, किन्तु हमारे कत न फिरे, कही विदेश मे ही भूल गये।[१५]" कवि भवानीदास ने भी नेमिनाथ वारहमासा लिखा था, किसमे कुल १२ पद्य है। श्री जिनहर्ष का 'नेमि वारहमासा' भी एक प्रसिद्ध काव्य है। उसके १२ सवैयो मे सौन्दर्य और आकर्षण व्याप्त है। श्रावण मास मे राजुल की दशा को उपस्थित करते हुए कवि ने लिखा है, "श्रावण मास है, घनघोर घटाये उन्नै आई है। झलमलाती हुई विजुरी चमक रही है, उसके मध्य से वज्र-सी ध्वनि फूट रही है. जो राजुल को विपवेलि के समान लगती है। पपीहा पिउ-पिउ रट रहा है। दादुर और मोर वोल रहे हैं। ऐसे समय मे यदि नेमीश्वर मिल जाये तो राजुल अत्यधिक सुखी हो।"[१६]

---

१४ उमटी घनघोर घटा चिहुँ ओरनि मोरनि सोर मचायो।
चमकै दिवि दामिनि यामिनि कु मय भामिनि कु पिय को सग भायो।
लिव चातक पीड ही पीत लई, भई राजहरी मुँह देह दिपायो।
पतिया पै न पाई री प्रीतम की अली, श्रावण आयो पै नेम न आयो।
—कवि लक्ष्मीवल्लभ, नेमि राजुल वारहमासा, पहल पद्य,
इसी प्रवन्ध का छठा अध्याय। पृ० ५६४

१५. स्वाति वूँद चातक मुख परे। समुद सीप मोती सब भरे॥
सरवर सवरि हस चलि आये। सारस कुरलहि खजन देखाये॥
भा परगास कास वन फूले। कत न फिरे विदेसहि भूले॥
—जायसी ग्रन्थावली, प० रामचन्द्र शुक्ल सपादित, काशी नागरी प्रचारिणी सभा,
तृतीय सस्करण, वि० स० २००३, ३०1७, पृ० १५३

१६ घन की घनघोर घटा उनही, विजुरी चमकति झलाहलि सी॥
विधि गाज अगाज अवाज करत सु, लागत भो विपवेलि जिसी॥
पपीया पिउ पिउ रटत रयण जु, दादुर मोर वदै ऊलिसी॥
ऐसे श्रावण मे यदु नेमि मिलै, सुख होत कहै जसराज रिसी॥
—जिनहर्ष, नेमि वारहमासा, इसी प्रवन्ध का छठा अध्याय, पृ० ५०२

आध्यात्मिक होलियाँ

जैन साहित्यकार आध्यात्मिक होलियो की रचना करते रहे है। इनमे होली के अग उपागो का आत्मा से रूपक मिलाया गया है। उनमे आकर्षण तो होता ही है, पावनता भी आ जाती है। ऐसी रचनाओ को 'फागु' कहते है। कवि बनारसीदास के 'फागु' मे आत्मा रूपी नायक ने शिवसुन्दरी से होली खेली है। कवि ने लिखा है, "सहज आनन्द रूपी वसन्त आ गया है और शुभ भाव रूपी पत्ते लहलहाने लगे है। सुमति रूपी कोकिला गलगही होकर गा उठी है, और मन रूपी भौंरे मदोमत्त होकर गु जार कर रहे है। सुरति रूपी अग्नि-ज्वाला प्रकट हुई है, जिससे अष्टकर्म रूपी वन जल गया है। अगोचर अमूर्त्तिक आत्मा धर्म रूपी फाग खेल रहा है। इस भाँति आत्म ध्यान के बल से परम ज्योति प्रकट हुई, जिससे अष्टकर्म रूपी होली जल गई और आत्मा शान्तरस मे मग्न होकर शिवसुन्दरी से फाग खेलने लगा।"[१७]

कवि द्यानतराय ने दो जत्थो के महरा होली की रचना की है। एक ओर तो बुद्धि, दया, क्षमा रूपी नारिया है और दूसरी ओर आत्मा के गुण रूपी पुरुष है। ज्ञान और ध्यान रूपी डफ तथा ताल बज रहे है, उनसे अनहद रूपी घनघोर निकल रहा है। धर्म रूपी लाल रग का गुलाल उड रहा है और समता रूपी रग दोनो ही पक्षो ने घोल रक्खा है। दोनो ही दल प्रश्न के उत्तर की भाति एक-दूसरे पर पिचकारी भर-भर कर छोडते हैं। इधर से पुरुष-वर्ग पूछता है कि तुम किसकी नारी हो, तो उधर से स्त्रिया पूछती है कि तुम किसके छोरा हो। आठ कर्मरूपी काठ अनुभव रूपी अग्नि मे जल बुझकर शान्त हो गये। फिर तो सज्जनो के नेत्र रूपी चकोर,

---

१७. विषम विरष पूरो भयो हो, आयो सहज वसन्त।
प्रगटी सुरचि सुगधिता हो, मन मधुकर मयमत।।
सुमति कोकिला गहगही हो, वही अपूरब वाउ।
भरम कुहर बादर फटे हो, घट जाडो जडताउ।।
शुभ दल पल्लव लहलहे हो, होहि अशुभ पतझार।
मलिन विषय रति मालती हो, विरति वेलि विस्तार।।
सुरति अग्नि ज्वाला जगी हो, समकित भानु अमद।
हृदय कमल विकसित भयो हो, प्रगट सुजश मकरद।।
परम ज्योति प्रगट भई हो, लागी होलिका आग।
आठ काठ सब जरि बुझे हो, गई तताई भाग।।
—बनारसीदास, बनारसी विलास

शिवरमणी के आनन्दकन्द की छवि की टकटकी लगाकर देखते ही रहे।[१८] भूधरदास की नायिका ने भी अपनी सखियो के साथ, श्रद्धा नगरी मे आनन्द रूपी जल से रुचि रूपी केशर घोल कर और रँगे हुए नीर को उमग रूपी पिचकारी से भर कर अपने प्रियतम के ऊपर छोडा। इस भाति उसने अत्यधिक आनन्द का अनुभव किया।[१९]

अनन्य-प्रेम

प्रेम मे अनन्यता का होना अत्यावश्यक है। प्रेमी को प्रिय के अतिरिक्त कुछ दिखाई ही न दे, तभी वह सच्चा प्रेम है। मा-बाप ने राजुल से दूसरे विवाह का प्रस्ताव किया, क्योकि राजुल की नेमीश्वर के साथ भाँवरे नही पडने पाई थी। किन्तु प्रेम भाँवरो की अपेक्षा नही करता। राजुल को तो सिवा नेमीश्वर के अन्य का नाम भी रुचिकारी नही था। इसी कारण उसने मा-बाप को फटकारते हुए कहा, "हे तात! तुम्हारी जीभ खूब चली है जो अपनी लडकी के लिए भी गालिया निकालते हो। तुम्हे हर बात सम्भल कर कहना चाहिए। सब स्त्रियो को एक-सी न समझो। मेरे लिए तो इस ससार मे केवल नेमि प्रभु ही एक मात्र पति हैं।"[२०]

महात्मा आनन्दघन अनन्य प्रेम को जिस भाति अध्यात्म पक्ष मे घटा सके, वैसा हिन्दी का अन्य कोई कवि नही कर सका। कबीर मे दाम्पत्य भाव है और आध्यात्मिकता भी,

---

१८. आयो सहज बसन्त खेलैं सब होरी होरा।
उत बुधि दया छिमा बहु ठाढी, इत जिय रतन सजे गुन जोरा ॥१॥
ज्ञान ध्यान डफ ताल बजत है, अनहद शब्द होत घनघोरा।
धरम सुराग गुलाल उडत है, समता रग दुहू ने घोरा ॥२॥
परसन उत्तर भरि पिचकारी, छोरत दोतो करि-करि जोरा।
इततै कहै नारि तुम काकी, उतते कहै कौन को छोरा ॥३॥
आठ काठ अनुभव पावक मैं, जल बुझ शान्त भई सब ओरा।
द्यानत शिव आनन्द चन्द छवि, देखहि सज्जन नैन चकोरा ॥४॥
—द्यानतराय, द्यानत पद-सग्रह, कलकत्ता, ८६वा पद, पृ० ३६-३७

१९. सरधा गागर मे रुचि रूपी, केसर घोरि तुरन्त।
आनन्द नीर उमग पिचकारी, छोड़ो नीकी मन्त ॥
होरी खेलोगी, घर आये चिदानन्द कन्त ॥
— भूधरदास, 'होरी खेलोगी' पद, अध्यात्म पदावली, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पृष्ठ ७५

२० काहे न बात सम्भाल कहौ तुम जानत हो यह बात भली है।
गालिया काढत हो हमको सुनो तात भली तुम जीभ चली है ॥
पै सब को तुम तुल्य गिनौ तुम जानत ना यह बात रली है।
या भव मे पति नेत्र प्रभू वह लाल विनोदी को नाश वली है ॥
—विनोदीलाल, नेमिव्याह, जैन सिद्धान्त भवन आरा की हस्तलिखित प्रति

किन्तु वैसा आकर्षण नही, जैसा कि आनन्दघन मे है। जायसी के प्रबन्धकाव्य मे अलौकिक की ओर इशारा भले ही हो, किन्तु लौकिक कथानक के कारण उसमे वह एकता नही निभ सकी है, वैसी कि आनन्दघन के मुक्तक पदो मे पाई जाती है। सुजान वाले घनानन्द के बहुत मे पद भगवद्भक्ति मे वैसे नही खप सके, जैसे कि सुजान के पक्ष मे घटे है। महात्मा आनन्दघन जैनो के एक पहुँचे हुए साधु थे। उनके पदो मे हृदय की तल्लीनता है। उन्होने एक स्थान पर लिखा है, "सुहागिन के हृदय मे निर्गुण ब्रह्म की अनुभूति से ऐसा प्रेम जागा है कि अनादि काल से चली आने वाली अज्ञान की नीद समाप्त हो गई। हृदय के भीतर भक्ति के दीपक ने एक ऐसी सहज ज्योति को प्रकाशित किया है, जिसमे घमण्ड स्वय दूर हो गया और अनुपम वस्तु प्राप्त हो गई। प्रेम इक ऐसा अचूक तीर है कि जिसके लगता है वह ढेर हो जाता है। वह एक ऐसा वीणा का नाद है, जिसको सुनकर आत्मा रूपी मृग तिनके तक चरना भूल जाता है। प्रभु तो प्रेम से मिलता है, उसकी कहानी कही नही जा सकती।"[२१]

भक्त के पास भगवान स्वय आते है, भक्त नही आता। जब भगवान आते हैं, तो भक्त के आनन्द का वारापार नही रहता। आनन्दघन की सुहागिन नारी के नाथ भी स्वय आये है और अपनी 'तिया' को प्रेमपूर्वक स्वीकार किया है। लम्बी प्रतीक्षा के बाद आये नाथ की प्रसन्नता मे, पत्नी ने भी विविध भाति के शृगार किए है। उसने प्रेम, प्रतीति, राग और रुचि के रग मे रगी साडी धारण की है, भक्ति की मेहँदी राची है और भाव का सुखकारी अजन लगाया है। सहज स्वभाव की चूडिया पहनी हैं और थिरता का भारी कगन धारण किया है। ध्यान रूपी उरवसी गहना वक्षस्थल पर पडा है और पिय के गुण की माला को गले मे पहना है। सुरत के सिंदूर से माग को सजाया हे और निरति की वेणी को आकर्षण ढग से गूथा है। उसके घर मे त्रिभुवन की सबसे अधिक प्रकाशमान ज्योति का जन्म हुआ है। वहा से अनहद

---

२१ सुहागण जागी अनुभव प्रीति। सुहा० ॥
निन्द अज्ञान अनादि की मिट गई निज रीति ॥१॥ सुहा०
घट मन्दिर दीपक कियो, सहज सुज्योति सरूप।
आप पराइ आप ही, ठानत वस्तु अनूप ॥ सुहा० ॥२॥
कहा दिखावु और कू, कहा समझाउ भोर।
तीर अचूक है प्रेम का, लागे सो रहे ठौर ॥ सुहा० ॥३॥
नाद विलुद्धो प्राण कू, गिने न तृण मृगलोय।
आनन्दघन प्रभु प्रेम का, अकथ कहानी कोय ॥ सुहा० ॥४॥
— महात्मा आनन्दघन, आनन्दघन पद सग्रह, अध्यात्म ज्ञान प्रसारक मण्डल, बम्बई, चौथा पद। पृ० ७,

का नाद भी उठने लगा है। अब तो उसे लगातार एकतार में पिय रस का आनन्द उपलब्ध हो रहा है।[२२]

ठीक उसी भाति बनारसीदास की नारी के पास भी निरजनदेव स्वय प्रकट हुए है। वह इधर-उधर भटकती नही। उसने अपने हृदय मे ध्यान लगाया और निरजनदेव आ गये। अब वह अपने खजन जैसे नेत्रो से उसे पुलकायमान होकर देख रही है और प्रसन्नता से भरे गीत गा रही है। उसके पाप और भय दूर भाग गए है। परमात्मा जैसे साजन के रहते हुए पाप और भय कैसे रह सकते है। उसका साजन साधारण नही है, वह कामदेव जैसा सुन्दर और सुधारस सा मधुर है। वह कर्मो का क्षय कर देने से तुरन्त मिल जाता है।[२३]

---

२२ आज सुहागन नारी ।। अवधू आज० ।।
मेरे नाथ आप सुध लीनी, कीनी निज अगचारी ।।अवधू०।।१।।
प्रेम प्रतीत राग रुचि रगत, पहिरे पहिरे जिनी सारी।
महिंदी भक्ति रग की राची, भाव अजन सुखकारी ।। अवधू० ।।२।।
सहज सुभाव चूरियाँ पेनी, थिरता कगन भारी।
ध्यान उरवसी उर मे राखी, पिय गुन माल अधारी ।। अवधू० ।।३।।
सुख सिंदूर माग रग राती, निरते बेनी समारी।
उपजी ज्योति उद्योत घट त्रिभुवन, आरसी केवल कारी ।। अवधू० ।।४।।
उपजी धुनि अजपा की अनहद, जीत नगारे वारी।
झडी सदा आनन्दघन बरात, बिन मोरे इक नारी ।। अवधू० ।।५।।

—देखिए वही, २०वा पद,

२३. म्हारे प्रगटे देव निरजन।
अटकौ कहा कहा सर भटकत कहा कहू जनरजन ।। म्हारे० ।।१।।
खजन दृग दृग नयनन गाऊँ चाऊँ चितवत रजन।
सजन घट अन्तर परमात्मा सकल दुरित भय रजन ।। म्हारे०।।२।।
वो ही कामदेव होय काम घट वो ही सुधारस मजन।
और उपाय न मिले बनारसी मकल करमषय खजन ।। म्हारे० ।।३।।

—बनारसीदास, बनारसी विलास, जयपुर, १९५४ ई०,
'दो नये पद', पृ० २४० (क)

जैन पद साहित्य का तुलनात्मक अध्ययन

डा० कस्तूरचन्द कासलीवाल
एस०ए०पी०एच-डी०, जयपुर

हिन्दी मे काव्य, चरित कथा एव पुराण साहित्य के साथ-साथ जैन कवियो ने पद साहित्य के विकास मे भी पूर्ण योग दिया। पद साहित्य वैराग्य एव भक्तिमार्ग का उपदेश देने मे बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। जैन शास्त्र सभाओ मे शास्त्र प्रवचन के पश्चात् भजन एव गीत बोलने की प्रथा सैंकडो वर्षो से चली आ रही है इस दृष्टि से भी इन कवियो ने पद रचना मे अधिक रुचि दिखलाई। यद्यपि यह कहना कठिन है कि सर्वप्रथम किस कवि ने हिन्दी मे पद-साहित्य की रचना की थी लेकिन इतना अवश्य है कि १४-१५वी शताब्दी मे पद रचना सामान्य बात हो गई। १५वी शताब्दी के एक प्रसिद्ध विद्वान् सकलकीर्ति का पद देखिये—

तुम बलिमो नेमजी दोय घटिया।

जादव वस जब व्याहन आए, उग्रसेन घी लाडलीया ॥ तुम० ॥
राजमती विनती कर जोरे, नेम नाल मानत न हीया ॥ तुम० ॥
राजमती सखीयन सु बोले, गिरनार भूधर ध्यान धरीया ॥ तुम० ॥
सकलकीर्ति मनु दास चारी, चरणे चित्त लगाय रहीया ॥ तुम० ॥

सकलकीर्ति के पश्चात् ब्रह्म जिनदास के पद भी मिलते है। आदिनाथ स्तवन के रूप मे लिखा हुआ उसका यह पद बहुत सुन्दर एव परिष्कृत भाषा मे निबद्ध है। १६वी शताब्दी मे होने वाले कवियो मे घीहल, पूनो, बूचराज आदि कवियो के पद उल्लेखनीय हैं। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ-सूची चतुर्थ भाग मे लेखक ने १४० से अधिक जैन कवियो के पदो की सूचना दी है।

इधर हिन्दी पदो के प्रमुख पुरुषकर्त्ता महाकवि कबीरदास, मीरॉ एव सूरदास सगुणोपासक कवि थे। इन कवियो की भक्ति-धारा से जैन कवि भी अप्रभावित नही रह सके और कालान्तर मे उनकी रचनाओ पर भी इन भक्त कवियो का अवश्य प्रभाव पडा। तुलसीदास के समकालीन जैन कवि बनारसीदास एव रूपचन्द्र थे। तुलसीदास कट्टर रामोपासक थे और अपनी रामायण के माध्यम से रामकथा का घर-घर प्रचार किया था। इसलिए तुलसी की रामभक्ति से भी जैन कवि अछूते नही रह सके। यद्यपि वे आत्मा, परमात्मा एव वैराग्य के गुण गाते रहे किन्तु भगवद्भक्ति की ओर भी उनका ध्यान गया और तीर्थंकरो की भक्ति मे इन्होने पद लिखने प्रारभ किये।

१५-१६वी शताब्दी के पश्चात् जैन कवियो ने सैकडो-हजारो की सख्या मे पद लिखे। कितने ही कवियो ने तो २०० से भी अधिक पद लिख कर उस साहित्य की ओर अपनी रुचि का प्रदर्शन किया। इन हिन्दी पद निर्माताओ मे भट्टारक रत्नकीर्ति, भट्टारक कुमुदचन्द्र, रूपचन्द्र, बनारसीराम, जगजीवन, जगतराम, द्यानतराम, भूधरराम, बख्तराम, नवलराम, बुधजन, छत्रपति, भागचन्द्र आदि के नाम उल्लेखनीय है। यदि इन जैन कवियो के पदो की गणना की जावे तो यह सभवत दस हजार से कम नही होगी लेकिन अभी तक ५-७ कवियो के अतिरिक्त शेष कवियो के बारे मे साहित्य जगत् को कोई विशेष जानकारी नही है। इन कवियो ने बडे ही सुन्दर शब्दो मे

भक्तिपरक, आध्यात्मिक, दार्शनिक तथा रहस्यवादी पद लिखे है जिनको पढने से आत्मिक शान्ति मिलती है एव जीवन नैतिकता की ओर विकसित होता है। प्रस्तुत लेख मे ऐसे ही कुछ कवियो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है—

भूधरदास १८वी शताब्दी के प्रसिद्ध कवि थे। ये आगरे के रहने वाले थे तथा पार्श्व-पुराण नामक काव्य की सवत् १७८४ में रचना की थी। भूधरदास ने माया को कबीरदास के समान ही ठगिनी शब्द से सम्बोधित किया है। कबीर ने माया के विभिन्न रूप दिखलाये है जब कि भूधरदास ने उसके स्वरूप का भी परिचय दिया है। माया बिजली की आभा के समान है जो मूर्ख प्राणियो को ललचाती रहती है। उस पर विश्वास करने वाले को सदैव पश्चाताप करना पडता है और अन्त में नरक मे भी जाना पडता है। कबीर ने उसके कमला, भवानी, मूरति एव जोगिन आदि नाम दिये हैं तो भूधरदास ने "कैते कप किये तैं कुलटा तो भी मन न अघाया" कह कर सारे रहस्य को समझाने का प्रयास किया है। कबीर ने माया को अकथ कहानी लिख कर छोड दिया है लेकिन भूधरदास ने "जो इस ठगिनी को ठग बैठे मै तिनको शिर नाया" शब्दो मे अच्छा अन्त किया है। दोनो ही कवियो के पदो को पाठको के सामने अवलोकनार्थ किया जा रहा है—

माया महा ठगिनी हम जानी।
निरगुल फास लिये कर डोले बोले मधुरी बानी।
केसव के कमला ह्वै बैठी, शिव के भवन शिवानी।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी, तीरथ मे भई पानी।
जोगी के जोगिन ह्वै बैठी, राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी, काहू के कौडी कानी।
भगतन के भगतिन ह्वै बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्माणी।
कहत कबीर सुनो हो सतो यह सब अकथ कहानी॥

\+ \+ \+

सुनि ठगनी माया, तैं सब जग ठग खाया।
टुक विश्वास किया जिन तेरा, सो मूरख पछताया॥ सुनि०॥
आभा तनक दिखाय विज्जु ज्यो, मूढमती ललचाया।
करि मद अन्ध धर्म हर लीनो, अन्त नरक पहुँचाया॥ सुनि०॥
केते कथ लिये तैं कुलटा तो भी मन न अघाया।
किसही सौ नहिं प्रीति निभाई, वह तजि और लुभाया॥सुनि०॥
'भूधर' छलत फिरत यह सबको, भौदू करि जग पाया।
जो इस ठगनी को ठग बैठे, मैं तिनको शिर नाया॥ सुनि०॥

कबीरदास ने अपने एक अन्य पद मे यह प्राणी सारी आयु वातो मे ही व्यतीत कर देता है, इस रूपक का सुन्दर चित्रण किया है। जैन कवि छत्न ने भी इसी के समान एक पद लिखा है जिसमे उसने "आयु सब यो ही बीती जाय" के पश्चात्ताप किया है। दोनो कवियो के पदो की प्रथम दो पक्तिया पढिये—

जन्म तेरा बातो ही बीत गया, तूने कबहुँ न कृष्ण कह्यो।
पाच बरस का भोला भाला अब तो बीस भयो।
सुन्दर पचीसी माया कारन देश विदेश गयो॥
—कबीरदास

आयु सब यो ही बीती जाय।
बरस अयन ऋतु मास महूरत, पल छिन समय सुभाय।
बन न सकत जप तप व्रत संजम, पूजन भजन उपाय॥
मिथ्या विषय कषाय काज मे, फसो न निकसो जाय॥
—छत्रदास

यदि कबीरदास प्रभु के भजन करने मे आनन्द का अनुभव करते है तो जगतराम कवि 'भजन सम नही काज दूजो की माला जपते हैं। दोनो ही कवियो ने परमात्मा के भजन की अपूर्व महिमा गाई है। भजन से पापो का नाश होता है। सत समाज का समागम होता है। द्रव्य का भण्डार प्राप्त होता है। दोनो कवियो के पदो का अध्ययन कीजिये—

भजन मे होत आनन्द आनन्द।
बरसै शब्द अमी के बादल, भीजै मरहम सन्त।
कर अस्नान मगन होय बैठे, चढा शब्द का रग।
अगर वास जहाँ तत की नदिया, बहत धारा गग।
तेरा साहिब है तेरे माही पारस परसे अग।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जपले ओ३म् सोऽहं॥
—कबीरदास

भजन सम नही काज दूजो।
धर्म अग अनेक या मैं, एक ही सिरताज।
करत जाके दुरत पातक, जुरत सत समाज।
भरत पुण्य भण्डार यातै, मिलत सब सुख साज॥१॥
भक्त को यह इष्ट ऐसो, ज्यो क्षुधित को नाज।
कर्म ईंधन को अगनि सम, भव जलधि को पाज॥२॥
इन्द्र जाकी करत महिमा, कहो तो कैसी लाज।
जगतराम प्रसाद यातै, होत अविचल राज॥३॥

दौलतराम ने भगवान महावीर से भवपीर हरने तथा कर्म बेडी को काटने की प्रार्थना की है तो कबीरदास ने भगवान से निवेदन किया है कि उनके बिना भक्त की कौन पीर हर सकता है।

हमारी पीर हरो भवपीर (दौलतराम)
आप बिन कौन सुने प्रभु मोरी (कबीरदास)

इसी तरह यदि कबीरदास ने "साधो ! मूलन बेटा जायो, गुरू परताप साधु की सगत खोज कुटुम्ब सब खायो" पद मे बालक का नाम ज्ञान रखा है तो बनारसीदास ने बालक का नाम भौदू रखकर नाम रखने वाले पण्डित को ही बालक द्वारा खा लेने की अच्छी कल्पना की है। इस दृष्टि से बनारसीदास की कल्पना निस्सदेह उच्च स्तर की है। दोनो पदो का अन्तिम भाग देखिए—

कबीरदास—ज्ञान नाम धरयो बालक का शोभा वरणि न जाइ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, घर घर रहा समाइ।।

बनारसीदास—नाम धरयो बालक को भौदू रूप वरन कछु नाही।
नाम धरते पाडे खाये कहत बनारसी भाई।।

राजस्थान की लाडली मीरा ने कृष्णभक्ति की देश मे अनुपम धारा बहाई। 'मेरे तो गिरधर गुपाल दूसरो न कोई' का आलाप घर घर होने लगा। साधारण जनता कृष्णभक्ति मे दीवानी हो उठी और मीरा द्वारा रचित पदो को गाकर सारे वायुमडल को भक्तिविभोर कर दिया। इधर जैन कवि भी उस प्रवाह से अछूते नही रह सके। कविवर बनारसीदास ने "जगत मे सौ देवन को देव, जासु वरन इन्द्रादिक परसे होय मुकति स्वयमेव" का आलाप लगाया। इसी तरह एक ओर मीरा ने प्रभु से होली खेलने के लिए निम्न शब्द लिखे :—

(१) होली पिया बिन लागे खारी सुनो री सखी मेरी प्यारी।
(२) होरी खेलत है गिरधारी।

तो दूसरी ओर जैन कवि आत्मा से ही खेलने को आगे बढे और उन्होने निम्न शब्दो मे अपने भावो को व्यक्त किया—

होरी खेलूँगी घर आए चिदानन्द।
शिशर मिथ्यात गई अब, आइ काल की लब्धि बसत।

१७वी शताब्दी मे होने वाले महाकवि तुलसीदास ने 'राम जपु राम जपु राम जपु बावरे', 'घोर नीर निधि नाम निज लख रे' का सदेश फैलाया तो कविवर रूपचन्द ने जिनेन्द्र का नाम जपने के लिए प्रोत्साहित किया किन्तु अपने परिणामो को पवित्र करने के लिए मन से काटे को निकाल कर उनका स्मरण करने के लिए भी कहा। कविवर द्यानतराय ने "रे मन भज भज दीनदयाल, जाके नाम लेत इक खिन मे कटै कोटि अघ जाल" के रूप मे भगवद्भक्ति करने के लिए जगत् को सलाह दी।

इस प्रकार जैन कवियो ने अध्यात्म एव भक्तिपरक पद लिख कर हिन्दी पद साहित्य के विकास मे महत्वपूर्ण योग दिया जिसका विस्तृत अध्ययन होना आवश्यक है।

× × × ×

संयम व सदाचार

श्री दयाचन्द जैन शास्त्री
उज्जैन

सभी प्राणियो की अपेक्षा मनुष्य मे बुद्धि बल अधिक होता है इसलिए उसमे अपना हिताहित विचार करने की शक्ति भी अधिक होती है। विचारशक्ति का यह दैवी लाभ पाकर

भी मनुष्य यदि उसका उपयोग स्वपर हित-साधन मे न करे तो उसे अपना दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। आहार, निद्रा, भय और मैथुन ये चार सज्ञाए मनुष्य व पशु मे समान रूप से पाई जाती है। लेकिन मनुष्य पशु की तरह इन्ही की पूर्ति मे अपना बहुमूल्य जीवन नष्ट कर दे तो उसे मनुष्य जीवन पाने से क्या लाभ ?

मनुष्य सद्भाग्य से प्राप्त इस दैवी सम्पदा का उपभोग जीवन की शुभ और अशुभ दोनो ही दिशाओ मे कर सकता है। शुभ दिशा मे किया गया उपयोग धर्म एव सदाचार तथा अशुभ दिशा मे किया गया उपयोग अधर्म या पाप कहा जाता है। बुद्धि के शुभ दिशा मे किये गये उपयोग से वह न केवल अपना अपितु प्राणिमात्र का भी हित कर सकता है और अशुभ दिशा मे किए गए उपयोग से स्वपर विनाश भी। शस्त्र व शास्त्र रचना उस एक ही बुद्धि के परिणाम है, पर एक से मानवता का सहार व दूसरे से उसका कल्याण होता है। राम-रावण, कृष्ण-कस, कमठ-मरुभूमि आदि के पौराणिक उदाहरण उसी सद्-असद् बुद्धि के ही तो प्रतिफल है। आज भी इस प्रकार के उदाहरणो की कमी नही है। परन्तु इनमे से हमे अपना जीवन कैसा बनाना है यह हमारे सोचने की बात है।

आज के मानव समाज पर जब हम दृष्टिपात करते है तो हमे बडी निराशा होती है। आज के मानव ने अपने जीवन का प्रमुख ध्येय केवल धन सचय और विषय सुख-साधनो की पूर्ति ही मान रक्खा है। अगर वह धर्माचरण करता भी है तो इन्ही की उपलब्धि के लिए। अहर्निश उसका एक ही लक्ष्य रहता है कि उचित अनुचित तरीको से धन कमाना और उससे अपनी आसुरी वासनाओ की प्यास बुझाना। परिग्रहानन्द और विषयानन्द उसके जीवन के ये ही दो महाव्रत है।

आज का मानव अपनी आत्मिक शक्तियो के विकास का मार्ग अवरुद्ध करके केवल भौतिक उपलब्धियो के तृष्णा-ज्वार मे फँसता जा रहा है। वह कोल्हू के बैल की तरह अपने ज्ञान-चक्षुओ पर वासनाओ की पट्टी बाँधे निरन्तर विषयचक्र के आस-पास अर्थ की धुरी लिए घूमा करता है तथा ज्यो-त्यो जिन्दगी के दिन पूरे कर काल कवलित हो जाता है। विषय-सामग्रियो की मोहकता मे वह जीवन के महान कर्त्तव्यो से इतना बेसुध रहता है कि मेरे जीवन का अन्त मे क्या होगा इतनी विवेक-बुद्धि उसमे नही रह जाती।

हमारे देश मे स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् जन-जीवन को सुख-सुविधा सम्पन्न बनाने के लिए विभिन्न योजनाओ द्वारा भौतिक उपलब्धियो के तो नाना प्रयत्न किये गए और किये जा रहे हैं पर जन-जीवन के चरित्र-बल को समुन्नत करने के लिए कोई भी प्रभावशाली प्रयत्न नही किया गया। फलत समूचे देश का चारित्रिक-स्तर दिनोदिन गिरता गया और आज स्थिति काबू के बाहर अनुभव की जाने लगी है। देश मे बल-पौरुष, सचाई और सदाचार का दिनोदिन ह्रास होता जा रहा है और उसके स्थान पर अनाचार, असयम और विलासिता उत्तरोत्तर बढती जा रही है। आज देश के समग्र जीवन मे सेवा के नाम पर स्वार्थसिद्धि, कर्त्तव्य के नाम पर पथ-भ्रष्टता, शिक्षा के नाम पर उन्मार्गगामिता, अनुशासन के नाम पर स्वेच्छाचारिता, श्रम के नाम पर कामचोरी तथा धर्म जैसी पवित्र वस्तु के नाम पर आत्मश्लाघा और वचकता जैसी पाप-

वृत्तियाँ बढती जा रही है मानो मानवता और सदाचार के नाम पर देश का दिवाला ही निकल गया हो।

आश्चर्य की बात तो यह है कि जिस देश मे अपनी आध्यात्मिक ज्ञानगरिमा के प्रकाश मे जीवन के उच्चतम आदर्शो पर चलने की हमेशा से विश्व को प्रेरणा दी हो, जिसने तप पूत आत्माओ की तपोभूमि होने के कारण विभिन्न धर्मों की तीर्थस्थली होने के गौरव प्राप्त किया हो, जो अपने आचार-विचार की श्रेष्ठता के कारण "आर्यभूमि" के नाम से विश्व मे विश्रुत हो वही देश आज अपनी चारित्रहीनता एव अनैतिकता के कारण दिनोदिन पतनावस्था की ओर अग्रसर होता जा रहा है। यद्यपि देश के सभी शुभचिंतक व्यक्ति देश की इस दुरावस्था से चिंतित है पर मर्ज का इलाज किसी की समझ मे नही आ रहा है।

यह ठीक है कि लगभग अठारह वर्षो से विदेशी सत्ता से हमने मुक्ति पा ली है तथापि पाश्चात्य सस्कृति और सभ्यता के गुलाम हम अब भी है। हमे पाश्चात्य सस्कृति से इतना व्यामोह हो गया है कि हर बात मे हम उसकी ही नकल करने के आदी बन गये है। हमारा रहन-सहन, खानपान और सभी तौर-तरीके प्राय पाश्चात्य सस्कृति मे ढलते जा रहे हैं। परन्तु आश्चर्य यह है कि वहाँ की अच्छाइयो की तरफ हमारा ध्यान नही जाता है।

पाश्चात्य भारतीय सस्कृति मे मौलिक अन्तर यही है कि प्रथम भोगप्रधान होने से मनुष्य को विलासी व इन्द्रियो का दास बनाती है और दूसरी त्यागप्रधान होने के कारण उसको सयमशील और सदाचारी बनाती है। अत आज आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के विचारो मे पवित्रता का सचार करने के लिए उनके जीवन को आध्यात्मिकता की ओर मोडने के सफल प्रयत्न किये जाये। शिक्षाकेन्द्रो मे अन्य विषयो की शिक्षा के साथ आध्यात्मिक विषयो की शिक्षा का सुप्रबन्ध हो जिससे देश के होनहार बालको और तरुणो का मानसिक धरातल ऊँचा उठे और वे जीवन की शुभ दिशा की ओर झाँकने के आदी बने। जैसे जड की बीमारी पत्तो के इलाज से दूर नही हो सकती वैसे ही मनुष्य की आत्मिक अथवा वैचारिक कमजोरियो को कानून या ऊपरी व्यवस्थाओ के बल पर दूर नही किया जा सकता।

अत देश का चारित्रिक-स्तर ऊँचा उठाना है अथवा उसके जीवन मे सदाचार और सयम की प्रतिष्ठा करना है तो देश के जीवन मे आध्यात्मिक विचारधारा को प्रवाहित करने वाली साधन सामग्रियो को सुसगठित एव प्रभावशील बनाना चाहिए। आचरण की शुद्धता और विचारो की पवित्रता के बिना मात्र भौतिक उपलब्धियाँ मनुष्य के जीवन को शाति और आनन्द प्रदान नही कर सकती और न मनुष्य उनका उचित रूप मे उपभोग ही कर सकता है। उसके स्वय के श्रेष्ठ विचार ही उसके जीवन को ऊर्ध्वगामी और सुसस्कृत बना सकते है।

× × × ×

जैन वीर बंकरस

विद्याभूषण, सिद्धांताचार्य श्री पं० के० भुजबली शास्त्री,
सं० 'गुरुदेव' मूडबिद्री

पाँच-छह साल तक मान्यखेट के कारागृह मे कराहने वाले गग शिवमार पर द्रवीभूत हो, गोविन्द प्रभूतवर्ष ने ही उसे फिर तलवनपुर के सिंहासन पर बैठाया और अपने ही हाथो से उस

गंग शिवमार के मस्तक पर मुकुट रखा। पर बाद चक्रवर्ती के सहोदर बकरस के साथ मिलकर कृतघ्न बन, वही गग शिवमार ने फिर राष्ट्रकूटो पर दूसरी बार तलवार उठाई। पर उस लड़ाई में भी वह बुरी तरह पराजित हुआ। तब भी दयालु गोविन्द चक्रवर्ती के द्वारा उसका राज्य पुन. उसीको दिया गया था। मानो उस उपकार का प्रत्युपकार स्वरूप चक्रवर्ती जब उत्तर भारत के दिग्विजय मे व्यस्त रहे, तब नीतिमार्ग (शिवमार के अनुज का पोता) ने इधर दक्षिण मे एकाएक राष्ट्रकूटो पर हमला कर दिया।

इस खबर को पाते ही बनवासी के महामण्डलेश्वर जैन वीर बकरस छोड़े गये। कृष्ण सर्प की तरह प्रक्षुब्ध हो, तुरन्त ही समर के लिये तैयार हुए। गग की कृतघ्नता को स्मरण कर उनका हृदय क्रोध से एकदम पाषाण बन गया। या यो कहिए कि बकरसउस समय क्रोध की ज्वालामुखी ही बन गये। परिणामस्वरूप कोलतूर से प्रेषित बकरस की खबर राष्ट्रकूट पहुँचने के पूर्व ही, उनकी सबल सेना रास्ते मे छेड़ने वाले वीरो को कतल करती हुई कैंदाल किले पर साहसपूर्वक हमला किया। यह किला गग नरेशो के प्रधान सेना-केन्द्रो मे से एक था। कैंदाल का यह किला उस समय कर्णाटक मे बड़ा दुर्भेद्य समझा जाता था।

लौह कवच तुल्य वह दुर्ग, उसके भीतर के वीर सैनिक और अपार शस्त्रास्त्र आदि सभी कराल काल की तरह हमला करने वाले बकरस के सामने टिक नही सके। शत्रु-सेना के आने की खबर किले के अन्दर पहु चने के पूर्व ही राजसमूह ने प्रधान द्वार को चूर-चूर किया और पैदल सिपाहियो ने अन्यान्य साधनो द्वारा क़िले की दीवाल पर चढकर, रक्षक सिपाहियो को कतल कर डाला। रात को किले के अन्दर लोगो के सोने के उपरान्त हमला शुरू हुआ। वह हमला सूर्योदय के पहले ही समाप्त होकर किले के ऊपर राष्ट्रकूटो का गरुड़ध्वज फड़फड़ाने लगा।

दुर्भेद्य उस कैंदाल किले की विजय से बकरस की सेना का उत्साह दुगुना हुआ और वैरियो के हृदय मे भय ने स्थान पा लिया। बाद बकरस की अदम्य सेना भयकर दावाग्नि की तरह सामने की सभी चीजो को जलाती हुई सीधा गग राजधानी तलवनपुर की ओर बढी। भरी हुई वर्षाकालीन कावेरी नदी भी गग राजधानी कीरक्षा नही कर सकी। अचानक हमला करने वाली, विजय मे मत्त बकरस की सेना के सम्मुख तलवनपुर सविवश शरणागत हुआ। राष्ट्रकूट के ऊपर अन्यायपूर्वक तलवार उठाने वाले नीतिमार्ग का दर्प चूर-चूर हुआ। पर हा, अल्प सेना के कारण अरक्षित राजधानी को ले लेने मात्र से वीर बकरस को समर मे अखण्ड विजय नही मिल सकती थी।

कोलापुर के पास ठहरी हुई गगसेना को जीते बिना बकरस अपनी पूर्व विजय से तृप्त हो कर चुपचाप बैठ नही सकते थे। पहले श्रान्त सेना को विश्रान्ति प्रदान कर बाद कोवला-पुर की ओर प्रायण करने का विचार कर बकरस ने तलवनपुर की विजय का समाचार चक्रवर्ती को भेजा। परन्तु वह समाचार जब मान्यखेट मे पहुचा तब चक्रवर्ती विजय के आनन्द को अनुभव करने की परिस्थिति मे नही रहे। उधर नीतिमार्ग की सेना राजा रमडुवु मे जब राष्ट्रकूट सेना पर हमला कर रही थी, तब इधर मगि की कूटनीति से त्रिपुरि को देखने के व्याज से शकरगण के साथ गया हुआ राजकुमार, चेटि सेना के बल पर अपने को चक्रवर्ती घोषित कर, राष्ट्रकूट

राज्य पर ईशान्य दिशा से हमला करने वाला था। इस प्रकार त्रिपुरि में गये हुए राजकुमार कृष्ण एवं शंकरगण को अपनी कूटनीति से सफल होने में बिलकुल सन्देह नहीं रहा।

इसलिए भविष्य में चक्रवर्ती होने वाले कृष्ण को विशेष काबू में लाने के लक्ष्य से, शंकरगण ने अपने पिता कक्कल को समझाकर, कृष्ण का विवाह, अपनी बहन के साथ किया और सेना के साथ किरणपुर पहुँचकर, हमला शुरु करने के लिए मगि के समाचार की प्रतीक्षा करने लगा। राजा रमड्डु में राष्ट्रकूट सेना की पराजय के समाचार को सुनते ही शंकरगण ने कृष्ण को ही राष्ट्रकूट-चक्रवर्ती घोषित कर चेदि राज्य की सीमा को लांघकर राष्ट्रकूट राज्य पर हमला किया।

यह समाचार भयंकर आँधी की तरह बहकर आया और उसने चक्रवर्ती को किंकर्तव्य-विमूढ बना दिया। उस असीमित आघात से उनको बड़ा ही कष्ट पहुंचा। भूकम्प के कारण हिन्डोले की तरह घूमने वाली धरती पर वे खड़े-खड़े ही डोलने लगे। चक्रवर्ती अपने ही नेत्र एवं कानों पर विश्वास नहीं करते हुए महल में इधर से उधर उधर से इधर पागल की तरह चक्कर काटने लगे। उस समय खाना, पीना आदि सभी चीजों को छोड़कर वे विद्रोह को निर्मूल करने के लिए सर्वथा कटिबद्ध हुए। पुत्र के विरुद्ध लड़ाई में जाने के लिए उन्होंने स्वयं सेनाधिपत्य को स्वीकार किया एवं विद्रोही राजकुमार को पकड़कर लानेवाले को एक लाख सिक्के बहुमान में देने की घोषणा की। इस भयंकर घोषणा को सुनकर सारा नगर बिजली के आघात की तरह एकाएक स्तब्ध हुआ।

"इस अवसर पर शीघ्रातिशीघ्र आइए, चक्रवर्ती विद्रोही पुत्र को बिना देखे अन्न-जल स्वीकार न करने की प्रतिज्ञा कर चुके हैं। वे सेना को एकत्रित कर रहे हैं और उस सेना का नायक बनने के लिए स्वयं कटिबद्ध हैं। राजधानी में भी भेदनीति की आग सर्वत्र जोरों से सुलग रही है, इस समय चक्रवर्ती के पास आप जैसे आप्त और तपनिष्ठ व्यक्तियों का रहना परमावश्यक ही नहीं, अनिवार्य है। शीघ्र चले आइए।"

एक पत्रवाहक ने गुण भद्राचार्य के इस आशय वाले एक पत्र को बंकरस के हाथ में दिया। इस पत्र को पढकर थोडी देर बंकरस किंकर्तव्यमूढ हो बैठ गये। पर उत्तर क्षण में ही गंगवाडि के समर को आगे बढ़ाने का भार अपने एक विश्वस्त सेनानायक को सौंपकर शीघ्राति-शीघ्र चलने वाले एक घोड़े पर सवार हो, अंगरक्षकों के साथ बिजली की तरह बंकरस मान्यखेट की ओर चल पड़े। अकस्मात् आये हुए बंकरस को देखकर चक्रवर्ती एकदम चकित हुए। सिर्फ चार दिन की दारुण व्यथा से बिलकुल सूखे हुए निस्तेज चक्रवर्ती को देखकर भयंकर रक्तवृष्टि से भी भय न खाने वाले बंकरस का वीर हृदय भी अग्निस्पर्शित नवनीत की तरह एकदम पिघल गया और आँखों में आँसू भर आए। तब चक्रवर्ती ने कहा कि "कूटनीति की आंधी से व्याप्त इस राज-धानी को किसके हाथ में सौंपकर जाएँ; इस बात की बड़ी चिंता में थे। आपके आने से हम निर्भय हो गये। अब निश्चिन्त हो, समरांगण की ओर जा सकते हैं।"

इसका जवाब बंकरस ने यों दिया: "प्रभु के हृदय को मैं पहचानता हूँ। प्रभु! राज-कुमार के व्यवहार से आपके हृदय में जो चोट पहुँची है उसे मैं जान रहा हूँ। आप मेरी नम्र

प्रार्थना को स्वीकार करें। आपसे मेरा निवेदन है कि इस विद्रोह को निर्मूल करने का भार आप मुझे सौप दे। एक सप्ताह के अन्दर इस विद्रोह को निर्मूल कर मैं राजकुमार को आपके समक्ष लाकर खड़ा कर दूंगा। अगर यह काम मुझसे नही हो सका तो मै अवश्य अग्निप्रवेश करूंगा। प्रभु! यह मेरी अचल प्रतिज्ञा है इतना करके ही मै अपना ऋण चुकाना चाहता हू। मेरी दूसरी माग है कि इस विद्रोह के शान्त होने पर्यन्त आपने अन्न-जल का जो परित्याग किया है उस भीषण प्रतिज्ञा को आप तोड दें। यदि मेरे सामने आप आहार लेगे तो मेरे शरीर मे वज्र का बल आ जायगा। मेरी बात पर आपको विश्वास नही हो तो आप अपनी प्रतिज्ञा को जारी रखें। किंतु जब तक आप आहार नही लेगे तब तक मुझे भी आहार त्याग के लिए आज्ञा दे दें।" बकरस के प्रेम से आहार कर चक्रवर्ती उनके वचनानुसार चलने को तैयार हुए।

बकरस अपनी प्रतिज्ञानुसार विद्रोह को निर्मूल कर, मगि और शकरगण दोनो की पश्चात्तापपूर्वक मृत्यु के बाद राजकुमार कृष्ण के साथ मान्यखेट को लौट आये। प्रतिज्ञानुसार राजकुमार को लाकर चक्रवर्ती के सामने उपस्थित करने पर, चक्रवर्ती विद्रोही पुत्र को मरणदड तुल्य भयकर सजा देंगे ऐसी आशा बकरस को नही रही। कृष्ण की पत्नी चेदि राजकुमारी की प्रार्थना पर भी चक्रवर्ती जब ध्यान न देकर बार-बार राजकुमार को मृत्युदण्ड की सजा ही दुहराते गये, तब बकरस ने अपने आसन से उठकर द्रवित हो यो कहा, "प्रभु! राजकुमार को क्षमा प्रदान कीजिये। उनके बदले मैं अपने प्राणो को देने को तैयार हूँ।"

इस पर चक्रवर्ती ने कहा कि "बकरस भयकर अपराधी के लिए अपने प्राणो को देने के लिए कह रहे हैं। उनकी उदारता और दया अभिनदनीय है। पर एक के अपराध के लिए दूसरे को सजा देकर तृप्ति पाने का अधिकार हमे नही है।" तब आचार्य गुणभद्रजी ने यो कहा—"चक्रवर्ती के द्वारा न्यायपीठ से दिया हुआ निर्णय धर्मसम्मत है। उस निर्णय को हम भी समर्थन करते हैं। परन्तु प्रजायें राजकुमार को क्षमा प्रदान करने के लिए निवेदन करें तो, प्रजाओ की आज्ञा को मानना चक्रवर्ती का धर्म है। क्योकि रक्षा-शिक्षा दोनो मे प्रजाओ का अधिकार ही सर्वोपरि है। चक्रवर्ती प्रजाओ की आकाक्षाओ को कार्य रूप मे लाने का साधन मात्र है।" प्रजाओ ने भी गुणभद्रजी के बहुमूल्य अभिप्राय का समर्थन किया। बस, फिर क्या, चक्रवर्ती ने भी राजकुमार को क्षमा कर दिया।

जैन वाङ्मय के अमर रत्न आचार्य कुन्दकुन्द और उनका जीवन-दर्शन

डा० प्रद्युम्नकुमार एम.ए. पी.एच-डी.
ज्ञानपुर, वाराणसी

ईसा के एक शताब्दी पूर्व भारत के दक्षिणी अचल से एक ऐसी महान् विभूति का उदय हुआ जिसको यद्यपि जैन वाङ्मय के भीमाकाश का एक अत्यन्त जाज्वल्यमान नक्षत्र कहा

जाता है, परन्तु वस्तुत जो जैनो के लिए नही, जैनेतर विचारको के लिए भी प्रेरणा का स्रोत रहा है। उस विभूति को हम कुन्दकुन्द के नाम मे ही अधिक जानते है। कुन्दकुन्द की विचार-शैली, तत्वज्ञान की शोध-प्रणाली और अहिंसा धर्म की आचारपद्धति सब कुछ ही बडी विलक्षण, मौलिक और अनूठी सिद्ध हुई। जिस तत्त्वज्ञान और तर्क-प्रणाली की उद्घोषणा तीसरी शताब्दि में नागार्जुन ने और नवी शताब्दि मे आद्य शकराचार्य ने की, कुन्दकुन्द ने वही तत्वज्ञान और तर्क-प्रणाली ईसा की एक शताब्दि पूर्व भारत के विचार-प्रागण मे उद्घोपित की। परन्तु खेद है कि साम्प्रदायिक द्वेप की भीपण आधी ने भ्रान्ति का कूडा इतनी अधिक मात्रा मे लाकर इकट्ठा किया कि हम कुन्दकुन्द की दमदमानी वरदायिनी प्रतिभा का सही मूल्याकन न कर सके। प्रस्तुत निबन्ध मे कुन्दकुन्द की मौलिकता का एक विहगम दर्शन शायद हमारी आज की वैज्ञानिक एव निष्पक्ष दृष्टि को उक्त हीरा अपने वास्तविक महत्वालोक मे पहचाने जाने मे मदद दे सके।

तत्वज्ञान : सत्तावाद

सत्य की खोज मे कुन्दकुन्द परावलम्बी न होकर स्वावलम्बी बने। उन्होंने सत्यासत्य के निर्णय मे अपने आत्मज्ञान को ही मुख्य कसौटी के रूप मे स्वीकार किया। अत जो कुछ उन्होने प्रत्यक्ष देखा उसे हमारी विचार-प्रक्रिया की सर्व-स्वीकृत प्रणाली के द्वारा प्रस्तुत किया। स्पष्ट ही कहा —

> उवओग विसुद्धो जो विगदावरणतराय मोहरओ।
> भूदो सयमेवादा जादि पार णेय भूदाण ॥
>
> (प्रव० सार—१५)

अर्थात् . जिसका उपयोग विशुद्ध है ऐसी आत्मा ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अन्तराय और मोह रूप रज से रहित स्वमेव होती हुई ज्ञेयभूत पदार्थों के पार को प्राप्त होती है।

अत शुद्ध आत्माज्ञान के माध्यम से ज्ञेयभूत पदार्थ यथारूप जाने जाते है। 'जानना' क्रिया सम्पूर्ण तत्वज्ञान का प्रस्थान-बिन्दु है। शुद्धज्ञान चूकि परत्व की कामनाबुद्धि से रहित होता है, अत उसका जानना केवल 'विचारना' होता है। विचारना निर्णय की प्रक्रिया कहलाती है जिसमें बुद्धि-व्यापार का शुद्ध रूप निहित है। निर्णय की व्यक्त इकाई वाक्य (Proposition) है, जिसमे दो पदो की पारस्परिकता एक क्रिया से सयुक्त होती है। अत वाक्य की कोई भी क्रिया उभयमुखी होती है, जिसके दोनो छोरो पर दो वस्तु-सत्य मौजूद होते है। 'जानना' भी एक क्रिया है, जिससे प्रस्थान करने पर हम तुरन्त ज्ञाता और ज्ञेय दो सत्ताओ के मध्य आ जाते हैं। इस प्रकार ज्ञान-व्यापार के परिणमन स्वरूप हमें जो कुछ उपलब्ध होता हैं वह सब कुछ सत्ता की ही विभिन्न इकाइयाँ हैं। कुन्दकुन्द कहते है :—

> सत्ता सव्व पयत्था सविस्स रूवा अणत पज्जाया।
>
> (पचा० सार—८)

अर्थात् . सत्ता अनंत पर्याययुक्त, सविश्वरूप, सर्वपदार्थ स्थित है। अत जो कुछ भी हम जानते अथवा देखते हैं वह सत्तायुक्त अवश्य है। सत्ता के बिना 'जानना' अथवा 'देखना' हो

ही नही सकता। तार्किक रूप से चाहे सत्ता 'जानने' का परिणाम भले ही हो, परन्तु तत्व-रूप से 'जानना' सत्ता पर आश्रित है। तत्वदृष्टि मे सत्ता ही मूल है।

इस प्रकार जब सत्ता की तात्विकता स्थापित हुई, तो प्रश्न उठा, कि सत्ता को हम कितना जान सकते है? इस प्रश्न का उत्तर यही है कि जो हम जानते अथवा देखते है वह सब सत्ता ही है। अपने 'जानने', 'देखने' से परे हम सत्ता को प्रमाणित नही कर सकते, क्योंकि एकांत-रूप से यह कहना, कि हम सत्ता का कुछ अंश नही जानते, यह सिद्ध करता है कि हम उस अनजानी सत्ता के प्रति पूर्णत अज्ञान नही है। कुन्दकुन्द इस अर्द्ध-नास्तिकता को स्थान नही देते। वह यह मानते है कि सत्ता प्रमेय है। अत जानने और देखने की जितनी भी पर्याये सम्भव हो सकती है वे सब सत्ता की ही पर्यायें है। सत्ता की उत्पत्ति 'जानने' से नही होती। उसी तरह ज्ञान भी ज्ञेयसत्ता की उत्पत्ति नही है। तत्वत ज्ञाता और ज्ञेय स्व-आधीन है। उनकी सत्ताएँ निरपेक्ष है। 'जानना' और 'देखना' सत्ताओं का पारस्परिक क्रिया-व्यापार है। यह क्रिया-कारित्व ज्ञाता से ज्ञेय की ओर ही प्रवाहित होता है। अत 'जानना' और 'देखना' ज्ञाता की ही गुण-पर्यायें हैं, जो कि तत्वत ज्ञाता ही है, इतर और कुछ नही। ज्ञान और दर्शन ज्ञाता रूप ही है। ज्ञेय भी स्वरूप है। दोनो का व्यवहारत तादात्म्य है। तत्वत दोनो स्वाधीन हैं।

दो दृष्टियां

तत्वत ज्ञाता और ज्ञेय की दोनो इकाइयाँ स्वद्रव्याधीन हैं। उनका परिणमन अपनी निज की चीज है। परिणमन की प्रत्येक पर्याय में द्रव्य वही है। वल्कि यू कहिए, वह द्रव्य ही विभिन्न पर्याय-रूप है। अत प्रत्येक पर्याय वह द्रव्य ही है। ज्ञान और दर्शन पर्याये हैं। अस्तु वे भी द्रव्य के अतिरिक्त और कुछ नही ठहरती। द्रव्य और पर्याय तत्वत एक ही हैं। उनमे सत्ता उभयनिष्ठ है। द्रव्य और पर्याय सत्ता के ही दो पहलू है। यही दोनो पहलू हमारे लिए दो दृष्टियाँ प्रस्तुत करते हैं—एक द्रव्य-दृष्टि और दूसरी पर्याय-दृष्टि। पर्याय, जैसा कि अभी कहा, सत्ता का एक व्यावहारिक पहलू है, क्योकि उसका निर्धारण सह-सत्ताओ की पारस्परिकता से होता है। इस पारस्परिकता के चार तत्वो—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सापेक्षता मे पर्याय का स्वरूप निश्चित होता है। अत पर्यायदृष्टि व्यावहारिक और सापेक्ष है; जबकि द्रव्य दृष्टि पारमार्थिक और निरपेक्ष है, क्योकि वह पर्यायगत व्यावहारिकता के तात्विक आधार का सृजन करती है। इन दो दृष्टियो के द्वारा प्रत्येक सत्ता के लौकिक और पारलौकिक दोनो पहलुओ का प्रकाशन हो जाता है। कुन्दकुन्द इन्ही दोनो दृष्टियो के माध्यम से पग-पग पर वस्तु-सत्ता के व्यावहारिक और पारमार्थिक पहलुओ का विवेचन बड़ी सफलतापूर्वक करते जाते हैं।

कुन्दकुन्द की विवेचन प्रणाली का महात्म्य इस बात मे है कि वह इन विरोधी स्वरूप वाली दृष्टियो को ग्रहण करते हुए भी सत्ता की प्रकाशन शैली मे किसी प्रकार का विरोध नही आने देते। विरोधव्यवहार दृष्टि या नय के विभिन्न विकल्पो मे दृष्टिगत होता है। परन्तु कुन्दकुन्द उन व्यावहारिक विकल्पो का समापन सत्ता के पारमार्थिक पहलू मे कर देते है। अत भेद अभेद भी पर्याय-मात्र रह जाता है। सत्ता के इस स्वगत-विरोध के निराकरण के बाद कुन्दकुन्द उसके बाह्य विरोध को लेते है। एक सत्ता का दूसरी सत्ताओ के वैपरीत्य का निराकरण उनकी

उत्तरवर्ती आसन्न सत्ता मे होता है। इस प्रकार आसन्न सत्ताओ की शृंखला का सृजन करते-करते हम अतत महासत्ता की परिकल्पना पर पहुँचते हैं, जिनमें सम्पूर्ण अवान्तर सत्ताओं का परिहार हो जाता है। महासत्ता की यह कल्पना प्लेटो के Idea of Good और हीगेल के Absolute के काफी सदृश है। इस महासत्ता के भी दो पहलू बनते हैं। पारमार्थिक पहलू वेदान्त के अद्वैत ब्रह्म का पोषक है और उसका व्यावहारिक पहलू बौद्धदर्शन के क्षणवाद तथा बहुत्ववाद का पोषक। तत्वत महासत्ता एक स्वाधीन ठोस इकाई है।

उपादान और निमित्त

अब प्रश्न उठता है सत्ता के क्रियाकारित्व का। किसी भी पर्याय का उत्पाद अथवा विनाश क्यो और कैसे होता है? उदाहरणत एक घट पर्याय का उदय हुआ। इस उदय का हेतु क्या है? कुन्दकुन्द इस हेतु के निर्णय मे भी पूर्व वर्णित दो दृष्टियो का ही प्रसग उठाते है। तत्वत. अथवा परमार्थत. उक्त पर्याय का हेतु तत्संबंधी द्रव्य अथवा मृत्तिका ही है जो कि उक्त वस्तुसत्य के सम्पूर्णत्व का पोषक है। प्रत्येक सत्ता स्वत परिणमनशील है। अत परिणमन का मूलाधार वह सत्ता स्वय ही है। यह उसका अतरग हेतु है, जिसे उपादान कारण भी कह सकते है। इतना होते हुए भी यह न भूल जाना चाहिए कि उपादान एकान्तिक सत्य नही है। सत्ता की एक सारिणी है जो महासत्ता से अवर सत्ताओ के क्रम मे उतरती चली आती है। इस प्रकार प्रत्येक अवर सत्ता अपनी विषयभूत सत्ताओ का वर्ग बनती है। महासत्ता जिनका सर्वोच्च वर्ग है। निम्नतम सत्ता व्यक्तिगत इकाइयाँ है जो किसी का वर्ग नही होती और जो कि एक यथार्थवादी विचारक की मूल परिकल्पना का आधार है। प्रत्येक इकाई परिणमनशील है। प्रत्येक सत्तात्मक वर्ग के अंतर्गत आने वाली इकाइयाँ उस वर्ग की उपादान हैं। उसके सहसत्तात्मक वर्ग उसके निमित्त हैं। दोनो ही निमित्तात्मक सह-सत्ताएँ यद्यपि किसी उच्चतर सत्ता की इकाइया है और उसका उपादान कारण भी, परन्तु अपनी पारस्परिक उपेक्षाओ मे वे एक-दूसरे की निमित्त कारण है। जिस समय इन सत्ताओ को इनकी आसन्नतम उच्च सत्ता की अपेक्षा देखा जाता है तो इनमें केवल अन्यत्व भाव ही प्रकट होता है। परन्तु जब इन्हें अपनी सह-सत्ताओं की अपेक्षा देखा जाता है तो इनमे पृथकत्व भाव आ जाता है। अत उपादान कारण में केवल अन्यत्व भाव है, जबकि निमित्त मे पृथकत्व भाव। दोनो ही कारण अपनी-अपनी अपेक्षाओ से यथार्थ और भूतार्थ है। सम्पूर्णत्व अथवा द्रव्यत्व की अपेक्षा उपादान भूतार्थ है और निमित्त अभूतार्थ; अशत्व अथवा पर्यायत्व की अपेक्षा निमित्त भूतार्थ है और उपादान अभूतार्थ। इसीलिए कुन्दकुन्द जब समयसार ग्रथ मे व्यवहार नय को अभूतार्थ और निश्चय को भूतार्थ कहते हैं (समयसार-११), तो उसमे द्रव्यदृष्टि पहले से निहित है। समयसार के प्रारम्भ में ही अपनी दृष्टि को स्पष्ट करते हुए कुन्दकुन्द लिखते है :—

त एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण।
जदि दाएज्ज पमाणं चुक्किज्ज छलं ण घेतव्वं ॥ समय०—५ ॥

अर्थात् : उस एकत्व विभक्त आत्मा को मैं आत्मा के निज वैभव से दिखाता हूँ; यदि मैं दिखाऊँ तो प्रमाण स्वीकार करना और यदि कही चूक जाऊँ तो छल ग्रहण नहीं करना।

इस गाथा से स्पष्ट है कि समयसार का सम्पूर्ण कथन आत्मा के निज वैभव अथवा द्रव्य-दृष्टि से

किया गया है। अत इस कथन को भी कथचित सत्य की कोटि मे रखना ही श्रेष्ठ है। उपादान और निमित्त दोनो ही क्रमश कथचित भूतार्थ और कथचित अभूतार्थ है। उनके ऐकान्तिक स्वरूप को ग्रहण करना कुन्दकुन्द के दर्शन के साथ अन्याय करना है।

आचार

कुन्दकुन्द ने मानवीय आचार-दर्शन का आधार भी बडा व्यापक और सुस्पष्ट ढूँढा। व्यक्ति का जो धर्म है वही करणीय है। और जो वस्तु का स्वभाव है वही धर्म है (प्रव० सार-७) अत वस्तु के लिए करणीय वही है जो उसका स्वभाव हो। जैसे जल का स्वभाव शीतलता और आत्मा का स्वभाव चेतना है। उनका अपने स्वभाव मे दक्षित हो जाना ही धर्म है।

स्वभाव किसी भी वस्तु के द्रव्यत्व की अभिव्यक्ति है। अभिव्यक्ति द्रव्य का गुण है और तत्वत द्रव्य और गुण एक ही इकाई के पहलू हे (प्रव० सार—११४)। अत अपने स्वभाव मे दीक्षित आत्मा स्वय धर्मरूप है (प्रव० सार—८)। धर्म कोई बाह्य वस्तु नही, जिसे ग्रहण किया जाए। निजत्व की धारणा ही धर्म है। आचार धर्म का वाहन है। आचार आत्मा का निजत्वमय अथवा स्वसमय होने का एक प्रयत्न है। इस स्वसमय होने के लिए परसमयत्व का त्याग अनिवार्य है। इसीलिए मन, वचन और काय तीनो ही स्तरो पर अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, शील, और ब्रह्मचर्य व्रतो के द्वारा आत्मा स्वसमय मे प्रवृत्त होती है। सम्पूर्ण विजातीय प्रभावो से मुक्ति आचार का लक्ष्य है। ज्ञान, दर्शन, वीर्य और सुख की वृद्धि उपरोक्त मुक्ति की कसौटी है। इस गुण चतुष्टय की अनतरूपा अभिव्यक्ति शुद्ध चारित्र्य का चरमबिन्दु है। आचार इसी शुद्ध चारित्रिक प्रक्रिया की लक्षण सहिता है।

आचार के मामले मे कुन्दकुन्द का वैशिष्ट्य इस बात मे अधिक है कि वह स्वसमय होने के लिए सत्ता के उपादान कारण पर अधिक बल देते है, क्योकि उपादान स्व की चीज है और स्व पर ही स्व का अधिक काबू है। अत समताभाव धारण कर उपादान भूमि को उर्वरा बनाए रखना ही वह है जिसे हम कर सकते है। बीज उसमे पहले से ही पडा है। अब हमे धैर्य से निमित्त रूपी बाह्य जल-वायु की अपेक्षा करनी चाहिए और उत्तम फसल के लिए आशावान और विश्वासी भी रहना चाहिए। जो केवल निमित्त के पीछे दौडते है, उन्हे दोनो ही ओर से घाटा रहता है। उपादान की उपेक्षा तो उन्होने स्पष्ट ही की, और निमित्त परद्रव्यात्मक होने के कारण उनका निज हो न सका। अत ऐसे व्यक्ति अज्ञानी है और मूढ। आचार के दृष्टिकोण से उपादान ही श्रेष्ठ और भूतार्थ है और निमित्त हेय और अभूतार्थ। निश्चय नय की धारणा ही शुद्ध चरित्र की ओर ले जाती है और अतत मोक्ष-लाभ कराती हैं।

कुन्दकुन्द अपनी इसी विलक्षण और मौलिक देशना से भारतीय वाड्मय मे अपनी अमिट छाप छोड गए। श्रद्धालुओ ने उनकी इतनी इज्जत की, कि उनका नाम भगवान वीर और गणधर गौतम के साथ स्मरण किया जाने लगा, जो कि निम्नलिखित मगल गाथा से स्पष्ट है —

मगल भगवान वीरो मगल गौतमो गणी।
मगल कुन्दकुन्दाद्यो जैन धर्मोस्तु मगल॥

अस्तु, कुन्दकुन्द का शब्द प्रमाण हमारे लिए सदैव ज्ञानालोक विकीर्ण करता रहेगा।

अपरिग्रह का महत्व

सुल्तानसिंह जैन, एम.ए.
शामली (उ० प्र०)

आज विश्व किन परिस्थितियो से होकर गुजर रहा है, यह बात किसी से छिपी नही है। कुछेक इने-गिने व्यक्तियो को छोडकर जन-साधारण कितना ग्रस्त हो रहा है, यह लिखने की बात नही है।

भारत का विभाजन होने के पश्चात् मनुष्यता का किस भाँति संहार हुआ, ललनाओ की लज्जा के साथ कैसा खिलवाड हुआ, भ्रष्टाचार, घूसघोरी, चापलूसी का कैसा अखड साम्राज्य छाया। आज की खाद्य-पदार्थो की मिलावट तथा उनकी असीम महगाई ने किस प्रकार जनता की रीढ की हड्डी को चकनाचूर किया, किस प्रकार लूट-खसोटकर ताडव-नृत्य हुआ और किस भाति मानव-मानव को गाजर-मूली की तरह काट-काट कर हत्या के घाट उतार रहा है, कदाचित विश्व के इतिहास में ऐसा कही दीख पडे ? इससे भी बढकर आज विश्व मे एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को अणु-उद्जन, वीर आयुधो, स्पुतनिको की तीव्रता, हवाई छत्रियो की भीषणता, तारपीडो की मार से हडप जाने की चिन्ता मे है। सह-अस्तित्व के नारे की आड मे शस्त्रास्त्रो के निर्माण की होड मे एक-दूसरे को पछाडने के प्रयास मे संलग्न है। कहना अत्युक्ति न होगा कि विश्व मे तृतीय विश्वयुद्ध के घनघोर बादल घटाटोप छाये हुए है।

अब प्रश्न उत्पन्न होता है कि उपरोक्त गुत्थियो के उलझने का क्या कारण है ? प्रश्न तो जटिल है; परन्तु इस सबध मे अनेकानेक उत्तर-प्रत्युत्तर हो सकते है। यहाँ पर इस सबध मे केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि इस युग मे कुछेक लोगो की स्वार्थमयी मनोवृत्ति सबका नाश कर रही है। इतना ही नही आज वस्तुओ के सग्रह करने की प्रबल होड लगी हुई है। फलतः जनता दाने-दाने के लिए मुहताज हो रही है। प्रात से सायकाल तक की कमाई लिए इधर-से-उधर डोलती फिरती है, पर कही भी कोई पैसे को नही सूँघता है। एक ओर यह दशा है तो दूसरी ओर कोठे और गोदाम खाद्यान्नो से खचाखच भरे पडे है, जिनमे सुरीली (कियरफ) साम्राज्य स्थापित हो चुका है। भूखे मरे तो मरे कौन किसको पूछता है ? इस परिस्थिति का यह साराँश हुआ कि आज की दुनिया आर्थिक विषमता के कारण कराह रही है।

कही-कही तो यह आर्थिक विषमता सीमा को लाघ गई है, जो सहन-शक्ति से बाहर हो गई है। फलतः अधिकाश लोगो की नित्यप्रति की आवश्यकताये पूर्ण नही हो रही है। इसमे भी आश्चर्य यह है कि जो चोटी-एडी का पसीना एक करके कमाते है, अन्न-वस्त्र उत्पन्न करते है वही लोग भूखे-नगे रहते हैं, परन्तु वे लोग, जो ग्रीष्म ऋतु मे खश की टट्टी लगाकर कोचोज पर लेट लगाते है, बिजली के पखो की हवा खाते है और आकाशवाणी से विश्व के गायन सुनते हैं तथा तरह-तरह के गुलछर्रे उड़ाते एव मौज करते है। अतएव यह कहना अत्युक्तिपूर्ण न होगा कि आज "स्वार्थ के मद मे चूर अपने भाइयो की लाशो पर बैठकर खून की होली खेली जा रही है।"

त्यागमूर्ति क्षुल्लक १०५ श्री गणेशप्रसादजी वर्णी
जिन्होंने ज्ञान प्रचार के लिए जीवनभर अथक प्रयत्न किया।

चारित्रचक्रवर्ती आचार्य शातिसागरजी महाराज के पादमूल में

परमतपस्वी पूज्य नमिसागरजी महाराज

वर्तमानकाल मे धन को विशेष महत्व प्राप्त हो गया है। कुछ इने-गिने लोगो के अधिकार मे अधिकाश सम्पत्ति पहुँचने से उसके उपभोग का अधिकार अन्य लोगो को नही रहा है। 'यही वह घुन है जिसने आत्मा, धर्म एव सहकारिता के सगठन को ढीला ही नही कर दिया, अपितु इन सिद्धान्तो को पैरो तले रौद कर मिट्टी में मिला दिया है। इसीसे मानवता अधूरी सौजन्यता वैधव्य को प्राप्त हो गई हैं।'

प्रस्तुत गुत्थी को सुलझाने का एकमात्र सरल उपाय यही है कि हमे कम से कम परिग्रह रखने के सिद्धान्त को अपनाना होगा। विश्ववन्द्य महात्मा गाधी ने एक स्थान पर परिग्रह को घटाते रहने के सम्बन्ध मे बतलाया है कि "सच्चे सुधार का, सच्ची सभ्यता का लक्षण परिग्रह बढ़ाना नही है, बल्कि उसका विचार और इच्छापूर्वक घटाना है। ज्यो-ज्यो परिग्रह घटाइए, त्यो-त्यो सच्चा सुख और सच्चा सन्तोष बढता है, सेवा-शक्ति बढती है। × × × अनावश्यक परिग्रह से पड़ौसी को चोरी करने के लालच मे फसाते है।" उन्होने वस्तुओ के परिग्रह के लिए ही नही विचार के परिग्रह करने के लिए भी एक अन्य स्थान पर त्याज्य ठहराया है। देखिये—"वस्तुओ की भाँति विचार का भी अपरिग्रह होना चाहिए। जो मनुष्य अपने दिमाग मे निरर्थक ज्ञान भर लेता है, वह परिग्रही है। जो विचार हमे ईश्वर मे विमुख रखते हो अथवा ईश्वर के प्रति न ले जाते हो, वे सभी परिग्रह मे आ जाते है और इसीलिए त्याज्य है।"

वास्तव मे गाँधीजी ने परिग्रह के सम्बन्ध मे जो कुछ भी कहा, वह सत्य एव अहिंसा के विचार से एक सौ एक नये पैसे सत्य है।

एक स्थान पर एक विद्वान लेखक ने अशाति का मूल कारण बताते हुए लिखा है कि, "बहुत क्या ससार मे जितने विद्रोह, शोषण, अन्याय, अत्याचार, सघर्ष और दुख होते हैं, उनका मूल कारण परिग्रह है।"

अत आज के विश्व को वह मार्ग अपनाने की आवश्यकता है, जिसके द्वारा परिग्रह की लोलुपता का स्वतः ही अत हो जाए। इसका एकमात्र मार्ग "अपरिग्रह" ही हो सकता है। अपरिग्रह का उद्देश्य हमें अपनी आवश्यकताओ को कम करने के लिए प्रेरित करना है।

प्राचीनकाल मे अपरिग्रह के कारण ही लोगो का जीवन सुखी, समृद्धिशाली एव शान्तिमय था, किन्तु आधुनिक काल मे अपरिग्रह के अभाव से वह अनेक विषमताओ का शिकार बना हुआ हैं। अत हमे अपरिग्रह का मार्ग अपनाना ही श्रेयस्कर हो सकता है।

महात्मा टालस्टाय के शब्दो मे, "जब लोगो को पहिनने को कपड़ा न मिलता हो, तब मैं कपड़ो से सन्दूक भरूँ या जब लोगो को खाने को भी न मिलता हो तब मैं अजीर्ण की दवा करूँ, यह मानवता का सबसे पहला कलक है।" टालस्टाय का प्रस्तुत कथन कितना युक्तियुक्त एव समाज की दृष्टि से कितना सुसंगत है, यह सहज ही ज्ञात हो जाता है।

एक समय का कथन है कि किसी धनाढ्य ने हजरत ईसा से प्रश्न किया कि ससार मे मनुष्य निर्दोष कैसे ठहर सकता है? इसके उत्तर मे उन्होने कहा कि, "यदि प्राणी निर्दोष रहना चाहता है, तो वह अपनी समस्त सम्पत्ति गरीबो को बाट दे। इससे उसे सुख और शाति अवश्य

ही प्राप्त होगी।" स्वर्गीय गाधीजी का भी ऐसा ही मत था। उन्होने कहा था—"यदि स्वराज्य के अन्दर परिग्रही मनुष्यो का प्रवेश होगा, तो अहिसा और सत्य एक क्षण भी नही ठहर सकेंगे।" कारण कि मनुष्यो को परिग्रह की रक्षा के हेतु निरन्तर हिसा के लिए तत्पर रहना पडेगा और परिग्रह की रक्षा के लिए मिथ्या नियमो की रचना करनी पडेगी। इसका अर्थ यह होगा कि हिंसा और असत्य के भयकर गर्त में लुढकना पडेगा। एक और स्थान पर उन्होने अकित किया है— "आदर्श आत्यन्तिक अपरिग्रह तो उसी का होगा, जो मन और कर्म से दिगम्बर हो।" इससे भी बढकर गाधीजी एक स्थान पर कह बैठते है—"केवल सत्य को आत्मा की दृष्टि से विचारें तो शरीर भी परिग्रह है। भोगेच्छा के कारण हमने शरीर का आवरण खडा किया है, और उसे टिकाये रखते है।"

इन सब महापुरुषो के कहने का अर्थ यही है कि परिग्रह से मनुष्य को सुख की कभी उपलब्धि नही हो सकती। इसी सबध मे भगवान महावीर स्वामी ने आज से लगभग ढाई हजार वर्ष पूर्व उपदेश दिया था कि, "अपरिग्रहवाद से जनता मे समाव का सृजन हो सकता है।" श्रीमद्भागवत मे भी अपरिग्रह को अत्यन्त महत्व देते हुए कहा है—"जो-जो मनुष्य को प्रिय लगने वाला परिग्रह है, वह सब दुख का ही कारण है। और जो अकिंचन है, वही सर्वदा सुख का भागी है।"

अतएव इन सब महापुरुषो ने अपरिग्रह का ही उपदेश दिया है। उनका यह आदेश राष्ट्रीय, सामाजिक एव वैयक्तिक हितो के दृष्टिकोण से सुन्दर और वाछनीय है।

आधुनिक काल मे अपरिग्रह की अत्यधिक आवश्यकता है। मनुष्य अपने जीवन के चरम उद्देश्य—सुख-शाति' को तब ही प्राप्त कर सकता है, जब कि उसकी आवश्यकताये न्यून हो।

× × × ×

षट् द्रव्यों के परस्पर सम्बन्ध से लोक-व्यवस्था

रूपचन्द गार्गीय जैन
पानीपत

जिसका अस्तित्व हो वह द्रव्य है। लोक मे अस्तित्व गुणवाले केवल छह ही द्रव्य है। ये अपने गुणो व पर्यायो को लिए हुए परिणमन करते है। ये है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल (Soul, matter, medium of motion or medium of keeping order, medium of rest or medium of creating disorder, space, medium of time)। यह लोक जिसमे हम रहते है तथा जिसका हम एक अ ग है इन्ही छह द्रव्यो से बना है। छह द्रव्यो का ताना-बाना रूप एक महासत्ता का धारी विश्व है। यह एक सचाई है कोई स्वप्न नही है। ये छहो द्रव्य एक-दूसरे के परिणमन मे सहायक है, निमित्त है। ये स्वय भी परिणमनशील है—कूटस्थ नही हैं, ये अनन्त शक्ति के धारी हैं तथा अनन्त अपेक्षाओ से परिणमन करते हैं। ये स्वय गुणो द्वारा परिणमन करते है, ये स्वय अपने कर्ता है तथा कर्म भी है। ये अपने-अपने स्वभाव के कारण नियमित है

तथा नियमो के रचयिता है। इन्ही बहुत से दृष्टिकोणो द्वारा परिणमन करते हुए देखा गया, जाना गया व अनुसन्धान किया गया तो भी इनका कार्य समाप्त नही हुआ है और न ही कभी समाप्त होगा। ये बिना किसी रुकावट के सदैव क्रियाशील रहेगे। गरज यह लोक एक चलती-फिरती सस्था है और सदैव इसी भाँति चलता रहेगा। इसके सम्बन्ध मे जितनी भी जानकारी गणित और अनुसन्धान के द्वारा अब तक वैज्ञानिको व ऋषि-महर्षियो ने की है—यह उनसे बहुत बडी है। यह अतीत और वर्तमान से बहुत अधिक है। यह अनादि से चली आयी है और अनन्त काल तक चलती रहेगी।

जीवद्रव्य—जिसमे चेतना गुण हो अर्थात् जिसमे मैं हूँ ऐसा अनुभव हो तथा स्व पर पदार्थों को जानने की शक्ति हो, जो अत्यन्त सूक्ष्म व अरूपी है तथा इन्द्रियगम्य नही है जो वैभाविक दशा अर्थात् ससारी अवस्था मे पाँचो इन्द्रियो, मन, वचन व काय तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास प्राणो से जीता है। जो सुख-दुख का अनुभव करता हो।

पुद्गल द्रव्य—जिसमे रूप रस गन्ध व स्पर्श पाया जाता है तथा जो परमाणु व स्कन्ध अवस्था मे पाया जाता है, जो ससारी जीवो के सुख दुख, जीवन-मरण मे निमित्त कारण है तथा उनके शरीर, वचन, मन व श्वासोश्वास का रचयिता है।

धर्म द्रव्य—जो जीव तथा पुद्गल को गमन करने मे अर्थात् व्यवस्थित रूप से परिणमन करने मे सहायक हो। इसे ऋत भी कहते है।

अधर्म द्रव्य—जो जीव तथा पुद्गल की स्थिति मे अर्थात इनके व्यवस्थित परिणमन को रोकने मे सहायक हो। इसे अनृत भी कहते है।

आकाश द्रव्य—जो अन्य द्रव्यो को ठहरने के लिए स्थान देता है।

काल द्रव्य—जो द्रव्यो के परिणमन व क्रिया मे निमित्त कारण है, जो स्वय बिना किसी निमित्त के वर्तता है। जिसकी पर्याय स्वरूप समय, घडी, घण्टा, दिन, मास, वर्ष बनते है—इनके कारण स्वरूप जीव पुद्गल की पर्यायो की स्थिति मे कमी-बेशी का ज्ञान होता है।

यद्यपि धर्म, अधर्म, आकाश व काल ये चारो द्रव्य प्रत्यक्ष मे दिखाई नही देते परन्तु लोक मे अपने-अपने कार्यो द्वारा सिद्ध होते हैं।

ये सभी द्रव्य नियमित स्वभाव रूप से नियत है तथा विभाव रूप क्षणवर्ती परिणमन के कारण अनियत है।

ये ध्रुव सत रूप रहने के कारण नित्य है तथा समय-समय पर्यायो के उत्पाद व व्यय के कारण अनित्य है।

अभेद दृष्टि से सम्पूर्ण लोकालोक रूप महासत्ता के धारी होने से एक है तथा अनन्तानत भेद कल्पना से अनेक हैं।

कभी नाश न होने के कारण अस्तित्व गुण वाले है।

अर्थ—क्रिया धारी होने से वस्तुत्व गुण वाले हैं।

समय-समय उत्पाद व्यय ध्रौव्य के कारण पर्यायें बदलते रहने से द्रव्यत्व गुणधारी है।
किसी न किसी के ज्ञान का विषय होने से प्रमेयत्व गुणधारी है।
सभी द्रव्य व गुण अपनी-अपनी सत्ता रूप बने रहने से अगुरुलघुगुणधारी है।
कुछ न कुछ आकर होने के प्रदेशत्व गुण धारी है।

इस प्रकार अनेक गुणो से युक्त लोक मे इन छहो द्रव्यो का पसारा है जिनकी सत्ता बराबर बनी रहती है। इनकी पर्यायो का अलटना-पलटना सदा से है और सदा बना रहेगा। लोक मे जितने द्रव्य है वे कभी नाश को प्राप्त होने वाले नही और न ही कोई द्रव्य नवीन पैदा होता है अर्थात न तो सत का नाश होता है और न असत का उत्पाद होता है, केवल पर्यायें ही नवीन पैदा होती है और नाश को प्राप्त होती है।

द्रव्यो की पर्याये सूक्ष्म व स्थूल, क्षणिक व चिर स्थायी, सदृश व विसदृश होती है। शुद्ध द्रव्यो की पर्याये तो सदृश ही होती है और अशुद्ध वैभाविक पर्याये सदृश भी और विसदृश भी होती है। पदार्थो की वैभाविक गुण पर्यायो (जिन्हे अर्थ पर्याय भी कहते है) के गुणाशो मे तो कमी बेशी प्रतिक्षण होती ही है जो प्रत्यक्ष दिखाई देती है किन्तु स्वाभाविक शुद्ध पर्यायो के गुणाशो मे भी कमी-बेशी होती है जिसे गुणो मे षट्गुणी हानि-वृद्धि कहते है। स्थूल रूप मे यह दृष्टिगत नही होती, सूक्ष्म रूप मे ही होती है। द्रव्यो के आकार जिन्हे व्यजन पर्याय कहते है वैभाविक दशा में बदलते रहते है किन्तु स्वाभाविक पर्याय मे सदैव एकसे बने रहते है।

प्रत्येक छोटा व बडा, सूक्ष्म व स्थूल, शुद्ध व अशुद्ध द्रव्य अपनी पर्याय के लिए तो उपादान रूप है तथा दूसरे कतिपय द्रव्यो की पर्यायो के लिए निमित्त होता है तथा उसके परिणमन मे अन्य द्रव्य निमित्त होते है। लौकिक इस व्यवस्था मे ही एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता कहा जाता है। यद्यपि प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने मे पूर्ण स्वतत्र है, अविनाशी है, परिणमनशील है किन्तु जीव व पुद्गल की स्वाभाविक व वैभाविक दोनो अवस्थाओ मे एक द्रव्य दूसरे से प्रभावित रहता है। स्वाभाविक दशा के अर्थ पर्याय के परिणमन मे तो काल द्रव्य निमित्त है, व्यजन पर्याय मे आकाश व काल दोनो द्रव्य निमित्त है तथा वैभाविक परिणमन मे काल व आकाश सहित द्रव्य व भाव रूप से अन्य पदार्थ भी निमित्त होते हैं। व्यजन पर्याय मे धर्म व अधर्म द्रव्य मे से कोई एक निमित्त कारण बना रहता है। इसे द्रव्यो का निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध भी कहते है, कर्ता-कर्म व्यवस्था भी कहते है। द्रव्यो की पर्यायो का परस्पर मे षटकारक रूप से लोक-व्यवहार होता है। शुद्ध द्रव्य की तो एक ही पर्याय मे छहो कारक लागू हो जाते है किन्तु द्रव्यो की वैभाविक अशुद्ध अनेक पर्यायो मे षटकारक व्यवहृत होते है। लौकिक वातावरण मे यह इन दृष्टियो से ठीक ही कहा जाता है कि जीव तथा पुद्गल द्रव्य परस्पर मे एक-दूसरे को बहुत कुछ देते लेते रहते है—जीव द्रव्य अपने ज्ञान गुण तथा शुद्ध व अशुद्ध स्वाभाविक व वैभाविक भावो द्वारा और पुद्गल अपने रूप-रस, गन्ध व स्पर्श गुणो द्वारा तथा कार्मण वर्गणाओ मे कर्म रूप शक्ति द्वारा, तथा अन्य अनेक गुणो द्वारा लोक व्यवहार मे जब जीव अपने बुद्धि व पुरुषार्थ द्वारा अन्य द्रव्यो के परिणमन मे निमित्त होता है तो वह उनकी पर्यायो का कर्ता कहा जाता है।

स्वभाव से ये छहो द्रव्य अत्यन्त सूक्ष्म, दृष्टि मे न आने योग्य है। (पुद्गल जो दिखाई देता है वह भी स्वाभाविक दशा मे अणु रूप होकर दिखाई नही देता केवल स्थूल स्कन्ध के रूप

में ही दिखता है) धर्म, अधर्म, आकाश व काल चार द्रव्य तो सदैव अपने स्वभाव में परिणमन करते है तथा अन्य द्रव्यो के परिणमन मे निमित्त कारण है। शेष जीव और पुद्गल दोनो द्रव्य स्वभाव रूप भी परिणमन करते है तथा एक-दूसरे से प्रभावित होकर विभाव रूप भी परिणमन करते हैं। इन दोनो द्रव्यो मे एक विभाविकी नाम का गुण पाया जाता है जिसके कारण इनका वैभाविक रूप परिणमन करना भी एक वैभाविकी स्वभाव अर्थात गुण है। इस गुण का कार्य है द्रव्य के अन्य विशेष गुणो को विकार रूप परिणमन कराना अर्थात् विकार मे निमित्त कारण रहना।

यह गुण स्वाभाविक दशा मे रहता हुआ तो शुद्ध परिणमन करता है। तथा अन्य गुणो मे भी किसी प्रकार का निमित्त नही होता किन्तु इसी गुण के वैभाविक अर्थात् अन्य द्रव्य के निमित्त कारण से अशुद्ध परिणमन होने पर जीव व पुद्गल के अन्य गुण भी वैभाविक रूप परिणमन हो जाते है जिसके कारण लोक का यह रूप नजर आता है। ससारी सभी जीव अनादि काल से वैभाविक रूप परिणमन कर रहे है, पुद्गल की भी यही दशा है। जीव एक बार स्वाभाविक शुद्ध अवस्था को प्राप्त होकर फिर कभी भी वैभाविक परिणमन को प्राप्त नही होते तथा पुद्गल स्वाभाविक दशा को प्राप्त होकर भी निमित्त कारण मिलने पर पुन वैभाविक दशा को प्राप्त हो सकता है। जीव को वैभाविक दशा अर्थात् ससार मे रोकने वाले राग-द्वेष-मोह है जो पूर्व के सस्कारो से बीज वृक्ष की भाँति बने रहते हे, एक बार उनका बीज नष्ट होने पर पुनः पैदा नही हो सकते।

इस प्रकार लोक मे द्रव्यो के परिणमन की यह प्रगति है जिसके कारण यह विश्व पूर्ण रूप मे शुद्ध नही किन्तु शुद्धता के लिए सदैव परिणमनशील है। इसके नियमो मे बहुत से विकार पाए जाते है जिन्हें दूर करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है। इसमे उन्नति के प्रयत्न भी आकस्मिक घटनाओ के कारण अवनति को प्राप्त होते रहते हैं। इन्ही कारणो से यह विश्व न तो पूर्णतया कभी शुद्ध जीव रूप ही हो पाता और न ही शुद्ध पुद्गल रूप हो पाता है किन्तु दोनो के एक मिश्रित तथा विकृत रूप मे पाया जाता है जिसमे दोनो द्रव्य एकदूसरे के विभाव रूप परिणमन मे कारण बने रहते हैं। यह सब करिश्मा वैभाविकी शक्ति का ही है अन्यथा इस लोक मे जीव तथा पुद्गल दोनो द्रव्य सूक्ष्म-सूक्ष्म अवस्था मे रहते हुए सब शून्य सरीखा दिखाई देता। उस अवस्था को एक ब्रह्म मात्र भी कह सकते है। अर्थात् जीव और जड पुद्गल का पूर्णतया स्वाभाविक परिणमन तथा वैभाविकी शक्ति को माया कह सकते है जिसके कारण इस लोक मे जीव और पुद्गल की ये सब पर्यायें दृष्टिगत हो रही हैं।

इस प्रकार यह लोक की व्यवस्था चल रही है और सदैव चलती रहेगी। जीवो का ससार परिभ्रमण—जम्मन मरण चलता रहेगा। कुछ जीव काल लब्धि प्राप्त होने पर विशेष निज पुरुषार्थ द्वारा इस परिभ्रमण से मुक्त होते रहेंगे। ससार मे जीव कर्मचेतना—कर्तृत्व बुद्धि तथा कर्मफल चेतना—कर्मफल भोक्त्रित्व बुद्धि के कारण जन्म-मरण व सासारिक सुख-दुख को भोगते हुए भ्रमण कर रहे है। निज स्वभाव स्वरूप ज्ञान चेतना प्राप्त होने पर ही इस भ्रमण से छुटकारा होता है।

ससारी जीवो की इस परिणमन व्यवस्था में जीवों के वैभाविक भाव तो उपादान कारण है तथा जीव के साथ बँधे कर्म तथा जीव के सयोग मे आयी अन्य जीव पुद्‌गल सामग्री निमित्त कारण है। जीव का ये वैभाविक भाव जीव का पुरुपार्थ है।

यदि जीव के पुरुपार्थ की दिशा बदल जाये अर्थात् पुरुपार्थ स्वभाव भाव रूप हो जाए तो अन्य निमित्त कारण इसका कुछ भी बिगाड़ नही कर सकते। यह पुरुपार्थ की शक्ति जीव में ही है जो निमित्तो के प्रभाव से अछूता रह सकता है। पुद्‌गल मे यह शक्ति नही है, इसमे योग्य निमित्त कारण मिलने पर वैभाविक परिणमन अवश्यमेव होता है। इसलिए अनन्तानन्त जीवो मे से काल लब्धि को प्राप्त होने पर कोई-कोई जीव परिमित सख्या मे अपने पुरुपार्थ द्वारा शक्ति अनुसार राग-द्वेप-मोह परिणामो पर काबू पाते हुए उन्हे पूर्णतया नष्ट करके संसार-बन्धन से मुक्त हो जाते है। ऐसी अवस्था इस लोक मे बहुत सी प्राकृतिक व्यवस्थाओ मे से एक है जो किसी के आधीन नही है, जीवो के अपने परिणामो तथा काललब्धि के आधीन है तथा परिणामो की शुद्धि मे सत्सगति व देशनालब्धि भी सहायक है। अत- इस ओर पुरुपार्थ करना आवश्यक है। लोक मे जीवो की अक्षय अनन्त राशि है जो समय समय पर जीवो के मुक्त होते हुए भी कभी समाप्त होने वाली नही है।

जीव को शुद्ध स्वाभाविक अवस्था प्राप्त करने की आवश्यकता क्यो है? इसका कारण ससारी अवस्था मे जीव का सुख-दुःख अनुभव करना है। दुःख इसे इष्ट नहीं जिसे यह दूर करने मे सदा प्रयत्नशील रहता है, सुख यद्यपि इसे इष्ट है किन्तु वह स्थायी न होने तथा दुःख मे परिणत हो जाने से कल्याणकारी नही, अत यह भी लाभप्रद न होने के कारण वर्जनीय है। वास्तव मे तो यह ससारी सुख इच्छाओ की पूर्ति मात्र ही है, इच्छाए आकुलता पैदा करती है, और आकुलता दुख रूप है। अतएव जीव की वैभाविक ससारी दशा स्थायी स्वाभाविक सुख रूप न होने के कारण त्यागने योग्य है। स्वभाव की प्राप्ति के लिये जीव को धर्मसाधन की आवश्यकता है। यदि वैभाविक अवस्था मे दुख न होता तो इसे धर्मसाधन की आवश्यकता न होती। जड़ पुद्‌गल वैभाविक अवस्था मे रहो या स्वाभाविक मे उसे कोई हानि नही क्योंकि उस जीव सरीखा दुख-सुख का अनुभव नहीं है। इनमे तो केवल बन्धन व पृथकत्व के नियम है, उन्ही नियमो के अनुसार परिस्थिति उपस्थित होने पर परमाणु बन्ध कर छोटे-बड़े स्कन्ध बनते है और स्कन्ध का विश्लेपण होकर परमाणु रूप में परिवर्तित होते रहते है। लोक में इस प्रकार से द्रव्यों में कार्य-कारण व्यवस्था पायी जाती है जिसका पसारा हम सब प्रत्यक्ष देख रहे है।

❀ ❀ ❀
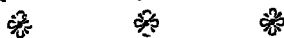
तत्वार्थसूत्र और उसकी प्रमुख टीकाएं

श्री अमृतलाल शास्त्री, दर्शनाचार्य
स्याद्वाद महाविद्यालय भदैनीघाट, वाराणसी

भगवान महावीर की दिव्यदेशना का जिस द्वादशागवाणी मे सकलन हुआ, उसकी मुख्य भापा प्राकृत थी। उस समय उस भापा का खूब प्रचार और प्रसार था। पर समय के परिवर्तन के

साथ प्राकृत का स्थान सस्कृत ने लेना प्रारम्भ कर दिया। यह देखकर द्वैपायक के मन मे यह विचार उत्पन्न हुआ कि समग्र जैन वाड्मय का परिचय कराने मे समर्थ एक ऐसे ग्रन्थ की सस्कृत मे रचना क्यो न कर दी जाय, इस विचार के वाद वह स्वय ऐसी सामग्री के सकलन मे लग गया जिसमे उसका मनोरथ पूर्ण हो सके। इसके लिए उसने कुछ उपक्रम भी किया पर उसे कुछ कठिनाई प्रतीत होने लगी। अत वह एक तपोवन मे गया, जहा श्रुतकेवली की समता करने मे सक्षम (श्रुतकेवलिदेशीय) आचार्य गृद्धपिच्छ विद्वान मुनियो के बीच मे बैठे हुए थे। उस समय यद्यपि वे मौन थे, किन्तु उनकी सौम्य वीतराग मुद्रा से ही दर्शको को मुक्तिमार्ग के उपदेश की एक झलक मिल रही थी। वहाँ का वातावरण विलकुल शान्त और पवित्र था। इससे द्वैपायक बहुत प्रभावित हुआ। अवसर पाते ही उसने आचार्य गृद्धपिच्छ एव अन्य सभी मुनियो को श्रद्धा-पूर्वक नमन किया और वही एक ओर बैठ गया। कुछ ही क्षणो के पश्चात उसने विनयपूर्वक यह प्रश्न किया—भगवन ! आत्मा का हित क्या है – 'भगवन ! किन्तु खल्वात्मने हितम् ?' कृपया बतलाइये। द्वैपायक के प्रश्न की भाषा और उसके मनोभाव को ध्यान मे रखकर उन्होने जो उत्तर दिया, उसीका साकार रूप तत्वार्थसूत्र है। उस समय जो भी वाड्मम उपलब्ध था उसका सार लेकर उन्होने उसे अलकृत किया।

जैन परम्परा मे तत्वार्थसूत्र का बहुत वडा महत्व है। इसके श्रवण करने मात्र से श्रोता को एक उपवास का फल मिलता है, ऐसी इसकी ख्याति है। प्राय दिगम्बर जैन समाज मे दशलक्षण पर्व की पुण्यवेला मे प्रवचन का मुख्य विषय यही रहता है। इसमे प्रथमानुयोग को छोड़कर शेष तीनो अनुयोगो की चर्चा यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। यह जैन दर्शन का प्रवेश-द्वार है। प्रवेशिका से लेकर आचार्य तक और वालपाठशालाओ से लेकर विश्वविद्यालयो तक इसका अध्ययन-अध्यापन होता है। अत यह कहने की आवश्यकता नही कि यह एक अनुपम ग्रन्थ ही नही महाग्रन्थ है।

इसके आधार पर अनेक उद्भट आचार्यो ने दार्शनिक ग्रन्थो की रचना की है। इसके 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्', इत्यादि मगलसूत्र को लेकर आचार्य विद्यानन्द ने आप्त परीक्षा की रचना की। 'प्रमाणनयैरधिगम' इस सूत्र का आश्रय लेकर महाकलकदेव ने अपने लघीयस्त्रय ग्रन्थ के प्रमाणप्रवेश और नयप्रवेश—इन दो प्रकरणो की तथा अभिनव धर्मभूपण यति ने न्यायदीपिका की रचना की है। इसे देखकर अन्य आचार्यो ने सस्कृत भाषा मे ग्रन्थ लिखने की प्रेरणा ली।

इसके दसो अध्यायो मे कुल मिलाकर ३५७ सूत्र हैं। प्रारम्भ के चार अध्यायो मे जीव-तत्त्व का, पचम मे अजीवतत्त्व का, षष्ठ और सप्तम मे आस्रवतत्त्व का, अष्टम मे बन्धतत्त्व का, नवम मे सवर और निर्जरा का तथा अन्तिम मे मोक्ष तत्त्व का निरूपण किया गया है। इसलिए इसका तत्त्वार्थ नाम पड़ा, और सूत्रशैली मे लिखे जाने से इसे तत्त्वार्थसूत्र कहते हैं। मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का प्रतिपादन करने से इसकी मोक्षशास्त्र सज्ञा भी प्रचलित है।

(१) सर्वार्थसिद्धि

तत्त्वार्थसूत्र की उपलब्ध टीकाओ में सर्वार्थसिद्धि सबसे पुरानी है। यद्यपि आचार्य समन्तभद्र ने इस पर गन्धहस्ति महाभाष्य नाम की एक टीका लिखी थी, ऐसी प्रसिद्धि है। पर वह अभी तक उपलब्ध नही हुई है। इसलिये सर्वार्थसिद्धि ही इसकी प्रथम टीका मानी जाती है। लक्षणो की दृष्टि से इसका बडा महत्त्व है। इसमे जो लक्षण दिये गये है, उन्होने विद्वानो को बहुत प्रभावित किया है। अतः इस टीका ग्रन्थ को लक्षण ग्रन्थ भी माना जाता है। इसमे तत्त्वार्थसूत्र के सूत्रो के प्रत्येक पद का विशेष अर्थ प्राञ्जल भाषा मे किया गया है। इसे बाद की सभी टीकाओ ने आदर्श माना है। आवश्यक स्थलो पर व्याकरण के आधार से अनेकानेक पदो की सिद्धि करते हुए प्रकृति और प्रत्ययो का निर्देश किया गया है। इसके 'तत्त्वार्थ श्रद्धान सम्यग्दर्शनम्' सूत्र की टीका मे सम्यग्दर्शन के दो भेद किये है— सरागसम्यग्दर्शन और वीतराग सम्यग्दर्शन। प्रशम, सवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य आदि चिन्हो से जिसकी अभिव्यक्ति हो, उसे सरागसम्यग्दर्शन तथा आत्मा की विशुद्धिमात्र को वीतराग सम्यग्दर्शन कहते हैं। 'जीवा जीवास्रवबन्ध संवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्' इस सूत्र की टीका मे लिखा है कि पुण्य और पाप का अन्तर्भाव आस्रव और बन्ध में हो जाता है, इसीलिये सूत्रकार ने नौ पदार्थो की अलग से चर्चा नही की। 'तद्भावाव्यय नित्यम्' सूत्र की व्याख्या मे बतलाया है कि प्रत्येक वस्तु स्वभाव से नित्य होकर भी परिणामी है। यदि वस्तु की सर्वथा नित्यता स्वीकार की जाय तो उसमें परिणमन नही बनेगा। फलत. ससार और उसकी निवृत्ति की प्रक्रिया ही गडबडा जायगी। इसी प्रकार वस्तु को सर्वथा अनित्य मानने पर कार्य-कारणभाव नही बन सकेगा।

इस टीका को महाकलकदेव ने अपने ग्रन्थ—तत्त्वार्थ वार्तिक मे वार्तिक रूप मे अपनाया है। इससे इस टीका का महत्व समझ मे आ जाता है। सर्वार्थसिद्धि से तत्त्वार्थवार्तिक मे और तत्त्वार्थवार्तिक से तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक मे उत्तरोत्तर विशेषता बढती गई। इसका एक मात्र श्रेय सर्वार्थसिद्धि को ही है। सुन्दरतापूर्वक थोडे शब्दो में अधिक अर्थ लिख देना इसकी सबसे बड़ी विशेषता है। बाद मे तत्त्वार्थसूत्र की जितनी भी टीकाएँ लिखी गई वे सबकी सब सर्वार्थ-सिद्धि से प्रभावित है। इसकी रचना प्रशममूर्ति आचार्यवर्य पूज्यपाद ने पाचवी शताब्दी मे की थी। इष्टोपदेश, समाधिशतक और जैनेन्द्र व्याकरण मे भी इनकी प्रतिभा के दर्शन होते है।

(२) तत्त्वार्थवार्तिक

तत्त्वार्थसूत्र पर तत्त्वार्थवार्तिक भाष्य लिखा गया है। इसमे केवल अतिसरल २७ सूत्रो को छोड़कर शेष सभी पर गद्य रूप मे वार्तिको की रचना की गई है। उनकी कुल सख्या २६७० है। सातवी शताब्दी मे सूत्रो पर वार्तिक बनाने को परिपाटी श्रेष्ठ समझी जाती थी। बिना वार्तिको के सूत्रो की महत्ता नही मानी जाती थी। अतः महाकलकदेव ने उद्योतकर की शैली मे वार्तिको की रचना की। आचार्य गृद्ध्रपिच्छ के सूत्रो मे भी जो अनुपपत्तियाँ कल्पनाओ के बल पर सम्भव मानी जा सकती थी, उन सभी का परिहार वार्तिको में कर दिया गया—'सूत्रेष्वनुपपत्तिचोदनापरिहारो वार्तिकम्'। वार्तिको की रचना मे कही कुछ क्लिष्टता भी आ गई है। अतः उसकी वृत्ति,

जिसे भाष्य कहना चाहिए, आवश्यकतानुसार कही सक्षिप्त और कही विस्तृत रूप मे लिखी गई है। इसमे अगणित आक्षेपो का समुचित समाधान किया गया है—'आक्षिप्यभाषणाद् भाष्यम्'। उस समय शास्त्रार्थों की धूम मची रहती थी। अकलकदेव ने भी अनेकानेक शास्त्रार्थ किये थे। तत्त्वार्थ-वार्त्तिक मे, जिसका दूसरा नाम राजवार्तिक है, उनके शास्त्रार्थं के अभ्यास की एक झलक मिलती है।

इस भाष्य मे सूत्रो के पदो के कोपो के अनुसार अनेक अर्थ दिखलाकर विवक्षित अर्थ को युक्तिपूर्वक निश्चित किया गया है कि इस पद का यहा यही अर्थ होना चाहिए, इस अर्थ को छोडकर अन्य अर्थ करने पर अमुक-अमुक दोप उत्पन्न हो जायेंगे। 'तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शनम्' सूत्र के भाष्य मे 'अर्थ' शब्द के विवक्षित अर्थ पर जो विचार किया गया है, केवल उसीको नमूने के रूप मे देखकर महाकलक की शैली का एक आभास प्राप्त किया जा सकता है।

प्रस्तुत भाष्य मे अन्य दार्शनिको की शकाओ का समाधान आगम और युक्तियो के आधार पर देकर अन्त मे अनेकान्त के आधार से भी समुचित उत्तर दिया गया है। यह शैली अन्य टीकाओ मे बहुत कम उपलब्ध होती है। देखिये पृष्ठ ७, २५, ५०, ७१ ४७१, ४९२ और ५०५ आदि। सप्तभगी का परिष्कृत लक्षण, स्वात्मा-परमात्मा का विश्लेषण, काल आदि आठ के द्वारा अभिन्नवृत्ति तथा अभेदोपचार की चर्चा, अनेकान्त मे सप्तभगी योजना, अनेकान्त के सम्यगेकान्त और मिथ्यैकान्त, अनेकान्त मे दिये गये दूषणो का निरसन और लक्षण के आत्मभूत और अनात्मभूत ये दो भेद आदि इस भाष्य की मौलिक उपलब्धिया हैं। इस भाष्य मे सैद्धान्तिक, दार्शनिक, और भौगोलिक आदि अनेकानेक विषयो की प्रासगिक चर्चा दृष्टिगोचर होती है, अत इसे विश्वकोष कहा जा सकता है।

(३) तत्त्वार्थश्लोक वार्त्तिक

तत्त्वार्थश्लोक वार्तिक मे, जिसका दूसरा नाम श्लोकवार्तिक भी है, तत्त्वार्थसूत्र के केवल ३५ सूत्रो को छोडकर शेप सभी पर वार्तिक लिखे गये है। उनकी सख्या लगभग २७०१ है। वार्त्तिक अनुष्टुप् छन्द मे कुमारिलभट्ट के मीमासाश्लोक वार्त्तिक, तथा धर्मकीर्ति के प्रमाणवार्त्तिक की शैली मे लिखे गये है। आह्निको की समाप्ति के स्थलो पर उपेन्द्रवज्रा, स्वागता, शालिनी, वशस्थ, मालिनी, शिखरिणी और शार्दूलविक्रीडित आदि छन्दो का भी प्रयोग किया गया है। वार्तिको के ऊपर वृत्ति भी लिखी गई है, जिसे महाभाष्य की सज्ञा प्राप्त है। तत्त्वार्थसूत्र की उप-लब्ध टीकाओ मे इसका प्रमाण सबसे अधिक है। इसके निर्णयसागर वाले सस्करण मे ५१२ पृष्ठ है, जिनमे ३११ पृष्ठ प्रथम अध्याय के हैं। इस अध्याय मे दार्शनिक चर्चा की बहुलता है। वैशे-षिक, नैयायिक, और विशेपत मीमासक आदि सभी दार्शनिको के सिद्धान्तो की इसमे विस्तार-पूर्वक समालोचना की गई है। भावना, विधि, नियोग, निग्रहस्थान आदि की आलोचना और जय-पराजय की व्यवस्था दी गई है। नयो का विस्तृत विवेचन द्रष्टव्य है। इसकी भाषा सरल है फिर भी विषय की गभीरता के कारण क्लिष्टता आ गई है, पर कही-कही बिलकुल सरलता भी देखने को मिलती है, विशेषत प्रथम अध्याय के आगे।

इसकी रचना नवमी शताब्दी मे आचार्य विद्यानन्द ने की थी। इनके आप्तपरीक्षा, पत्रपरीक्षा, प्रमाणपरीक्षा, सत्यशासनपरीक्षा और अष्टसहस्री आदि और भी अनेक ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

(४) सुखबोधा

यह टीका सर्वार्थसिद्धि से कुछ छोटी है। इसमे 'मोक्षमार्गस्य नेतार भेत्तार कर्मभूभृताम्' इत्यादि मगलपद्य की टीका की गई है। 'सत्सख्या' इत्यादि सूत्र की टीका बिलकुल सक्षिप्त की गई है। विषय को पुष्ट करने के लिये इसमे अनेक ग्रन्थो के पद्य उद्धृत किये गये हैं। सर्वार्थसिद्धि के अनुकरण पर इसके पाचवें अध्याय मे दार्शनिक चर्चा पर्याप्त मात्रा मे की गई है। पर पहले अध्याय मे सर्वार्थसिद्धि सरीखी दार्शनिक चर्चा नही है और न उतना विस्तार भी। इसमे यत्र-तत्र सर्वार्थसिद्धि के शब्द और कही-कही उनका भाव भी देखने को मिलता है। मूल को समझने के लिए यह टीका भी उपादेय है। इस टीका के प्रणेता भास्कर नन्दी है। इनका समय तेरहवी शताब्दी है।

(५) तत्त्वार्थवृत्ति

तत्त्वार्थसूत्र पर १६वी शताब्दी मे श्रुतसागर ने तत्त्वार्थवृत्ति नाम की टीका लिखी। इसका दूसरा नाम श्रुतसागरी वृत्ति भी प्रसिद्ध है। इसमे 'मोक्षमार्गस्य नेतारम्' इत्यादि मगल पद्य पर टीका लिखी गई है। यह टीका पदे-पदे सर्वार्थसिद्धि का अनुगमन करती है और कही-कही राजवार्तिक का भी। इसलिये इसका प्रमाण सर्वार्थसिद्धि से कुछ बडा हो गया है। 'सत्सख्या' इत्यादि सूत्र की व्याख्या सर्वार्थसिद्धि के अनुकरण पर विस्तार से लिखी गई है।

✿ ✿ ✿

अहिंसक-परम्परा

श्री विशम्भरनाथ पांडे
सम्पादक : 'विश्ववाणी' इलाहाबाद

छान्दोग्य उपनिषद् मे इस बात का उल्लेख मिलता है कि देवकीनन्दन कृष्ण को घोर आगिरस ऋषि ने आत्म-यज्ञ की शिक्षा दी। इस यज्ञ की दक्षिणा तपश्चर्या, दान, ऋतुभाव, अहिंसा तथा सत्यवचन थी।

जैन ग्रंथकारो का कहना है कि कृष्ण के गुरु तीर्थंकर नेमिनाथ थे। प्रश्न उठता है कि क्या यह नेमिनाथ तथा घोर आगिरस दोनो एक ही व्यक्ति के नाम थे ? कुछ भी हो, इससे एक बात निर्विवाद है कि भारत के मध्य भाग पर वेदो का प्रभाव पडने से पूर्व एक प्रकार का अहिंसा-धर्म प्रचलित था।

स्थानाग सूत्र मे यह बात आती है कि भरत तथा ऐरावत प्रदेशो मे प्रथम और अन्तिम को छोडकर शेष २२ तीर्थंकर चातुर्मास धर्म का उपदेश इस प्रकार करते थे—'समस्त प्राणघातो का त्याग,' सब असत्य का त्याग, सब अदत्ता दान का त्याग, सब बहिर्वा आदानो का त्याग।' इस धर्म रीति मे हमे उस काल मे अहिंसा की स्पष्ट छाप दिखाई देती है।'

'मज्झिम निकाय' मे चार प्रकार के तपो का आचरण करने का वर्णन मिलता है—तपस्विता, रूक्षता, जुगुप्सा और प्रविविक्ता। नगे रहना, अंजलि मे ही भिक्षान्न मांगकर खाना, बाल तोड कर निकालना, कांटो की शैया पर लेटना इत्यादि। देहदड के प्रकारो को तपस्विता कहते थे। कई वर्ष की धूल वैसी ही शरीर पर पड़ी रहे, इसे रूक्षता कहते थे। पानी की बूंद तक पर भी दया करना इसको जुगुप्सा कहते थे। जुगुप्सा अर्थात् हिंसा का तिरस्कार। जगल में अकेले रहने को प्रविविक्तता कहते थे।

तपश्चरण की उपरोक्त विधि से स्पष्ट है कि लोग अहिंसा तथा दया को तपस्या केन्द्र बिन्दु मानते थे।

अधिकतर पाश्चात्य पडितो का यह मत है कि जैनो के तेईसवे तीर्थकर पार्श्व ऐतिहासिक व्यक्ति थे। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि चौबीसवें तीर्थकर वर्धमान के १७८ वर्ष पूर्व पार्श्व तीर्थंकर का परिनिर्वाण हुआ।

यह बात भी इतिहास सिद्ध है कि वर्धमान तीर्थकर और गौतम बुद्ध समकालीन थे। बुद्ध का जन्म वर्धमान के जन्म से कम से कम १५ वर्ष बाद हुआ होगा। इसका अर्थ यह हुआ कि बुद्ध के जन्म तथा पार्श्व के परिनिर्वाण मे १९३ वर्ष का अन्तर था। निर्वाण के पूर्व लगभग ५० वर्ष तो पार्श्व तीर्थकर उपदेश देते रहे होंगे। इस प्रकार बुद्ध के जन्म के लगभग २४३ वर्ष पार्श्व मुनि ने उपदेश देने का कार्य प्रारम्भ किया होगा। निर्ग्रन्थ श्रवणो का सघ भी उन्होंने स्थापित किया होगा।

परीक्षित राजा के राज्यकाल से कुरुक्षेत्र में वैदिक संस्कृति का आगमन हुआ। उसके बाद जन्मेजय गद्दी पर आया। उसने कुरु देश में महायज्ञ करके वैदिक धर्म का झंडा फहराया। इसी समय काशी देश मे पार्श्व तीर्थंकर एक नयी सस्कृति की नीव डाल रहे थे। पार्श्व का जन्म वाराणसी नगर मे अश्वसेन नामक राजा की वामा नामक रानी से हुआ। पार्श्व का धर्म अहिंसा, सत्य, अस्तेय तथा अपरिग्रह इन चार यम का था। इतने प्राचीन काल में अहिंसा को इतना सुसम्बद्धरूप देने का यह पहला ही उदाहरण है।

पार्श्व मुनि ने एक बात और भी की। उन्होंने अहिंसा को सत्य, अस्तेय और अपरिग्रह इन तीन नियमो के साथ जकड़ दिया। इस कारण पहले जो अहिंसा ऋषि-मुनियो के व्यक्तिगत आचरण तक ही सीमित थी और जनता के व्यवहार मे जिसका कोई स्थान न था वह अब इन नियमो के कारण सामाजिक एवं व्यवहारिक हो गई।

पार्श्व तीर्थंकर ने तीसरी बात यह की कि अपने नवीन धर्म के प्रचार के लिए सघ बनाया। बौद्ध साहित्य से हमें इस बात का पता लगता है कि बुद्ध के समय जो संघ विद्यमान थे, उन सबो मे जैन साधु-साध्वियो का संघ सबसे बड़ा था। उपर्युक्त वर्णन से मालूम होगा कि ऋषि-मुनियो की तपश्चर्यारूपी अहिंसा से पार्श्व मुनि की लोकोपकारी अहिंसा का उद्गम हुआ।

लोकोपकारी अहिंसा का सबसे प्रमुख प्रभाव हमें सर्वभूत दया के रूप में दिखाई देता है। यो तो सिद्धान्ततः सर्वभूत दया को सभी मानते हैं किन्तु प्राणी रक्षा के ऊपर जितना बल जैन

परम्परा ने दिया, जितनी लगन से इसने उस विषय मे काम किया, इसका परिणाम ममस्त ऐतिहासिक युग मे यह रहा है कि जहाँ-जहाँ और जब-जब जेनो का प्रभाव रहा वहाँ सर्वत्र आम जनता पर प्राणि-रक्षा का प्रबल सस्कार पडा है। यहा तक कि भारत के अनेक भागो मे अपने को अजैन कहने वाले तथा जैन-विरोधी समझने वाले साधारण लोग भी जीवमात्र की हिंसा से नफरत करते लगे है। अहिंसा के इस सामान्य सस्कार के ही कारण अनेक वैष्णव आदि जैनेतर परम्पराओ के आचार-विचार पुरातन वैदिक परम्परा से सर्वथा भिन्न हो गये है। तपस्या के बारे मे भी ऐसा ही हुआ है। त्यागी हो या गृहस्थी सभी जैन तपस्या के ऊपर अधिकाधिक झुकते रहे है। सामान्य रूप से साधारण जनता जैनो की तपस्या की ओर आदरशील रही है। लोकमान्य तिलक ने ठीक ही कहा था कि गुजरात आदि प्रान्तो मे जो प्राणि-रक्षा और निरामिष भोजन का आग्रह है वह जैन परम्परा का ही प्रभाव है।

जैनधर्म का आदि और पवित्र स्थान मगध और पश्चिम बगाल है। सभव है कि बगाल मे एक समय बौद्ध धर्म की अपेक्षा जैनधर्म का विशेष प्रचार था। परन्तु क्रमश जैनधर्म के लुप्त हो जाने पर बौद्ध ने उसका स्थान ग्रहण किया। बगाल के पश्चिमी हिस्से मे स्थित 'सराक' जाति श्रावको की पूर्व स्मृति कराती है। अब भी बहुत से जैन मन्दिरो के ध्वसावशेष, जैन-मूर्तिया, शिलालेख आदि जैन स्मृतिचिन्ह बगाल के भिन्न-भिन्न भागो में पाये जाते है।

प्रोफेसर सिलवन लेवी लिखते है कि—"बौद्धधर्म जिस तरह आकुठित भाव से भारत के बाहर और अन्दर प्रसारित हो सका, उस तरह जैनधर्म नही। दोनो धर्मो का उत्पत्ति स्थान एक होते हुए भी यह परिणाम निकला कि बौद्धधर्म प्रतिष्ठित हुआ। पूर्व भारत में, और जैनधर्म पश्चिम तथा दक्षिण भारत मे। बौद्धधर्म भारत के अतिरिक्त पूर्व दिशा मे बर्मा, श्याम, चीन आदि देशो में फैला और उसने इन सब दिशाओ से भारत को सम्भावित राजनैतिक विपत्तियो से उन्मुक्त किया। यदि जैनधर्म भी इसी तरह भारत से बाहर पश्चिमी देशो की ओर फैला होता तो शायद भारत अनेक राजनैतिक दुर्गतियो से बच गया होता।"

इस समय जो ऐतिहासिक उल्लेख उपलब्ध है उनसे यह स्पष्ट है कि ईसवी सन् की पहली शताब्दी मे और उसके बाद के १००० वर्षो तक जैनधर्म मध्यपूर्व के देशो मे किसी-न-किसी रूप मे यहूदी-धर्म, ईसाई-धर्म और इस्लाम को प्रभावित करता रहा है।

प्रसिद्ध जर्मन इतिहासलेखक वान क्रेमर के अनुसार मध्यपूर्व मे प्रचलित 'समानिया' सम्प्रदाय 'श्रमण' शब्द का अपभ्रन्श है। इतिहासलेखक जी एफ मूर लिखता है कि—"हजरत ईसा के जन्म की शताब्दी से पूर्व ईराक, श्याम और फिलस्तीन मे जैन मुनि और बौद्ध भिक्षु सैकडो की सख्या मे चारो ओर फैले हुए थे। पश्चिमी एशिया, मिस्र, यूनान और इथोपिया के पहाडो और जगलो मे उन दिनो अगणित भारतीय साधु रहते थे जो अपने त्याग और अपनी विद्या के लिए मशहूर थे। ये साधु वस्त्रो तक का परित्याग किए हुए थे।

इन साधुओ के त्याग का प्रभाव यहूदी धर्मावलम्बियो पर विशेषरूप से पडा। इन आदर्शो का पालन करने वालो की, यहूदियो मे, एक खास जमात बन गई को 'एम्सिनी' कहलाती

थी। इन लोगो ने यहूदी धर्म के कर्मकाण्डो का पालन त्याग दिया। ये वस्ती से दूर जगलो मे या पहाडो पर कुटी वनाकर रहते थे। जैन मुनियो की तरह अहिंसा को अपना खास धर्म मानते थे। मास खाने से उन्हे वेहद परहेज था। वे कठोर और सयमी जीवन व्यतीत करते थे। पैसा या धन को छने तक से इन्कार करते थे। रोगियो और दुर्वलो की सहायता को दिनचर्या का आवश्यक अग मानते थे। प्रेम और सेवा को पूजा-पाठ मे वढकर मानते थे। पशुवलि का तीव्र विरोध करते थे। शारीरिक परिश्रम मे ही जीवन-यापन करते थे। अपरिग्रह के सिद्धान्त पर विश्वास करते थे। समस्त सम्पत्ति को समाज की सम्पत्ति समझते थे। मिस्र मे इन्ही तपस्वियो को 'थेरापूते' कहा जाता था। थेरापूते का अर्थ है 'मौनी अपरिग्रही'।

'सियाहत नाम ए नासिर' का लेखक लिखता है कि इस्लाम धर्म के कलन्दरी तवके पर जैन धर्म का काफी प्रभाव पडा था। कलन्दरो की जमात परिव्राजको की जमात थी। कोई कलन्दर दो रात से अधिक एक घर मे न रहता था। कलन्दर चार नियमो का पालन करते थे—साधुता, शुद्धता, सत्यता और दरिद्रता। वे अहिंसा पर अखन्ड विश्वास रखते थे।

एक वार का किस्सा है कि दो कलन्दर मुनि वगदाद मे आकर ठहरे। उनके सामने एक शुतुरमुर्ग गृह-स्वामिनी का हीरो का एक वहुमूल्य हार निगल गया। सिवाय कलन्दरो के किसी ने यह घटना देखी नही। हार की खोज शुरू हुई। शहर कोतवाल को सूचना दी गई। उन्हे कलन्दर मुनियो पर सन्देह हुआ। कलन्दर मुनियो से प्रश्न किये गये। मुनियो ने उस मूक पक्षी के साथ विश्वासघात करना उचित नही समझा। क्योकि हार के लिए उस मूक पक्षी को मारकर उसका पेट फाडा जाता। सन्देह मे मुनियो को वेरहमी के साथ पीटा गया। वे लोहू-लोहान हो गये किन्तु उन्होने शुतुरमुर्ग के प्राणो की रक्षा की।

सालेहविन अब्दुल कुद्दूस भी एक अहिंसावादी अपरिग्रही परिव्राजक मुनि था, जिसे उसके क्रान्तिकारी विचारो के कारण सन् ७८३ ईस्वी मे सूली पर चढा दिया गया। अकुल अतारिया, जरीर इब्न हज्म, हम्माद अजरद, यूनान विना हारून, अली विन खलील और वश्शार अपने समय के प्रसिद्ध अहिंसावादी निर्ग्रन्थी फकीर थे।

नवमी और दसवी शताब्दियो मे अब्बासी खलीफाओं के दरवार मे भारतीय पडितो और साधुओ को आदर के साथ निमन्त्रित किया जाता था। इनमे वौद्ध और जैन साधु भी रहते थे। इब्न अन नजीम लिखता है कि—"अरबो के शासनकाल मे यहिया इब्न खालिद वरमकी ने खलीफा के दरवार और भारत के साथ अत्यन्त गहरा सम्वन्ध स्थापित किया। उसने वड़े अध्यवसाय और आदर के साथ भारत से हिन्दू, वौद्ध और जैन विद्वानो को निमन्त्रित किया।"

सन् ९९८ ईस्वी के लगभग भारत के वीस साधु-सन्यासियो ने मिलकर पश्चिमी एशिया के देशो की यात्रा की। इस दल के साथ चिकित्सा के रूप मे एक जैन सन्यासी भी गये थे। एक वार स्वदेश लौटकर यह दल फिर पर्यटन के लिए निकल गया। २६ वर्ष के वाद जव सन् १०२४ ईसवी मे यह लोग अन्तिम वार स्वदेश लौटे तव उस समुदाय के साथ सीरिया के सुविख्यात अन्ध कवि अवुलअला अलमआरी का परिचय हुआ। अवुलअला का जन्म सन् ९७३ ईसवी मे हुआ और

मृत्यु सन् १०५८ ईसवी मे। जर्मन विद्वान वान क्रेमर ने लिखा है कि अबुलअला सभी देशो और सभी युगो के सर्वश्रेष्ठ सदाचार शास्त्रियो मे से एक था।

अबुलअला जब केवल चार वर्ष के थे तभी चेचक के भयकर प्रकोप मे अन्धे हो गये थे। किन्तु उनकी ज्ञान-तृष्णा इतनी अदम्य थी कि वे स्पेन से मिस्र और मिस्र से ईरान तक अनेको स्थान मे गुरू की तलाश मे ज्ञानार्थी बनकर घूमते रहे। अन्त मे बगदाद मे जैन-दार्शनिको के साथ उनका ज्ञान-समागम हुआ। साधना द्वारा उन्होने परमयोगी पद को प्राप्त किया। उनकी ईश्वर की कल्पना इस्लाम की कल्पना से नितान्त भिन्न थी। बहिश्त के लिए उनकी जरा भी ख्वाहिश नही थी। वे दु खमय सत्ता को ही समस्त दु खो का मूल मानते थे। बगदाद से सीरिया लौटकर एक पर्वत की कन्दरा में रहकर उन्होने अति कृच्छ्तपश्चरण किया। उसके बाद उनका जीवन ही बदल गया। मद, मत्स्य, मास, अण्डे एव दूध तक का उन्होने परित्याग कर दिया। उनका जीवन अहिसामय एव मैत्रीपूर्ण बन गया।

अबुलअला का इस बात मे विश्वास नही था कि मुर्दे किसी दिन कब्रो मे से निकलकर खडे हो जायेंगे। बच्चा पैदा करने के कार्य को वह पाप मानता था। अपने पृथक अस्तित्व को मिटा देने को वह मनुष्य जीवन का वास्तविक लक्ष्य मानता था। वह आजीवन मनसा, वाचा, कर्मणा ब्रह्मचारी रहा। उसने अपने एक भजन मे लिखा है —

"हनीफ ठोकरे खा रहे है, ईसाई सब भटके हुए है, यहूदी चक्कर मे है, भोगी कुराह पर बढे जा रहे है। हम नाशवान मनुष्यो मे दो ही खास तरह के व्यक्ति है—एक बुद्धिमान शठ और दूसरे धार्मिक मूढ।"

अबुलअला का एक दूसरा भजन है :—

"कोई वस्तु नित्य नही है। प्रत्येक वस्तु नाशवान है। इस्लाम भी नष्ट होने वाला है। हजरत मूसा आये, और उन्होने अपनी पाच वक्त की नमाज चलाई। कुछ दिनो बाद कोई दूसरा मजहब आकर इसकी जगह ले लेगा। इस तरह मानव-जाति वर्तमान और भविष्य के बीच में मौत की तरह हकाई जा रही है। यह धरती नाशवान है। जिस तरह इसका आरम्भ हुआ था उसी तरह इसका अन्त होगा। जन्म और मृत्यु हर चीज के साथ लगी हुई है। काल का प्रवाह नदी की धार के सदृश बहता चला जा रहा है। यह प्रवाह हर समय किसी-न-किसी नई वस्तु को सामने लाता रहता है।"

सभी जीव-जतुओ यहा तक कि कीडे-मकोडो के प्रति भी वे अपरिसीम करुणामय थे। इस सम्बन्ध का उनका एक भजन है —

"वृथा पशु-हिंसा मे क्यो जीवन कलकित करते हो ? बेचारे वनवासी पशुओ का क्यो निष्ठुर भाव से सहार करते हो ? हिंसा सबसे बडा कुकर्म है। बलि के पशुओ को आहार न बनाओ। अण्डे और मछलियाँ भी न खाओ। इन सब कुकर्मो से मैने अपने अपने हाथ धो डाले है। वास्तव मे आगे जाकर न बधिक रहेगा और न बध्य। काश कि बाल पकने से पहले मैंने इन बातो को समझ लिया होता।"

इसी प्रकार जैन-दर्शन ने जलालुद्दीन रूमी एव अन्य अनेक ईरानी सूफियो के विचारो को प्रभावित किया। अहिंसा सिद्धान्त मानव-जीवन का सर्वोच्च सिद्धान्त है। प्रत्येक प्रगतिशील आत्मा उससे आकृष्ट हुए बिना नही रह सकती। अनेक कारणो से, जिनके विस्तार मे जाने की यहाँ आवश्यकता नही है, जैन जीवन-धारा व्यापक रूप से मानव-समाज को अधिक समय तक परिप्लावित नही कर सकी। उसके अनुगामी स्वय अनाचार और मिथ्याचार मे फँस गये। आज हमे फिर अहिंसा की उस परम्परा मे नई प्राण-शक्ति का सचार करना होगा। गाधीजी ने अपने जीवन का अर्घ्य देकर एक बार उसे देदीप्यमान कर दिया। किन्तु हमे निरन्तर साधनामय जीवन से उस अग्नि को प्रज्वलित कर अपनी प्राण शक्ति का प्रमाण देना होगा। सत्य और अहिंसा के आदर्श को व्यवहार मे प्रतिष्ठित करने के सहजमार्ग को न स्वीकार कर यदि केवल वाक्य, तर्क और प्रमाण चातुर्य का मार्ग ग्रहण किया जायगा, तो विश्वधर्म के महाकाल के विधान मे जैनधर्म के लिए कोई आशा नही।

"यदि जिन-मानितधर्म अनेक मिथ्या आडम्बरो, आर्यहीन आचारो आदि को त्यागकर दया, मैत्री, उदारता, शुद्ध जीवन, आन्तरिक और बाह्य प्रकाश और प्रेम की उदार तपस्या द्वारा अपने मे अन्तर्निहित जागृत जीवन का परिचय दे सके तो सब अभियोग और आरोप स्वय शात हो जायेंगे और इससे जैन स्वय धन्य होगे तथा समस्त मानव सभ्यता को भी वे धन्य करेंगे।"

संस्कृत साहित्य के विकास में जैन विद्वानों का सहयोग

डा० मंगलदेव शास्त्री, एम. ए., पीएच. डी.

भारतीय विचारधारा की समुन्नति और विकास मे अन्य आचार्यो के समान जैन आचार्यो तथा ग्रन्थकारो का जो बडा हाथ रहा है उससे आजकल की विद्वन्मण्डली साधारणतया परिचित नही है। इस लेख का उद्देश्य यही है कि उक्त विचारधारा की समृद्धि मे जो जैन विद्वानो ने सहयोग दिया है उसका कुछ दिग्दर्शन कराया जाय। जैन विद्वानो ने प्राकृत, अपभ्र श, गुजराती, हिन्दी, राजस्थानी, तेलगु, तमिल आदि भाषाओ के साहित्य की तरह सस्कृत भाषा के साहित्य की समृद्धि मे बडा भाग लिया है। सिद्धान्त, आगम, न्याय, व्याकरण, काव्य, नाटक, चम्पू, ज्योतिष, आयुर्वेद, कोष, अलकार, छन्द, गणित, राजनीति, सुभाषित आदि के क्षेत्र मे जैन लेखको की मूल्यवान सस्कृत रचनाएँ उपलब्ध है। इस प्रकार खोज करने पर जैन सस्कृत साहित्य विशाल रूप मे हमारे सामने उपस्थित होता है। उस विशाल साहित्य का पूर्ण परिचय कराना इस अल्पकाय लेख मे सभव नही है। यहा हम केवल उन जैन रचनाओ की सूचना देना चाहते हैं जो महत्वपूर्ण है। जैन सैद्धान्तिक तथा आरभिक ग्रन्थो की चर्चा हम जान-बूझकर छोड रहे है।

जैन न्याय—

जैन न्याय के मौलिक तत्त्वो को सरल और सुबोधरीति से प्रतिपादन करने वाले

मुख्यतया दो ग्रन्थ है। प्रथम अभिनव धर्मभूपणयति विरचित न्यायदीपिका, दूसरा माणिकनन्दि का परीक्षामुख, न्यायदीपिका मे प्रमाण और नय का बहुत ही स्पष्ट और व्यवस्थित विवेचन किया गया है। यह एक प्रकरणात्मक सक्षिप्त रचना है जो तीन प्रकाशा मे समाप्त हुई है।

गौतम के न्यायसूत्र और दिग्नाग के न्यायप्रवेश की तरह माणिक्यनन्दि का 'परीक्षामुख' जैन न्याय का सर्वप्रथम सूत्र ग्रन्थ है। यह छ परिच्छेदो मे विभक्त है और समस्त सूत्रसख्या २०७ है। यह नवमी शती की रचना है और इतनी महत्वपूर्ण है कि उत्तरवर्ती ग्रन्थकारो ने इस पर अनेक विशाल टीकाए लिखी हैं। आचार्य प्रभाचन्द (७८०-१०६५ ई०) ने इस पर बारह हजार श्लोक परिमाण 'प्रमेयकमलमार्तण्ड' नामक विस्तृत टीका लिखी है। १२वी शती के लघुअनन्तवीर्य ने इसी ग्रन्थ पर एक 'प्रमेयरत्नमाला' नामक विस्तृत टीका लिखी है। इसकी रचनाशैली इतनी विशद और प्राजल है और इसमे चर्चित किया गया प्रमेय इतने महत्व का है कि आचार्य हेमचद्र ने अनेक स्थलो पर अपनी 'प्रमाणमीमासा' मे इसका शब्दश और अर्थश अनुकरण किया है। लघु अनन्तवीर्य ने माणिकनन्दि के परीक्षामुख को अकलक के वचनरूपी समुद्र के मन्थन से उद्भूत न्यायविद्यामृत[1] बतलाया है।

उपयुक्त दो मौलिक ग्रन्थो के अतिरिक्त अन्य प्रमुख न्यायग्रन्थो का परिचय देना भी यहा अप्रासगिक न होगा। अनेकातवाद को व्यवस्थित करने का सर्वप्रथम श्रेय स्वामी समन्तभद्र, (द्वि० या तृ० शदी ई०) और सिद्धसेन दिवाकर (छठी शती ई०) को प्राप्त है। स्वामी समन्तभद्र की आप्तमीमासा और युक्त्यनुशासन महत्वपूर्ण कृतिया है। आप्तमीमांसा मे एकान्तवादियो के मन्तव्यो की गम्भीर आलोचना करते हुए आप्तकी मीमासा की गई है और युक्तियो के साथ स्याद्वाद सिद्धान्त की व्याख्या की गई है। इसके ऊपर भट्टाकलक (६२०-६८०) का अप्टशती विवरण उपलब्ध है तथा आचार्य विद्यानदि (९वी श० ई०) का 'अप्टसहस्री' नामक विस्तृत भाष्य और वसुनन्दिकी (देवागम वृत्ति) नामक टीका प्राप्य है। युक्त्यनुशासन मे जैन शासन की निर्दोषिता सयुक्तिक सिद्ध की गई है। इसी प्रकार सिद्धसेनदिवाकर द्वारा अपनी स्तुति-प्रधान बतीसियो मे और महत्वपूर्ण सम्मति तर्कभाष्य मे बहुत ही स्पष्ट रीति से तत्कालीन प्रचलित एकान्तवादो का स्याद्वाद सिद्धान्त के साथ किया गया समन्वय दिखलाई देता है।

भट्टाकलकदेव जैन न्याय के प्रस्थापक माने जाते है और इनके पश्चाद्भावी समस्त जैनतार्किक इनके द्वारा व्यवस्थित न्यायमार्ग का अनुसरण करते हुए ही दृष्टिगोचर होते हैं। इनकी अप्टशती, न्यायविनिश्चय, सिद्धिविनिश्चय, लघीस्त्रय और प्रमाणसग्रह बहुत ही महत्वपूर्ण दार्शनिक रचनाये हैं। इनकी समस्त रचनाए जटिल और दुर्बोध है। परन्तु वे इतनी गम्भीर है कि उनमे 'गागर मे सागर' की तरह पदे-पदे जैन दार्शनिक तत्वज्ञान भरा पडा है।

आठवी शती के विद्वान आचार्य हरिभद्र की 'अनेकात जयपताका' तथा पट्दर्शन समुच्च

---

१ — 'अकलकवचोम्भोधेरुद्ध्रे येन धीमता।
न्यायविद्यामृत तस्मै नमो माणिक्यनन्दिने॥' —प्रमेयरत्नमाला

(शब्दानुशासन) व्याकरण भी महत्वपूर्ण रचना है। प्रस्तुत व्याकरण पर निम्नांकित सात टीकाएं उपलब्ध हैं :—

(१) अमोघवृत्ति—शाकटायन के शब्दानुशासन पर स्वयं सूत्रकार द्वारा लिखी गई यह सर्वाधिक विस्तृत और महत्वपूर्ण टीका है। राष्ट्रकूट नरेश अमोघवर्ष को लक्ष्य में रखते हुए ही इसका उक्त नामकरण किया गया प्रतीत होता है। (२) शाकटायनन्यास अमोघवृत्ति पर प्रभाचन्द्राचार्य द्वारा विरचित यह न्यास है। इसके केवल दो अध्याय ही उपलब्ध हैं। (३) चिंतामणि टीका (लघीयसीवृत्ति) इसके रचयिता यक्षवर्मा हैं और अमोघवृत्ति को संक्षिप्त करके ही इसकी रचना की गयी है। (४) मणिप्रकाशिका—इसके कर्ता अजितसेनाचार्य हैं। (५) प्रक्रियासंग्रह—भट्टोजीदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी की पद्धति पर लिखी गयी यह प्रक्रिया टीका है, इसके कर्ता अभयचन्द आचार्य हैं। (६) शाकटायन टीका—भावसेन त्रैविद्यदेव ने इसकी रचना की है। यह कातन्त्ररूपमाला टीका के रचयिता हैं। (७) रूपसिद्धि—लघुकौमुदी के समान यह एक अल्पकाय टीका है। इसके कर्ता दयापाल (वि० ११वीं श०) मुनि हैं।

आचार्य हेमचन्द्र का सिद्धि हेम शब्दानुशासन भी महत्त्वपूर्ण रचना है। यह इतनी आकर्षक रचना रही है कि इसके आधार पर तैयार किये ये अनेक व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक जैन व्याकरण ग्रन्थ जैनाचार्यों ने लिखे हैं और अनेक जैनेतर व्याकरण ग्रन्थों पर महत्त्वपूर्ण टीकाए भी लिखी हैं। पूज्यपाद ने पाणिनीय व्याकरण पर 'शब्दावतार' नामक एक न्यास लिखा था जो सम्प्रति अप्राप्य है। और जैनाचार्यों द्वारा सारस्वत व्याकरण पर लिखित विभिन्न बीस टीकाए आज भी उपलब्ध हैं।[1]

शर्ववर्म का कातन्त्रव्याकरण भी एक सुबोध और संक्षिप्त व्याकरण है तथा इसपर भी विभिन्न चौदह टीकाएँ प्राप्त हैं।

अलंकार

अलंकार विषय में भी जैनाचार्यों की महत्त्वपूर्ण रचनाएं उपलब्ध हैं। हेमचन्द्र और वाग्भट्ट के काव्यानुशासन तथा वाग्भट्ट का वाग्भट्टालंकार महत्त्व की रचनाए हैं। अजितसेन आचार्य की अलंकार चिन्तामणि और अमरचन्द्र की काव्य कल्पलता बहुत ही सफल रचनायें हैं।

जैनतर अलंकार शास्त्रों पर भी जैनाचार्यों की कतिपय टीकाए पायी जाती हैं। काव्यप्रकाश के ऊपर भानुचन्द्रगणि जयनन्दिसूरि और यशोविजयगणि तपागच्छ की टीकाएँ उपलब्ध है। इसके सिवा दण्डी के काव्य-दर्श पर त्रिभुवनचन्द्रकृत टीका पायी जाती है। और रुद्र के काव्यालंकार पर नेमिसाधु (११२५ वि० स०) के टिप्पण भी सारपूर्ण हैं।

नाटक—

नाटकीय साहित्य सृजन में भी जैन साहित्यकारों ने अपनी प्रतिभा का उपयोग किया है। उभय-भाषा-कवि-चक्रवर्ति हस्तिमल्ल (१३वीं श०) के विक्रान्तकौरव, जयकुमार सुलोचना,

---

१—जिनरत्नकोश (भ० ओ० रि० इ० पूना)
जिनरत्नकोश (भ० ओ० रि० इ०, पूना)।

है। जयकीर्ति ने अपने छन्दोऽनुशासन के अन्त मे लिखा है कि उन्होंने माण्डेव्य, पिंगल, जनाश्रय, शैतव, श्रीपूज्यवाद और जयदेव आदि के छन्दशास्त्रो के आधार पर अपने छन्दोऽनुशासन की रचना की है।[1] वाग्भट का छन्दोऽनुशासन भी इसी कोटि की रचना है और इस पर इनकी स्वोपाज्ञ टीका भी है। राजशेखर सूरि (११४९ ई०) का छन्दशेखर और रत्नमजूषा भी उल्लेखनीय रचनाएँ है।

इसके अतिरिक्त जैनेतर छन्द शास्त्र पर भी जैनाचार्यो की टीकाएँ पायी जाती है। केदारभट्ट के वृत्तरत्नाकर पर सोमचन्द्रगणी, क्षेमहसगणी, समयसुन्दर उपाध्याय आसड और मेरुसुन्दर आदि की टीकाएँ उपलब्ध है। इसी प्रकार कालिदास के श्रुतबोध पर भी हर्षकीर्ति और कातिविजयगणी की टीकाएँ प्राप्त है। सस्कृत भाषा के छन्द-शास्त्रो के सिवा प्राकृत और अपभ्रश भाषा के छन्दशास्त्रो पर भी जैनाचार्यो की महत्वपूर्ण टीकाएँ उपलब्ध है।

कोष—

कोष के क्षेत्र मे भी जैन साहित्यकारो ने अपनी लेखनी का यथेष्ट कौशल प्रदर्शित किया है। अमरसिंहगणीकृत अमरकोष सस्कृतज्ञ समाज मे सर्वोपयोगी और सर्वोत्तम कोष माना जाता है। उसका पठन-पाठन भी अन्य कोषो की अपेक्षा सर्वाधिक रूप मे प्रचलित है। घनजयकृत घनजय-नाममाला दो सौ श्लोको की अल्पकाय रचना होने पर भी बहुत ही उपयोगी है। प्राथमिक कक्षा के विद्यार्थियो के लिए जैन समाज मे इसका खूब प्रचलन है।

अमरकोष की टीका (व्याख्यासुधाख्या) की तरह इस पर भी अमरकीर्ति का एक भाष्य उपधब्ध है। इस प्रसग मे आचार्य हेमचन्द्रविरचित अभिधानचिन्तामणि नाममाला एक उल्लेखनीय कोशकृति है। श्रीधरसेन का विश्वलोचनकोप, जिसका अपर नाम मुक्तावली है एक विशिष्ट और अपने ढग की अनूठी रचना है। इसमे ककारातादि व्यजनो के क्रम से शब्दो की सकलना की गयी है जो एकदम नवीन है।

मन्त्रशास्त्र—

मन्त्रशास्त्र पर भी जैन रचनाएँ उपलब्ध है। विक्रम की ११वी शती के अन्त और बारहवी के आदि के विद्वान् मल्लेषण का 'भैरवपद्मावतिकल्प, सरस्वतीमन्त्रकल्प और ज्वालामालिनी-कल्प महत्वपूर्ण रचनाएँ है। भैरव पद्मावतिकल्प मे[2] मन्त्रोलक्षण, सकलीकरण, देव्यर्चन, द्वादश-रजिकामन्त्रोद्वार, क्रोधादिस्तम्भन, अगनाकर्षण, वशीकरणयन्त्र, निमित्तवशीकरणतन्त्र और गारुडमन्त्र नामक दस अधिकार है तथा इस पर बन्धुषेण का एक सस्कृत विवरण भी उपलब्ध

१—मॉडव्य-पिंगलजनाश्रय सैतवाख्य।
श्री पूज्यपादजयदेव-बुधादिकाना।
छन्दासि वीक्ष्य विविधानपि सत्प्रयोगान,
छन्दोनुशासनमिद जयकीर्तिनोक्तम्॥

२—इस ग्रन्थ को श्री साराभाई मणिलाल नवाब अहमदाबाद ने सरस्वतीकल्प तथा अनेक परिशिष्टो मे गुजराती अनुवाद सहित प्रकाशित किया है।

है। ज्वालामालिनी कल्प नामक एक अन्य रचना इन्द्रनन्दि की भी उपलब्ध है जो शक सं० ८६१ मे मान्यखेट मे रची गयी थी। विद्यानुवाद या विद्यानुशासन नामक एक और भी महत्वपूर्ण रचना है जो २४ अध्यायो मे विभक्त है। वह मल्लिषेणाचार्य की कृति बतलायी जाती है परन्तु अन्तःपरीक्षण से प्रतीत होता है कि इसे मल्लिषेण के किसी उत्तरवर्ति विद्वान् ने ग्रथित किया है। इनके अतिरिक्त हस्तिमल्ल का विद्यानुवादाग तथा भक्तामरस्तोत्र मन्त्र भी उल्लेखनीय रचनाएँ है।

सुभाषित और राजनीति–

सुभाषित और राजनीति मे सम्बन्धित साहित्य के सृजन मे जैन लेखको[1] ने पर्याप्त योगदान किया है। इस प्रसग मे आचार्य अमितगतिका सुभाषित रत्नसन्दोह (१०५० वि०) एक सुन्दर रचना है। इसमे सासारिकविषयनिराकरण, मायाहकारनिराकरण, इन्द्रियनिग्रहोपदेश, स्त्रीगुणदोष विचार, देवनिरूपण आदि बत्तीस प्रकरण है। प्रत्येक प्रकरण बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस पद्यो मे समाप्त हुआ है। सोमप्रभ की सूक्तिमुक्तावली, सकलकीर्ति की सुभाषितावली, आचार्य शुभचन्द्र का ज्ञानार्णव, हेमचन्द्राचार्य का योगशास्त्र आदि उच्चकोटि के सुभाषित ग्रन्थ हैं। इनमे से अन्तिम दोनो ग्रन्थो मे योगशास्त्र का महत्वपूर्ण निरूपण है।

राजनीति मे सोमदेवसूरि का, नीतिवाक्यामृत बहुत ही महत्त्वपूर्ण रचना है। सोमदेवसूरि ने अपने समय मे उपलब्ध होने वाले समस्त राजनैतिक और अर्थशास्त्रीय साहित्य का मन्थन करके इस सारवत नीतिवाक्यामृत का सृजन किया है। अतः यह रचना अपने ढग की मौलिक और मूल्यवान है।

आयुर्वेद–

आयुर्वेद के सम्बन्ध मे भी कुछ जैन रचनाए उपलब्ध है। उग्रादित्य का कल्याणकारक, पूज्यपादवैद्यसार अच्छी रचनाए है। पण्डितप्रवर आशाधर (१३वी सदी) ने वाग्भट्ट या चरक सहिता पर एक अष्टाग हृदयोद्योतिनी नामक टीका लिखी थी परन्तु सम्प्रति वह अप्राप्य है। चामुण्डरायकृत नरचिकित्सा, सल्लिपेणकृत बालग्रह चिकित्सा, तथा सोमप्रभाचार्य का रसप्रयोग भी उपयोगी रचनाए हैं।

कला और विज्ञान—

जैनाचार्यो ने वैज्ञानिक साहित्य के ऊपर भी अपनी लेखनी चलाई। हसदेव (१३वी सदी) का मृगपक्षीशास्त्र एक उत्कृष्टकोटि की रचना मालूम होती है। इसमे १७१२ पद्य है और इसकी एक पाण्डुलिपि त्रिवेन्द्रम के राजकीय पुस्तकागार मे सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त चामुण्डरायकृत कूपजलज्ञान वनस्पतिस्वरूप, विधानादि परीक्षाशास्त्र, धातुसार, धनुर्वेद रत्नपरीक्षा, विज्ञानार्णव आदि भी उल्लेखनीय वैज्ञानिक रचनाए हैं।

ज्योतिष, सामुद्रिक तथा स्वप्नशास्त्र—

ज्योतिषशास्त्र के सम्बन्ध मे जैनाचार्यो की महत्वपूर्ण रचनाए उपलब्ध है। गणित

१—जैन साहित्य और इतिहास (श्री प० नाथूराम जी प्रेमी, पृ० ४१५)

और फलित दोनो भागो के ऊपर ज्योतिषग्रन्थ पाये जाते है । जैनाचार्यो ने गणित ज्योतिष सम्बन्धी विषय का प्रतिपादन करने के लिए पाटीगणित, बीजगणित रेखागणित, त्रिकोणमिति, प्रतिभा-गणित, शृ गोन्नतिगणित, पचागनिर्माण गणित, जन्मपत्रनिर्माणगणित, ग्रहयुति उदयास्तसम्बन्धी गणित एव यन्त्रादि सम्बन्धित गणित का प्रतिपादन किया है ।

जैन गणित के विकास का स्वर्णयुग छठवी से बारहवी तक है । इस बीच अनेक महत्व-पूर्ण गणित ग्रन्थो का ग्रथन हुआ है । इसके पहले कोई स्वतन्त्र रचना उपलब्ध नही है । कतिपय आगमिक ग्रन्थो मे अवश्य गणितसम्बन्धी कुछ बीजसूत्र जाते है ।

सूर्यप्रज्ञप्ति तथा चन्द्रप्रज्ञप्ति प्राकृत की रचनाए होने पर भी जैन गणित की अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा प्राचीन रचनाए है । इनमे सूर्य और चन्द्र से तथा इनके ग्रह तारामण्डल आदि से सम्बन्धित गणित तथा विद्वानो का उल्लेख दृष्टिगोचर होता है । इनके अतिरिक्त महावीराचार्य (९वीं सदी) का गणितसार सग्रह, श्रीधरदेव का गणितशास्त्र, हेमप्रभसूरि का त्रैलोक्यप्रकाश और सिंहतिलकसूरि का गणिततिलक आदि ग्रन्थ सारगर्भित और उपयोगी है ।

फलित ज्योतिष से सम्बन्धित होराशास्त्र, सहिताशास्त्र, मुहूर्तशास्त्र, सामुद्रिकशास्त्र, प्रश्नशास्त्र और स्वप्नशास्त्र आदि पर भी जैनाचार्यो ने अपनी रचनाओ मे पर्याप्त प्रकाश डाला है और मौलिक ग्रन्थ भी दिये है । इस प्रसग में चन्द्रसेन मुनि का केवलज्ञान होरा, दामनदिके शिष्य भट्टवासरि का आयज्ञानतिलक, चन्द्रोन्मीलनप्रश्न, भद्रबाहुनिमित्तशास्त्र, अर्घकाण्ड, मुहूर्त-दर्पण, जिनपालगणी का स्वप्नचितामणि आदि उपयोगी ग्रन्थ है ।

जैसा ऊपर कहा गया है, इस लेख मे सस्कृत साहित्य के विषय मे जैनविद्वानो के मूल्यवान सहयोग का केवल दिग्दर्शन ही कराया गया है । सस्कृत साहित्य के प्रेमियो को उन आदरणीय जैन विद्वानो का कृतज्ञ ही होना चाहिए । हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम हृदय से इस महान् साहित्य से परिचय प्राप्त करे और यथासम्भव उसका सस्कृत समाज मे प्रचार करे ।

❧ ❧ ❧

Ahimsa Ideology and Family Planning

Dr Bool Chand

Director, Ahimsa Shodh Peeth

[Doctor Boolchand the Ex-Director of Ahimsa Shodh Peeth and professor Panjab University, Chandigarh, retired I. C. S. He has done the work of highest level by spreading the message of Indian Culture in the world. The most important and extra-ordinary work which has been done in the Ahimsa Shodh Peeth is due to him and his efforts.

The essay on Ahimsa Ideology and Family Planning written by him is really the work of the great intelligence. The country is facing the problems of rising prices now-a-days. He has correlated Ahimsa Ideology with family planning. He has laid great emphasis not on the birth control but on the self-control. The increasing number of population can only be checked by the self control. This check on the increasing number of the population is necessary to observe the goal of the Five-Year Plans He also lays great emphasis on the chastity of the soul, body and heart which has been discussed at great length by Mahatma Gandhi.]

Being based upon reason and scientific method, Ahimsa ideology naturally relies on Planning as a proper procedure in all human activities Planning implies a conscious attempt to work out adequate means to reach desired ends.

In regard to the size of the population, for instance. the Government of a country may at any time follow a deliberate policy of population control; but in the case of individual men and women also, it is the view of Ahimsa thinkers that a Policy of family planning is inescapably required. Family planning involves the estimating of income and expenditure for husband. wife and children for a year or more in advance, and it also involves the well-being of the family for many years into the future. Among other things, this involves the planning of the size of the family.

More than other law-givers, Ahimsa philosophers have laid insistent emphasis upon two things in particular. First, that married persons must understand that the begetting of progeny imposes a fundamental and inescapable responsibility upon the parents not merely for its proper feeding, its bringing up, its education. but also for helping it to develop into useful citizens of the community who may be capable of contributing to the common well-being. Secondly, that married persons must always try to consciously regulate the number of their progeny by voluntary moral restraint. In respect of the first thing. Ahimsa thinkers feel that it would be justified for State authority to take

action to bring home to the citizens their fundamental responsibility towards their progeny by recourse to even punitive measures.

Ahimsa thinkers have included the 'sheel' or vow of chastity for married persons in their scheme of ethical conduct. The Jains, the Buddhists and the Hindus in India as well as Christians in the West have laid down the principle of monogamy, and have further laid down with precision and specific detail the rules of chastity which must be followed by married persons. Mahavira, Moses, the Buddha, Confucius, Socrates, Aristotle and Christ, all Ahimsa thinkers in the world have further prescribed a code of personal sexual ethic. By some this code of personal sexual ethic has been invested with a divine or semi-divine authority Each Ahimsa thinker has formulated for this own day and for his own community a criterion by which human conduct may be regulated and controlled. Ahimsa sociologists also have formulated a social sexual ethic on the basis of metaphysics, psychology and physiology. Realising that man is naturally polygamous and woman naturally polyandrous, and realising further that human society will not prosper or make progress unless a check is placed upon the promiscous psychological impulses of men and women, at first the institution of marriage and eventually monogamous marriage was invented as a form of this check.

This personal and social ethic his naturally differed from age to age. But certain elements of stability have been present in it throughout, and these are more or less permanent These elements may be summarised in a series of descending prohibitions. All forms of sexual indulgence have been disallowed to those who have a conviction in favour of entire continence. To those who have entered into the bond of marriage, sexuality outside marriage has been forbidden Over-indulgence has been regarded as an evil and a sin for any class of persons indulging at all. For the immature and the youthful indulgence has been recommended to be postponed

Ahimsa thinkers have never been in favour of the expedient

called 'Birth Control', which has been with us secretly for a long time and which has become a public policy in recent years. It consists in the use of chemical and mechanical means for the prevention of contraception. Ahimsa thinkers have been opposed to this expedient mainly because they have felt that by the use of contraceptives inordinate sexual indulgence inside as well as out of marriage gets facilitated. From the physiological point of view inordinate sexual indulgence is most likely to lead to the speedy decline to the human race. The subject has been discussed at great length by Mahatma Gandhi in his weekly writings, which have been collected 'Self-Restraint Vs self Indulgence'.

It is an earnestly held view of Ahimsa thinkers that the best form of family planning would be by self-control or Brahmacharya. Yet Ahimsa thinkers deplore with the others failure of the family planning programme initiated by our Government in the Five Year Plans of this country. It was in the First Five-Years Plan that the idea of population control and the reduction of the birth-rate to the extent necessary to stabilise the population at a level consistent with the requirements of national economy' was first mooted. The appeal for family planning was then mainly put forward on considerations of health and welfare of the family. In the second and the third Five-Year Plans the programme of family planning was developed further and it was stated that the objective of stabilsing the growth of population over a reasonable period must be regarded as at the very centre of planned development.

The large-scale family planning programmes have unfortunately not been too successful. The population has continued to increase at the normal or even higher than normal rate. That is a matter for real regret Of all those who believe in Ahimsa ideology it becomes an obvious duty to be positively assiduous in the implementation of the policy of population stabilisation and control deliberately adopted by our Government by all the means within their capacity.

श्री तनसुखराय जैन स्मृति ग्रन्थ संयोजक समिति

सम्माननीय सदस्य

श्री दानवीर साहू शान्तिप्रसाद जी अध्यक्ष कलकत्ता
,, जगजीवनराम जी भूतपूर्व रेलवे मंत्री भारत सरकार
,, पद्मभूषण श्री कुंवरसैन जी चीफ इन्जीनियर वैंकाक, थाईलंड
,, अचलसिंह जी M. P. आगरा
,, बा० तख्तमल जी जैन मिनिस्टर मध्य प्रदेश सरकार भोपाल
,, ला० राजेन्द्रकुमार जी प्रधान भा० दि० जैन परिषद
,, आचार्य जुगलकिशोर जी मिनिस्टर उत्तर प्रदेश सरकार लखनऊ
चौधरी श्री देशराज जी भूतपूर्व डिप्टी मेयर दिल्ली कारपोरेशन दिल्ली
श्री जयन्तीलाल जी मानकर संचालक जीवदया प्रचारक मण्डल बम्बई
,, ऋषभदास जी रांका अध्यक्ष भारत जैन महामण्डल बम्बई
,, देशभक्त बाबू रतनलाल जी जैन Ex. M. L. A. बिजनौर
,, रायबहादुर बा० दयाचन्द जी जैन रिटायर्ड चीफ इन्जीनियर दिल्ली
,, चिरंजीलाल जी बडजात्या वर्धा
,, लाला राजकृष्ण जी जैन दिल्ली
,, प० परमेष्ठीदास जी जैन न्यायतीर्थ, ललितपुर
,, प० शीलचन्द जी जैन न्यायतीर्थ मवाना
,, श्री कान्ता जी जैशीराम आनरेरी फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट दिल्ली